ISSN : 2278-4632

JUNI KHYAT

जूनी ख्यात

इतिहास, कला एवं संस्कृति की शोध पत्रिका

A Peer-Reviewed and Listed in UGC Care List



'जूनी ख्यात' सम्पादक मण्डल

प्रो. हरबंस मुखिया	इतिहास	जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रो. वसन्त शिंदे	पुरातत्त्व एवं प्राचीन इतिहास	पूर्व कुलपति दक्कन कॉलेज, पूना
प्रो. के. एस. गुप्ता	इतिहास विभाग	मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा	मध्यकालीन इतिहास	पूर्व कुलपति, वर्धमान महावीर खुला विवि., कोटा (राज.)
प्रो. एस. इनायत अली ज़ैदी	इतिहास विभाग	जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रो. एल. एस. निगम	प्राचीन इतिहास	पूर्व विभागाध्यक्ष, रायपुर
प्रो. सीताराम दुबे	प्राचीन इतिहास	बी.एच.यू., वाराणसी
प्रो. चन्द्रपाल सिंह चौहान	शिक्षा	अलीगढ़ मुस्लिम वि.वि., अलीगढ़ (उ.प्र.)
प्रो. बी. एम. शर्मा	राजनीति शास्त्र	राज. विवि., जयपुर
प्रो. ए.एस. के.दास	शिक्षा एवं मनोविज्ञान	वाइस चांसलर श्री खुशालदास विश्वविद्यालय हनुमानगढ़ (राज.)
प्रो. अब्दुल मतीन	समाजशास्त्र	अलीगढ़ मुस्लिम वि.वि.,अलीगढ़ (उ. प्रदेश)
प्रो. आर. आभापाल	आधुनिक इतिहास	पं. रविशंकर शुक्ल वि.वि., रायपुर
प्रो. विपुलसिंह	पर्यावरण इतिहास	दिल्ली वि.वि., दिल्ली
प्रो. जीवनसिंह खरकवाल	प्राचीन इतिहास पुरातत्त्व	साहित्य संस्थान जे.आर.एन, विद्यापीठ, उदयपुर

JUNI KHYAT

जूनी ख्यात

(सामाजिक विज्ञान, कला एवं संस्कृति की शोध पत्रिका)

वर्ष : 11 • अंक 2

जनवरी-जून 2022

A Peer-Reviewed and Listed in UGC CARE List

ISSN 2278-4632

संपादक

डॉ. बी. एल. भादानी

प्रोफेसर

प्रबंध संपादक

श्याम महर्षि

मरुभूमि शोध संस्थान

संस्कृति भवन

एन.एच. 11, श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राजस्थान

प्रकाशकीय एवं विज्ञापन कार्यालय :
सचिव, मरुभूमि शोध संस्थान, श्रीडूँगरगढ़-331803 (बीकानेर) राज.
आजीवन सदस्यता 4000 रु. **। इस अंक का मूल्य : 300 रुपये**
सहयोग दर : (व्यक्तिगत) एक अंक 100 रुपये ❑ प्रति वर्ष 200 रुपये
(संस्था) एक अंक 150 रुपये ❑ प्रति वर्ष 300 रुपये
बाहरी चैक के लिए 25 रुपये अतिरिक्त

Life Membership fees should be transferred directly to the A/c of Institution and send us screenshot

आजीवन शुल्क संस्था के निम्न खाते में सीधा ट्रांसफर करके हमें बताने की कृपा करें।

1. **Punjab National Bank**
2. **Sri Dungargarh**
3. **मरुभूमि शोध संस्थान**
4. **खाता सं. 3604000100174114**
5. **IFSC Code - PUNB0360400**

Marubhumi Shodh Sansthan,
Sri Dungargarh (Bikaner)
Account No.
3604000100174114

ड्राफ्ट/नकद भुगतान भेजने का पता :

श्याम महर्षि
सचिव :
मरुभूमि शोध संस्थान
(राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति)
श्रीडूँगरगढ़ 331803 (बीकानेर) राज.
फोन : 01565-222670
आलेख सीडी में या निम्न पर ईमेल किया जा सकता है।

चित्र प्राप्ति : **डॉ. राकेश किराड़ू**
ढोला मारू री वात, वि.सं. 1836, सृजनकर्ता मथेरन अभेराम, सृजन स्थल, बीकानेर

सम्पादकीय कार्यालय :
डॉ. बी.एल. भादानी
रांगड़ी चौक, बीकानेर 334001 (राज.) मो. 9950678920
bbhadani.amu@gmail.com • junikhyat.mss@gmail.com

सावधान

जूनी ख्यात (अर्द्ध वार्षिक) दिसम्बर 1994 ई. से नियमित Print Form में प्रकाशित हो रही है। जून 2019 में 'UGC Care List' (S.N. 220) में सामाजिक-विज्ञान की श्रेणी में सम्मिलित करली गई है। हमारी पत्रिका Online प्रकाशित नहीं होती है।

जूनी ख्यात नाम से ही एक फर्जी पत्रिका (Cloned Journal) ऑन लाइन निकाली जा रही है जो हमारे ही ISSN एवं यू.जी.सी. केयर लिस्ट की संख्या को उपयोग में ले रही है। इस सम्बन्ध में **यू.जी.सी.** ने 23-7-2020 को 'Cloned Journal' की एक सूची जारी की है उसमें अन्य पत्रिकाओं के साथ **जूनी ख्यात** का भी नाम है। यह पत्रिका निम्न वेबसाइट पर प्रत्येक विषय के शोध पत्र आमंत्रित करती है।

Juni khyat Journal		
Language	:	English & Hindi
Publisher		NA
ISSNo.		2278-4632
URL http	:	www.junikhyat.com

हमारी पत्रिका **मरुभूमि शोध संस्थान, श्रीडूँगरगढ़** द्वारा प्रकाशित की जाती है। अब 'नकली पत्रिका' बी.एल. भादानी, संपादक के नाम का भी उपयोग कर रही है जो एक आपराधिक कृत्य है।

इसमें तथाकथित रूप से प्रकाशित आलेख का कोई महत्त्व भी नहीं है। इसलिए शोधार्थियों से सावधान रहने की अपील की जाती है।

बी.एल. भादानी
संपादक

Sl.No.	Journal No.	Title	Publisher	ISSN
220		JUNI KHYAT		2278-4632

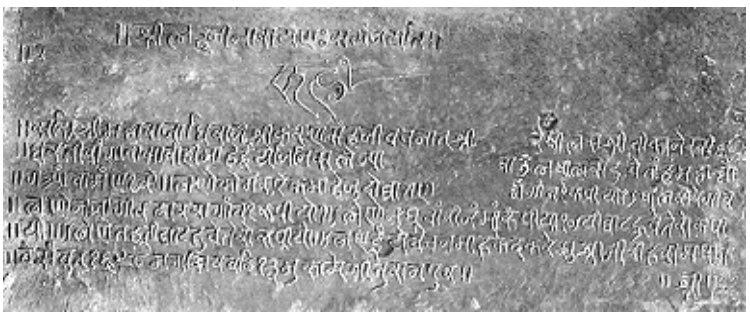
UGC Journal Details

Name of the Journal **: JUNI KHYAT (Print Form)**
ISSN Number : 2278-4632
e-ISSN Number : NA
Source : **UGC**
Discipline : **Social Science**
Subject : **Social Sciences (all)**
Focus Subject : Cultural Studies
Publisher : Marubhumi Shodh Sansthan, Sri Dungargarh (Bikaner)

।। श्री लक्ष्मीनारायणः सत्यं जयति।।

सही

।। स्वस्ति श्री महाराजाधिराज श्री करणसिंह जी वचनात् श्री..... रे खालसे श्री बीकानेर री धरती रां गावा सारां ही माहे ईये जिनिस लेज्या..... राउल खालसे हुवे तांह महा भोगत्र्यां वामंण 1 से ।। लणो कोठर ऐक माहे जुदो घातण.....ने गांव 1 रूपीयो 1ऽ



खालसे रे गाव लणो न जागीरदार रा गांव 1 रुपीयो 1।ऽ लेणो न धूवां र 1 जमां रूपीया 10ऽ यी घाट हुवे तेरो रूपीयो ।।।ऽ लेणे तहती घाट हुवे तेरो रुपीयो ।।ऽ लण ई ये वचन माह कदक रे सु श्री जी रा हरामखार छे संवत् 1698 मगसिर वदि 13 मुकाम श्री बुरानपुर।। श्री।।

सारांश : वि.सं. 1698 मार्गशीर्ष कृष्ण 13 (सोमवार, 30 दिसम्बर, सन् 1641 ई.) के इस शिलालेख के अनुसार बीकानेर महाराजा करणसिंह तब दक्षिण भारत-बुरहानपुर में थे। उन्होंने धूआं व जिनिस (जिन्स-फसल) पर निश्चित व्यवस्था के अनुरूप रियासत के सभी गांवों से कर लेने का आदेश 'सही' के रूप में भिजवाया था। बीकानेर रियासत के जागीरदारों के सभी गांवों, रावला-खालसा गांवों के भोक्ताओं तथा अन्य सभी गांवों से जिन्स व धूआं कर अलग-अलग तय होने की जानकारी इस शिलालेख से प्राप्त होती है।

साभार :

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद व्यास चूरूवाला

'रियासतकालीन बीकानेर के शिलालेख'

नामक ग्रन्थ से

संपादकीय

जूनी ख्यात (जनवरी-जून 2022) के इस अंक में अड़तीस शोध आलेख हैं जो सामाजिक विज्ञान के विभिन्न विषयों से सम्बन्धित हैं। चूंकि हमारी पत्रिका यू.जी.सी. केयर लिस्ट में सामाजिक विज्ञान श्रेणी में है इसलिए अन्य किसी अन्य विषयों जैसे विज्ञान एवं तकनोलोजी (टेक्नोलॉजी) से सम्बन्धित आलेख हम नहीं स्वीकार करते हैं। उसके बावजूद विद्वान एवं शोधार्थी इस सम्बन्ध में जानकारी हेतु बार-बार फोन करते रहते हैं जिससे हमारे अलावा उनका स्वयं का भी समय बर्बाद होता है। यही नहीं कुछ विद्वान तो अपना आलेख हमारे ईमेल पर बिना पूछे भेज देते हैं एवं फिर प्रकाशन के सम्बन्ध में जानकारी करते रहते हैं। इसलिए सभी शोधार्थियों से अनुनय निवेदन है कि हमें आलेख प्रेषित करने से पूर्व हमसे बात करने की कृपा करें जिससे आपको अनावश्यक असुविधा नहीं होगी।

इस सम्बन्ध में एक बात और जो हमारे लिए अत्यन्त कष्टप्रद होती है वह यह कि कुछ विद्वान अपना आलेख इसी नाम से निकलने वाली फर्जी पत्रिका में प्रेषित कर देते हैं एवं हमसे इस सम्बन्ध में जांच पड़ताल करते हैं एवं बहस करते हैं कि **जूनी ख्यात** में ही हमने शोध पत्र भेजा है जिसके लिए हमने भुगतान भी किया है। हमारी पत्रिका की नीति है कि हम किसी से आर्टिकल प्रकाशित करने की फीस नहीं लेते हैं। ऐसे महानुभावों से नम्र निवेदन है कि अपना शोध पत्र भेजने से पूर्व अच्छी तरह से पड़ताल कर लें कि जिस पत्रिका में वे भेज रहे हैं वह नकली तो नहीं है एवं कहीं वे किसी फर्जी झंझाल के शिकार तो नहीं हो रहे है। हमने इस सम्बन्ध में साईबर क्राईम सेल में शिकायत दर्ज करवा दी है जिसकी एफ.आई.आर. भी करवादी है।

संस्था ने अपना स्वयं का डोमेन बना लिया है जिसका नाम है **junikhyat.com** इस साईट पर पत्रिका से सम्बन्धित सारी जानकारी उपलब्ध रहेगी। नियमित रूप से इसको अपडेट किया जाता रहेगा। पत्रिका के अतिरिक्त संस्था का प्रोफाईल संकलित किया जावेगा। विद्वानों एवं शोधार्थियों से अनुरोध है कि इस डोमेन पर जाकर सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

हमारी पत्रिका की नीति है कि हम सभी आलेखों को विषय-विशेषज्ञ के पास भेजते हैं उनसे जो भी राय आती है उसे हम लेखक के पास भेजते हैं। इस सम्बन्ध में पूरी प्रक्रिया हो जाने पर ही आलेख के प्रकाशन हेतु स्वीकार करते हैं जिसमें कम से कम छह मास लगते हैं। इसके पश्चात् ही हम स्वीकृति पत्र जारी करते हैं।

पत्रिका के सम्पादक मण्डल एवं विशेषतः विषय-विशेषज्ञों का आभार व्यक्त करते हैं कि उन्होंने समय पर अपनी राय प्रेषित की तथा साथ ही भविष्य में इसी प्रकार के सहयोग की अपेक्षा करते हैं।

पत्रिका की टाईपिंग एवं सेटिंग के लिए श्री जुगल किशोर सेवग की जितनी प्रशंसा की जाये वह कम है। पत्रिका के प्रकाशन तक वे सजगता से प्रेस के सम्पर्क में रहते हैं जिसके लिए उनका आभार।

कल्याणी प्रिण्टर्स, बीकानेर के श्री मनमोहनजी कल्याणी एवं श्री रमेशजी शर्मा का सुन्दर प्रकाशन हेतु आभार।

इसके अतिरिक्त श्री कपिल व्यास के संस्था आभारी है कि उन्होंने पत्रिका का डोमेन बना दिया जिससे शोधार्थी निश्चित ही लाभान्वित होंगे।

सम्पादक

डॉ. बी. एल. भादानी

विशेष : जो लेखक अपनी पत्रिका रजिस्टर्ड डाक से मंगवाना चाहते हैं वे एक वर्ष के अंक के लिए 160 रुपये अतिरिक्त भिजवाने का कष्ट करें।

अनुक्रम

- Understanding the Buddhist Parable of the Raft 11
  - *Radha Krishna Baror*

- Tracing the Changing History Writing : Contextualising The texts of Meghwals 20
  Dr. Rajshree Dhali • *Dr. Bhupinder Kumar Chaudhry*

- Shaivite Imagery in Early Western Chalukyan Temple Sculptures 35
  - *Prof. (Dr.) Preeti Sharma*

- An Assessment of the Historical Information in *Bir Charitra* of Keshao Das : A Hindi Literary Source of Akbar and Jahangir's Reign 50
  - *Amir Ahmad*

- Professional Class and Urban Growth of Eighteenth Century Rajasthan: A study of Luhars and Julahas 61
  - *Shabir Ahmad Punzoo*

- Revisiting the Culture: A Study of the Folk Songs of Rajasthan 73
  - *Dr. Santosh Kanwar Shekhawat*

- Massacre, Revolt and British Anxiety : Built Environment of Patna, 1763-1900 83
  - *Vipul Singh*

- Savitri Devi alias Helen Lepcha's Memoir as a freedom fighter from Eastern Himalayas- (Darjeeling) 98
  - *Dr. Gouri Dey*

• Strengths, Shortcomings, and Challenges of E-learning during Covid-19 Pandemic in India : A Systematic Review 106
• Dr. Keerti Singh

• Empowering Women Thropugh Education in India 119
Mrs. Shweta Bajaj • Mr. Abhishek Verma

• Human Rights Perspective of Right to Food and Judicial Response in India : A Review with special reference to the Position of Refugees 125
Tanmoy Roy • Dr. Pradip Kumar Das

• A Study On The Relationship Among Positive Body Image, Big Five Personality Factors, and Self Esteem 142
Sneha Sharma • Dr. Megha Arya

• Understanding the Cross-Region Marriages in Haryana and the Consequential Conditions of Cross-Region Brides 156
• Ashish Kumar

• Rescinding of an Airport Project : An Epic Campaign Against Ecological Destruction 175
• Dr. Lekha Pillai

• Bikaner Region Heritage and Gastronomy Culture: Attraction For National And International Tourists 185
Mr. Umang Bhartwal • Dr. Naveen Sharma

• Kolkalidance and Physical Wellbeing : A Special Emphasis On Muscular Strength 201
• Dr. Jayakumar K.,

• Organoleptic Acceptability and Nutritional Properties of Millets Based Low Glycemic Index Value Added Ready To Cook Cheela Mix 207
Alisha • Dubey Prakash • Ritu Prasad Ranu

• Communication Patterns and Technologies for The prisoners in Jails In India 216
Preetinder Kaur • Dr. Ekta Mahajan

• Experiential Learning in Schools :
A study in Guwahati City, Assam 233
• *Dr. Saru Joshi*

• Pragmatic Acumen To Sustainability 244
• *Siddharth Srivastava*

• मध्यकालीन शहर ओरछा पर्यावरण की दृष्टि से एक अध्ययन 252
• *सफ़िया ख़ान*

• मुगल काल में मुस्लिम महिला शिक्षा 263
• *डॉ. शोभा सिंह*

• मध्यकालीन सौहार्दपूर्ण संस्कृति और हिंदुस्तान 272
• *डॉ. मनीष श्रीमाली*

• मध्यकाल में रंगाई छपाई उद्योग : मारवाड़ के सन्दर्भ में 285
• *डॉ. मधु कुमावत*

• गुरु जम्भेश्वरजी की सबदवाणी एवं भक्ति आन्दोलन 293
अनिला पुरोहित • वंदना चौधरी

• जयपुर शैली के लघुचित्रों में नायिका-भेद अंकन 298
• *डॉ. रीतिका गर्ग*

• पुष्करणा ब्राह्मण समाज की सामाजिक व्यवस्था एवं
बीकानेर राजवंश के साथ सम्बन्ध 304
• *डॉ. मुकेश हर्ष*

• मारवाड़ में दशनाम सम्प्रदाय की भूमिका तथा रियासत द्वारा
मठों को आवंटित पट्टे : एक आर्थिक विश्लेषण 314
डॉ. दिनेश राठी • हुमा गोस्वामी

• महिला उत्थान में गाँधी चिंतन के निहितार्थ 320
डॉ. मृदुला शर्मा

- गाँधी चिन्तन में अस्पृश्यता की अवधारणा का विश्लेषणात्मक अध्ययन 331
  • *डॉ. दीपक कुमार अवस्थी*

- सौरभ पत्रिका और राजपूताना में गाँधीवादी राष्ट्रीयता की अनुगूँज 341
  • *डॉ. (श्रीमती) सज्जन पोसवाल*

- काशी के मेले, तमाशा एवं त्यौहार : समाजशास्त्रीय पाठ 353
  • *डॉ. विमल कुमार लहरी*

- मिथिला कला एवं पुनरुद्धार 369
  • *शोभिका मुकुल*

- छत्तीसगढ़ के आदिवासी समाज एवं संस्कृति पर वैश्वीकरण का प्रभाव 378
  • *डॉ. किशोर कुमार अग्रवाल*

- कांकेर जिले की गोंड जनजातीय परम्परागत न्याय व्यवस्था पर आधुनिकीकरण का प्रभाव 390
  • *डॉ. बन्सो नुरूटी*

- औपनिवेशिक काल में मध्य भारत से फीजी में प्रवासी गिरमिटिया मजदूर : एक अवलोकन 401
  • *डॉ. चयनिका उनियाल*

- प्रतिरोधी कूटनीति अंतिम विकल्प नहीं अफगानिस्तान की समस्या का समाधान 412
  • *डॉ. मोहन लाल जाखड़*

- उपार्जन केन्द्रों में पंजीकृत किसानों द्वारा धान की बिक्री की मात्रा में कमियों का अध्ययन एवं उपाय 422
  • *कु. डिगेश्वरी देवांगन*

Understanding the Buddhist Parable of the Raft

● **Radha Krishna Baror**

I

In *Alagaddūpama Sutta* of *Majjhima Nikāya*, the Buddha compares the dhamma with a 'raft'; he says: "Bhikkhus, I shall show you how the *Dhamma* is similar to a raft, being for the purpose of crossing over, not for purpose of grasping" (*kullūpamaṁ vo bhikkhave dhammaṁ desissāmi nittharanatthāya no gahaṇatthāya*, M i.134). The Buddha elaborates further: suppose a man wants to cross a "great expanse of water" (*mahatṁ udakaṇṇavaṁ*) but there is no availability of ferryboat or bridge (*na câssa nāvā santāraṇī uttarasetu vā apārā pāraṁ gamanāya*, M i.134). Then, the man collected "grass, twigs, branches, and leaves" (*tiṇa-kaṭṭha-sākhā-palāsaṁ*), makes a raft, and reached the other shore, without hindrance (M i.135). But, after the crossing the water, he might think that as this raft is very helpful, he should always keep it with him, on his head or shoulder (M i.135). Buddha asked the bhikkhus: Is this kind of approach would be right? As expected, they answered in the negative, as this type of foolishness would become a hindrance for his further journey. The Buddha states that the purpose of *dhamma* is quite similar to the above-mentioned 'raft'. Like the 'raft' of the above parable, *dhamma* is not the goal in itself but only a means to attain that goal. Thus, the Buddha says: "Bhikkhus, when you know the *Dhamma* to be similar to a raft, you should abandon even good states, how much more so bad states" (*"kullūpamaṃ vo bhikkhave ājanantehi dhammā pi vo pahātabbā pag'eva adhammā",* M i.135). The Buddha's message is quite clear that the *dhamma* is intended to lead humans to "safety, peace, happiness, tranquillity, the attainment of *nirvāṇa*" (Rahula 1974: 12), when the goal is achieved there is no need to "clung" to it. What the 'parable of the raft' emphasizes

is that: "The truths are useful for salvation but even they should not be clung to however useful they may have been" (Jayatilleke 1963: 357). Any kind of dogmatic attachment, even to the *dhamma*, is discouraged in the Pāli nikāyas. Therefore, even though perfected Buddhas, bodhisattvas, and mahāsiddhas remain in *saṃsāra*, they do not cling to it. As is stated: "Just as no splash/ sullies the lotus, / so senses leave/ sages unsullied" (Sn 812). Thus, the *Sutta-nipāta* advises that one should not cling to any kind of dogmatic views *(diṭṭhi)* : Not 'views' or hearsay, lore / Or works, gives purity; /nor does the lack of them. Discard all this; win calm; be free; crave no rebirth (Sn 839). Dependency and clinging are discouraged in Buddhism; one should not "cling" even to the Buddha and the *dhamma*. The *Dhammapada* says: "You alone are your own refuge; who else could be?" (*Attā hi attano nātho, ko hi nātho paro siyā*, Dh 160). Man is the master of his destiny. It is for this reason that the Buddha never assumed the title of savior, in the sense of the guarantor of miraculous release. Instead, he only claimed that he is a teacher, a physician, a guide, and a torchbearer; thus, he can show the right way but one has to strive for his emancipation *(vimutti)*; one has to tread the path by himself. As is evident, non-attachment is the essence of this parable- Even to the point that it is said that one should "get rid" of dhamma after attaining the goal. Why non-attachment is so important for emancipation? To this, now we turn toward the root cause of human suffering–*Taṇhā*.

II

The cause of suffering *(dukkha)* is craving *(taṇhā)*, as the second noble truth implies. Furthermore, craving leads to grasping *(upādāna)*; but, since "all the transient things are impermanent" (*sabbe saṅkhārā aniccā*, Dh 277), and, "all the transient things are unsatisfactory" (*sabbe saṅkhāra dukkha*, Dh 278); definitely, the natural consequence of craving would be suffering. Thus, Burton argues: "craving causes suffering because the objects one craves are impermanent" *(anitya)* (2002: 326); and those who craves "does not accept the reality of change" *(loc. cit.)*. The things impermanent would be lost sooner or later, however, they may be dearer to us; and "finding this 'not one's own-ness'" would produce *dukkha* (Warder 2004: 101). Even gods and angels are not free from *taṇhā,* therefore they would not remain in everlasting happiness (Eliot 1988: 206). Eradicating the root cause of suffering *(dukkha)* is a prerequisite for the attainment of freedom. Thus, "desire for pleasure, desire for

existence, desire for non-existence or hatred of existence" must be annihilated to break the cycle of birth and death (Poussin 1917: 139). The clinging is the great barrier on the path of dhamma; it is due to the clinging that beings are entangled in the saṃsāra. Thus, it is said that "dependent on clinging arise existence" *(upādānapaccayā bhavo)* (*Abhidhammattha Saṅgaha* VIII, p. 294-5). In Pāli *nikāyas*, four types of clinging *(cattāro upādāna)* are mentioned: k*āmupādānaṃ, ditthipādānaṃ, silabbatupādānaṃ, attavādupādānaṃ* (see *Dhammacakkappavattana-sutta* in *Saṃyutta-nikāya* V). These are also mentioned in the *Nidānasaṃyutta:* "clinging to sensual pleasure, clinging to views, clinging to rules and vows, clinging to doctrine of self" (S II.3). Thus, it is clinging which is responsible for the entanglement of beings in *saṃsārik papañca-s.*

Furthermore, the biased attachment to any kind of dogmatic view *(diṭṭhi)* is also recognized as a hindrance on way to enlightenment. Thus, the Buddha states that "one cannot hope to attain purity either by clinging to one view *(diṭṭhi)* or by having no view *(adiṭṭhi)*" (Kalupahana 1992: 91 based on Sn 840). It is for this reason; he always discouraged futile speculations and debates. Winning debates is not the guarantee of the truth, thus, he criticized reasoners and speculators. Buddha asserts that "he does not belong to the class of teachers who are reasoners *(takkī)* and speculators *(vīmaṃsī)*, who base their knowledge on reasoning and speculation" (Jayatilleke, p. 205). Therefore, *Sutta-nipāta* states: "Diverse 'experts' hold hostile debates, clinging to their own theories *(saying)*, 'he who knows thus, knows the truth, while who criticizes this, is ignorant'" *("sakaṃ sakaṃ diṭṭhi paribba sānā, viggayha nānā kusalā vadanti: 'yo evaṃ jānāti sa vedi dhammaṃ idaṃ paṭikkosam akevalī so",* Sn 878, 879 cited in Jayatilleke 1963).

Non-clinging is essential to get freedom from the cycle of birth and death (A I.142). Thus, it is said that "Tathāgatas cling to nothing" (A II.26). But, a state of non-clinging cannot be achieved merely by wishing it; instead, it should be achieved through practice. Without practice, theoretical discourses are fruitless; thus, Buddhism gives equal importance to both theory and practice. According to the Pāli canon, for the attainment of the state of non-clinging one should develop or practice: 'mindfulness', 'right striving', 'psychic potency', seven factors of enlightenment, and the noble eightfold path (A IV.125).

Those who can understand the true nature of existence, and know the four noble truths, are not frightened by the changes and impermanency; consequently, they did not cling themselves to transient things. They refrain themselves from "excessive involvement"; ready to change themselves "in the light of new information or different perspective", thus, "remain at peace (khema) and without fear (appaṭibhaya)" (Kalupahana 1992: based on M i.117, 347, 377; S IV.175; Sn 454). The "cultivation of mindfulness" (satisampajañña, M i.346) is intrinsically connected to equanimity (uppekkhāsatipārisuddhiṃ, M i.347). Furthermore, equanimity (upekkhā) and non-clinging are also related to each other. Equanimity is so important that it is recognized as one of the seven factors of enlightenment (Abhidhammattha Saṅgaha VII, p.29). It is said that those who are endowed with equanimity, always remain in sama-bhāva. And, "There are no bonds for those who hold no person or thing dear or not dear" (Gantha tesaṁ na vijjanti, yesaṁ natthi piyāppiyaṁ, Dhammapada, 211), such person is above the dichotomy of rāga and virāga: Thus, "he pervades all beings with equanimity" (Vibhaṅga, 275). The Dhammapada says: "In face of blame and praise, the wise remain immovable" (81). For the cessation of dukkha, attainment of non-clinging is the primary condition (see Dhammapada, 335).

The craving (taṇhā) produces kāma, krodha, lobha, and moha; and these are the fetters that restrict one's progress on the path of freedom. Thus, a person who craves "chooses for his own affliction and for affliction of both, and experiences pain and grief" (A III.55). Buddha says: "For the fetter of thirst, o monks, creatures are fettered, and for a long time are caused to undergo rebirth and transmigration" (Iti-vuttaka, 15). Furthermore, "clinging in its turn depends on Taṇhā, the thirst or craving for existence" (Eliot 1988: 208). And, both are the greatest impediments on the road to nibbāna. The craving (taṅhā), of whatever nature, is the cause of suffering: thus, according to Buddhist teachings, "it is pernicious to delight in sense objects, and even more pernicious to entertain in oneself an impossible ideal of eternal survival or utter annihilation" (Lamotte 1988: 35). If everything is impermanent, then any kind of dogmatic attachment is foolishness.

For the attainment of nibbāna, destruction of taṇhā is necessary: since taṅhā is the cause of the suffering; it is due to the taṅhā that beings are trapped in the saṁsārik papañca-s. Thus, it is

said that "the sensual craving, the craving for the process of life, and craving for the negation of the process of life" (kāma-taṇhā bhava-taṇhā vibhava-taṇhā, D ii.308) are the great barriers on the path of Buddhahood. Need not to say, destruction of taṅhā leads to emancipation that is cessation of dukkha. And, when taṅhā is extinguished one become indifferent to the dichotomy of existence and non-existence: he has no desire for both, he is completely liberated ("Tāṃ tu tṛṣṇām prahāya hi vītatṛṣṇo bhāvabhave; nāsuu punaḥ saṃsarate tṛṣṇā hy asya na vidyate", Udānavarga III v.13 cited in Saddhatissa 1987: 164). Thus the Buddha advises: "Therefore by watchfulness discard desires; / expel them; bale your ship; and cross the Flood/ to safety's haven on further shore" ("Tasmā jantu sadā sato kāmāni parivajjaye; te pahāya tare oghaṁ, nāvaṁ sitvā va, pāragū ti", Sutta-Nipāta, 771). In fact, "The departure from craving is called nibbāna" (vāṇa saṅkhātāya taṇhāya nikkhantattā nibbānaṃ) (Saddhatissa 1987: 164). Thus, the arahat is said to be: "One who has crossed over the flood and gone beyond (pāragata); who has rooted out craving and cut-off desires" (Horner 1936: 98).

The metaphor of flood and crossing is frequently used in Indian tradition for the description of the nibbāna, kevalya, mokṣa, or any other kind of ultimate freedom. Buddhism used this metaphor too. But, this metaphor creates several confusions about the concept of nibbāna. Thus, the term 'pāra' -"one who has crossed over"- is generally used in the sense of a 'static changeless condition'; but, as we know, this meaning is fundamentally opposed to the essence of dhamma. In Buddhism, nothing is recognized as permanent, static, and changeless: "everything, including man, is in state of continual flux" (see Horner 1936: 286). Based on Rhys Davids' study, Horner argues that paraṇgata (pāra + gata) means "going beyond"; since "in primitive Sākya the cardinal idea of pāra was that of development" (Horner 1936: 282-3). Thus, pāra is not a "static state"; and, "this translation is in accord with the teaching of Becoming which was one of Sākya's contribution not only to the thought of Gotama's day but to the religious thought of all time" (Horner 1936: 282, 284). But if nothing is permanent and static then on what basis Buddhist ethics and morality is founded. Do Buddhist philosophy in general and the "parable of the raft" in particular allow moral transgression? Some scholars assumed so but dhamma does not allow it. For understanding this, I should enter the next stage of this article.

III

Buddha was not ready to sacrifice human life for morals or any other kind of readymade rules; human life is much more exalted than rules; and, whenever they come into conflict with human dignity they should be changed or broken, there is nothing wrong with it. Thus the Buddha said (in his last sermon, Mahāparinibbāna-Sutta): "If they wish, the order may abolish the minor rules after my passing" ("Ākankhamāno Ānanda saṃgho mam' accayena khuddânukhuddakāni sikkhāpadāni samūhaṅtu", D ii.155). Thus, "human life is not made for morals; morals are made for human life" (Kalupahana 1992, 101). Indeed, "there is no higher being or power that sits in judgment over his destiny" (Rahula 1974: 1). Therefore, the Buddha does not pass fixed readymade judgment on the issue of 'right' and 'wrong'. The rightness or wrongness of an action depends on several factors like situation, context, aim, etc. Indeed, deciding rightness or wrongness of an action is not so easy; instead, it requires deep understanding (see Atthasālini, p. 134, 138).

Even though the acts which are performed with awareness and mindfulness are above the dichotomy of pure and impure (Atthasālini, p. 118), the Buddha was not in favor of moral transgressions. Thus, those acts are considered wholesome which are performed as per the noble eightfold path (S V.18). During his times, some ascetic philosophers have the view that there is "no fruit or result of good and bad actions" (M i.401); but the Buddha refuted this type of nihilistic approach. For the Buddha, morality is the foundation of the dhamma that helps in spiritual progress. Even though it is not an ultimate end in itself, it is a pre-requisite to progress on the dhamma-magga. It is for this reason the noble eightfold path is considered as a "way", not a "destination" (Eliot 1988: 214). This means that one should not cling to the path; instead, one should tread it to reach the goal.

Moreover, the Buddha gave equal importance to the sīla (morality), samādhi (concentration), and paññā (wisdom). It is said in the Subha Sutta: "Subha, there were three divisions of things which the Lord praised": sila, samādhi, and paññā (D i.206); those who are endowed with these three would succeed in the attainment of liberation (Iti-vuttaka, 59; Udānavarga, VI.11). It is stated, "The ariyan delights not in things evil, the pure one delight not in things evil" (Udāna, p. 105). Therefore, the Dhammapada advises: "Make

haste in doing good; check your mind from evil; for the mind of him who is slow in doing meritorious actions delight in evil" ("Abhittharetha kalyāne/ pāpā cittaṁ nivāraye/ Dandhaṁ hi karoto puññaṁ/ pāpasmim ramati mano", Dh 116). Buddha frequently asserts in the Pāli canon that, "He teaches the Dhamma good in the beginning, good in the middle, and good in the end, with right meaning and phrasing, and reveals a holy life that is utterly perfect and pure" ("ādikalyāṇaṁ majjhe kalyāṇaṁ pariyosāna-kalyāṇaṁ sātthaṁ sāvyañjanaṁ kevalaparipuṇṇaṃ parisuddhaṃ brahmacariyaṃ pakāseti", M ii.55). Thus, even though morality is not the goal, it is necessary to reach the goal. The Buddha's personality is "moral as well as intellectual perfection" (Tachibana 1987: 90). Thus it is stated, "Wisdom becomes brighter with conduct" (apadāne sobhati paññā, A I.102). By the "long and rigorous training in virtue and knowledge", arahat-s reached perfection (Horner 1936: 97). A moral path is a "gradual path" (Kalupahana 1992: 102), one has to train himself in morality. Even though morality (sīla) may be just the beginning of the path, without cultivation of it one cannot attain concentration (samādhi) and wisdom (paññā). It is essential for individual peace and social harmony. But, it implies not only avoidance of bad actions but also the cultivation of good ones. Thus, the Buddha said: "Avoid all evil, cultivate the good, purify your mind: this sums up the teaching of the Buddhas" ("sabbapāpassa akaraṇaṁ, kusalassa upsampadā; sacittapariyodapanaṃ, etaṁ buddhāna sāsanaṁ", Dh 183).

References

Primary Sources

- Abhidhammattha Saṅgaha of Ācariya Anuruddha: A Comprehensive Manual of Abhidhamma. Pali Text Originally trans. by Mahāthera Nārada. Trans. rev. by Bhikkhu Bodhi. Ed. Bhikkhu Bodhi. (1993). Kandy: Buddhist Publication Society. Third Ed. 2006
- Aṅguttara Nikāya. Bhikkhu Bodhi, trans. (2012). The Numerical Discourses of the Buddha: A Translation of the Aṅguttara Nikāya. Boston: Wisdom Publications
- Atthasālinī (The Expositor): Buddhaghosa's Commentary on the Dhammasangiṇi. Trans. by Maung Tin. Ed. by Mrs. Rhys Davids. London: Pali Text Society

- Dhammapada. Narada Thera, trans. with notes, (1963). Taiwan: Corporate Body of the Buddha Educational Foundation. 4th ed. 1993
- Dīgha Nikāya. Walshe, Maurice, trans. (1987). The Long Discourses of the Buddha: A Translation of the Dīgha Nikāya. Boston: Wisdom Publications
- Iti-vuttaka. Moore, Justin Hartley. (1908). Sayings of Buddha: The Iti-vuttaka. New York: Columbia University Press
- Majjhima-Nikāya. Bhikkhu Nanamoli and Bhikkhu Bodhi. Trans. (1995). The Middle Length Discourses of the Buddha: A New Translation of the Majjhima-Nikāya. Kandy: Buddhist Publication Society
- Saṃyutta Nikāya. Bhikkhu Bodhi, trans. (2000). The Connected Discourses of the Buddha: A Translation of Saṃyutta Nikāya. Boston: Wisdom Publications
- Sutta-Nipāta. Lord Chalmers, ed. and trans. (1932). Buddha's Teachings: Sutta-Nipāta or Discourse Collection. Delhi: Motilal Banarsidass. 1st Indian edition 1997
- Udāna. Masefield, Peter, trans. (1997). Oxford: Pali Text Society
- Udānavarga: A Collection of Verses from Buddhist Canon. Compiled by Dharmatrāta. Being the Northern Buddhist Version of Dhammapada. Trans. from Tibetan by W. Woodville Rockhill. (1892). London: Kegan Paul
- Vibhaṅga. Paṭhamkyaw Ashin Thiṭṭila (Seitthila), trans. from Pāli. (1969). The Book of Analysis (Vibhaṅga): The Second Book of the Abhidhamma Piṭaka. Bristol: Pali Text Society Secondary Sources.
- Burton, David. (2002). Knowledge and Liberation: Philosophical Ruminations on a Buddhist Conundrum. Philosophy East and West, Vol., 52, No., 3 (Jul., 2002), pp. 326-345. http://www.jstor.org/stable/1400322. Accessed: 25-10-2015
- Davids, Mrs. Rhys. (1932). A Manual of Buddhism. London: Sheldon Press
- Eliot, Charles Sir. (1921). Hinduism and Buddhism: An Historical Sketch. Rep., 1988. Delhi: Satguru Publications
- Horner, I. B. (1936). The Early Buddhist Theory of Man Perfected: A Study of Arahan. London: Williams and Norgate
- Jayatilleke, K. N. (1963). Early Buddhist Theory of Knowledge. London: George Allen and Unwin

- Kalupahana, David J. (1992). A History of Buddhist Philosophy: Continuities and Discontinuities. University of Hawaii Press
- Lamotte, Étienne. (1958). History of Indian Buddhism: From Origin to Śaka Era. Trans., from French by Sara Webb-Boin. rep., 1967. 2nd rep., 1976. This ed. 1988. Louvain-Paris: Peeters Press
- Poussin, L. De La Vallée Poussin. (1917). The Way to Nirvāṇa. London: Cambridge University Press
- Rahula, Walpola. (1959). What the Buddha Taught. 2nd enlarged ed., 1974. New York: Grove Press
- Saddhatissa, Hammalawa. (1970). Buddhist Ethics: The Path to Nirvāṇa. This ed., 1987. London: Wisdom Publications
- Tachibana, S. (1926). The Ethics of Buddhism. This series, 1987. New Delhi: Cosmo Publications
- Warder, A. K. (1970). Indian Buddhism. Rep., 2004. Delhi: Motilal Banarsidass

Radha Krishna Baror

Assistant Professor

Department of History and Indian Culture

University of Rajasthan, Jaipur, Rajasthan

❑ ❑ ❑

Tracing the Changing History Writing : Contextualising the texts of Meghwals

Dr Rajshree Dhali • Dr. Bhupinder K. Chaudhry

Since the last decade of the twentieth century, a qualitative and progressive change in Dalit consciousness resulting in Dalit assertion is visible. An increasing interest in Dalit culture, literature, and history by scholarshas accompanied their assertion to demanda legitimate share in the social and political power structure. Mainstream scholarly discourse in Indian society had marginalized or had been silent on Dalit history, belief system, and knowledge body. It has safeguarded a privileged space for the Brahmanical knowledge system. However, in recent times the body of Dalit literature and history writing by the Dalit communitiesis growing. This paper analyses two historical narratives composedby the members of a Dalit community of Rajasthan-the Meghwals, duringdifferent periods in the twentieth century.The paper draws from the nature of socio-political trends during the nineteenth and twentieth centuries to locate the probable milieu that influenced the consciousness of the leading activists and members of the Meghwal community in general to construct and reconstruct their history. The paper highlights that thewriting of the history of erstwhile communities is an essential instrument to represent them in modern times. The prevailing socio-political trends become significantpre conditions leading to a shift in their ideological premises in many cases.

The literature produced by Dalits in the late twentieth century and the early twenty-first century is in the general significant repository of their unsung history. Laura R. Brueck[1] has underlined the importance of contemporary north Indian Dalit literature that provides an alternative public sphere and engages, opposes, and redefines the limits of traditional elite Hindi literary discourse. Contemporary Dalit literature alters the established analysis of

mainstream literature and creates a powerful counter-public image. She rightly points out that close attention is needed to understand the full range of innovative narrative styles of resistance developed in Dalit writings in the form of a rich body of fiction, poetry, and autobiographies. And in fact, the decision to write a history of their communities by Dalit scholars was the first step toward claiming control over its representation in the past, creating its image in the social domain and bringing into the mainstream academic the role of Dalits in the freedom struggle. One of the tallest leaders of the Dalit movements, B.R Ambedkar's writings cover an array of subjects andhe is the first Dalit leader to write the history of Sudras and the erstwhile untouchables[2]. His writings have influenced generations of Dalit activists.

An important intervention is made by Charu Gupta.[3] She highlights the rise of Dalit movements and the increase in Dalit literature in north India. The history of 1857 has been completely inverted with many histories being rewritten, depicting Dalit versions of the revolt. Badri Narayan Tiwari[4] refers to oral literature indicating that the lower castes were actively involved in 1857. He highlights that the massive scale of the rebellion could not have been possible without the participation of these castes, but it is disheartening to note that their contribution has neither been documented nor acknowledged in Indian history writings. Dalit movements and their claim for a legitimate share in the political mechanism and assertion for social equity have led to a collective concern in the Dalit knowledge system. And this has led them to tell stories in their language and idiom, thus breaking the 'culture of silence' imposed on them in the words of BrajRanjan Mani.[5]So, Dalit communities, over a while have produced intellectuals and theoreticians from among themselves who along with others are reconstructing several aspects of Dalit culture and history that till very recently had remained untouched. The two texts of history written by the members of the Meghwal community dealt with in this essay are "*Meghwal Itihas"* also titled "*Rishi Puran*" by Swami Gokuldas and the second book in two volumes "*Meghvansh: Itihas Aur Sanskriti*" is by Tararam.

I

As mentioned above, the paper deals with two historical narratives composed during different periods, intended to create

and reflect the rising consciousness of and about the Meghwals, a Dalit community of Rajasthan. Meghwals constitute the second major scheduled caste community out of the eight numerically largest Scheduled castes of eighty individual communities of the Scheduled castes in Rajasthan.[6] The first history text "*MeghwalItehas*"[7] (History of Meghwals) by Swami Gokuldas was resolved to be written in 1934 at a very nascent stage of the Meghwal movement, and finally got published in 1994.In the twentieth century and fact from the mid-nineteenth century, the socio-economic changes and socio-political activities of reformers and various organizations and their pioneers had impacted the oppressed section to a great extent.As aresult,numerous communities of the ex-untouchable section in Rajasthan got organized to voice their concern and grievances. Few organizations of Meghwals emerged in the first half of the twentieth century and several others like the Bhangis[8] (traditionally sweepers) were formed in the post-independence era. Amongst the Meghwals, the first one was founded in 1916 by the name of Meghwal Sudhar Sabha at Tiwri, 40 km away from Jodhpur.[9] Swami Gokuldas, the author of the first history text of Meghwal mobilized and organized scattered members from more than two hundred villagesof Ajmer.[10] He founded Meghvansh Mahasabha, at Pushkar, and subsequently, numerous other organizations of Meghwals emerged in different parts of Rajasthan[11] to assert against caste-based discrimination and to critically interrogate inwards in terms of practices they were following.

Gathering all scattered leather workers and weavers or those who shared similar socio-cultural traditions and economic status to one platform was the main concern of the Meghwal leaders in the initial phase of the movement.The endeavor to raise the consciousness of its members at individual levels as well as at collective levels was made by appealing for the elimination of undignified customs such as forced labor (*begar*), dragging of the animal carcass, and eating them were also condemned.[12] Numerous schools and hostels were opened, and regular pleas were made at different platforms to get educated as learning was considered a prime concern and a tool not only to get employment but also access to a dignified life.[13]

One of the historical moments in the reform movements of the Meghwals was their decision to compile a history of its

community at a meeting of Rajasthan Meghvansh Mahasabha in 1934. Swami Gokuldas who was a leading educated activist of the time was given the responsibility. The book finally got published in 1994 from Ajmer and is based on oral sources common among the community circulated in villages.

The nature of socio-political trends during the nineteenth and twentieth century to a great extent influenced the consciousness of the members of the socially lower status communities. AryaSamaj had been active in north India and it played a crucial role in influencing and impacting untouchable communities in Rajasthan including the Meghwal community. DayanandSaraswati, the founder of AryaSamaj preachedmoral reform, vegetarianism, teetotalism, and temperance to attain cleaner life and higher status in life[14] amongst the lower caste community. It started working amongst the Bhangis around 1923 in Jodhpur city and with time it gradually gained momentum among the Bhangis in the other places.[15] AryaSamaj continued its activities in the twentieth century also and one can trace its influence to the kind of reform that most of the Meghwal organizationsundertook.

Also, the mass character of the freedom struggle under Gandhi's leadership and Kisan as well as labor movements under the left mobilized the lower caste groups politically which helped them to articulate their grievances and assert their rights.[16] The intense stage of Hinduisation by the Brahmanical forces present in the right-wing organizations did lead to the distancing of several untouchable communities from Muslims.The untouchable social groups were considered outside the Hindu social structure, so, as a result, several social groups including Meghwals didn't have any religious boundaries and they shared Islamic traditions without any qualms. However, the appropriation of folk gods of the lower castes by the upper and ruling castes[17] and their subsequent Brahmanisationin the twentieth century brought the socially excluded caste into the fold of high ritual religious patterns. Moreover, the struggle to open temples and other public places by the socially excluded sections led them to get connected to Hinduism more than ever. Furthermore, the orthodox Hindus were seen to be increasingly concerned about the conversion of the lowest caste groups to Islam and Christianity and later to Buddhism under the leadership of B.R Ambedkar.[18] Even after Independence Hindu traditionalists were concerned to encourage a more

homogeneous, Hindu-oriented culture for the country.[19] The post-independent partitioned India brought in several new forces that went into the making of the Meghwal identity and its reflection in the texts by the writer.

With the proclamation of its constitution after the freedom of India, untouchability was abolished and affirmative policies were given shape. The protection and affirmative policies for the oppressed section were a decisive influence on their consciousness. The inclusion of Meghwals in the list of scheduled castes became an issue for the movement of the Meghwals since in certain parts of Rajasthan they were not designated as Scheduled caste.Hence, they would have been deprived of the benefits of affirmative policies of the Government.[20] The Dalits and the Adivasis benefitted from the quotas of reserved seats in the elected Assemblies as being Scheduled castes and scheduled tribes. There were other benefits to the protection of low-caste Hindus and untouchables. Similar to other lower caste organizations Meghwals also resisted and appealed against all kinds of humiliating behavior and social discrimination against them.[21] In the 1950's agitations for equal social rights, which included, the right to wear gold and silver ornaments and good clothes; the right to use sugar; the right to sit on a horse during the marriage; right to draw water from common wells and other water bodies; right to visit common temples and worship; right to play music and decorate doors and entrances at different occasions could be witnessed. They claimed the right to avail basic social services-the services of a barber, washerman, and Brahmins for their specific chores. Along with these, they asserted several other common rights of which they were deprived.[22]

Amidst these broad socio-political developments, the history of the community of Meghwals was conceptualized by the leaders of the community in the twentieth century. A deep reading of the first text on the history of Meghwals titled "MeghvanshItehas" also titled "Rishi Puran" reflects the perspectives, aspirations as well as resentment of the emerging Meghwal intellectuals. This particular text is used widely by scholars working on Meghwals and also by the members of Meghwals and other lower castes to locate their past. In a situation of absence of archival or any kind of official sources, there has been complete silence on all aspects and the voice of the oppressed. A stigmatized image was all that was prevailing in society. The making of the image by the community

itself was one of the foremost tasks that the writing of history texts undertook.

That may be the reason why the book starts with the various theories related to the origin of the universe, earth, living beings, and the author's brief autobiography. The genealogy of the Meghwals and the variant versions of its legacy by reproducing Puranic as well as other oral traditions is a subject dealt with in great detail. Many myths regarding the etymology of Meghwal are explored to project a dignified origin. The author presents aglorious account of the deities, heroes, and seers of the community.While noting the socio-cultural life of the community Swami Gokuldas writes at length about the folk deity, Ramdev, who is the chief deity of the community. Although subordinate social groups including Meghwals are held to have integrated the worship of Ramdev outside the Brahmanical fold during the medieval period, he is accepted and presented as an incarnation of Vishnu adorned by Rajput values by the author.

The issues undertaken in the first text reflect how the community wanted itself to be projected. Thereby, it is a very significant attempt that the issue of martyrdom occupies an important place in the discourse. It highlights at length on the live internment of its caste fellows for momentous and auspicious purposes by the ruling castes. The live internment of its community member in the foundation of the fort of Jodhpur to invoke good fortune on its defenders and ensure its impregnability is emphasized.[23]

Another theme of immense importance to understand the perspective of the community has been the projection of their relation with Muslims in the twentieth century. As mentioned above, the late 19th century and twentieth century has been the era of the formation of religious identity. Under the circumstances when Hindu nationalism was making a big stride and the hegemony of Brahmins was also predominant, Swami Gokuldascontested any past link with the Muslims.So much so that when Maulvi Abdul Rahman of Jaipur tried to ascertain the connection between Meghwals and Muslims, it infuriated the Meghwals immensely. The matter got settled only when the claim made by Maulviwas rejected by 12 Dharmacharyas and a certificateon government stamp paperwas issued on the same.[24] Swami Gokuldascriticizes and

attacks the Muslims in many accounts in "MeghvanshItehas". A similar kind of approach was adopted by the community of Bhangis of Jodhpur. They sankritized their names by replacing their Muslim names.[25]

II

The second book on the history of Meghwal in two volumes "Meghvansh: ItihasAur Sanskriti" is written during the last decades of the twentieth and the first decade of the 21st century, published in 2011 and 2013 written by Tararam. It was an era of intense lower caste movement at a more mature stage amidst the debates unleashed by the Mandal Commission report in the 1990s. This phase was marked by three dominant political trends among many. There was a paradigmatic shift in the Dalit assertion. From the Patron – client relationship with the upper and dominant caste parties it had moved towards independent Dalit assertion through their caste politics. This movement ultimately culminated in a full-fledged Dalit political platform, the formation of the BSP, BahujanSamaj Party under the leadership of Kanshi Ram in 1984.[26] BSP was formed primarily to represent Bahujans' "People in the majority" referring to people from the scheduled castes, scheduled tribes, and other backward classes as well as minorities. The party claims to be inspired by the philosophy and ideas of B.R Ambedkar. The rise of the power of the lower caste social groups in the 1990's witnessed three of the four largest States- Madhya Pradesh, Uttar Pradesh, and Rajasthan being presided over by Chief Ministers belonging to the other backward caste.[27] New political outfits led by members of backward caste-like the SamajwadiParty, RJD, and BahujanSamaj Party consolidated their bases among the OBCs and Scheduled castes in the 1990s and it posed a threat to Congress and BhartiyaJanta Party (BJP).[28]

Another crucial development that added to the social churning was the Mandal commission report, a commission that recommended 27 percent reservation in government jobs for persons belonging to Other Backward Classes. Although it was for the reservation for OBC and had nothing to do with Dalits it initiated an intense debate on the caste configuration in the Indian society and helped in raising the consciousness of the Dalits tremendously.

Yet, another perceptible change that occurred was in Meghwal's socio-religious ideology and cultural notions. Tararam ponders on the question as to why the community's culture, its uniqueness that was preserved for ages began to fade and came under the pressure of Sanskritization? He further observes that the ignorance of its own culture and achievements is worth pondering. He believes that their apathy and indifference have resulted in strengthening and consolidating the reactionary and communal forces. As per Tararam's text, the spiritual traditions of the Meghwal community had been very different from Vedic traditions. They have not given importance to high ritual religious patterns like the concepts of incarnation or notions of heaven and hell. Instead, the Meghwal community had given importance to honest and proper conduct. But unfortunately, he notes that the community is drifting away from their basic culture and falling prey to Sanskritization.

Also, an important shift is perceptible in his approach to the community's chief deity Ramdev. He asserts that before Ramdev became Meghwal's chief deity, they were closely associated with Nath Panth, a non-Brahmanical sect, free from any caste restriction and caste bondage. Tararam draws heavily from Buddhist archaeological sources and their depictions of symbols to emphasize that the religious pattern of the Ramdev cult is the continuation of the traditions of Buddhismand did not have the claimed Brahmanical associations. He doesn't borrow any understanding or notions from the first history text penned down by Gokuldas he contradicts several aspects of the earlier text. It needs to be mentioned that the last decade of the twentieth century witnessed the community's contestation with the clan of Tanwar Rajputsover themain temple of Ramdevat Ramdeora in the Jaisalmer district. Tanwar Rajputsclaim to be the descendants of Ramdev, hence they had been the custodians of the main temple. But from the last decade of the 20th century, a sharp conflict between a section of the Meghwals community and the upper caste groups had risen due to the renewed perception of Meghwals on Ramdev. Unlike the earlier generation, a section of Meghwals claims Ramdev to be a member of the Meghwal caste henceforth claiming the donations offered in the temple and questioning the dominant narratives coined by upper social groups. This approach by a section of the community was in total contradiction to the earlier position claimed by Gokuldas in his text.

Against the backdrop of these socio-cultural environments, the second book is crafted with a departure from the first one on many vital issues and it reflects the renewed perspective of the Meghwal community. Tararam in his two-volume book "Meghvansh: Etihas and Sanskriti"[29] denies any connection of Meghwals with Vedic or Puranic traditions. Tararam invents new history for the community. According to his findings, the Meghwals were a powerful ruling dynasty before the Guptas. It seems the Megh Rajvansh ruled over ancient Kosambi, Bheeta, Ginja, Fatehpur, and Amravati. Most importantly he establishes the association of Buddhism with the Meghwals in a very concrete manner. He traces all religious rituals and symbols practiced by the members of the Meghwal community to Buddhism. To him, the approach that can be seen among the Meghwals can be traced to all Buddhist followers of ancient times. Further, he believesthat the remains of Buddhist reign are present in this social group. It is noted in the text that the Tibetan and Sinhalese scriptures of Buddhist literaturemention the term "Megh" several times. Various sources have discussed that project the existence of the "Megh" clan in the very ancient past. Tararam hints at the historical links of the founder of the community with majestic kings and Meghwals as a royal dynasty. He gives the details of coins and scripts like Pali and Prakrit used during Meghwal's reign. It is considered a very ancient and historical society.

Tararamtakes note of a section of educated members who are concerned about the pathetic condition amongst the Meghwals and their concern rises from their failure of not get desired respect and dignity from the society at large. Despite holding high posts in government administration they do not get the due regard. Tararam makes a very important revelation that the community lacks an ideology and philosophy, owing to which they are not able to understand Indian history and society, therefore the community hasn't progressed much. His analysis of contemporary society and contextualizing Meghwals is worth noting. He argues that the emancipation of the lower caste through Sanskritization is not possible in the rigid caste hierarchy of Indian society. He further argues that economic prosperity or holding a high position of repute also does not alter or uplift the caste position. However, initially, it might have led to a shifting position of the caste on the social ladder. His reflection on the overall what he considers as the failure of the community is a very crucial understanding. He writes that on

the one hand, discriminated against and oppressed by the caste system propelled by Hindu or Vedic culture, the Meghwal community expresses its anger against them in different modes but on the other hand, it strengthens the roots of the same system by worshipping their gods and goddesses and practicing their rituals.

Tararam suggests that the Meghwal community should realize that it is a non-Hindu caste and a descendant of a ruling dynasty that did not follow Vedic traditions but rather opposed them. The Sooner the community realizes this; they will regain their lost prestige. He brings in several historical moments which project a deep connection of Meghwals with the non-BrahmanicNath traditions and their spiritual glory.

III

The two historical narratives nurtured by the different socio-political environment at the different time indicates that the projection in history of any community is a powerful tool to understand the psyche of a community, its vision, its aspirations, its level of consciousness, its desires, and its experiments with socio-political reality. Looking at the first text reflects that the growth of the Meghwal movement was outside the scope of Ambedkar's early influence. The struggle of the Meghwals addressed the concerns of the community within the Brahmanical social order. It was a self-reform movement without directly confronting the Hindu caste system and Brahmanical social order.The text was an attempt to create a particular image of the Meghwals for the community as well as for the outsiders. Itprojected a clean legacy of its community and a non-critical approach toward the Brahmanical social order. The posture projected was unlike the radical anti-caste movements led by JotibaPhule, B.R Ambedkar, Periyar, and many others as Dalit movements in Rajasthan including Meghwal had not challenged the Brahmanical order.

The absence of sharp criticism of the Brahmanical system and the position vis-à-vis the Muslims put forth by the text brings to us an interesting perspective of the leadership of the Meghwal movement.Callingthe Muslims oppressive and severing all traditional links with them to project a distance from the Muslims seems to have been an important part of Meghwal's perspective during that time. In the past, Meghwals had strong links with the NizarPanthi

branch of Ismailism, a sect of Islam.[30] Also, Meghwals are the traditional devotees of Ramdev, whose main object of veneration is his grave. Ramdev has a huge following among Muslims. Meghwals even follow the tradition of burying their dead.[31] The reason for maintaining distance from Muslims needs to be traced to the religiopolitical process that was unfolding. The growth of Hindutva forces, a probable factor might be seen in the *Shuddhi* movement initiated by DayanandSaraswati and later carried on by AryaSamajhad facilitated their co-option into the fold of Hinduism. The 20th century witnessed the growth of Hindutvaforces which changed the equation between Hindus and Muslims. Since the religious domain of the Meghwals was fluid and did not have any boundary in the pre-modern period, Meghwals' leadership under the influence of Brahmanical forces wiped off all traces of cultural affinity with Islam.[32]

While the text delineates the community's position on the crucialreligio-cultural aspects, it also brings in focus its contribution which is not acknowledged by the society at large in Rajasthan. Gokuldas gives the painstaking details of the Meghwal sacrifices for the auspicious foundation of forts and lakes during the state formations in Rajputana. Besides Gokuldas, other intellectuals of the community have given accounts of the sacrifices made by them in medieval times. Recounting these sacrifices in history and literature informs society about the special relation Meghwals had with the royal class and the unique contribution it had made to the land of Rajputana, adding up a respectable dimension to its identity.

Whereas when the second book was being shaped, the level of Dalit movements had undergone significant changes with the conscious intervention of Dalits into electoral politics. The question of Dalit identity had assumed critical significance in the academic domain and politics. There had been a qualitative change in the pattern of occupations of the Meghwals. A study of census reports suggests that they were now distributed in various sectors including education, transport system, mining, quarrying, manufacturing, servicing, and non-service sectors.[33]The journal by Meghwals indicates large numbers working in the government sector like education as teachers and Khadi outlets[34]. Besides Tararam, there is a quest in other contemporary writingsto reject the so far argued Brahmanical origin of Meghwals. An attempt has been made by

Tararam to reinvent the Meghwal identity by denying its genealogical connection with the Brahmanical order as argued by Gokuldas. The text by Tararam reflects the projection of a non-Hindu, non-Brahmanicaltradition and past of the Meghwal community. This reneweddiscourse was echoed by other Meghwal intellectuals also. The transformeddiscourse on the socio-cultural traditions and narratives led to clashes with the upper caste over a folk religious cult Ramdev (who is the chief deity of the Meghwals), which unearthed many other issues. A new distinctive understanding of the Ramdev cult was posited by the Dalits themselves over the past few decades. Tararam as well as other Dalit intellectuals Kusum Meghwal,[35] BhavarMeghvanshi[36] and Babu Ram Genva,[37] are postulating that Ramdev was born in a Meghwal family contrary to the claim of upper caste as well as the history book authored by a Meghwal activist previously that Ramdev was born at the Royal family of Tanwar Rajput. The emergent contestation over the religious space of a traditional folk deity finds its reflection in the bold tone of the new narrative in Tararam's text.

The second text attempts to establish Buddhism as the religion of the Meghwals and sets the images of Ramdev in the Buddhist framework. The great detailing of Buddhist symbols in the traditions of Meghwal in the text might have reflected the changing perceptions of the Meghwals. Perhaps the social churning of the 1990s brought back the relevance of B.R Ambedkar and his religious philosophy amongst a section ofMeghwals in a more vigorous form and a renewed outlook towards the religion emerged. B.R Ambedkar's contention[38] that the Shudras ranked as part of the Kshatriya Varna in the Indo-Aryan society can be seen reflected in the position taken by Tara Ram.

The historical narrative of theseerstwhile untouchables seems to have worked as a medium for the emerging intellectuals of the community to shape the image of the community. It represented the opinion of the activists, who represented the community and it informed the community of its history which was diligently being constructed by their leaders, it worked both ways.

The community, whose history was non-existent gradually discovered itself in the past, which proved important for its respectable existence in the present and assisted it in the formation of its distinct identity. Writing two texts at a different juncture of time informs the reader not only about the history of a community

but the shift in the perspective of an emerging community. Although this change in the perspectives may not be uniform, a section of Meghwals is still aligned with the Brahmanical notions like their leader, Swami Gokuldas. However, the change in the consciousness of the Meghwals and the making of their identity has undergone alteration with its boundaries getting modified among some sections. For that matter no particular caste is homogenous, strands of difference do exist.A rise in Dalit consciousnesslike Meghwals in recent times has prompted this shift. Inventing new narratives by the intellectuals of the community is linked to fresh activism of resistance tactics in response to the changing historical circumstances.

End Notes

1. Laura R Brueck, *Writing Resistance : The Rhetorical Imagination of Hindi Dalit Literature*, New York: Columbia University Press, 2014.
2. B.R Ambedkar, *Who were the Shudras? How they came to be the fourth Varna in the Indo-Aryansociety*. Bombay: Thackers. Reprint 1970.
3. Charu Gupta, 'Dalit 'Virangas' and Reinvention of 1857', *Economic and Political Weekly*, vol.42, no 19, May 12, 2007 pp. 1739 to1746.
4. Badri Narayan Tiwari, 'Reactivating the Past: Dalits and Memories',*Economic and Political Weekly*, vol.42, no 19, May 12, 2007, pp.1734-1738.
5. Braj Ranjan Mani, *Debramanising History: Dominance and Resistance in Indian society*, New Delhi: Manohar, 2005.
6. Shyamlal, *The Bhangis in Transition*, New Delhi-Inter-India Publication. 1984.P3
7. Swami Gokuldas, *Meghwal Etihas*, Ajmer: Phulchand Booksellers, 1994.
8. Shyamlal,op cit,1984.
9. Shyamlal,S*tudies in Social Protest.* Delhi:Rawat Publishers, 2010, p 152.
10. Swami Gokuldas, op cit.
11. some of them were, Rishi MeghvanshiSamajSudharSabha, which came into existence in 1945 in Bikaner, See P.C.Joeya, 'Riyatsatkaleen Bikaner ke Meghvanshi Samaj mein Samajik va Rajnatik Chetna, 1900-1950A.D', in Pannalal Premi EDT, *Meghwal Darshan*, Bikaner: Meghwal Mitra Mandal, 2000, pp11-14.

Meghvansh Jati Sudhar Mandal in Udaipur was established in 1936. See *Samarika, Meghwal* Mandal Udaipur 1999.

12. See History of Freedom movement papers, 1943, RIV and V94/3 National Archives New Delhi.
13. For more details, see, Pannalal Premi (ed.), *Meghwal Darshan*, Bikaner: Megh Mitra Mandal 2000.
14. Christophe Jaffrelot, *Religion, Caste and Politics in India*, Delhi: Primus Books, 2010, pp146-180.
15. Shyamlal, op cit, 1984. P47.
16. Bipan Chandra, Mridula Mukherjee, Aditya Mukherjee, Sucheta Mahajan, and K.N Panikkar, *India's Struggle for Independence 1857-1947*. New Delhi: Viking, 1988, pp197-224.
17. Rajshree Dhali, 'Perspectives on Pilgrimage to Folk Deities', *International Journal of Religious Tourism and Pilgrimage*, Vol 8(i) 2020, pp 24-32. URL: http://arrow.dit.ie/ijrtp/
18. In all the presidential addresses of Hindu Mahasabha in the twentieth century, Islam and Christianity were attacked for converting the untouchables, see Jayakar Papers, Private collection, National Archives, Delhi.
19. Christophe Jaffrelot, 'The world's Largest Democracy During The "Congress system"', in Christophe Jaffrelot, EDT, *India Since 1950: Society, Politics, Economy and Culture*. YatraBooks: New Delhi,2012, pp 8-11.
20. Shyamlal,op cit, 2010 p 190.
21. An advertisement of 21-12-44 "Aam Eshtihar, where an appeal is made by the MeghwalMandal Udaipur, MeghwalMandalSmarika p 64.
22. S.S.Gautam, *Rajasthan ke Dalit*, Delhi: Gautam book center 2005 pg15. Meghwal Darshan, Opcit.
23. Swami Gokuldas *op cit*. Also see Chandanmal Naval, *Marwar ka Amar Shahid Rajaram*, Jodhpur: Rajasthan Grantha Ghar, 1999.
24. Shyamlal, 2010, p 184,Op-cit
25. Ibid Shyamlal, 1984, P30.
26. Christophe Jaffrelot, 2012 Op-cit.
27. Christophe Jaffrelot, 2010, Op-cit.
28. Ibid.
29. Tararam, *Meghvansh: Itihas or Sanskriti*, 2 volumes,Jodhpur: Samyak Prakashan, 2011 &2013.
30. Dominique Sila Khan,*Conversions and Shifting Identities: Ramdev Pir and the Ismailis in Rajasthan*, New Delhi:Manohar, 1997.

31. Rai Bahadur Munshi Hardayal Singh, *Report Murdumshumari Raj Marwar. 1891* (*Rajasthan ki Jatiyo Ka Itihasavam unke reeti riwaj*). Jodhpur: Maharaja Mann Singh Pustak Prakash Shodh Kendre, 2010. Also, told to the author in an interview at the temple of Ramdevin Ramdevra in2001.
32. In pre-modern society, religious identities among the majority of the population remained vague. Many lower castes, untouchables, and tribes were never considered part of the "Hindu society by the upper caste groups nor did they look upon themselves as Hindu. Worshipping the Hindu gods in temples and participating in rituals of the Hindu religion for the lower caste was taboo.Interaction between Sufi sects of Islam and non-Brahmanical sects of Western Rajasthan must have helped in bringing the lower caste groups closer to Islam. This explains the categorization of numerous lower castes in the census conducted by British officials, under Hindu as well as Muslim heads. Lower castes such as *Balai, Bhambi, Chamar*, etc are included both in Hindu and Muslim religious categories, see in *Census Of India;* 1901, PP. 166-69.
33. Ministry of Home Affairs, *Census of India*,series 18, Rajasthan Part IX(i) 1981. Also, see MeghwalDarshan op cit,
34. *Meghwal Darshan,* op cit.
35. It is in a Booklet form Kusum Meghwal, *Brahmanv adavamavtar vadkeshika rakkrantikarimahamanav, Megwal Baba Ramdev*, Mulnivasi.2004.
36. Bhanvar Meghvanshi, *RamdevPir: EK Punarvichar*, Ramdev Mission, 2006.
37. Babu Ram Geva, 'Dalitoke Khilaf Gair Dalito ka bahuaya miaatank', in Kamal kanth Prasad and Luis Prakashedt, *Samanti Jati Vavastakevirud Rajasthan ke Dalitoka Mukti Sangarsh*,, New Delhi : Bhartiya Samajik Sansthan, 2001.
38. B.R Ambedkar op cit.

Dr. Rajshree Dhali
Associate Professor
S.G.T.B. Khalsa College, University of DELHI

Dr. Bhupinder K. Chaudhry
Associate Professor
Maharaja Agrasen College, University of DELHI

❑ ❑ ❑

Shaivite Imagery in Early Western Chalukyan Temple Sculptures

• **Prof. (Dr.) Preeti Sharma**

Abstract

This paper is an attempt to understand the intersectionality between the forms of political authority and institutionalized structure of religious sanction which existed in ancient India. Such intersectionality gets represented through the sculptural tropes of temple architecture that was created under the political patronage of the monarchy. For this, the article delineates the development of artistic tendencies under the aesthetically oriented Chalukyan monarchs. It endeavors to establish that the making of temple shrines symbolized consolidation of cultural fabric. It explores how the Shaivite imagery consisting of icons of *Ardhanarishvara, Umapati, Umasahita, UmaMaheshvara, Kalyanasundara, Chandramouli, Somaskanda, Nataraja, Gangadhara,* etc., epitomized the syncretic essence of Indian culture, nurtured under the patronage of the Chalukyan dynasty.

Keywords:

Shaivite Imagery, Shiva Parvati, Syncretic Images, Early Western Chalukyas, Badami, Aihole, Pattadakal, Temple Sculptures.

Introduction

Temple architecture has had great political semantic and semiotic relevance in ancient Indian context. The making and maintenance of temple establishment as an influencer was primarily linked with the validation and sanction of political authority among the masses.In accordance to this, the intersectionality between

political authority and the forms of institutionalized religious sanction seemed apparent. In this sense, unlike the post-Roman Catholic experience of Church dogma, the Indian cultural experience with religion has been rather positive and enriching.

Here Ashis Nandy's notion of non-relevance of secularism[1] for India appears to be plausible. In a way, the Jeffersonian "wall of separation between the Church and State"[2] was non-existent in Indian context. Rather the State promoted and patronized religious institutions through *brahmadeya* and *devadana* endowments[3] while they substantiated the social fabric and contributed towards emergence of cultural contours as centres of intellectual learning, refined arts, philosophy, etc. Similarly, religion in its monastic dispensation contributed significantly in substantiating the grammar of the phenomenon of political that was largely manifest in the centralized institutionalized structure of monarchy. In this way, religion and politics in India exhibited a kind of coalitional interdependence with each other and the socio-cultural experience was considerably moulded by the fusion of horizons between the transcendental and empirical domains of human life.

Such a historical trajectory is evident since the early Vedic times. In the Indian tradition the *rajan* was consecrated by the *purohita* to ensure public acceptance and seek divine favours.[4] Such a Vedic language of normative order got crystallized subsequently with the institutionalization of monastic forms of religious sanction, epitomized by the symbolic structure of the temple. However, even after a spurt in the growth of temple edifices in post-Gupta period the temples, despite emerging as strongholds of social and cultural orders, never asserted political authority unlike the contending western Church and the State. Rather there remained a harmonious equilibrium between the religious projections and social representations, a reciprocal relationship between the sacral and mundane. Religion was sanctifying social structures while society was institutionalizing sects with artistic adjuncts.

Considering such a syncretic spatiality that the Indian civilization established through a symphony between political authority and religious sanction, the present article seeks to understand the ways in which religious sculptural tropes acted as metaphors of divine sanction to the forms of political authority in

India. To do this, the paper delineates the development of artistic tendencies under the aesthetically oriented Chalukyan monarchs. By doing this, it endeavors to establish that the making of temple shrines symbolized consolidation of cultural fabric. This is done by decoding the hermeneutic meanings associated with the sculptural themes associated with the imagery of the Hindu deity Shiva. In accordance to this paper, the syncretic Shaivite imagery epitomized egalitarian motifs, as essence of Indian culture, cultivated under the patronage of the Chalukyan dynasty.

Political Milieu

The history of the Chalukyas of Badami, also known as the Early Western Chalukyas, is mainly known through inscriptions. They claimed kshatriyahood and were probably an indigenous Kanarese family, their mother tongue being Kannada. Their epigraphs assigned them legendary origin. The Handarike inscription and *Vikramankadevacarita* related Chalukyas' origin to the *chulka* of sage Hariti Panchashikha. The records of later Chalukyas of Kalyani linked their origin to Brahma, attributing a mythological elaboration to their *Haritiputra* and *Manavasyagotra* epithets. Such versions of their origin seem to be *pauranic* legends and myths to exalt their authority and obviously carry no historical value.

Their earliest kings were Jayasimha and Ranaraga.[5] The first independent ruler and perhaps the real founder of the dynasty was *Maharaja* Pulakeshin I (535-566 CE), who laid foundations of the Vatapi fort and entered it like a bridegroom. Kirtivarman I (566-597 CE) expanded the empire. After him,Pulakeshin II being a minor, his uncle Mangalesha (597-610 CE) acted as regent. Pulakeshin 'Satyasraya' (610-642 CE) successfully combated external aggressions and subjugated alienated subordinates. His greatest triumph was over Harsha *Sakalauttaradhipati* of Kanauj mentioned in the Aihole *prasasti*[6] and verified in *Si Yu Ki*. It established his sovereignty over the three *Maharastrakas*, i.e. Maharashtra, Konkan and Karnata. After an interregnum of thirteen years (642-655 CE) assigned to Pallava adversaries, Vikramaditya I (655-681 CE) restored the Chalukyan fortunes.[7] Vinayaditya (681-696 CE) staked claim to subjugation of *trairajya Pallavapati-trairajyakanchipati*. Vijayaditya's reign (696-733 CE) was the longest among Chalukyas of Badami.Vikramaditya II (733-744 CE)

successfully faced the Arabs and Pallavas. His queen Lokamahadevi's inscription[8] refers to his triple victory over Kanchi. Vakkaleri plates also mention the Chalukya's conquest of *Tundakarashtra*. In a rare act of generosity, Vikramaditya bestowed the war booty on the Pallava Kanchi Kailashnatha temple[9] after conquest. Kirtivarman II (745-757 CE) was the last Western Chalukya ruler. His power was steadily undermined by Rashtrakuta Dantidurga (742 CE).

Religious Landscape

A brief insight into the religious condition under the Chalukyas may explain how the revival of Hinduism was a contributory factor in the emergence of new art forms in South India between seventh to ninth centuries CE. The rise of the Chalukyas was associated with *pauranic* resurrection. They revitalized sacrificial rituals proven by the performance of *srautayajnas*[10] by them and recorded epigraphically. From the beginning, they worshipped both Vaishnava and Shaiva deities. *Varaha-lanchana* indicated their Vaishnavite affiliation. *Mahabhagavata* Mangalesha excavated the Vaishnavite cave III at Badami and gifted the village Lanjigesvara for Vishnu worship.[11] Apparently Bhagavatism received great impetus under the early rulers.

Shaivite leanings were apparent from the worship of Kartikeya and *Saptamatrikas*. Chalukyas claimed protection by the former and nourishment by the latter in their epigraphs.[12] Shaiva *Agamas* and *Puranas* were also assigned prominence.The later rulers had perhaps embraced Shaivism. Vikramaditya I called himself *param-maheshvara*.[13] Vijayaditya patronized the Sangameshvara temple at Patta²akal. A large number of temples, structural and rock-cut, were dedicated to Shiva, at Aihole, Badami, Patta²akal and Mahakuta. Lokeshvara[14] and Trailokeshvara[15] temples, built by queens of Vikramaditya II, commemorating his Pallava victory, enshrined Shiva *linga*. Lakulisha sculptures in Virupaksha and Mallikarjuna temples, Patta²akal; seated Lakulisha of Bhutanatha group at Badami, and Makuteshvara sculpture at Mahakuteshvara-all attest prevalence of the Lakulisha cult. The existence of Kapalikas has also been suggested.[16]

The cult of Shakti-worship flourished as attested by Mahisamardini sculptures at Ravana Phadi, Durgada-gudi (Aihole),

Badami cave I, and Tarabasappa temples. Architectural evidences at Badigergu²i and Suryanarayana Saura temples (Aihole) indicate Surya worship. The adoration of Ganapati was also prevalent. Lippe held the Badami Ganesha with Durga and Kartikeya to be Ganesha's first South Indian manifestation.[17] The trinity of Brahma, Vishnu and Mahesh was also venerated. Thus, the core five – *panchayatana* - Brahmanical cults, viz., Shaiva, Vaishnava, Shakta, Saura and Ga´apatya, co-existed amicably in the Chalukyan period.

Composite images of *Harihara* in RavanaPha²i, Durgada-gu²i and Badami Cave III; *Ardhanarishvara* in RavanaPha²i and Badami Cave I; Brahma, Vishnu, Mahesvara images in Jambukeshvara temple, Badami, etc., are testimonials to the prevailing spirit of co-existence. The Chalukya rulers usually observed religious toleration. For instance, *bhagavata* Mangalesha donated ten villages to the Maku°eshvara Shaiva temple.[18] Popularity of Buddhism in the Chalukyan territory is also apparent.[19] Jainism had taken deep roots is indicated by the Meguti Jinalaya, attributed to the Jaina scholar and composer of Aihole *prashasti*, Ravikirti, and the excavated Jaina cave at Aihole.

The royal consorts did not lag behind their husbands in pursuing their religious inclinations. Vikramaditya II's wives Lokamahadevi and Trailokya Mahadevi erected Shaiva temples at Pattadakal to commemorate his achievements. On the whole, the religious life under the Chalukya kings was marked by the revival of Hinduism, peaceful co-existence of different Brahmanical and non-Brahmanical sects, and the making of and endowments to numerous shrines.

Temple Building Activities

From the fifth to ninth centuries CE, making of South Indian stone temples was accelerated. The use of stone for building sacred edifices was rather an innovative development, especially southwards. Srinivasan has suggested taboo on the use of stone for sacred and secular structures because of its long local association with funerary rituals.[20] Southwards the imperishable stone medium was firstly adopted by Chalukya Mangalesha in Badami cave III and his contemporary Pallava Mahendravarman I at Mandagappattu cave-temple simultaneously. Chalukyan shrines were cut in soft sandstone while the Pallava monuments were hewn in hard granite.

Thus, the Chalukyas and the Pallavas, in their respective regions, inaugurated two parallel traditions of stone architecture.

The Early Western Chalukya temples at Aihole, Badami, Mahakuta and Patta²akal constitute the largest group of stone buildings belonging to sixth to eighth centuries CE. They are the earliest extant shrines, grouped together by their patronage, period and style. An artistic analysis reveals bewildering variety of their forms. Royal patronage was directly responsible for this intense building activity,forming one of the most creative phases in the history of Indian architecture and sculpture. Gaudargudi at Aihole and Kumara Brahma at Alampur were amongst the earliest Chalukya shrines.

Aihole as 'the cradle of Indian architecture' alone consisted of nearly a hundred shrines.[21] Technically the early Chalukyan temples,as at Meguti, were built by stone blocks assembled without use of mortar, stimulating technique of placing the blocks as desired in the plan and executed by the stone carvers accordingly. They were not simple rectangular or cubical stone blocks but mostly had some projections on one side so that when placed in a row the desired form could be projected. Thus, the early Chalukya temple architecture was not plain construction.

Badami as second Chalukyan capital also remained site for architectural developments. Shaiva temples therein comprised upper or Azar Shivalaya, Malegitti Shivalaya, Loval Shivalaya, Dattatreya, Bhutanatha and Jambulinga temples, amongst others.[22] Patta²akal or ancient Patta²a Kisuvolal, third Chalukyan capital, signified a shift in the field of temple erections when Vikramaditya I revived Shaiva temple building process there.[23] It had ten Chalukyan shrines in Dravi²ian and Nagara styles.[24] Papanatha, Jambulinga, Karsiddheshvara and Kasinatha represented Nagara style whereas Sangameshvara, Virupaksha, Mallikarjuna, Galagnatha, etc., embodied Dravi²ian style. Sangameshvara temple epitomized erst while Vaishnavite Chalukyas' transforming Shaivite leanings. Virupaksha and Mallikarjuna or Trailokyeshvara shrines were sponsored by royal consorts as stated above.

Mahakuteshvara also comprised several Shaiva shrines. Some caves were also commissioned by Chalukyas at Ellora and they comprise important sculptures as Kalyanasundara (Fig. 1.) and the divine couple in *akshakrida* – playing chess (Fig.2.).



Fig.1. Ellora Cave XXIX (Sita Ki Nahani,Dhumar Lena), *Kalyanasundara panel*. (After AIIS)



Fig.2. Ellora Cave XIV (Ravan Ka Khai), *Siva-Parvati in Akshakrida*. (After AIIS)

Sculptures

The ancient Indian art of making icons had gradually evolved into a full-fledged science *pratimalakshana* or *chitralakshana*, elaborating the types, proportions, techniques and medium of carving. Of the *shilpa* or iconological texts assigned to South India - the *Agamas*,[25] especially the *Amshumadbhedagama*, *Kamikagama*, *Kara´agama*, *Vaikhanasagama*, *Suprabhedagama*; *ShilpaSamgraha*; *Pancharatras* as *Hayashir¾apancharatra*; *B¨ihat Samhita*; *Manasara*; *Isanashivagurudevapaddhati*, *Shilparatnam* and *Purana*[26] - all associated with Brahmanical cults, provided theoretical ground for sculptural art in terms of *pratimalaksha´as*, *prati¾thavidhi* and *devag¨ihanirma´a*. Therefore, sculptural ornamentation remained an integral component even canonically in the growth of temple architecture wherein shrines at Aihole, Badami, Patta²akal and Mahaku°a consisted of rich and diversified sculptures including deities, narrative reliefs, mythological scenes, *gana* friezes, *mithunas*, birds and animals embellished with foliation,jewelled garlands, etc.

Stylistically the reliefs in Lad Khan, Durga, Hucchappayya Matha, Konti group temples, representing sculptures of Gajalakshmi, Brahma, Uma-Maheshvara, Naraya´a, Vishnu, etc., were notable for their poise and balance. At Mahaku°a, figures manifested trend towards refinement, grace and elegance. The compactness of form and elongation of limbs began to emerge as seen in the *Ardhnarishvara* figure on northern wall of Mahaku°eshvara temple (Fig.3.) while gigantic figures of Bhairava and Bhairavi echoed the naturalness of form. At Pattadakal linearism had become prominent.



Fig.3. Mahakuta, Makuteshvara Exterior Niche shrine, *Ardhanarishvara*.

Shaiva Icons

Associated with the *panchak¨ityas* acts of *s¨i¾hti* (creation), *sthiti* (preservation), *samhara* (extermination), *anugraha* (blessings) and *tirobhava* (power of concealment) Shiva[27] is the most influential Brahmanical deity. The originator of *yoga*, *shastras*, music and dance, his projection as *Yogeshvara*, in *vyakhayana mudra* or as *Nataraja* (Fig.4.) remained as popular as *Pashupati*, *Kirata*, *Bhutanatha*, *Umapati*, etc. Thus, the diverse aspects of Shiva, as pointed out by G.C. Pande, exhibit a 'syncopated *kulturgeschichte*'.[28]



Fig. 4. Badami Cave I, Facade, right wall, *Nataraja*.

Shiva's sculptures generally constitute three groups, viz. *samharamurti*,[29] *anugrahamurti* and *n¨ityamurti*, each with specific iconographic features. *Anugrahamurti* highlight Shiva's tranquil aspect and benevolent grace. *Kalyanasundara* or *Vaivahikamurti*[30] illustrate his marriage with Parvati. *Umasahitamurti*,[31] (Fig.5.)



Fig. 5. Ellora Cave 29 (Sita Ki Nahani,Dhumar Lena), West wall, *Umasahita panel.* (After AIIS)

Chandrashekhara *alinganamurti*, Shiva Parvati in *akshakrida* and *Somaskandamurti*[32] projects Shiva Parvati together.[33] Amongst *anugrahamurtis*, *Ravananugraha*, *Chandeshanugraha*, *Vishnuanugraha*, *Nandianugraha* and *Arjunanugraha* have been other aspects of the form. *Dakshi´amurtis* manifestations as *vyakhyanamurti*, *yogadakshinamurti*, and *vinadharamurti*, *Gangadharamurti*, *Sadashiva*, *Ardhanarishvara*[34] were also popular.

Chalukyan temple exteriors were generally profusely sculpted with mythological Vaishnavite and Shaivite representations. Shiva was represented in iconic, aniconic and dancing, all forms. The *alinganamurti* motif of Shiva emerged at Aihole while the *Somaskandamurti* was firstly carved in the Kashivishveshvara temple. Shaivite mythology was further enriched with the creation of forms as *Kalarimurti* at Patta²akal. Carving of *ta´²ava* Shiva in the *shukanasakudus* continued at Taraka Brahma and Bala Brahma temples, Alampur. *Lingodbhava* Shiva figure in a magnificent composition on the east wall of the Patta²akal Virupaksha temple was quite remarkable (Fig.6.).



Fig.6. Patta²akal, Virupaksha Exterior Wall, *Lingodbhavamurti*.

The Nataraja icon was often put in the *kudus* placed against the front of the *shikharas* of the Pattadakal temples (Fig.7.). Malegitti Shivalaya Lakulisha, Sangameshvara and Jambulinga shrines' standing Shiva figures, *Vrishabhantika* images were also carved. *Ardhanarishvara* was an important motif. The relaxed posture and gentle feminine quality of



Fig.7. Pattadakal, Galagnatha Shikhara, *Nataraja*.

Sangameshvara temple *ardhanarishvara* was very prominent. Other notable Chalukya instances included *chaturbhuji dvibhanga* figure with Nandi, Bhringi and a female attendant in Badami cave I (Fig.8.); *dvibhuji Ardhanari* in RavanaPhadi; Badami cave III motif is a bracket figure; *chaturbhuji Ardhanari* on a pillar in Durga temple exhibits features of both RavanaPhadi and Badami cave III. Same motif in Sangameshvara shrine reveals essentially feminine characteristics.



Fig. 8. Badami Cave I, Mukhmandapa, West wall, *Ardhanarishvara*. (After AIIS)

Bracket figures (Fig.9.) and ceiling panels carved with divinities like Brahma, Vishnu, Mahesh remained a distinct feature of Chalukyan art. For instance, Konti-gudi and Hucchappayya Matha temples' *sabhama´²apa* ceilings. Shiva-Parvati with nandi were carved at the Mallikarjuna, Nagral Naganatha and Badami Jambulinga temples in a series of compositionally and stylistically identical ceilings.



Fig.9. Badami Cave III, Mukhmandapa, entrance pillar bracket, *Shiva Parvati* (After AIIS)

Conclusion

Religion indeed served as a tool to validate political authority, therefore, rising above their ignominious origin Chalukyas too took recourse to mainstream sects to stake claims for sovereign power. Making of religious structures and bestowing them with adequate endowments towards their maintenance exhibit adoption of normative religious customs and mainstream Indian sects.

A perusal of representations within such structures indicate the predominant popularity of Shaivite cult. The sculpting of syncretic and *mithuna* images of Shiva and Parvati, in a way, attest the democratic and egalitarian character of the society. The images were never mere icons or figments of imagination. Rather they were imbued with deep philosophical symbolism, embodying technical iconological purport as stylistic motifs. Therefore, a preponderance of Shiva Parvati icons among Shaivite imagery puts them forth as epitomizing the elevated status that women enjoyed as consorts and creators. There are instances that women had influential status in the social setup. Chalukyan queens patronizing temples and *basadis* while reveling in martial achievements of their husband, or proclaiming individual faiths, sponsoring works of charity, public welfare, or endowing literary and academic institutions – indicate their powers of patronage and influencer status in society. Representations as *Ardhanarishvara*, *Somskanda*, *Umasahita*, *Vrishabhantika*, *in Akshakrida*, *Gangadhara*, *Kalyanasundara*, *Ravananugraha*, *Chandrashekhara*, *Nrityamurti*, etc., under religious art motifs sort of sanctified their consortial position within normative social structures and to some extent also suggest their hold over productive/reproductive resources, obliquely asserting their role as creators and producers, with the prowess of fertility.

Acknowledgements

First and foremost, the project funding by the Indian Council of Social Science Research (ICSSR), New Delhi, to facilitate the research study on Early Western Chalukyan Religious Iconography under its Sponsored Research Programme Study Project is duly and gratefully acknowledged by the author researcher.

Further the author acknowledges the valuable insights

regarding the study received from Prof. Srinivasa V.Padigar, former Head, History, Karnatak University, Dharwad; Prof. Shilakant Pattar, eminent Chalukyan art expert, Badami, and Prof. Ravi Korisettar, former Head, Archaeology, Karnatak University, Dharwad, Karnataka during her field surveys.

Figures 1, 2, 5, 8, 9 are courtesy AIIS, Gurugram and 3,4,6,7 are self-clicks.

Endnotes and References

1 Ashis Nandy, 'An Anti-secularist Manifesto', *India International Centre Quarterly*, Vol. 22 No.1, Secularism in Crisis, Spring 1995, pp. 35-64.

2 Declared in his letter to Danbury Baptist Association (1802) - Hana M. Ryman & J.Mark Alcorn, 'Establishment Clause (Separation of Church and State), in *the First Amendment Encyclopedia*, available at: https://www.mtsu.edu/first-amendment/article/885/establishment-clause-separation-of-church-and-state

3. Land endowments to the Brahmins and temple enshrined deity, respectively reflect significant transitions in socio-politico and economic equations in early medieval societies. Preeti Sharma, *Rock-Cut Temples of South India: Architectural Dimensions* (Delhi: Aryan Books International, 2015), p.54.

4. Ram Sharan Sharma, *Aspects of Political Ideas and Institutions in Ancient India* (Delhi: Motilal Banarsidass, 1999), pp.354, 360.

5. Aihole Inscription of Pulakeshin II in Rajbali Pande. *Historical and Literary Inscriptions* (Varanasi : Chowkhamba Sanskrit Series Office, 1962), p. 241.

6. Ibid.

7. Ga²val plates, *Epigraphia Indica* X, p. 103.

8. *Indian Antiquary* X, 1881,p. 164.

9. Vikramaditya's Kanchi Inscription, *Epigraphia Indica* III, p. 360.

10. Such as *vajapeya*, *agni¾toma*, *agnichayana*, *pau´²rika*, *ashvamedha*, *hira´yagarbha*, *bahusuvar´a*, etc.

11. A.M. Annigeri, 'Religion under the Chalukyas of Badami' in M.S. Nagaraja Rao, (ed.) *The Chalukyas of Badami* (Seminar Papers) (Bangalore: The Mythic Society, 1978), p. 234.

12. Vallabheshvara Inscription, Badami Cave III, *Indian Antiquary* VI, 1877, p. 363.

13. *Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society*, XVI, p. 1.
14. Built by Lokamahadevi, Vikramaditya II's chief queen :
    Haihayavamsa-sambhutapriyamahadevi Umabhagavat= ivalokamatayasthapitomahasailaprasada-sriLokesvara… sri Lokamahadevyaya. *Vide*. Kirtivarman II's Pattadakal Inscription in *Epigraphia Indica* III.
15. *Sri Trailokymahadevyayahsthapitomaha - sailaprasada-SriTrailokyesvara (Ibid)*. Trailokyamahadevi was Vikramaditya II's second queen.
16. On the basis of two goblin sculptures carved at Makuteshvara temple compound.
17. Aschwin de. Lippe, *Indian Mediaeval Sculpture* (Amsterdom/ New York/Oxford: North Holland Publishing Company, 1978), p. 138.
18. Villages as Kisuvolal, i.e. Pattadakal, Aryapura or Aihole, Kendurumanya, were granted to the temple with the consent of his stepmother Durlabhadevi. *Cf*. Mahakuta pillar inscription. *Indian Antiquary* XIX, 1890, pp. 16-20.
19. A sculpture of *Bodhisattva* Padmapani was carved in a natural cavern between Badami caves II and III. Besides Aihole cave IV, partly structural and partly rock-cut, has been assigned to the Buddhist faith. *Cf*. S. Settar. 'A Buddhist *vihara* at Aihole'. *East and West.*Vol. 19.
20. K.R. Srinivasan, 'Temples of the Later Pallavas' in Pramod Chandra, (ed.) *Studies in Indian Temple Architecture* (New Delhi: AIIS, 1975), pp. 197-98.
21. Henry Cousens had counted and recorded some 71 of them in *The Chalukyan Architecture of the Kanarese Districts.*Vol. XLII. Calcutta, pl. II.
22. George Michell, 'Temples of Early Chalukyas' in Mulk Raj Anand, (ed.) *In Praise of Aihole, Badami, Mahakuta, Pattadakal* (Bombay:Marg Publications, 1979), p. 51.
23. This could be one reason for transferring their activities from Aihole, known for mainly Vaishnavite shrines. This may also have been the time when the Vaishnava shrines of Aihole were modified for Shaiva worship.
24. Cousens, *The Chalukyan Architecture of the Kanarese Districts*, p. 9; Though the Pallavas and Chalukyas fought constant wars, it

is probable that artistic influences were also exchanged as a result of these contacts leading to a hybrid style.

25. In total 28 *Agamas* are mentioned – *Vide*. P. K. Acharya,*A Dictionary of Hindu Architecture*, (*Manasara* Series) Vol. 1 (Delhi: Oriental Books Reprint, 1981), p. 750.
26. Specially affiliated to sculpture and architecture are *Agni*, *Garua*, *Narada*, *Brahma´²a*, *Matsya*, *Linga*, *Vayu*, *Skanda* and *Vishnudharmottara Purana.*
27. Arnold Kunst and J. C. Shastri, (ed.) *Shiva Purana*, *Ancient Indian Tradition and Mythology*. Vols. 1-4 (Delhi: Motilal Banarsidass, 1969); *also* T.A. Gopinatha Rao. *Elements of Hindu Iconography*, Vol. 1. Pt. 1 and Vol. 2 (Delhi: Motilal Banarsidass, 1985); C. Krishnamurthy. *Shaiva Art and Architecture in South India* (Delhi: Sundeep Prakashan, 1985).
28. As given in *Foundations of Indian Culture: Spiritual Vision and Symbolic Forms in Ancient India*. Vol. II(Delhi: Books and Books, 1984), p. 297.
29. According to V.S. Agrawala each *deva* has his counterpart in an *asura.* The latter's encroachments meet retaliation by the former. Both are forms of *pra´ic* energy whose ordained harmony is a must for life. *Cf. DeviMahatmyam* (Varanasi: All India Kashiraj Trust, 1963), pp. 5-8.
30. *Agamic* iconography of the motif has been prescribed by the *Uttarakamikagama, a¾°apanchashatampamala* and *Purva-Kara´agama, ekadashapa°ala*.
31. *Vide*. *Shilparatnadvavinshapatala.*
32. Shiva Parvati as parents sitting with baby Skanda.
33. Recommended details in the *Uttarakamikagama, saptacatvarinshatampatala*.
34. Manifestation of syncretic male-female characteristics, communion of *purusa* and *prakriti* or *adishakti*. *Agamic* iconography of the motif has been prescribed by *Uttarakamikagama, castitampatala.*

Prof. (Dr.) Preeti Sharma

Dean, FSS & Head

Department of History & Indian Culture

Banasthali Vidyapith

Tonk – 304022 (Rajasthan)

❑ ❑ ❑

An Assessment of the Historical Information in *Bir Charitra* of Keshao Das : A Hindi Literary Source of Akbar and Jahangir's Reign

● **Amir Ahmad**

Keshao Das,[1] a celebrated Hidi poet of 16th – 17th centuries was the court poet of Bir Singh Bundela, the ruler of Orchha. He compiled eight well known poetic works on various subjects.[2] Of these *Bir Charitra*[3]completed in 1607 AD (*Samvat* 1664) being a historical work is of immense value because it provides a detailed information about the life and times of Bir Singh upto 1607 together with a brief history of his ancestors which are hardly available in any other contemporary sources. Historically, the importance of this work may be gauged from the fact that *Bir Charitra* is the only source to have a better understanding about the pressing circumstances which forced Bir Singh to join the service of prince Salim at Allahabad and to knowwhy he agreed to kill Abul Fazl on the behest of the prince. It also deals with the hostile relation between Emperor Akbar and Bir Singh right from the time of Raja Madhukar's death in 1592 till 1605 AD; and special favour bestowed on him by Jahangir when he was a prince and after he became the Emperor. Beside these, *Bir Charitra* is of great significance to have an idea regarding the internal feuds prevailing in the family of the Bundelas, the army and its organization during the early years of Bir Singh. This work provides many useful informations about the topographical features of Bundelkhand region, the administration specially justice under Bir Singh, his officials and their functions and the social system of the period.

Without a proper study of *Bir Charitra* it is hardly possible to have an overall idea about the character and personality of Bir Singh and his relation with his family members, Emperor Akbar and Jahangir as well.

Although *Bir Charitra* is not a purely historical work and it has not escaped from the exaggeration and hyperboles still it embodies in it abundance of important historical informations. It seems to have passed into the hands of many early modern scholars but they have underestimated its value.[4]

In this paper we have aimed at bringing those details into light which are very unique and useful and also somehow substantiated by other sources or appear to be true on the scrutiny of the reason. *Bir Charitra* is broadly divided into fourteen chapters and thirty three parts on the basis of the nature of the informations. In this paper, we have followed the same sequence of events as described by Keshao Das.

The work or the first part begins with the date of its compilation in 1607 AD. The author has devoted major portion of this part in stressing the need of distribution of alms and charity to the poor for the prosperity of the state.[5] Such emphasis is due to the fact that the author was himself a Sanatanaya Brahman.

The historical information which may be derived from this part is that the Bundelas belonged to the Gaharwal tribe of Rajput. We also notice that in 16^{th} – 17^{th} centuries, the river Narmada enjoyed great religious sanctity.[6]

In the second part, a brief history of the ancestors of Bir Singh with their achievements in brief is discussed. Prior to Bir Singh, about fifteen rulers succeeded the *gaddi* of Orchha. We notice that the real founder of Orchha was Pratap Rudra, son of Malkhan. He was succeeded by Bharti Chandra who fought many battles with the Sultan of Delhi including Sher Shah. Madhukar Shah succeeded his elder brother Bharti Chandra as the ruler of Orchha. The details related to Madhukar is very important because he was the first Bundela chief who not only refused to acknowledge the sovereignty of Akbar but fought many battles against the Mughals. In spite of his repeated defeats by the Mughal commanders like Abdullah Khan and prince Murad, he kept his resistance continue till his death in 1592. He was succeeded by his eldest son named Ramshah.[7]

Ram Shah joined the service of Emperor Akbar and the Emperor granted *tika* to him conferring the *gaddi* of Orchha. He along with his son Rao Bhopal and grandson Indrajit served the Mughals in Bihar and Bengal. He showed rare courage in the conquest of Gaur, the capital of Bengal. Sangram Shah, son of Ram Shah also served the Mughals in the Deccan.[8]

Keshao Das informs us that Bir Singh had nine sons. Many of them like Jujhar Singh, Pahar Singh, Bhagwan Das, Narhar Das etc. who later became the rulers of Orchha and nobles of Jahangir and Shahjahan.[9]

The third part is of equal importance because it helps us to know the circumstances which gave birth to the enmity between Emperor Akbar and Bir Singh. It refers to the *jagir* of Baroni assigned to Bir Singh by his deceased father Madhukar Shah.When Emperor Akbar granted the *gaddi* of Orchha to Ram Shah, The decision of the Emperor was challenged by Bir Singh who rebelled and very shortly conquered many places like Pawayan, Narwar, Brechha Karhara Hathnaura all located in Bundelkhand region. He also defeated the Mughal officer Hasan Khan and overtook Bhandar from him. Other places in the vicinity of Orchha kingdom like Gwalior (Gopachal) and Erachh (Iraj) were also sacked by him.[10]

Emperor akbar took seriously the rebellious activity of Bir Singh in 1593 and deputed a large army under Askaran with the direction to make efforts first to bring the rebel at negotiating table. Other chiefs like Ramshah, Hardour Panwar, Raja Ram Panwar were also ordered to reinforce the imperial army. But the imperialist failed either to persuade Bir Singh to surrender the area he had conquered or to defeat him because of his flight from Baroni along with his entire Bundela army.

Following the failure of the first expedition the second campaign against Bir Singh was sent in 1594 under Abul Fazl and Abdullah Khan who succeeded in bringing the rebel to peaceful terms. Bir Singh agreed to serve the Mughals and accompanied Abdullah Khan for the Deccan. But as soon as he came to know that his ancestoral *jagir* of Baroni[11] had been confiscated he left the imperial army and returned from Berar and again revolted.[12]

In the fourth part Keshao Das mentions that Emperor Akbar

decided to take the command of the Deccan affairs in his own hands following the death of prince Murad in May, 1599. When the Emperor on this way to the Deccan reached Gwalior he dispatched Raja Ram Das Kachchwaha to negotiate with Bir Singh. Bir Singh presented himself before the Emperor who in continuance of his conciliatory policy towards the other chiefs pardoned him. But after the Emperor left Gwalior and returned to Agra Bir singh again started his rebellious deeds. Another expedition under Raja Ram Das Kachchwaha and Ram Shah Bundela was sent against Bir Singh but he again managed to escape.[13]

The fifth part is very important because it provides ample informations about the pressing circumstances which forced Bir Singh to join the service of prince Salim and subsequent muder of Abul Fazl. We may infer that the successive imperial campaigns and the harden attitude of family members of Bir Singh weakened his position considerably. He was looking for help from any quarter. Under this pressing circumstances Bir Singh was advised by his Royal commander Jadao Gaur to join the service of prince Salim. Bir Singh left Baroni for Allahabad (Prayag) along with his devoted officers like Keshao, Champat Rai and Kirpa Ram. When the movement of Bir Singh was noticed to prince Salim he deputed Syed Muzaffar Khan (a Barha noble) to bring Bir Singh at the court. Syed Muzaffar Khan met Bir Singh at Ahichhtra and introduced the latter before the prince at Sahizadpur in 1599. He was welcomed and rewarded the robe of honour by prince Salim.[14]

The events leading to the murder of Abul Fazl are described in very detail. To say briefly, Prince Salim expressed his anguish towards Abul Fazl and many other important nobles of Akbar who were responsible for creating a rift between him and his father, Emperor Akbar. The Prince also precautioned Bir Singh that Abul Fazl must be killed before he reached Agra from the Deccan. When the prince came to know that Abul Fazl had left the Deccan for the imperial court he dispatched Bir Singh and Muzaffer Khan with a large army. Bir Singh was assured of *gaddi* of Orchha by Prince. Bir Singh with a rapid march reached at *Janpad* Narwar and started watching the movement of Abul Fazl. In spite of the request of his companions to follow a safer route Abul Fazl encamped at Paraichha, decided to fight and was finally assassinated on August 11, 1602 A.D. The entire army of Abul Fazl was rooted out and

large booty fell in the hands of Bir Singh. The head of Abul Fazl was severed by Bir Singh who returned to his *jagir* of Baroni. From there the head was brought to Allahabad by Champat Rai who produced it before the Prince. As a reward prince Salim conferred *tika* to Bir Singh and granted him the kingdom of Bundelkhand.[15]

In part sixth the effect of the murder of Abul Fazl on Emperor Akbar and the subsequent different expeditions sent against the assassin, Bir singh is mentioned. Keshao informs us that Emperor Akbar was so shocked over the murder of Abul Fazl that he was not in a position to hold the *darbar* for a week.[16] Ram Das Kachchwaha explained the minute details regarding the murder of Abul Fazl. The Emperor confiscated the *jagir* of Baroni and sent an army under Rai Rayan to kill Bir Singh.[17] The other chiefs of Bundelkhand were also ordered to extend their help to the imperial army against the murderer. It is interesting to note that when the news of the imperial army sent against Bir Singh became known to prince Salim he ordered his favourite to leave Baroni and move to Datiya. When the imperialists reached Datiya, Bir Singh took shelter in the fort of Erachh. The fort was besieged but Bir Singh breached the wall of the fort and managed to escape in the night; the expedition was recalled.[18]

The most important information which deserve attention in the seventh part is that in spite of warnings of Emperor Akbar and objections of many important nobles like Ram Das, Rai Rayan and others the prince continued to support Bir Singh openly during the subsequent period (1602-1605). It is stated that when prince Salim visited Agra in April 1603. Akbar strongly condemned him for the heinous murder of Abul Fazl and his favour to Bir Singh. When prince returned to Allahabad Bir Singh also accompanied him.[19]

The part eighth contains details about another expedition sent by Akbar under Abdullah Khan in the end of 1604. Once again the imperialists failed to suppress or arrest Bir Singh.[20]

Kesheo Das in part ninth has discussed the decision of Emperor Akbar to send another expedition against Bir Singh in 1605 but due to his sudden death the plan failed to materialize.[21]

We also get information that shortly after his accession Jahangir issued a *farman* in the name of Bir Singh and by removing Ram Shah from the *gaddi* of Orchha appointed Bir Singh its ruler.

He also granted Bir Singh the entire territory of Bundelkhand. Bir Singh, his family members and other Bundelas presented themselves before the Emperor at Agra. But Ram Shah revolted against the decision of Jahangir.[22]

Part tenth deals with the conciliatory policy adopted by Bir Singh towards his brother Ram Shah and his family members, coronation of Bir Singh at Ochha, honours and rewards given by him to his family members, supporters, officials and tributary chiefs. But rift between Bir Singh and Ram Shah again started because of indifferent attitude of Ram Kalyanda, the wife of Ram Shah.[23]

The pious character and the personality of Bir Singh, Indrajit, grandson of Ram Shah and Rao Bhopal are mentioned in part eleventh. Keshao Das who had visited the court of Orchha to attend the accession anniversary returned to Bir Garh or Betwa where he completed *Bir Charitra*.[24]

In part twelfth the battle between the imperial army headed by Abdullah Khan and the forces of Ram Shah is discussed in which the latter was defeated at Karhara. From the details available in this part we may infer that the Burdelas arranged their army on the following pattern. In the battle field cavalary wing was placed a head of the army followed by infantry. The military commander took his position in the centre who was followed by elephantry and general masses.[25]

In part thirteenth, it is mentioned that Bir Singh belonged to a Kshtriya clan and that after the defeat of Ram Shah by Abdullah Khan he was arrested and produced before Jahangir. But his grandson, Bharat Shah fled from the battle field.[26]

Keshao Das in part fourteenth mentions that Emperor Jahangir again issued a *farman* in the name of Bir Singh granting him the whole kingdom of Orchha which was now named as Jahangirpur. Before Bir Singh left Orchha for the imperial court he granted Bihat to Rao Bhopal, Garh Kurar to Indrajit and Bandh to Rao Pratap. On his way to Agra Bir Singh defeated many chiefs and conquered many places like Pathari and Babina.[27]

Part fifteenth is related to the public works of Bir Singh. He constructed two large water tanks called Bir Samudra and Bir Sagar for the irrigation purposes. They also acted as sites for pleasure.[28]

In part sixteenth the religious discourses in the temples of Orchha and prosperity of the state are discussed.[29]

Part seventeenth may be regarded very significant from administrative and architectural point of views. It provides information about the working of various departments like branding, endowment, justice and communication. We also get a detailed information regarding the palaces and different apartments named after their colours inside the fort of Orchha. The stricking feature of this part is that about eighteenth types of horses with their characteristics maintained by Bir Singh is given. Besides, the division of the society into four major castes on the basis of birth and colour with their specific professions and duties are also discussed.[30]

Parts eighteenth to twentieth are mainly concerned with the details like the appointment of Kirpa ram Gaur as the *senapati* and Keshao Das, the author, as minister by Bir Singh, the main hobby of Bir Singh being *Chaugan,* his open heartedness towards the poor, and performance of daily prayer by him in the Parvati *mandir* inside the Orchha palace.[31]

Similarly, parts twenty first and second state that a large number of *Rawats, Savants* and *Pradhans* of Central India were the feudatory chiefs of Bir Singh who paid regular tribute to him. Besides, holding of *darbar* and dispensing justice indiscriminately by Bir Singh are also mentioned.[32]

The succeeding four parts are not very convincing as the details hardly contain any useful material rather they are either reputation of earlier events or related to merry making by the royal ladies in the gardens.[33]

In part twenty seventh Bir Singh has been praised for him honesty, bravery, courage, open heartedness and for the well being of his subjects.[34]

Parts twenty seventh to ninth cover a brief discussion on three kinds of charity and the responsibility of the officials which are prerequisites for the stability of the state.[35]

In the following three parts Keshao Das has discussed the fundamental principles of the state. His view is that the state should be administered or governed on the basis of *dharma.* Worthy and loyal officials should be appointed and given high position in the state lands should be granted in charity. Maximization of wealth by

territorial expansion, tribute and wars has been fully justified. The king should be absolute in every respect. The prerequisites for the peace and prosperity in the state are strong army, strong forts, rich treasury, loyal officers and good neighbours. Keshao Das, who was also a Brahman, stresses that Brahmans, parents, *guru* should be exempted from any kind of punishment by the state. He has described ten types of punishment also. According to Keshao Das, a king can rule his state fearlessly and peacefully by following the above *Rajdharma.*[36]

The thirty third, the last part, informs us about the celebration of the second accession anniversary of Bir Singh, rewards distributed by him to his sons, officials, ministers and poets on the occasion. This part also goes to show that the whole kingdom of Bir Singh was divided into thirteen *mandals* which were sub-divided into *janapads* and *grams.*[37]

On the basis of the above informations taken from *Bir Charitra* we may safely presume that without these details it is hardly possible to have a better understanding about the Bundelas and their relation with the Mughals specially Akbar and Jahangir till 1607 A.D. Not only this, it greatly helps us to visualize why the Bundelas failed to occupy an important position at the court of Akbar. In this respect we may say that when the Mughal Empire was in making during the early years of Akbar's reign and the Empire was in great need of the cooperation of the Rajput chiefs the ruler of Orchha, Madhukar Shah not only refused to accept the suzerainty of Akbar but occupied many imperial territories. His eldest son and successor, Ram Shah joined the Mughal service and was also awarded a small *mansab* of 500 but he too failed to impress Akbar because of his utter failure to stop his brother Bir Singh from rebellious activities. Moreover, the murder of Abul Fazl further complicated the relation between Emperor Akbar and the Bundelas. The study of *Bir Charitra* leaves an impression that the kinship tie between the Bundela chiefs was very weak in comparison to other leading Rajputs of Rajputana. Beside these, from this source we come to know what type of a person or *Raja* Bir Singh was and what were his early problems and difficulties and ambitions, and the ideas to rule the kingdom. Finally, we can say that depending exclusively on the Persian sources and without a proper study of *Bir Charitra* only one sided aspect may be known about Bir Singh and the Bundelas.

Endnotes

1. Keshao Das variably called as Keshao Rai, Keso and Kesao was the son of a famous Sanskrit writer Kashinath Mishra who wrote *Chhandogranth Shidhrabadh.* He was the court poet of Bir Singh and also acted as his minister. His title was 'Mishra'.
2. The eight works of Keshao Das are *Rasik Priya Ramchandra Chandrika, Kavi Priya, Chandmala* and *Shikhnakh, Vigyan Gita, Ratanbavani, Vir Charitra* and *Jahangir Yas-Chandrika*. Ofthese *Ratanbavani, Bir Charitra* and *Jahangir Yas Chandrika* are historical works.
3. *Bir Charitra,* edited by Vishwanath Prasad Mishra, Published by Hindustani Academy. Utter Pradesh, Allahabad in 1959. The works of Kesha Das are collectively known as *Keshao Granthavali.*
4. Many scholars like Beni Prasad in *History of Jahangir* W. Irwine in the *Later Mughals* and J.N. Sarkar in *The History of Aurangzeb* have referred to this source but they don't consider it important for the study of political history.
5. *Bir Charitra,* p.477.
6. *Ibid.,* pp.478-83.
7. *Ibid*., pp.484-87; These details are fully supported by *Akbarnama* of Abul Fazl tr. H. Beveridge, vol.III, 1977, pp.77, 209-10, 230, 324-27, 526-27; *Muntakhab-ut-Tawarikh* of Qadir Badauni, tr. W.H. Lowe, Vol.II, 1973, p.391; *Masir-ul-Umara* of Shahnawaz Khan, ed. Maulavi Abdur Rahim, Bib. Ind. Calcutta, 1888, vol.II, Part I, pp.106-7, states that Raja Madhukar surpassed his ancestors and became famous by his skill, diplomany, courage and bravery and challenge Akbar's authority.
8. *Bir Charitra,* p.488. It is important to note that *Akbarnama,* III, p.606-7 and *Muntakhab-ut-Tawarikh* give additional information about Ram Shah but both of them fail to inform us about the services rendered by Ram Shah and is family members in Bihar, Bengal and the Deccan.
9. *Bir Charitra,* p.488, The sons of Bir Singh were namely Jujhar Singh, Pahar Singh, Durjan Sal, Chandraman, Bhagwan Rai etc.
10. *Ibid.,* pp.489-90.
11. Baroni, a *mahal or pargana* was located 5 miles of West of Datiya.

12. *Ibid.*, pp.491-93.

13. *Ibid.*, pp.494-98. From a careful study of *Akbarnama* and other Persian sources it appears that military campaigns were sent against Bir Singh during the period from 1592 to 1599. But the details are so confusing that we can hardly make out anything of that.

14. *Ibid.*, pp.499-501. Except *Bir Charitra* no other contemporary or later contemporary sources help up to understand why Bir Singh joined the service of Prince Salim and agreed for committing heinous crime like assassination of Abul Fazl. *Akbarnama,* III, p.1217 and *Muntakhab-ut-Tawarikh,* p.391 briefly state that Bir Singh was in the service of Prince Salim before the murder of Abul Fazl.

15. *Bir Charitra,* pp.502-505. Other additional informations regarding the murder of Abul Fazl are also available in a number of Persian and other sources. For more details see, *Akbarnama* III, p.217; *Tuzuk-i-Jahangiri,* ed. Syed Ahmad, Aligarh, 1864, pp.24-25; *Halat-i-Asad Beg Qazwini,* pp.2-4, 08, 10, 51-53, 85; *A Contemporary Dutch Chronicle of India* (tr. Birj Narain, ed. Ram Sharma, First Ed., 1987, pp.29.

16. *Bir Charitra,* pp.506. For the effect of murder of Abul Fazl on Emperor Akbar also see, *Akbarnama,* III, pp.1219-21; *Halat-i-Asad Beg,* p.8.

17. *Bir Charitra,* pp.507-8.

18. *Ibid.*, pp.509-10; Asad Beg (p.10) provides very important information about an inquiry set up by Akbar under his supervision to look into the causes of the failure of the imperial expedition of 1602.

19. *Bir Charitra,* pp.509-12.

20. *Bir Charitra,* pp.513-19. For more details see *Akbarnama,* III, pp.156-57.

21. *Bir Charitra,* p.520.

22. *Ibid.*, pp.521-23.

23. *Ibid.*, pp.524-29.

24 *Ibid.*, pp.530-33.

25. *Ibid.*, p.534.

26. *Ibid.*, pp.535-42; *Tuzuk,* p.82 informs us that Abdullah Khan was promoted to 3000/2000 for his success.

27. *Ibid.*, pp.543-46.

28. *Ibid.*, pp.547-59;*Masir-ul-Umra*, I, pp.424-25, states that Bir Singh constructed more than three hundred tanks. Fortunately *Masir* has given the circumference of Bir Sagar which was 20 *kos* round.

29. *Bir Charitra*, pp.550-51.

30. *Ibid.*, pp.552-56. The different breeds of horses were *kulha, kumet, kuhi, kurag, kararia, kachhi, khechari, qandhari, Surgi* (Iranian horse), Girad (horses from Kurdistan), *Jadru, Sandali, Turky* (also useful in water), Pachkalyan, Balkhi, *Balochi, Badakhshi* and Tukhari. Most of the breeds of horse discussed by Keshao Da are corroborated by *Ain-i-Akbari*, Vol.I, pp.140-50.

31. *Bir Charitra*, pp.557-63.

32. *Ibid.*, pp.564-72.

33. *Ibid.*, pp.573-82.

34. *Bir Charitra*, pp.583-86. Jahangir himself mentions that he promoted Bir Singh to the rank of 3000/2000 because he excelled his equals and relatives in valour, personal goodness and simple heartedness. At another place in the same work the Emperor describes him as "the lion of the forest bravery and crocodile of the river of the forest", see *Tuzuk*, p.314.

35. *Bir Charitra*, pp.587-89.

36. *Ibid.*, pp.590-604.

37. *Ibid.*, pp.610-13.

Dr. Amir Ahmad

Associate Professor

Department of History,
Aligarh Muslim University,
ALIGARH, UP-202002

❑ ❑ ❑

Professional Class and Urban Growth of Eighteenth Century Rajasthan : A study of Luhars and Julahas

● **Shabir Ahmad Punzoo**

ABSTRACT : *A field of history that examines the historical nature of cities and towns and the Urbanization process is known as urban history. It is a well-established and flourishing field of historical research. It is a rapidly expanding field of historical studies, driven by the rise in city populations across the globe. In history, Urbanization is a recent trend and worldwide phenomenon. It is true that the urban studies have evoked keen interest in recent times as cities and towns have played an important role in the growth of communities and in evolving cultures and civilizations throughout the vast span of world history.The scope of urban studies is wide, varied and fascinating. Urban studies pertaining to India have been growing rapidly in recent times and in case of Rajasthan state, enough work has been done by many historians and scholars. In the aforesaid study, an attempt has been made to discuss the Historiography of Medieval Rajasthan. The major objective of the present study is to analyze how professional groups (especially-Ironsmiths and Weavers) were instrumental in the acceleration of urban growth of medieval Rajasthan because the role of professional groups has not received sufficient attention of the historians and scholars.*

Keywords: *Historiography, Different commodities, Iron industry, Julaha, Luhar, Pattis, Textile industry, Urbanization.*

A Brief Historiographical Sketch of Urban Studies in India (Especially Medieval Rajasthan)

It is true that the urban studies have evoked keen interest in recent times as cities and towns have played an important role in the growth of communities and in evolving cultures and civilizations throughout the vast span of world history. The scope of urban studies is wide, varied and interesting. Europe and United States witnessed proliferation of historical enquiry like social history, women's history, oral history and most importantly urban history, in the later part of sixties and early period of seventies of the 20th century.[1] The thread of urban history was taken strenuously by Jim Dyos and W.G. Hopkins[2] as they raised urban history to the development of full fledged flourishing academic (sub) discipline. Many historians and scholars began examining the issues like the pattern of migration and settlements, components of urban culture, etc., after 1970's[3].

In india, urban history came into existence when the famous Urban History Association was constituted with Prof. Nur-ul-Hassan as it's founder president (Amritsar, 1978)[4]. There were many promoters of the association like Prof Irfan Habib, Prof.Ashvin Das Gupta and Prof.S.C.Misra. The said association played a significant role in spreading the trend of urban history in the country. A.Ghosh, Vijaykumar Thakur, Dilip K. Chakrabarti, Kameshwar Prasad, M.Lal[5] and R.S.Sharma[6] have published interesting and significant studies on the urban history of ancient India. On the urban history of medieval India, J.S.Grewal, InduBanga, Eugenia Vanina, HameedaKhatoon Naqvi, Gavin Hambly, S.C.Mishra and I.P.Gupta produced useful works.

Rajasthan's Urbanization and urbanism have attracted the attention of many historians and scholars like B.L.Bhadani[7] MadhuTandonSethia, Masanori Sato, G.D.Sharma, K.L.Mathur, G.S.L.Devra, S.P.Gupta[8], B.L.Gupta, Dr.Jibraeil[9], G.S.Sharma, Dr. Rajender Kumar, Dilbagh Singh[10], Nandita Prasad Sahai and many others. Their studies offer a welcome information from the economic point of view. They have studied the structure and stratification of the village and urban society and traced the changes taking place in agricultural production, trade and commerce, non-agricultural taxes, revenue demands and prices. They have also studied the patterns of migration and urban population. K.C.Jain has

produced a good work on Rajasthan entitled , " Ancient cities and towns of Rajasthan". In the said book, a comprehensive survey of the cities and towns during ancient and early medieval period has been made and it projects cultural aspect in particular[11]. The other important scholars and researchers whose names can't be omitted while discussing urban studies in Rajasthan are Sunita Zaidi, Syed Shahid Ashraf , Muhammad Shahnawaz and Athar Hussain. They too have produced a good works on the theme under discussion. Although, an enormous work has been done on the aforesaid study, but the role and contribution of professional groups has not received much attention of the scholars and researchers. The present study tries to analyze how professional groups (particularly-ironsmiths and weavers) enhanced the urban growth of Medieval Rajasthan.

Professional groups (Especially- Ironsmiths and Weavers) as boosters of Urbanization process of Medieval Rajasthan

A process through which an urban settlement comes into existence is known as Urbanization. It means an increasing shift from agrarian to industrial services and distributive occupations[12]. It is a process in which there is increase in population concentration involving shift from agrarian to non-agrarian occupations[13]. G.S.Ghurye defines Urbanization as migration of people from village to city and the effect of this movement will be upon the migrants and their families and upon fellowmen in the villages[14].

Services Provided By Ironsmiths

It is true that after the downfall and breakup of the Mughal Empire, the Rajput rulers lost the backing of the said and intense stresses and instability was faced by them. There were now internal tensions and revolts, factionalism at the court (leading nobles like Thakur's of Pokharan, Nimaj, Rian, Asop, Kuchaman, Ras, Khairwar, Bhadrajun and Raipur or heads of the Champawats, Udawats, Mertia, Kumpawats, Karnot and Karamsot cleans became powerful and wielded immense power)[15]. In Marwar,many nobles and clan leaders were regaining their old power and many thikanas had developed their own ateliers[16].There was need of man power and the Rajput rulers realised the importance of the said, attracted skilled labour to migrate and add to Marwar's wealth[17]. The Rajput

states made their position and base strong and secure by paying much heel and emphasis towards the re-organization of their army. There was also rise of petty principalities, adventurers and free booters in Rajputana and they all needed arms and ammunition, this in turn, stimulated and enhanced the iron production and iron industry[18]. It is necessary and very interesting to mention that who were associated with this? One of the important sets of artisans i.e., luhars (iron smiths) were associated with iron production and they contributed a lot in the emergence of iron industry, in this way in the process of urbanization. The ironsmiths gave their full attention and effort in the arms manufacturing in the towns and they enlarged and increased the population of the towns, in this way proved fruitful for urban growth. The position of iron smiths was good as they were employed in the state karkhanas. It should be kept in mind that the iron smiths not only produced for the state and the military purposes, but they also produced for the domestic purposes as well.

Different items were manufactured by ironsmiths as evident through sources. For instance, knives, scissors, iron pots for cooking, ladle, griddle, sieve, buckets, etc[19]. Not only these, many other items were produced by them which were very valuable and useful like ,a pair of pincers, clamps, etc[20]. These items were made for masonry purposes and we're indeed very beneficial for craftsmen particularly for masons. We also find reference of heavy chains, being produced, in order to tie the horses and camels[21]. Through the examination of sources, we came to know that the ironsmiths were also manufacturing iron boxes of good quality at Pali and Nagaur regions of Rajasthan. Some delicate items (like kalamdan) were also manufactured as evident through sources[22]. In the area of Nagaur, the wire of musical instrument guitar was also made.

Many weapons like swords, daggers, canons, etc. were casted and manufactured by iron smiths[23]. It is a fact that the Rajputs used lances and swords in good quantity in war, so these were produced in good quantity by iron smiths[24]. We find a good number of iron Smith's, residing in Nagaur. Even a village was established for them called Luharpura[25]. Multani Luhars were also living in the said place[26]. Iron Smith's produced a good number of iron objects and implements. For the construction of the Jodhpur

fort, many implements were brought from Nagaur like 200 Aadu, 60 Mandoli, 40 Naraja and 10 Rambha[27]. In 1785, five hundreds maunds of iron was sent from Nagaur to Jodhpur[28]. For making cannons, iron balls, guns and gunpowder, iron factory was established at Nagaur[29]. Luhars and Kabanigars used to make bows and arrows of good quality[30]. In order to make iron balls for cannons and rehkalas (a kind of small cannon), iron worth Rs 1000 was purchased in 1767[31]. The importance of iron-smiths was immense because the state needed their skill and were very important from the weaponery point of view. In 1780-81, iron-smiths were ordered to prepare iron balls (500) for cannons, so that the Rajput army may fight the Talpuriyas of Sindh[32]. They were also ordered to prepare 2000 iron balls for five cannons of Pandit Balwant Rai's artillery, but within a week[33]. It clears a fact that a large number of iron- Smith's were engaged in this industry. Repairing work was also done by iron-smiths as we have reference of defected and physically damaged guns which were sent to Nagaur for repairing in 1791[34]. Gun powder was also prepared to a great extent in Nagaur. We find very large scale ammunition factories in Nagaur and Jodhpur through the examination of the bahis.

They had a great skill and the state often recruited them in state workshops in order to meet the demands of the said. The state had a great regard for them, when the houses of the iron-Smith's in Luharpura got damaged due to the Maratha raids in Nagaur, the state made arrangements for them so that they may not abandon the city[35]. They were provided houses in the crown area and also got tax concessions[36]. Plots of 20 gaz by 12 gaz from crown area in the city of Nagaur were given to Luhars like Alabagas, Yaru, Bajid, Bahdar, Kayam and Jamal of Luharpura[37]. They were rewarded by state like Lala (gun powder maker/ shorgar) was given a pag (turban) by Durbar of Jodhpur. They were also expert in making the iron fittings for gates. It is a clear indication of a good role played by iron smiths in the urbanization of Rajasthan during the period under study. They stimulated the iron production and iron industry, in this way enhanced and accelerated the process of urban growth.

Services Provided By Weavers

The weavers also played a significant role and rendered a

meritorious service in the urban growth of Rajasthan during eighteenth century. They served as lifelines to the towns and proved very instrumental in the said process. The cotton textile production has been considered to be present in almost all parts of India[38]. In the state of Rajasthan, cotton was produced on a large scale and it was a major craft practiced by weavers. We find reference of weavers coming from different places to learn and experience skill[39]. Weavers from Multan, Bihar, Patan, Jaldal, Sultanpur, Bidar, etc., were working in Patti of julahaKalu in kasbaBarod in 1751[40]. It speaks of migration and shows how they enlarged the towns and cities and expanded the population of Rajasthan during the period under study. In Rajasthan weaving was practiced at many places. For instance, in Kota, due to availability of black soil, weaving and spinning was practiced on a large scale as it was considered a major craft. Besides Kota, weaving was practiced at many other places like Sanganer, Pali, Nagaur, Bikaner,Marwar, Amber, Sangod (QasbaSangod is near Ujar river) etc.[41]. Out of 17 castes, weaver class was leading one in Sangod.Among the artisanal classes, weaver class was the leading professional class that had dominated the certain areas in Rajasthan[42]. It was through their efforts and skill that the textile industry in Rajasthan flourished during 17th-18th century. Their services gave fillip to textile production and textile industry, in this way boosted the urban growth. They proved fruitful for the urban growth of Rajasthan during the period under discussion.

As already mentioned there were a good number of weavers living and residing in pattis (in one patti, there used to be five weaver families. Sometimes even 30 weaver families) and in some kasbas, pattis of julahas were training and exchange of skill centres, besides manufacturing a variety of materials[43]. It shows the kind of mobility which skill and profession had acquired by this time[44]. Through the examination of Jodhpur Records, we came to know that in the promotion and development of weaving industry, good interest was taken by the state. In Nagaur region of Rajasthan when weavers were not available and present in good numbers, an invitation was sent to weavers to come and settle down in the Nagaur region of Rajasthan and they were given certain facilities particularly concession of taxes. The weavers came from different areas with their kith and kin and enlarged the population of the said area. Nagaur was a well-

known centre of cotton cloth production. Besides cotton clothes, woolen clothes were also produced during the Mughal times[45]. Even the rulers of Jodhpur used to purchase cloths from Nagaur[46]. In Nagaur different woolen products like blankets, lunkar, loi, namde and pattu were produced and we have reference of a thousand blankets being ordered from Nagaur (Rs. 10 per piece) in 1778[47]. Forty-six woolen lunkaras were brought to the city of Nagaur by a bhambiof village Alai and sold them to Mahajan[48]. Nagaur region exported woolen products and wool to Sindh, Multan and other states of Rajputana[49]. Woolen blankets were in great demand there. Woolen clothes were purchased by traders of Multan from Nagaur through local brokers[50]. In eighteenth century, Nagaur emerged as a good trading centre of wool. In trade of Bikaner state, wool production had a tremendous share. There was a constant production of wool and woolen products which generated amount of revenue in state treasury. Bikaner state used to export wool and woolen to other states of Rajputana and also to central India. In the state of Bikaner, we find reference of *Paisar* and *Naikar* (these terms were used for import and export)[51]. Sixty-six camels laden with wool were carried by MukandDassParakh and RatanshiDhamani from Bikaner to Jaipur[52]It speaks of significance and contribution of weavers, it were basically they who weaved clothes which were then sold to traders of different regions. Growth of trade and commerce and growth of service oriented economy boosts urbanization process. Weavers gave fillip to economy through the production of clothes.

Conclusion:

The present study discussed the urban historiography of Medieval Rajasthan but most importantly, this paper examined the contribution and significance of professional class. Professional groups especially ironsmiths and weavers rendered a meritorious service in the form of their skills and production. They gave their best in the emergence of towns, markets and industries (iron and textile). They served as lifelines to the towns and it can be suggested that they deserve much attention of the historians and scholars. role of the state cannot be underestimated who was keen enough in the said process by providing various facilities and opportunities which were absorbed by the professional class, hence

helped in the development and flourishing of towns and markets. On the basis of above evidences and discussion, it can be said that in the acceleration of urbanization process of medieval Rajasthan, good service was given by professional class. In nutshell, we can say that no study of medieval crafts (particularly eighteenth century) will be adequate if the people who were involved in these activities are forgotten or there would be no complete knowledge of urbanization and urban industries in medieval India, if the social-structure and corporate organization of the artisans is not considered.

Notes and References

1. Vyas, S.P., Urbanization and Trade Routes of Rajasthan, Books Treasure, Jodhpur, 2011, p.7.
2. Ibid.
3. Ibid.
4. Ibid.
5. M.Lal tried to examine the role of iron and the growth of cities in the Gangetic valley.
6. R.S.Sharma in his work entitled Urban Decay in India tried to explain and examine the early historic cities of India declined along with the decline of trade economy which reached its watermark during the Kushan period.
7. B.L.Bhadani has worked out the urban population of Marwar during the seventeenth century in his monumental work entitled Peasants, Artisans and Entrepreneurs: Economy of Marwar in the Seventeenth century.
8. S.P.Gupta in his work entitled The Agrarian System of Eastern Rajasthan (1650-1750) shows picture of progress in agricultural production in the area during the entire period.
9. Jibraeil in his book entitled Economy and Demographic Profile of Urban Rajasthan (Eighteenth-Nineteenth centuries) has worked out agricultural production, agrarian trade, markets, towns and population of urban Rajasthan in the eighteenth-nineteenth centuries.
10. Dilbagh Singh in his work entitled The state, landlords and peasants: Rajasthan in the 18th century seeks to examine the growth of agrarian economy in the Eastern Rajasthan. He also tries to analyze the production system, movement of prices and revenue rates, etc.

11. Vyas, S.P., Urbanization and Trade Routes of Rajasthan, op.cit., p.9.
12. Elridge, Hope Tisdale, ‘ The process of Urbanization’, in J.J.Spengler and O.D.Duncan, et.al., Demographic Analysis, Glencoe,1956,p.338.
13. Ibid.
14. G.S.Ghurye, Caste and Race in India, Bombay, 1969,p.123
15. Crill, Rosemary, Marwar Paintings: A history of the Jodhpur Style (Jodhpur, 2000), pp.54-115.
16. Ibid.
17. J.S.P.B. 42, 1847 V.S./1790 A.D., f.216.
18. Sethia, Madhu Tandon, *Rajput Polity: Warriors, Peasants and Merchants 1700-1800*, Rawat Pub., Jaipur, 2003, p.241.
19. *Sanad Parwana Bahi*, Jodhpur, no. 13, V.S. 1830/A.D.1773. See also *bahi* no 17, V.S.1833/A.D.1776.
20. *Sanad Parwana Bahi*, Jodhpur, no.12, V.S.1829/A.D.1772.
21. Ibid.
22. *Sanad Parwana Bahi*, Jodhpur, no.9.V.S.1826/A.D.1769.
23. Ibid.
24. *Sanad Parwana Bahi*, Jodhpur, no.13, V.S.1830/A.D.1773.
25. Sanad Parwana Bahi, No.21, V.S.1835/1778 A.D., p.55F-2.
26. Sanad Parwana Bahi, No.43, V.S.1848/1791A.D.,p.83F-1.
27. Sanad Parwana Bahi, No.21, V.S.1835/1778A.D.,p.8F-1.
28. Sanad Parwana Bahi, No.32., V.S.1842/1785A.D.,p.39F-1.
29. Kumar, Rajender, ‘ Nagaur: A trading Mart of Marwar State in the late eighteenth century’, in Reconfiguring the historical landscape of Rajasthan, ed., Kumar Mayank and et - al., Aakhar Books, Delhi, 2021, p.206.
30. Ibid.
31. Sanad Parwana Bahi, No.7, V.S.1824/1767 A.D.,p.43F-1.
32. Sanad Parwana Bahi, No.25, V.S.1838/1781A.D.,p.16F-2.
33. Sanad Parwana Bahi, No.58, V.S.1862/1805A.D.,p.53-F-2.
34. Sanad Parwana Bahi, No.43., V.S.1848/1791A.D.,p.70F-1.
35. J.S.P.B.42, 1847V.S./1790A.D.,f.28A.
36. J.S.P.B. 43, 1848V.S./1791A.D.,f.84B.

37. Ibid.

38. Naqvi, Hameeda Khatoon, *Urban Centres and Industries in Upper India (1556-1830*), Asia Pub. House, London, 1928, pp.136-158. See also Sethia Madhu Tandon, Rajput Polity: Warriors, Peasants and Merchants, op.cit., p.240.

39. Sethia, Madhu Tandon, *Rajput Polity: Warriors, Peasants and Merchants*, op.cit., p.241.

40. Ibid. (See also Gupta, B.L., 'The Migration of Traders to Rajasthan in the Eighteenth Century', IHC, Vol.48 (1987), pp.312-317.

41. Jibraeil, 'Position of Weavers in the Textile Industries during 18th-19th Century, Rajasthan', Journal of Exclusion Studies, vol.1.no.1., 2011 (this is particularly for Qasba Sangod as shows weaver caste was the dominating caste in sangod out of seventeen castes). See also Gupta, S.P., 'Evidence for urban population and its composition from 17th-18th Century Rajasthan', IHC, Vol.37 (1976), pp.179-184. (Gupta, S.P.has shown in the areas of Marwar and Amber, weaver class was the dominating one).

42. Ibid.

43. Sethia, Madhu Tondon, *Rajput Polity: Warriors, Peasants and Merchants*, op.cit., p.241.

44. Ibid.

45. For details see Naqvi, Hameeda Khatoon.

46. *Sanad Parwana Bahi*, Jodhpur, no.13.V.S.1830/A.D.1773.

47. Sanad Parwana Bahi, No.21, V.S.1835/1778A.D.,p.47-F2.

48. Sanad Parwana Bahi, No.52, V.S.1855/1798A.D., miti pratham shrawan vadi 11.

49. Sanad Parwana Bahi, No.19, V.S.1834/1777A.D, miti asadh sudi 1.

50. Sanad Parwana Bahi, No.47, V.S.1852/1795A.D., miti phalgun vadi 9.

51. *Sawa Mandi Sadar Bahi*, No. 3, V.S. 1805/A.D. 1748. See also Rajendra Kumar in, 'Role of Woolen Trade in Economy of Bikaner State During Late Eighteenth Century', Global Researcher View, Vol 1 (1), 2018, pp. 1-6.).

52. *Sawa Mandi Sadar, Bahi*, Bikaner, V.S. 1815-16, No. 8. (Sharma, G.S. has also exhausted this source in, 'Sources on Business History Of Rajasthan', IHC, Vol. 54 (1993), pp. 899-908.)

Annexure A

In this annexure, different pictures are presented taken by the author during the physical survey of Mehrangarh Fort (March 2021).

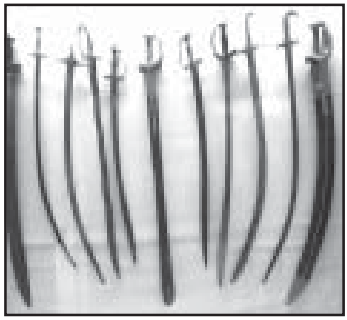


Figure 1: Different kinds of swords. This picture shows the skill of Luhars.



Figure 2. Long arrows prepared by Luhars (iron-smiths).



Figure 3: This is the picture of toof.

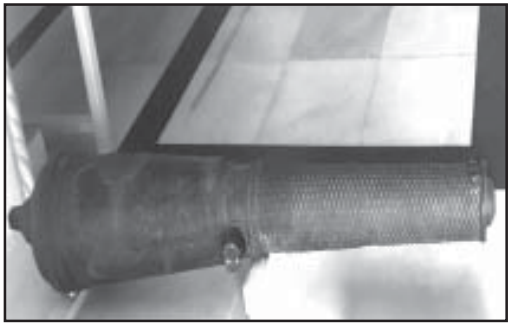


Figure 4: This cannon possess long and slender barrel with a dragon like fish mouth. Patterned tiger skin engraved on the barrel. It speaks of the great talent and workmanship of iron-smiths.

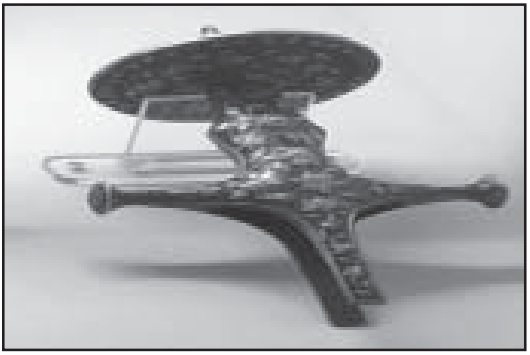


Figure 5: This is the picture of sword hilt decorated with floral motifs and the pommel decorated with gilt work (Eighteenth Century Marwar).

Shabir Ahmad Punzoo
Research Scholar at CAS
Department of History, AMU
Aligarh Uttar Pradesh

❑ ❑ ❑

Revisiting the Culture: A Study of the Folk Songs of Rajasthan

● **Dr. Santosh Kanwar Shekhawat**

Abstract : Literature gives a glimpse of the culture of bygone days. Oral literature in particular has been a touchstone in cultural studies. Rajasthan has rich oral traditions of which folk songs are an important component. A fine sketch of the medieval Rajasthan can be drawn on the basis of the study of these songs. They not only delineate dexterously the picture of contemporary political order, trade, agriculture, art and architecture, flora and fauna, geography, climate, season cycle, games and sports but also capture a snapshot of the socio-cultural milieu of the state. The sixteen *Sanskars* or sacraments of life, fairs and festivals, cuisine and attire, beliefs and superstitions, professions and pastimes and interpersonal relationships can be explored through the study of folk songs of Rajasthan. The state's saga of love, sacrifice, duty and chivalry is also rendered through the folksongs. The present paper delves on the cultural significance of the folk songs of Rajasthan.

Keywords: Culture, Folk, Folk songs, Oral traditions, Rajasthan

As a prologue to the theme undertaken, it is essential to understand the key concepts- 'culture' and 'folk'. The word 'culture' is derived from 'cultura' and 'colere' which means 'to cultivate' or 'to honour' or 'and protect'. Later in 19th century in Europe the term was used to mean the habits, customs and tastes of the elite class. It excluded non-elite class because their views on life and art were considered to be tasteless, their customs unrefined and their habits unpolished, as has been elaborated by Metcalf, "In the nineteenth century, Culture was thought of as something

unequally distributed. Educated people were more 'cultured' than others, and the same applied to the nations" (100). But this viewpoint underwent a significant change in the twentieth century when scholars and academicians turned their attention to the study of mass or popular culture. Again to quote Metcalf "In the twentieth century culture came to be used in a different way such that all peoples possessed it in full measure, just as they possessed language" (100). Cultural studies emerged as a distinct field of academic study with the establishment of various Centres for Cultural Studies worldwide. Pramod K. Nayar elaborates the scope of cultural studies as "Cultural Studies is interested in process by which power relations between and within groups of human beings organize cultural artifacts (such as food habit, music, cinema, sports events and celebrity culture) and their meanings" (4). The pivot of cultural studies thus shifted from elite culture to popular culture. Raymond Williams defines popular culture as, "the set of beliefs, values and practices that are widely shared."Nayar calls popular culture as 'Culture of the masses' and he defines it as "Popular culture is the set of practices artifacts and beliefs shared by the masses, and is constituted by the everyday life of the masses: the food habits, fashion, forms of transport, the music, the reading habits, the spaces they occupy and transverse" (6). Fred Plog and Daniel Bates defines culture as "The system of shared beliefs, values, customs, behaviours, and artifacts that the members of society use to cope with their world and with one another, and that are transmitted from generation to generation through learning" (7). Cultural studies therefore has a wide gamut canvassing the various aspects of a society including ideological, intellectual, spiritual, philosophical, material, spatial, erotic, economic and political. In plainer words, it ventures the basic questions of as to how things acquire meaning in the particular society. It is noteworthy that culture is not an inane trait but is produced in the given set of environment and is handed over from one generation to another in the form of legacy and in the process; it undergoes gradual changes over decades or centuries.

Literature is an effective tool of cultural studies. To have a glimpse of the culture of bygone days, one has to study the literature of those days, "Moreover studying literature we are told gives insight into the human condition" (21), says Metcalf. People across the world have had a deep knowledge about their milieu

irrespective of the fact they were educated or not. This knowledge got disseminated amongst them and outside their community through the medium of literature, particularly oral literature, which was later compiled and stored in written form so as to preserve the repertory of knowledge that lay embedded in the oral literary traditions. This literature is popularly known as 'Folk Literature'.

'Folk' is an Anglo-Saxon word which means 'uncultured and ignorant society'. In normal usage it means 'All the people of the nation' in general. In compound words such as folk sayings, folk dances or folklore the meaning is limited to the cultures that are not civilized and distinctly differ from the mainstream cultures in the West. It therefore, means rustic and rural. Alan Dundes in his canonical work *Essays in Folkloristics* tries to contradict the narrow 19th century definition of 'folk' as 'illiterate peasant'. He opines that folk occupies a somewhat middle position on the evolutionary ladder, the civilized elite were at the top and uncivilized savages at the bottom. He further adds that the folk were understood to be "the illiterate in the literate society"(2). By virtue of this definition 'folk' is a link between the civilized and the savage in the unilinear evolutionary sequence and that folk lived in or near a society that also had literate people.

In Hindi the word *'lok'* is used to denominate 'folk'. In *Siddhanta Kaumudi* Bhattoji Dikshita states that, *'lok'* has its origin in Sanskrit *dhatu 'Lokdarshane'*, it means 'to see'. *Lok* therefore means 'one who sees', suggesting the entire community of people who perform the act of seeing. In *Rigveda*, *Upanishads*, the *Bhagwat Gita*, Panini's *Asthadhayi*, Varruchi's *Vartiko* and Bharat Muni's *Natyashastra* the word *'Lok'* features at several places to mean 'common people'. Kunj Bihari Dass writes "As a literary epithet it is used to mean the people that live in more or less primitive condition outside the sphere of sophisticated influence" (15).

The folk literature of Rajasthan includes- *Lok Geet* (folk songs), *Lok Gatha* (folk ballads), *Lok Katha* (folk tales), *Lok Natya* (folk plays), *Lok Subhashita* (folk sayings) and *Okhanas* (proverbial sayings). The folk songs are the spontaneous uttering's of the masses, therefore, more than any other genre they reflect the different aspects of the folk life. Mahatma Gandhi calls them 'the sentinel of the culture' while Lala Lajpat Rai calls them 'invaluable

treasure of the history of our progress' and Shri Kunj Biharilal calls them "the texts of wisdom, knowledge, dharma and philosophy". A sketch of the medieval Rajasthan can be drawn from the study of these songs. They delineate the picture of contemporary political order, trade, agriculture, haat-bazar, art and architecture, flora and fauna, geography, climate, season cycle, games and sports; and capture a snapshot of the socio-cultural milieu.

The Hindu way of life lays emphasis of sixteen *Sanskars* or sacraments beginning with *garbhaadhan sanskar* (conception) and culminating into *antim-sanskar* (last-rite). There are songs corresponding to each one of these *sanskaars*- birth, death, sacred thread, wedding etc. *Naarangi, Jachcha, Peepli, Suraj Pujna, Badhavo,* and *Vinayak* are songs of such kind. On auspicious occasions like marriages, child birth, festivals or events like arrival of daughter / daughter -in- law, *Badhavo* group of songs are sung :

Ghar ghar gaaven Maruji haalroji
Laevae sundar gauri mharo naam ae
Goth bakhane mhare baaproji.
(Chundawat, *Rajasthan ke Sanskritic Lokgeet 54*)

(This song celebrates the occasion of childbirth in the family.)

Vinayak, Badhavo, Mayro, Bindi, Kasthuri, Sevro, Ghodi, Fera, Bano, Vani, etc are some of the songs highlighting the importance of each ritual in *Vivah Sanskar* (marriage ceremony). There has always been a symbiotic relationship between nature and human beings and for this reason the people shared their joys and sorrows with nature, various components of nature are invited to attend the wedding ceremony just as friends and relatives are invited:

Mhare raja hariyasa dungra ne nuvatiya
Mhare raja toran thamb le gharaaviya
Mhare raja Pechola jasyosa garnuvtiya
Mhare raja neersanjo vanjogo
Mhare bela diya ghar chaviyo
(Chundawat, *Rajasthan ke Sanskritic Lokgeet 72*)

(Through this song the mountains, the lakes and other components of nature are invited to witness the marriage.)

Folk songs also mention various fairs and festivals celebrated in Rajasthan. *Gangour, Teej, Akhateej, Chouth, Goganavmi, Sheetla Saptmi, Ramdev Jayanti, Shivratri, Ramnavmi* and *Rakhabandhan* are the popular festivals of Rajasthan in addition to Diwali and Holi. Each festival has corresponding songs, which are sung melodiously by ladies in chorus. Songs of *holi* express the abundance of spring season; *Dhamal* and *Rasiya* group of songs accompanied with the beats of *Chang* and *Dhaf* add romantic fervour to the festival. Songs of *Teej* and *Gangour* capture conjugal love and happiness; the maidens worship Gauri-Shiva and seek their blessing:

Baaya pujan poojasyaa ke kaae var maang rahi,

Main to sasu Jasoda, ek Kisan var maan grahi

(Th. Ramsingh, *Rajasthani Lokgeet* 44)

(The maidens invoke lord Shiva and Goddess Gauri to bless them by bestowing them with mother-in-law as loving as Yashoda and husband like Krishna.)

The state's saga of love, sacrifice, duty and chivalry is also rendered through the folksongs. Even the lullabies which mothers sings while breast feeding their infants are based on these themes:

Baalo godi doodho chunge doodh chungavat boli you,

Dhole pay par kayarta ro, kalo daag mat laye tu. (Jagmal Singh, *Rajasthani Lokgeeton ke Vivid Roop* 99)

(An infant breastfeeds and the mother says, "You are drinking the pure white milk; don't ever stain it with the cowardice".)

The folk songs also depict the beliefs and superstitions of the masses. There are songs depicting the beliefs in demons-ghosts, tantra-mantra, good-ill omen, dream-intuitions and superstitions. The deeply rooted beliefs in miraculous acts of *lok devtas* or local deities like *Pabuji, Gogaji, Panraji, Tejaji, Ramdevji, Jambhoji, Karnimata, Jeevanmata* etc, have been elaborately sung through the folk songs. These deities worked for public welfare and sacrificed their lives for the emancipation of the poor and the downtrodden; and for the protection of the cows and the wildlife. The songs devoted to local deities present them as protectors of life who mitigate the sufferings of people in the hostile ecological environment, bring rain, enrich greenery and ensures livelihood for common people. Those were the times when the causes of many

diseases and ailments were unknown to the folks, the reasons for which were attributed to supernatural powers and hence a firm belief in pacifying and calming the divine wrath through rituals, worship or sacrifices. Further they believed that whenever they confront any problems, folk deities would come to their rescue, as has been expressed through the song *Bhairuji* :

Ubhi Gujarki de che olambha
Mhara rewar mine kariyo ujar
Baat batunij hadi todh gaya
Le gaya amarya bok
Ji Bheru aavo kyuni kai ghada padhrahya.

(Chundawat, *Rajasthan ke Sanskritic Lokgeet* 6)

(The singer is requesting Bhairu to resue her cattle and farm.)

Rajasthani folk songs are hoard for those interested in study of interpersonal relations. Nowhere do we find such kaleidoscopic view of the interpersonal relations. There is polychromatic range of relations - *dada-dadi, nana-nani, mata-pita, beta-beti, tau-tai, chacha-chachi, mama-mami, bhua-fufa, bhai-bhabhi, behan-behanoi, jija-saala, sas-sasur, bahu-damad, jeth-jethani, devar-devrani, nanad-nandoi* etc. There is no western equivalence for Indian domination of various relations. The songs capture the joy of togetherness and the strong ties strengthened with the feelings of love, compassion, caring and sharing. Joint family system is prevalent and together they celebrate the joys of festivals and mourn the loss of life or fortune. There are songs dedicated to each of these relations, celebrating the uniqueness and intensity of love that strengthens these relations, as in *Badhavo*, the singer equates her family members to precious gems and jewels:

Mhara susaroji sono solmo
Mhara sasuji arth bhandar
Mhara jethsa bajubandh serakha
Bhabhisa ho bajubandhri lumbh
Saheliyaae ambo moriyo.

(Chundawat : *Rajasthan ke Sanskritic Lokgeet 2*)

(The singer has all praises for her family members who are as valuable to her as are jewels.)

This song not only presents a picture the lavish lifestyle and

sound economic status of the protagonist by enlisting the various jewels worn by her but also lays emphasis on the importance of each family member in one's life and advocates that family members complement each other and the real worth of life lies in celebrating the festival called life in company of loved ones. In contrast to this, there are songs depicting the soured family relations. Tired of her mother-in law's taunts, the daughter in-law urges:

Sasu gaal mat kadh parikar de,
Parikar de mhane, nyarikar de.
(Yojna Sharma: *Rajasthani Lokgeeto ki Sanrachana* 20)

(Daughter-in-law requests her mother in-law not to abuse her; instead she pleads her to permit her to establish a separate household.)

Folk songs also depict the gender bias, female exploitation, female infanticide and other commonly practiced discriminatory acts in the society. The social malaises prevalent in the society also find reference in these songs. Mismatch marriages are quite common i.e a young girl getting married to an aged man or vice-versa. A song addresses such incompatible marriage:

Meh chotha mheri dhan mota
Mhane bandhyo dholyasu kaanch
Aur marodiya gaalda o
Dichi repatri khaanch.
(Chundawat, Rajasthan ke Sanskritic Lokgeet 66)

(The husband who is a small boy married to a young lady complains that his wife mistreats him and sometimes physically assaults him.)

A glimpse of the professions, occupations and leisure activities of the people is presented through these songs. Hunting had been the favourite sport of aristocratic class; others enjoyed playing *chopar* (an indoor game similar to modern day ludo). Agriculture is major occupation of the masses. During the rainy season people are as busy as bees:

Mhara mama ji kate foog
Mhara kaka ji charave thodhiyo
Mhara maaruji laave chakiyar
Aaj mhari baadli barseli
(Thakur Ramsingh: Rajasthani Lokgeet 487)

(The singer enlists various agricultural practices performed by her family members as the monsoon season begins.)

The aroma and flavour of Rajasthani cuisine is unique in the world, the study of folk songs reveals the culinary skills of the people. The savoury and aromatic cuisine that features in these songs is ample evidence of the food loving nature of the people. *Bajra* (millet) has been the staple food, in addition to this *ghee, chach* (buttermilk), *rabdi* (bajra soup), *daal-bati-choorma, bajra-ka-khichada* (bajra porridge) etc. adds variety to people's diet. The popular vegetables are onion, green chili, radish, *ker* (a kind of berry), *sangri* (pods of *khegri* tree), *kumathia* (dried seeds of a desert fruit) and various other pods and legumes that grow easily in desert climate. Pulses like *moong, mooth* and *chana* (gram) are used to prepare *badi* and *papad*, which are stored and used in dried form throughout the year. The popular fruits *ber, kachra, kakdi, kharbuja* (musk melon), *matira* (watermelon), *aam* (mango), *kela* (banana) and *anar* (pomegranate) are also mentioned. The desserts immensely popular in Rajasthan are *lapsi* (sweet porridge*), halwa, ladoo, ghevar* etc. The people here are known for their warm hospitality; they offer delicious Rajasthani cuisine to their guests and try to make their stay comfortable. This is in accordance with the code of conduct laid down by our scriptures through the dictum *atithi devo bhava* (The guest is equivalent to God / Be one for whom the guest is God.).

The attires and accessories worn by the men and women also find reference in these songs. Men usually wear a *kurta* or *kameez* on upper half and *dhoti* on the lower half of their body. They also wear *pagris* of various colours, patterns and types on their heads. Women wear *kurti* and *kanchli* on upper half and *lehngha* or *ghaghra* on lower half of their body and cover their head with *odhna*. They decorate their *oodhana's* with diferent kinds of *gota-kinari* (laces), *moti, sitare, salma* and *zari.* Women are fond of decorating themselves with ornaments. They put on *haar/kanthi/timania* (necklaces), *chuda/kade* (bangles), *bajubandh* (on hands above elbow), *payal* (anklets), *loong/sarpa/baaliya/jhumka* (ear drops and rings), *nath* (nose ring), *borla/rakhdi* (ornament worn on forehead) and *kankati/kandora* (waist girdle). The ornaments made of gold; silver or bronze are worn according to their social and economic status. Women and men of lower castes also engrave tattoos on their body parts.

Due to its geographical location, Rajasthan has been highly prone to foreign invasions. Particularly the Uzbek, Tatar, Baloch and

Afgan tribes frequently attacked Rajasthan. As a consequence people and culture here came in close contact with other cultures of the world. Rajasthani culture became a melting pot which has absorbed and assimilated the cultural components of the outsiders. This left a strong impact on the oral literature because it could not keep itself aloof from the cultural communion; hence the names of countries like Balakh, Arab, Bukhara, Samarkand, Gajani, Multan, Kabul etc. are referred to in these songs and so are the characters from these countries. The reference of *atlas* cloth and *arabighoda* in songs also establishes the trade and commerce relationship with neighboring countries.

The study of folk songs establishes that vivacious culture of Rajasthan has been cradled, fostered, preserved and finds expression through these songs. They cover a wide spectrum of themes based on socio- cultural, religio-ethical, philosophical, spiritual, emotional, economic and political aspects of the folk life. The customs and traditions, thought and action, religion and philosophy, myths and legends, fairs and festivals, hopes and aspirations, superstitions and beliefs, cuisine and attire as well as well as professions and pastimes of folk life finds expression in songs. They help to understand the *weltanschauung* of the people and to study the folk psychology. Trevor J. Blank expresses, "Folklore theory holds that folkloric expression is reflective and serves as a "mirror" of societal and cultural values; folklorists should therefore use this mirror to analyze society and culture" (4).

Works Cited :

Agarwal, Govind. ed. *Rajasthani Lokgeet*. Churu: Lok Sanskriti Shodh Sansthan Nagarshree Churu Trust, 2013.

Agarwal, Swarnlata. *Rajasthani Lokgeet*. Udaipur: Rajasthan Sahitya Akademi, 1972.

Blank, Trevor J. "Introduction: Toward a Conceptual Framework for the Study of Folklore and the Internet." *Folklore and the Internet: Vernacular Expression in a Digital World.* Ed. Trevor J. Blank, University Press of Colorado, 2009. 1–20. Web. 18 February 2018.

Bronner, Simon J. "Digitizing and Virtualizing Folklore." *Folklore and the Internet: Vernacular Expression in a Digital World*. Ed. Trevor J. Blank, University Press of Colorado, 2009. 21–66. Web. 18 February 2018.

Chundawat, Rani Laxmi Kumari. *Rajwadi Lokgeet.* Jaipur: Champalal Ranka and co., 1985.

—. *Rajasthan ke Sanskritic Lokgeet*. Jaipur: Panchsheel Printers, 1985.
Das, Kunjbihari. *The Study of Orisean Folklore.*Vishwa Bharti Shantiniketan, 1953.
Dorson, Richard. *Folklore and Folklife, An Introduction.* Chicago: University of Chicago Press, 1972.
Dikshita, Bhattoji. *Siddhanta Kaumudi* . Bombay: Venketeshwar Press, 1989.
Dundes, Alan , ed. *Essays in Folkloristics*. Meerut: Folklore Institute, 1978.
—. *The Study of Folklore*. Eaglewood Cliffs, N.J.: Prentice-Hall, 1965.
—. "Who are the Folk?"*Interpreting Folklore*. Bloomington: Indiana Press, 1980. Web. 18 February 2018.
Mathur G.L. *Folklore of Rajasthan*. Jodhpur: Book Treasure. 2005.
Menaria, Purushottamlal. *Rajasthani Lokgeet.* Jaipur: The Student Book Company, 1954.
Metcalf, Peter. *Anthropology: The Basics*, London and Newyork: Routledge, 2009.
Nayar, Pramod K. *An Introduction to Cultural Studies*. 2008. New Delhi: Viva Books, 2011.
Plog, F. and Daniel Bates. *Cultural Anthropology*. New York: McGraw-Hill, 1990.
Ryan, John S. Folklore Today and folklore Tomorrow? Folk's Problems in the Shrinking World. Web. 18 February 2018.
Satyendra. *Lok Sahitya Vigyan*. Jodhpur: Rajasthan Granthagar, 2017.
Singh, Jagmal. *Rajasthan ke Tyohar Geet*. Delhi: Ankur Prakashan, 1988.
—. *Rajasthani Lok Geeton ke Vivid Roop*. New Delhi: Binsar Publication, 1987.
Sharma, Yojana. *Rajasthani Lokgeeton ki Sangarachana.* Jaipur: Vivek Publishing House, 2000.
Swarnlata. *Lok Sahitya Vimarsh.* Bikaner: Ratna Smiriti Prakashan, 1979.
Williams, Raymond. *Keywords: A Vocabulary of Culture and Society*.1983. London: Fontana, 1976.

Dr. Santosh Kanwar Shekhawat
Assistant Professor
Department of English
Maharaja Ganga Singh University, BIKANER

❑ ❑ ❑

Massacre, Revolt and British Anxiety: Built Environment of Patna, 1763-1900

• Vipul Singh

ABSTRACT

The Dutch and English companies set up their factories in Patna mainly due to the fact that the city was strategically situated on the confluence of three major rivers – Ganga, Son and Punpun. The Ganga connected the city with Calcutta, an entrepot, and it remained navigable throughout the year because of the decent water level. Unlike other pre-colonial urban centres which had gone into obscurity due to the political disintegration of the Mughal rule, Patna's strategic advantage enabled its proliferation during the eighteenth and nineteenth centuries. Incidents of violence, the experience of 1857 days and apprehensions of similar disturbances in future, however, disallowed the all-around expansion. This paper tries to factorise the historical roots that influence the state's decision for developing urban centres in certain ways that could have an adverse impact in environmental terms.

INTRODUCTION

Riverine floodplains provided opportunities for agriculture and the export of grains and various raw materials. This gradually led to the evolution of the trade network by the European companies. Urban centres characterised by socio-economic segregation, increasing population, efficient market structures and administrative mechanisms, began to dot suitable landscapes. Especially from the

late 19th century, there was an incessant attempt on the part of colonizers to establish their settlement bases near rivers as can be exemplified by the making of Calcutta. It even extended to 'manufacturing' lands from unstable geographies in order to institutionalise their political conquest and fiscal supremacy. Infrastructural frameworks like Railways acted as means to accomplish colonial goals. However, such deliberate and large-scale anthropogenic vicissitudes have, over the years, impacted the ecological balance in an irretrievably negative way.

Well-developed urban centres had existed in India for centuries, but under colonial rule, the need for factories, cantonments, government offices and settlements, and the coming of new scientific technologies in Britain such as railways influenced the character of urban centres. Patna was one such settlement, which got the impetus for urban growth right from the early modern times when it was under the control of the Mughals. It was not only a provincial capital but also a centre of manufacturing and commerce. That is why when the Dutch and English companies came here in the seventeenth century they set up their factories in Patna. They did so mainly due to the fact that the city was strategically situated on the confluence of three major rivers – Ganga, Son and Punpun. The Ganga connected the city with Calcutta, an entrepot, and it remained navigable throughout the year because of the decent water level. Patna emerged as the centre of an international trade network exporting items like cotton and silk textile, indigo, opium and saltpetre. Unlike other pre-colonial urban centres which had gone into obscurity due to the political disintegration of the Mughal rule, Patna's strategic advantage enabled its proliferation during the eighteenth and nineteenth centuries. It also meant that many of the urban buildings during the two centuries would come up closer to the riverbank. Like many other British cities, here too, they established their settlements on the periphery of the old city. This led to the expansion of the city parallelly close to the Ganga. After getting Diwani right in 1765, the East India Company established the Dinapore cantonment, which was again located close to the banks of the Ganga. Incidents such as Patna massacre, in which many British officers were killed, the experience of 1857 days and apprehensions of similar disturbances in future created anxiety among the British administrators. It forced

them to plan the city in certain way. The British realised that rebellions if any in future, would come either from the eastern side or rural south. Their experience in other cities also suggested that living close to waterways and gunpowder depots would keep them in a favourable position. So the new offices and residents of officers began to be constructed between the old city and the cantonment. The growth of railway lines parallel to the Ganga in the 1860s further restricted the city's expansion towards the south. There has been a long-term impact of such circumscribed growth of an urban centre on the riverine ecology.

Initial trading interaction between England and India had resulted in the establishment of factories and other production mechanisms along coastal strips and inland waterways.[1] This marked an association of urban centres with waterways, be it for defence or for transportation conveniences. The morphology of all the three major port towns was one and the same inspired by colonial plans. It also shows the strategic position of water resources in the colonial regime and therefore justifies the British attempts at training them. Through 'colonial hydrology' the British interfered with waters in the form of embankments, drainage channels, canals, scientific irrigation systems, handling wetlands, and providing inland water navigation in various parts of the country.[2] Similar engineering paradigm of environment management could be seen in Indus valley.[3] The technological prowess of the West had been used as a legitimizing force of their rule over the non-west. In an attempt to create and protect cultural infrastructure, the physical landscape was significantly modified by introducing embankments and other flood control mechanisms. There were some problems with such techniques as it led to a greater frequency of floods and river course shifts, post their implementation. Indus case thus shows the transition from the pre-colonial systems of environmental management to a more technocratic one and how the latter proved more harmful to nature. Alongside the history of taming water, the entire landscape surrounding a river was dynamically changing since the 18th century. Riverine floodplains provided opportunities of agriculture and mass production and a subsequent nexus of trade and commerce was carved based on it. This was utilised by both the Europeans and the wealthy Indians. It in turn attracted huge foreign

investment. Owing to all this, urban centres characterised by socio-economic segregation, increasing population, efficient market structures and administrative mechanisms, began to dot such landscapes.[4] Especially from the late 19th century, there was an incessant attempt on the part of colonizers to establish their settlement bases near rivers as can be exemplified by the making of Calcutta. The story of the making of Calcutta by the creation of permanent demarcation of land and water through legal and infrastructural mechanisms has actually led to forgetting the mushiness of the area.[5] The colonialists attempted to reiterate their ambitions even after infrastructural or legal failures. They didn't realise that the problem didn't lie in the loopholes of their strategies of urbanization and commercialization of an area, but the problem actually lay in this idea of forceful inclusion of an unstable area into an array of structural stabilities. Besides, the alignment of Urban structures had a specific arrangement in Colonial rule.

A similar phenomenon could be observed in Patna's case as there has been a major shift in the course of the Ganga.[6] Intimidated by its annual flood cycles and the potential damage that it could inflict on the military, political and economic proceedings of the company, the British focused on embanking the Ganga.

PATNA MASSACRE AND BRITISH ANXIETY

The initial connections of the European trading companies were with the traders located along the coasts. As British East India Company acquired the Diwani of Bengal, they began to establish their factories in cities that were connected by rivers. Their trading establishments were settled in the existing towns. In general, there was no complete racial separation between the British and the natives. Often on, there were incidences of urban integration in the newly built-up colonial port cities and also in the suburbs of the old Indian towns. The description of urban integration could be gleaned from 1768 description of Calcutta- '*The appearance of the best houses is spoiled by the little straw huts, and such sorts of encumbrances which are built up by the servants for themselves to sleep in; so that all the English part of town, which is the largest, is a confusion of very superb and very shabby houses, dead walls, straw huts, warehouses, and I know not.*'[7]

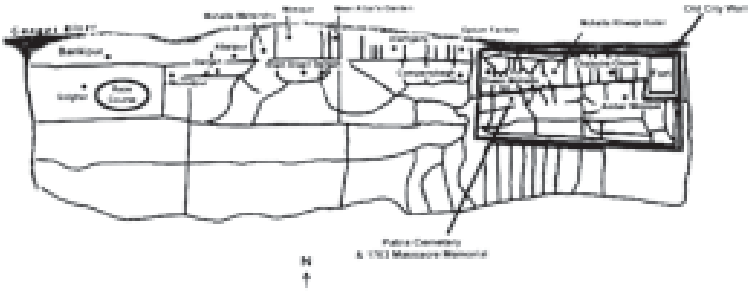
In cities such as Patna, however, British settlements were deliberately kept away from the native population. The newly colonised areas had a fortified civil line and a cantonment alongside it. Native areas were separated from the civil lines. Their establishments were settled away from the old towns, with the cantonment in between them.

There was a tendency to keep themselves away from the places of disputes. Two major incidents, the Black Hole tragedy of Calcutta in 1756 and the Patna Massacre of 1763 influenced urban planning in a big way. These incidents marked a direct attack on the British personnel and an indirect onslaught on their rule and thus, called for a sense of anxiety in the minds of people. The Black Hole incident was an attack on the English troops by the forces of Nawab Siraj-ud-Daulah, in 1756.[8] Being a trading body, the English East India Company had built a trading base in Calcutta, however, that was apparently being challenged by their French counterpart. In order to protect their stronghold, the Englishmen raised military forces in Fort William and that heightened militarization injected fear in Nawab's mind. In a retaliatory move, he used his power to cage up the European troop in a small dungeon measuring 5.4 metres by 4.2 metres. On sensing the advent of Nawab's forces, most of the military personnel retreated to the harboured ships and the rest of the soldiers ranging from 70-170, became victims of the Nawab's wrath.[9] However, there is a great controversy in reaching a consensus about how many European soldiers actually died in this incident. Europeans mostly believed in Howell's narrative of about 123 soldiers' death. But few scholars such as J.H Little and Jadunath Sarkar indicated the exaggerated number of casualties, where the former comments about the Back Hole incident being a 'gigantic hoax'. After a detailed investigation, Brijen K. Gupta came up with a believable figure of 64 people being imprisoned, of which 21 survived. Hitherto overstated figures could have played as psychological traps for the British to manifest their discontentment and anxiety in ruinous terms. The immediate effect of such news was Robert Clive's relief mission that was sent to Calcutta. But the long-term administrative repercussions led Clive to fight the Famous Battle of Plassey in 1757, which sealed the Nawab's humiliating defeat.

After the British win in 1757 they made Mir Kasim as the new

Nawab, with the motive of using him as their puppet. Meanwhile, the Nawab caught some trading malpractices by the private inland traders, who were apparently taking unwanted advantage of the tax exemption given to the English East India Company in the Bengal region. Initially, he tried negotiating the issue with the British but when all the attempts failed, out of frustration, he exempted duties for all the tradesmen, be it natives or Europeans, trading in the area. This action of Mir Kasim nauseated the British because it would deprive them of their internal profits and all of this resulted in widening political gaps between the two parties. Bitterness gradually increased and it climaxed in the Patna Massacre of 1763.[10] The epicentre of discontentment was between the Nawab and William Ellis, who was apparently the chief of the Patna factory at that time. Their grumpy nature and political short-sightedness led to many miscalculated decisions from both ends and ultimately cost many lives. As many as 51 British personnel were killed in the Massacre and was one of the most gruesome incidences of political rivalry.[11]

Such a gruelling memory unleashed a wave of anxiety among the British policymakers and planners. Amongst other effects, that anxiety in turn led to the rearrangement of the 'cityscapes' in both places. In Calcutta, most of the administrative and settlement setup were repositioned away from the old fort areas. In Patna, following the massacre, the settlement got shifted near a place called Bankipore, on the southern bank of River Ganga. The picture below shows this westward shift of Patna's cityscape near Bankipore.[12]



Source : Francis Buchanan, *An Account of the Districts of Bihar and Patna in 1811–12*.

Prior to 1857 the degree of British intervention in terms of town planning, governance and administration was mostly rooted in colonial security and economic concerns. After 1857 segregation began to become more apparent. The revolt of 1857 altered the attitudes of the British towards Indian towns and people in different ways.[13] The degree of British intervention substantially increased in the realms of governance and management of Indian towns. This was especially manifested in cities like Delhi and Lucknow which had showcased the most violent bases of the mutiny. The erstwhile British tendency to move away from the enigmatic Indian towns was reimagined in the face of danger. Delhi saw an ever-increasing advent of British military and civil personnel, original inhabitants of the place were moved out, and the entire morphology of Delhi got metamorphosed. To quote Ghalib from 1858 here, about the condition of the city, "*Where is Delhi, By God, it is not a city now. It is a camp. It is a cantonment. There is neither Palace, nor bazaar, nor the canal.*"[14] Likewise in Lucknow, buildings, roads and other physical infrastructure were taken possession of by the British for their usage. The urban spaces began to get modified with respect to security concerns.[15]

There have been few significant works in the past which look at the geographical separation of native and white spaces.[16] The oversimplified representation of colonial cities as only spaces of racial separation is bound to conceal a lot of other nuances of this concept. To trace the development of colonial urban centres, I would, firstly, want to shed light on the changing nature of the underlying structures of such cities over time. Urban centres have been featured as spaces of social control. To set up a chronology of events in colonial urbanism, the British initially came up with military power to police Indian territories; built forts, established cantonments and combined them with civil lines thus, giving rise to what was known as 'white towns'. With the exceptions of fewer intricacies, more or less the story was this and it corroborated with the military control of physical spaces. However, from the mid-nineteenth century, the political play of establishing control, extended into the social sphere. The physical boundaries of separation were gradually knocked down, and more intermixing was allowed. New forces of control were set up in the realms of health, sanitation and other administrative regulations.[17] Immediate

measures were taken for the rearrangement of urban centers. They came up with two broad steps for handling the territory and its people: a) Extending direct military power and politico-economic force in the urban hotbeds of mutiny, b) Extending indirect social control in other urban centres, masked under the label of liberal governance. It was such that the natives felt content with British governance and did not rise against sovereignty.

Colonial urbanism ranged a lot of events and phases right from military ramparts through initiating town planning, revamping health and sanitation mechanisms, re-aligning cities on various bases, and setting up improvement trusts up till the point cities gradually began to transform into spaces of autonomy for the natives.

BUILT ENVIRONMENT

Waterscapes were deliberately chosen for factory settings and settlements because of underdeveloped means of transportation in seventeenth-eighteenth century India. Therefore, waterways provided an edge to it. Patna is very strategically located at the confluence of three rivers (Ganga, Son and Punpun). It was largely because of this advantage that it emerged as an important provincial city in colonial times. Naturally blessed with an extremely productive hinterland and the presence of Ganga as a corridor of transportation, Patna had received a lot of commercial and political attention since Mughal times and obviously through the colonial times. Even other Europeans like Dutch and French had their factories here, apart from the British. Sometimes, this coexistence did problematize trading conveniences but still, they were united by racial ties when the rivalry was against Indians.[18] During the initial years of British rule, the Ganga provided the chief connection between deltaic Bengal and northern frontiers. The roads were not accessible throughout because of unsatisfactory conditions. So, the traffic load was much higher through a riverine passage, especially downstream. Gradually, this prolonged attention gave an impetus to urbanization in Patna. Prior to the British advent, the trade composition moving through Patna was mostly agro-based, however with the establishment of English and Dutch factories in the seventeenth century, it began to diversify. European interest in

textiles brought home international attention to South Asia and especially Patna.[19] Opium, cotton and saltpetre were other things on the list of items exported from Patna and added to its commercial reputation. Nature of economic activities actually synthesizes the composition of the population. Patna's population was, thus, composed of various business guilds, commercial agents, brokers, bureaucrats, and Indian merchants.

Urbanism in Patna began to develop in Mughal times only, mainly under Azim-ush-Shan's regime. He wanted to develop Patna as beautiful a city like Delhi. Patna was initially bounded with walls, until the mid-eighteenth century. His aspirations also manifested in renaming the city after him. It was known as Azimabad, which continued throughout the eighteenth century into the nineteenth. There was a trend of residential separation within the city i.e. people with similar work culture shared the similar spaces in the city, which again were separated from their neighbourhoods having different occupational significance. The walls began to break and the city began to expand towards the west, following the Patna Massacre of 1763. The British expansion targeted the area between Western portion of the fortification and Dinapore which was along the river.

The Nawab of this region in 1763 had abducted a few British military personnel, kept them in possession for some months and then killed them. This incident later was hailed as the Patna Massacre and called for a hue and cry from British sovereignty. Hence, the westward expansion of the city followed a sense of anxiety, coupled with the British desires of living away from the dirty, narrow and impermeable native built up spaces in the old city. The British expansion targeted the area between Western portion of the fortification and Dinapore which was along the river. They did not like to develop a city in the Dinapore cantonment or close to it.[20] Urban development continued into the nineteenth century as well. The population also registered an increase since the Mughal times. The structural composition of the place changed from solely relying on primary activities to a mixture of all the three kinds of economic activities i.e. primary, secondary and tertiary. This again attested to the growth of Patna as an important urban centre.

Francis Buchanan has noted about the expansion of the city towards both east and west, emphasising the latter.[21] After a lot of deliberation about whether to include certain tracts within the city limits or not, it was maintained by Buchanan that Patna city must also include the Bankipore suburbs and Jafur Khan's garden. It is a 9 miles long tract along the Ganga bank. The suburb towards the west was scattered and occupied by Europeans, and the intermittent spaces were housed by the wealthy natives too. Buchanan further noted the population to be at 312,000 and the presence of a huge countryside, 100 yards from the southern wall of the city. The northern bank of the town was covered with an extremely fertile lowland that was often inundated by the Ganga, however once the flood water receded, this land deemed fit for cultivation. The southward extension of the town had however been limited. His account also testifies the argument I have made above pertaining to the economic structure of the city. However, there's another side to Patna's growth as an urban center.

In the later half of the nineteenth century, railways emerged as an important instrument of political expansion and colonial exploitation. First line of railways was introduced in the 1850s, nevertheless, Bihar got its railway connectivity in the 1860s. Initially, the railway lines were aligned along the path of Ganga because prior to its arrival, as already discussed, water transportation was the chief means. Hence, all of the major trading centers like Patna, Bhagalpur and Munger were bustling along the Ganga bank only and so it was best suited for the railways to connect these towns first. Besides, railway connectivity spread across the length and breadth of this region in order to cultivate the rich mineral reserves that it has. Although its initiation and usage were synced with crooked British interests, its all-encompassing nature gave a boost to a host of pre-existing urban centres, Patna being one in the list.

The British arrival brought home a technocratic approach to managing and exploiting nature. The traditional methods of managing floods were nullified and they began embanking rivers in various parts of India, like the northwest along Indus, the east-central along Ganga and the northeast along the Brahmaputra.[22] It was all a method to protect settled human spaces. Besides, from the late-nineteenth century there was an increase in the number of reclamation projects to address the question of growing urbanism. All this had a huge toll on the human-environment relationship. For example, in Bihar, the southern bank of Ganga has faced embankments since the initial

years of its rule. This was done mainly to save Patna's settlement and the railways, however, it led to an incomplete spread of water towards the south during the annual flood. The river has thus been showing greater shifts towards the north, putting in danger the settled agrarian landscape there. Secondly, the shrinking riverbed of Ganga has created the menace of increased arsenic contamination in the shallow groundwater aquifers.[23]

CONCLUSION

British desires for economic and political gains led them to colonize old and new territories. Impacted by western urban ideals, they tried organizing existing spaces into flourishing towns. The initial years of their rule witnessed an occidental pessimism and a wish to live away from the natives. While in many colonial cities the natives were often considered a source of disease and so the British settled away from the native settlements. Contrary to other colonial cities, Patna was one city where security concerns played a major role in the built environment during the eighteenth and nineteenth centuries. The British deliberately kept themselves close to the cantonment so that in the event of any conflict military supplies could come immediately. All the administrative buildings and official residents came up on the western border of the old city. Patna's built environment on the west also meant that there is strong fortification and embankment of the riverfront. This disallowed the Ganga to flow freely during summers with its own long-term repercussions.

Endnotes

1. Meera Kosambi, and John E. Brush, "Three Colonial Port Cities in India," *Geographical Review* 78, no. 1 (1988): 32-47.
2. Rohan D'Souza, "Water in British India: The Making of a 'Colonial Hydrology,'" *History Compass* 4, no. 4 (July2006): 621-628. Also see Vipul Singh, *Speaking Rivers: Environmental History of a Mid-Ganga Flood Country, 1540-1900*,(Delhi: Primus Books, 2018), pp.123-51.
3. Benjamin Weil, "The Rivers Come: Colonial Flood Control and Knowledge Systems in the Indus Basin, 1840s-1930s," *Environment and History* 12, no. 1 (2006): 3-29.
4. Nripendra K. Shrivastava, "Contribution of Trade and Commerce in the Trend and Pattern of Urban Growth of Patna (1657-1765)," *Proceedings of the Indian History Congress* 71, (2010):327-334.

5. Debjani Bhattacharya, *Empire and Ecology in the Bengal delta: The Making of Calcutta*,(New Delhi: Cambridge University Press,2019), passim.
6. Vipul Singh, "Gangetic Floods: Landscape Transformation, Embankments, and Clay Brick-Making," *Asian Environments: Connections across Borders, Landscapes, and Times*3, (2014): 23-28.
7. Howard Spodek, "City Planning in India under British Rule," *Economic and Political Weekly* 48, no. 4 (2013): 53-61.
8. J.H.Little, "The Black Hole-The Question of Holwell's Veracity", *Bengal Past and Present*, No.11 (1915): 75-104. Ben Johnson, "The Black Hole of Calcutta, 1756," *Historic UK*, Accessed 6 July 2022, https://www.historic-uk.com/HistoryUK/HistoryofBritain/The-Black-Hole-of-Calcutta/.
9. Ben Johnson, "The Black Hole of Calcutta"
10. Walter K. Firminger, ed. *The Diaries of Three Surgeons of Patna, 1763*, (Calcutta: Calcutta Historical Society, 1909).
11. K. K. Sinha, "Dr William Fullerton and the Patna Massacre of 1763," *Journal of the Royal College of Physicians of Edinburgh* 25, no. 2 (1995): 279-293.
12. Rebecca M. Brown,"Inscribing Colonial Monumentality: A Case Study of the 1763 Patna Massacre Memorial," *The Journal of Asian Studies* 65, no. 1 (2006): 91-113.
13. W.Tayler, *The Patna Crisis: Three Months at Patna during the Insurrection of 1857*, (London: W.H.Allen, 1882).
14. Narayani Gupta, "Military Security and Urban Development: A Case Study of Delhi 1857-1912," *Modern Asian Studies* 5, no. 1 (1971): 61-77.
15. Howard Spodek, "City Planning in India", 60.
16. Stephen Legg, *Spaces of Colonialism: Delhi's Urban Governmentalities*, (Malden, MA: Blackwell Pub.,2007).Anthony King, *Colonial Urban Development: Culture, Social Power, and Environment*, (London: Routledge, 1976). Also see V.T. Oldenburg, *The Making of Colonial Lucknow, 1856-1877*, (Princeton:Princeton University Press, 1984). Swati Chattopadhyay, *Representing Calcutta: Modernity, Nationalism and the Colonial Uncanny*, (London:Routledge, 2005).

17. Eric L.Beverley, "Colonial urbanism and South Asian cities," *Social History* 36, no. 4 (2011): 482-497.
18. Vipul Singh, "Professional Brotherhood and Change in Physical Environment: The Colonial Factor in Administrative History of 18th Century Patna District," *The Geographer* 47, no. 1 (2000): 70-85.
19. Anand Yang, *Bazaar India: Markets, Society, and the Colonial State in Bihar*, (California: University of California Press, 1998).
20. Vipul Singh, "Professional Brotherhood And Change", p.75.
21. Francis Buchanan, *An Account of the Districts of Bihar and Patna in 1811–12*, (Patna: The Bihar & Orissa research Society, Not dated).
22. Pushpa Kumari, "The Impact of Railways on Bihar's Economy, 1860-1920", *Proceedings of the Indian History Congress* 70, (2010):724-732.
23. Vipul Singh, "Gangetic Floods".

REFERENCES :

Beverley, Eric L. "Colonial urbanism and South Asian cities." *Social History* 36, no. 4 (November 2011): 482-497.

Bhattacharyya, Debjani. *Empire and Ecology in the Bengal delta: The Making of Calcutta*. New Delhi: Cambridge University Press, 2019.

Brown, Rebecca M. "Inscribing Colonial Monumentality: A Case Study of the 1763 Patna Massacre Memorial." *The Journal of Asian Studies* 65, no. 1 (February 2006): 91-113.

Buchanan, Francis. *An Account of the Districts of Bihar and Patna in 1811–12*. Patna: The Bihar & Orissa research Society, Not dated.

Chattopadhyay, Swati. "Blurring Boundaries: The Limits of "White Town" in Colonial Calcutta." *Journal of the Society of Architectural Historians* 59, no. 2 (June 2000): 154-179.

D'Souza, Rohan. "Water in British India: The Making of a 'Colonial Hydrology.'" *History Compass* 4, no. 4 (July 2006): 621-628.

Firminger, Walter K. ed. *The Diaries of Three Surgeons of Patna, 1763*, (Calcutta: Calcutta Historical Society, 1909).

Frank, Andre G. 1971. *Capitalism and Underdevelopment in Latin America: Historical Studies of Chile and Brazil*. Harmondsworth: Penguin, 1971.

Gupta, Brijen K.. "The Black Hole Incident." *The Journal of Asian Studies* 19, no. 1 (November 1959): 53-63.

Gupta, Narayani. "Military Security and Urban Development: A Case Study of Delhi 1857-1912." *Modern Asian Studies* 5, no.1 (1971): 61-77.

Johnson, Ben. n.d. "The Black Hole of Calcutta, 1756." *Historic UK*. Accessed June 27, 2022. https://www.historic-uk.com/HistoryUK/HistoryofBritain/The-Black-Hole-of-Calcutta/.

Kosambi, Meera, and John E. Brush. "Three Colonial Port Cities in India." *Geographical Review* 78, no. 1 (January 1988): 32-47.

Kumari, Pushpa. "The Impact Of Railways On Bihar's Economy: (1860-1920)." *Proceedings of the Indian History Congress* 70, (2009-2010): 724-732.

Little, J.H. "The Black Hole-The Question of Holwell's Veracity", *Bengal Past and Present*, No.11 (1915): 75-104. Sengupta, Tania. "Between country and city: fluid spaces of provincial administrative towns in nineteenth century Bengal." *Urban History* 39, no. 1 (February 2012): 56-82.

Quint. "The *Climate Change Documentary (Mumbai: Rising Waters, Sinking City)"*. 2022. https://youtu.be/Kl5ctZhyxm0.

Shrivastava, Nripendra K. "Contribution Of Trade And Commerce In The Trend And Pattern Of Urban Growth Of Patna (1657-1765)." *Proceedings of the Indian History Congress* 71, (2010-2011): 327-334.

Singh, Vipul. "Gangetic Floods: Landscape Transformation, Embankments, and Clay Brick-Making." *Asian Environments: Connections across Borders, Landscapes, and Times* 3, (2014): 23-28.

Singh, Vipul. "Professional Brotherhood And Change In Physical Environment: The Colonial Factor In Administrative History Of 18th Century Patna District." *The Geographer* 47, no. 1 (January 2000): 70-85.

Sinha, K. K. "Dr William Fullerton and the Patna Massacre of 1763." *Journal of the Royal College of Physicians of Edinburgh* 25, no. 2 (1995): 279-293.

Spodek, Howard. "City Planning in India under British Rule." *Economic and Political Weekly* 48, no. 4 (January 2013): 53-61.

Tayler,W.*The Patna Crisis: Three Months at Patna during the Insurrection of 1857,* (London: W.H.Allen, 1882).

Weil, Benjamin. "The Rivers Come: Colonial Flood Control and Knowledge Systems in the Indus Basin, 1840s-1930s." *Environment and History* 12, no. 1 (February 2006): 3-29.

Yang, Anand A. *Bazaar India: Markets, Society, and the Colonial State in Bihar*. California: University of California Press, 1998.

Vipul Singh
Professor
Department of History University of Delhi

फार्म 4 (नियम 8)

1.	प्रकाशक स्थान	: श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राजस्थान
2.	प्रकाशन अवधि	: अर्द्धवार्षिक
3.	मुद्रक का नाम	: महर्षि प्रिण्टर्स, श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर)
	क्या भारतीय नागरिक है	: हाँ
4.	प्रकाशक का नाम	: महावीर प्रसाद माली
	क्या भारत का नागरिक है	: हाँ
	पता	: मरूभूमि शोध संस्थान श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राज.
5.	सम्पादक का नाम	: प्रो. बी. एल. भादानी
	क्या भारत का नागरिक है	: हाँ
	राष्ट्रीयता	: भारतीय
	पता	: रागंड़ी चौक, बीकानेर (राज.)
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों	: —

मैं महावीर प्रसाद माली एतद्द्वारा घोषणा करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिया गया विवरण सत्य हैं।

महावीर प्रसाद माली
प्रकाशक के हस्ताक्षर

Savitri Devi Alias Helen Lepcha's Memoir as a freedom fighter from Eastern Himalayas- (Darjeeling)

● **Dr. Gouri Dey**

The paper encompasses very rare and unknown historic facts about Darjeeling accentuating the freedom movement and abstruse freedom fighters of the region, one of the flag-bearers is Sabitri Devi, also known as Helen Lepcha. The role of women in the political sphere, as a subject for research, is of neoteric origin in India. They assisted the movement, their response to changing historical forces has consistently been unexplored in the current trends. Historians demonstrated their efforts to link women's participation in the freedom struggle from all the realms, that took part in it directly or indirectly. Like the housewives, mostly mothers and wives, who provided indirect support by shouldering family responsibilities when their men went to jail or lost their lives. The history of women has developed differently in different countries so was the era of women of Darjeeling who were successful in etching out a space for themselves in the freedom struggle of India. The women of Darjeeling participated equally with their fellow brethren; however, these unsung women's history has hardly been furnished in the historical account. When we turn the pages of history, we find women built firm solidarity and took responsibility. They brought revolutions and changes in society as well as in history. This paper puts forward the account of a Nepali woman from Darjeeling, who not only was involved actively in the freedom struggle but also continued to stay in politics after Independence and brought a drastic change in the development of the Hills. Women like Sabitri Devi gave an ideological foundation to the freedom movement and handed overa legacy to the community for generations.

Keywords- Freedom, hill, scenic beauty, women, Sikkim, Darjeeling.

Darjeeling and the freedom movement

The freedom movement in India was a prolonged protest that emerged in every part of India. Almost every section of the society came up to free the motherland.The natives of Darjeeling also did not lag behind in sharing the sorrows and sufferings of the motherland. When the atmosphere was filled with the air of freedom movement in India, the contribution made by the people of the hills was also worth mentioning.Theparticipation of women of the Darjeeling subdivision in the nationalist movement was indeed an incredible one but due to the marginality of people or the marginality of the region in the context of political importance, their contributions and sacrifices still,remained behind the scene. Darjeeling as a hill station, much adored by the colonial rulers, has received the place for exotic beauty and had a summer resort for colonial masters. but no one can perceive the other side of the story. However, very little of it got a place in the vernacular literature, magazines, novels, pamphlets, etc.[1]The Nepali community of Darjeeling has made very important contributions to India's freedom struggle by giving their lives for the motherland. Even in the post-independence era, the Nepali communityhas richly contributed to nation-building as brave soldiers defending the borders of the country. When the whole country was burning and there was a protest and a determination to get freedom from British rule, the people of Darjeeling also sprung out into the freedom movement. The nationalist ideology which was in the air of our country also found a place in Darjeeling.[2] It is said that Khagendra Nath Roy, a Bengali gentleman inspired the people of Darjeeling to forsake foreign goods.[3]The real motivation for the freedom struggle of India came under the leadership of Dal Bahadur Giri, who was a true patriot of Darjeeling.With his call, the hill people came forward to join the freedom struggle, against the British Raj. Generally, it is said that the Gorkhas of Darjeeling played the second fiddle to the Britishers and were not involved in the freedom movement of India, and hardly did anything.This was a misconception that was there in the minds of the people.Rather the people of a hill always came front to support the movement.[4]

The history of the freedom struggle in India is incomplete without mentioning the role and support of women. The entire history of the freedom movement is repleted with the epics of courage, sacrifice, and political intelligence of hundreds and thousands of women in our country. The women of Darjeeling played a significant role in liberating Motherland from the hands of the British. Although, the women from the hills, showed active involvement in the freedom movement of India, their bravery and love for their motherland aresomewhat not acknowledged, and sometimes history overlooked such incidents. The Nepali women of Darjeeling took the path of freedom movement as their goal in life,and so was Sabitri Devi alias Helen Lepcha. Sabitri Devi was born in Sikkim in 1902 intothe Lepcha family of Achung Lepcha. She was the third one among the seven siblings. It is said that her family had moved from Sikkim to Kurseong.Even today, the people of Sikkim remember her as one of the first female freedom fightersin Sikkim.[5] There were no sources thatsuggest why the family of Helen Lepcha moved to Kurseong. It might be in search of employment or good education as Kurseong was under the control of the British East India Company where the plantation industryhad employed many of the local or nearby residents, or maybe the schools in Kurseong made them shift from their ancestral place to Kurseong. Helen Lepcha received her formal education from Scott Mission School and in 1916, because of financial conditions, she had to quit her studies. Was the time when Gandhi's Charkha movement was spreading throughout British India, certain Bengali gentlemen came to Kurseong and propagated the idea of Gandhi's Charkha movement. She was inspired by the speech of the Bengali people who came to propagate the movement,and decided to join the movement and started learning the weaving on Charkha.[6]

The freedom movement in Darjeeling started with Sri Dal Bahadur Giri who took the lead from Darjeeling. He was inspired bythe speeches of Sister Nivedita and Chittaranjan Das onnationalism. He was involved in the freedom struggle and led an active part. He even attended the AllIndia Committee session in 1917 in Calcutta andthe All India Congress session in Nagpur in 1920. Gandhiji was impressed by Dal Bahadur Giri and hadsome

private discussions with him.It was during this phase that Dal Bahadur Giri was motivated and after returning from Nagpur he organized the first Darjeeling District committee meetingin Kalimpong. The first unit of the Darjeeling District Congress committee was formed with its headquarters in Pedong, a remote area of Kalimpong.[7] He even brought out all the papers, receipts, rules, and letterheads so that he could motivate people to fight for their motherland. People began to join and become a member of the party and thus the people of the Hill came in numbers playing an important role in the freedom struggle of India.[8] The people of the hills i.e., Darjeeling showed their resistance against the British Raj in 1920. The non-cooperation movement of 1921-22 was the first such occasion where the people of the hillswere completely involved in the freedom struggle and supported the movement. Apart from Dal Bahadur Giri, other important freedom fighters of Darjeeling include Bhakta Bahadur Tamang, Pratima Singh Lama, Agam Singh Giri, and Sabitri Devi, they were also inspired by the nationalistic ideology of Dal Bahadur Giri. The leaders spread patriotic ideologiesand anti-British campaigns.To support the Non-Cooperation movement many men and women came forward and even there were boycotts of foreign goods in Darjeeling.[9]

Becoming Sabitri Devi from Helen Lepcha

When entire India was following Gandhi in the Charkha movement, the hillsdid not lag behind.Everyone came out to support it and at that time a Bengali gentleman came to Kurseong preaching the ideals of nationalism and the charkha movement that was initiated by Gandhi. His speech inspired many and among them was a young girl, Helen Lepcha,who was highly motivated and made up her mind to join the movement. Helen Lepcha, who was in her teens, wanted to get enrolled in the Charkha School.So, she came to Kolkata, where her sister was residing, andgot enrolled in the Charkha school of Ishwar Chandra Vidyasagar's granddaughter. She was a dedicated and good learner, she excelled herself in weaving and her deep dedication to the art of weaving impressed her instructor so much so that she was chosenin the National level Khadi and Charkha exhibition in Muzaffarpur in Bihar representing Calcutta. This can be termed as the second turning point in her life.[10]

In 1920,a flood occurred in Bihar, creating panic and chaos among the people.At this time Helen Lepcha was in Kolkata. She went to Bihar to save the lives of the people and unstintingly worked day and night saving the people of flood-affected areas. During this time, Gandhi came to Bihar to visit the people affected by the flood and saw a young girl who was working for these people. He evenheard people showering praises.Healso heard about her dedication to the motherland. Gandhi was impressed by Helen Lepcha and her work towards the downtrodden people and had a talk with her and invited her to visit Sabarmati Ashram. Helen Lepcha visited Sabarmati Ashram, and here, she got the name 'Sabitri Devi', as the name Helen Lepcha seems to be foreign and worked for the poor altruistic as a Devi.[11]

Sabitri Devi as a Freedom Fighter

After being recognized by Gandhi as Sabitri Devi, she was motivated and became more dedicated to the sake of the motherland. She was given the responsibility of looking after certain parts of Bihar and Uttar Pradesh like Patna, Danapur, Bakipur, Muzzafarpur, and Jhariacoalfields. She worked in theseplaces, day and night, and was a very popular congress leader. The British did not like the work of Sabitri Devi and she came into their eyes.According to them, she was also inspiring people against the British government. The British tried to stop the activities of Sabitri Devi, and once in a rally, she was fired upon by the British but she somehow managed to escape andcontinuedwith her work inspiring people. She also attended the All India Congress meeting in Ahmedabad with Sarojini Naidu.She also had good relationswith all the congress leaders. She used to visit all the leaders frequently. When Non-Cooperation was at its peak in 1921, she actively took part at Muhammad Ali Park at Calcutta in a rally with Gandhi, Chittaranjan Das, Maulana Abul Kalam Azad, Smt. Urmila Devi and Smt. Swaroop Rani. Sabitri Devi was given leadership to lead a rally of thousands of laborers of Jhariacoalfieldsholdingthe national flag. She was leading the movement from the front, but all of a sudden, the news of her mother's illness, made her to rush quickly to Kurseong.[12]When she arrived at her home, she saw the flame of the non-cooperation movement was also ignited in Kurseong and Darjeeling, Siliguri being the base of the movement. She could not

resist joining the movement and quickly took charge of the movement and gathered volunteers from the hills and started preaching and inspiring people to come forward to support the movement. Many people came out and took part in the rallies. Huge bonfires of British goods were burnt in and around Siliguri. When the crowd was marching the British police lathi-charged on them. But Sabitri Devi was unstoppable. She proceeded with the volunteers, leading the movement but along with other leaders, was arrested and put into Darjeeling Sadar jail for 3 months. She was released after 3 months but was put under house arrest, to control her activities in the hills. Although restrictions were put on her, she kept the freedom movement alive in the hills.[13] In 1925 Gandhi came to Darjeeling along with Chittaranjan Das. Sabitri Devi came to meet him, studded in gold and silver ornaments. Seeing her in that attire, Gandhi was annoyed and asked Sabitri Devi to lead a simple life and abstain from all those ornaments rather donate them for the sake of the country. Gandhi's words touched her soul. She gave away all her ornaments to the Swaraj fund and from then onwards led a simple life and gave away all her luxuries and followed the teachings of Gandhi. Sabitri Devi dedicated her entire life to the country and inspiring the people of the hills to join in the freedom struggle, she is the perfect example of a leader and the people of Darjeeling and Sikkim feel proud of her. Being a lady from the Lepcha community, she carved her name in the history of the freedom movement.

Sabitri Devi's role in the freedom movement is not only confined to freedom struggle or following the path of Gandhi but rather was also the lady whom the entire hills feel proud of. In 1932,she became the first woman commissioner of Kurseong Municipality. She also helped Netaji to escape from India to Europe. It was in 1939-40 when Netaji Subash Chandra Bose was house arrested in his house in Giddhae Pahar, Kurseong, Sabitri Devi remained in constanttouch with him.She communicated with him through the letters that would be hidden inside the bread sent to Bose from her husband Ishan Ahmed's bakery. She also helped Netaji to escape from Kurseong to Calcutta and then to Germany via Kabul. It is also believed that the Pathan dress was sewed by Sabitri Devi for Netaji to disguise himself as Pathan which could help him escape from Kurseong. [14]

The Quit India movement was started in the country with a huge slogan of Swaraj. Even in Darjeeling, the influence of the Quit India movement was felt strong. It is said that the Quit India Movement in North Bengal started first in Siliguri and its influence is felt in the entire area of Darjeeling.[15] Two important personalities who started the Non-Cooperation movement in Darjeeling are Gaga Tshering and Putalimaya Devi, along with Saryu Prasad Poddar.[16] Sabitri Devi was actively involved in the Quit India movement and urged the people of the hill to fight against the British. The slogan, 'Do or Die', was in the air and among the people of the hills. Sabitri Devi's incomparable love for her motherland and the zeal to make Darjeeling free from British rule gave status to the people of the hills. They too played a very important part in the freedom movement.

After Independence, she continued her work for the people of the hills. She received Tamra Patra in 1972 and a lifetime pension. After Independence she was not onlyinvolved in politics, rather she was a social activist. She was the chairperson of various associations in Kurseong, like the Sherpa Association, Nagar Congress, Anjuman Islamia, and the Lepcha Association. She was also the Mandal of the Kurseong area until late in her life.[17] She always worked for the welfare of the people of Hill and is remembered in Sikkim and Darjeeling as one of the lone Lepcha freedom fighters, but her name did not figure out in mainstream history.

It can be concluded in a very conclusive manner that it is still many patriots who were actively involved in the freedom struggle, are tucked under the rubble of time. We get a glimpse of the hindrances and shortcomings of many such records, which otherwise, could have highlighted the efforts and sacrifices laid down by the women patriots.

Sanderf

1. Kalyani Pakhrin, unpublished Thesis, *India's nationalist movement and the participation of Nepali women of Darjeeling*, 2017, pp. 2-10.
2. N.C. Chaudhuri, *Dal Bahadur Giri*, In R. P. Lama and Dr. Jagat Chettri (Eds), *Dal Bahadur Giri,* (Smriti Grantha) Nepali Sahitya Sammelan, Darjeeling, (1988), P.11

3. Amrita Bazar Patrika, August 1 1906.
4. A. S. Giri, *Swargiya Shri Dal Bahadur GirikoSanchipta Jivani*. In R. P. Lama and Dr. Jagat Chettri (Eds), Dal Bahadur Giri (Smriti Grantha), Nepali Sahitya Sammelan, Darjeeling, 1988, pp.17-18.
5. Himalaya Darpan, 7 August, 2010
6. M.P.Rai, "*BirJaatiKoAmarKahani*", 1992, New Delhi
7. Dr. Shera PandiMolommu, Dal Bahadur Giri, the first freedom fighter of Darjeeling Hills, Research Guru, Vol 11, 2018, pp. 107-112.
8. M. P. Rai, *Bir Jatiko Amar Kahani*, Arithang, Gangtok, 1992, pp. 77.
9. K. Birahi, (1988). *Swantra-SangramiSwargiya Dal Bahadur Giri*. In R. P. Lama and Dr. Jagat Chettri (Eds), Dal Bahadur Giri (Smriti Grantha) (pp. 54). Nepali Sahitya Sammelan, Darjeeling.
10. C. Sharma, *Savitri Devi*,Suryamani Sharma (Ed.). "*Hamra Swatantrata Senani*", Siliguri, 1990, p-48.
11. Gokul Sinha , "*The Role of Gorkhas in the Making of Modern India*", Bharatiya Gorkha Parisangh, Delhi, 2006, p-27.
12. Dr. Shera PandiMolommu: *Helen Lepcha alias Sabitri Devi: Lone freedom fighter from the Lepcha Tribe*, International Journal of Informative & Futuristic Research, Volume,2, Issue 9 2015.
13. Bhawna Rai, *Active Role of Women of the Darjeeling Hills in the Freedom Struggle of India*. Central India Journal of Historical and Archaeological Research, Volume III, Number 11, July-September 2014, p.124.
14. *Ibid*, p.124.
15. K. Pandey, *Swatantrata Sangram ka Amar senani Dal Bahadur Giri*, Kalimpong ko SatantrataSangramiHeru, Part I, Kalimpong, 1983, pp.1-10
16. *Ibid*, pp.10-11
17. M. P. Rai, *Bir Jatiko Amar Kahani*, Arithang, Gangtok, 1992, p-226. Amrita Bazaar Patrika , 30th January 1922.

Dr. Gouri Dey
Assistant Professor
Dept. of History
Salesian college, Siliguri
DARJEELING

❑ ❑ ❑

Strengths, Shortcomings, and Challenges of E-learning during COVID-19 Pandemic in India : A Systematic Review

• **Dr. Keerti Singh**

Abstract

In India almost all types of educational institutions (schools, colleges, and universities) are currently based only on traditional methods of learning.They follow the traditional set up of regular, face-to-face lectures in a classroom. Although few academic units have also started blended learning but still a lot of them are stuck with old procedures. But, the COVID-19 crisis has forced education systems not only in India but worldwide to find alternatives to face-to-face instruction. This situation challenged the education system across the world and forced academiciansfor the shift to an online mode of teaching overnight. As a result, online teaching and learning have been used by teachers and students on an unprecedented scale. In the absence of traditional classroom teaching and one-to-one interaction, computer-based learning has emerged as closest substitute for off-line teaching. Many academic institutions that were earlier reluctant to change their traditional pedagogical approach had no option but to shift entirely to online teaching–learning. This article throws light on the importance of online learning and also to investigate the strength and shortcomingsand Challenges of e-learning modein the time of crisis. This article recommends that tough time and disasters will continue to occur and technologies will likely help us cope with them. It suggests various resources of educational technology during the time of pandemic and also

provides suggestions for educational institutions of how to deal with challenges associated with online learning.

Keywords : Coronavirus, COVID-19, Education Technology, Online Learning

Introduction

Corona Virus also known as Covid-19 once again disrupted all spheres of life. This tragedy has stunned up the education sector as well, and this fear is likely to resonate across the education sector globally. Covid-19 pandemic second wave outburstwhich forced all the educational institutions to remain closed temporarily. For students, there is a fear of losing the whole ongoing semester or even more in the coming future. It is researched, that it is difficult to get back to normal teaching anytime soon. The dreadful and infectious nature of this disease preventing students and teachers from meeting face-to-face. Educational units are struggling to find options to deal with this challenging situation. Learning institutions need to develop alternative educational delivery methods to move the classroom online.

People are coming with several arguments in favor of e-learning. Accessibility, affordability, flexibility, learning pedagogy, life-long learning, and policy are some of the arguments related to online pedagogy.Online mode of learning is easily accessible which has reach not only to cities and urban area but to rural and remote areas. As far as expenses are concerned, It is relatively cheaper mode of education with lower cost of transportation, accommodation, and the overall cost of institution-based learning. Flexibility is another important feature of online learning; a learner can schedule or plan their time for completion of courses available online. To increase the potential of learners, regular mode of teaching with technology gives rise to blended learning and flipped classrooms are suggested. Students can learn anytime and anywhere, thereby developing new skills in the process leading to life-long learning. By acknowledging the importance of online learning in this dynamic world government emphasized on technology in New Policy of Education, 2020.

One more argument in favors Online learning that can online learning considered as relief for learners and teachers during covid-19.

Online Learning

Online learning or E-Learning consists of teaching which is based in or out of the Classrooms with the use of computers and the Internet. The most easy way is to defined it as providing Training and development to the Students/Employees through various Electronic media such as the Internet, audio, video etc.Web-based learning is meant by e-learning which commonly referred to as electronic learning or online learning.E-Learning is the process of sharing knowledge through various channels such as e-books, CDs, webinars and more.It has revolutionized and challenged the traditional method of chalk and board style of teaching and learning imparted to the students.Unlike this, **online education** makes giving and receiving simpler, prolific, and productive. Teacherscan apply this method of teaching purely through the latest technology. Thus, it makes teaching and learning both become simpler, easier, and more effective. Other words that can be used for e-learning are web-based training or online tutoring. We can use the term e-learning in various forms but the concept remains the same which has changed the traditional old school teaching methods.

Importance of Online learning

- Online learning has been introduced to empower learners to get basic schooling and enhance skills.
- For tutors, it is a great source of earning, wherein they can teach from anywhere in their preferred time.
- Online learning at all levels of schooling helped to students to understand the lessons adequately and at a faster pace.
- As per the research available, the audio-visual method of teaching is more interesting and will remain in memory for long period of time.
- It has developedadvanced learning skills on the part of tutors and learners.
- Online learning has worked towards bringing learners, tutors, experts, practitioners, and other interest groups to one place. It is not exaggerate to say, that e learning is a good practice of knowledge sharing followed through different online platforms. Hence, fast dispersion of information helps in the better growth of an individual.

Types of e-learning or e-Education

Digital and self-initiated learning can be acquired at the desired locations. One need not wander in search of learning as **e-learning education** is versatile and amply equipped to suit all learning methods.

E-Learning is conducted and eventuates in many forms and sometimes, it is the blend of the following methodologies and practices :

- Completed online – no face to face meetings
- Provided through Mixed Learning – A blend of online and direct communication

That is in the two different forms

1. Synchronous-the communication between the provider and the receiver happens directly as in chat rooms, or video-audio conferencing.
2. Asynchronous-The information is passed through forums, emails, wikis, etc.

Online Learning : Need of the Hour

The number of COVID-positive cases are increasing day by day, which made it very clear that without social distancing, it will be very difficult to control the spread of this deadly virus. So, to overcome the challenges faced by educational institutions, Online education is viewed as a need of the hour in India.But it is seen that not many institutions are equipped with the adequate tools also they do not have the specialized aptitudes to make the learning environment technologically advanced.Its time to implement itallacross with different levels of education among many schools and universities.The nature of institutionschanged from offline mode to online mode of pedagogy. This crisis will make the institutions, which were earlier reluctant to change, to accept modern technology of teaching and learning. This disaster showing us the other way of learning.With the help of online mode of learning, a large number of students can be part of learning at any time and in any part of the world. Online education has many benefits for both, the instructors and the learner.During this tough time, the concern is not about whether online teaching–learning

methods can provide quality education; it is rather how academic institutions will be able to adopt online learning in such a massive manner (Carey, 2020).The shift from face-to-face lectures to online classes is the only possible solution.

Difficulties in Online Teaching and Learning

As technologies advancing day by day, there are quite many options of online education but sometimes they create a lot of difficulties. These difficulties and problems are associated with modern technology range from downloading errors, installation issues, login problems, problems with audio and video, and so on. Sometimes student get bored and feel not engaging. Learner wants two-way interaction which sometimes gets difficult in Online learning. For every type of learning process, it requires sufficient practice. So, online learning process is not able to reach its full potential until learners practice what they are taught. Sometimes, online content is all theoretical and does not let students practice and learn, Also,some subjects need practical demonstration, which is not possible in it effectively. Mediocre course content is also a major issue.

Objectives of the Study

The objective of this study is to investigate the strength, shortcomings, and Challenges of e-learning during Corona Virus pandemic.

Research Methodology

The literature survey is used to explore the growth of various resources of educational technology and online learning. An analysis was done to understand various strengths and shortcomings and challenges associated with online mode of learning during this critical situation. The qualitative research methodology is usedfor present study. Researcher have taken into considerationonly secondary data. A systematic review was done in detail for the collected literature. Journals, reports, research papers and articles.

Educational Technology and Online Learning in the Time of Corona

As we all see that COVID19 has impacted the world in a way no one could have ever anticipated. It's what economists call a

Black Swan event, which has affected all business sectors from the corporate world right to the regular common man. It is observed that no business sphere has been able to get through unscathed; it includes the education sector too.

Because of the second strain of Covid 19, almost from four months all the educational institutions schools, colleges, and universities has been closed. The pandemic has brought into light the need of social distancing norms, and not stepping out of houses unnecessarily. Online education curriculums and virtual classeshas however only restricted the students' physical access to classrooms because this has stopped neither schools nor colleges from imparting education to their students.Contribution of technology which the Indian education system has embraced with open arms.

Ed-Tech, which seemed a distant reality until a few years ago, has been sprung upon us due to this pandemic, and with over 37 million students in India's higher education sector alone, it won't be a stretch to say that it has come as a blessing. Technology has mitigated immensely thedamage that could have been done to the sector and moreover to the students.

Today, every student can have access to online classes in one way or another. Schools have been doing it through multiple platforms such as Microsoft Teams, or Google Classrooms and so on.This all once again proved to all of us the potential of technology has. Technology holds to redesign the education system for the better today and tomorrow.

Education system which is technology friendly is the bestproof solution in pandemic- also, it can alsoadopted as part of teaching learning process even after the pandemic. It make it possible to reach every corner and allow the schools and colleges to widen their outreach byachieving thousands of students adapting to a digital curriculum. We are witnessing that online and offline curriculums are to match each other.Similar to that of a physical classroom, a student follows a time-table for their virtual classrooms, teachers switch lessons, students get breaks, they take assessments designed for an online mode, and to top it all off, all this happens while being at the comfort of their rooms/homes.

This mode of education can not only prove useful for students in schools but it is also helpful at higher education level.

This allows them to be part of the full circle by minimizing the impact of the pandemic.

Analysis of Online Learning: During Corona Virus Pandemic

After witnessing the pandemic from past one year, the knowledge delivery becomes a challenging task. This pandemic disrupted the educational processes in schools and colleges in several ways. In such situations where students were deprived of education and learning.It is rightly said, "It is difficult to stick to the traditional road when the road itself has crumbled." This means that traditional way of imparting education that is through face-to-face instructions were not possible inthis time of pandemic; therefore, at present it is required that educationist, management and leaders come forward to devise some plans to keep the educational processes in continuation.

E learning has a long history but in India where we believe in traditional mode of learning, people are still hesitant of E learning. Due to technology advancement, digitalization at fast pace and also globalization, e-learning has started gaining popularity in India also. Many platforms provide affordable courses to students via Massive Open Online Courses. Still a lot of institutions in India were reluctanttoward online teaching and learning.However, the challenges posed by the Corona Virus pandemic introduced everyone to a new world of online learning and remote teaching. Instructors indulged them in remote teaching via few flat forms such as Google Hangouts, Skype, Adobe Connect, Microsoft teams, and few more, though ZOOM emerged as a clear winner.

Strength of Online Learning

The strengths of the online learning modes can rescue us from this type of hard time. Due to its flexible nature in terms of time and location, make it more student-centered. On the basis of learners need, e-learning methods enable us to customize our procedures and processes. To make the learning effective, efficient and interactive there are plenty of online tools available. To make the class more interactive and livelier, teachers are using audio, video, graphics and text. Educators can use a combo of audio, videos, and text to reach out to their students in this time of crisis to maintain a human touch to their lectures. This can help in creating a collaborative and interactive learning environment where

students can give their immediate feedback, ask queries, and learn interestingly. The anywhere-anytime feature of e-learning is beneficial in the times of crisis of Covid-19.

Technology provides innovative and resilient solutions at times of crisis to combat disruption and helps people to communicate and even work virtually without the need of face-to-face interaction. This leads to many system changes in organizations as they adopt new technology for interacting and working (Mark & Semaan, 2008).

Shortcomings of Online Learning

The direct communication and human touch is main weakness of E-learning as it can hamper the communication between the learner and the educator. Users can face many technical difficulties that hinder and slow-down the teaching–learning process (Favale et al., 2020). Though flexibility in time and location is the strength of online learning but these aspects are fragile and create problems. Studentsremain uncommittedin behavior due to non fixed schedule of classes.Many learner who are shy and introvert, feel uncomfortable while learning online which leads to frustration and confusion. Inadequate compatibility in usage of technology make irritated on the part of educators as not all the teachers are equipped in e learning.This obstructs the teaching process and creates an imbalance.

Challenges of Online Learning

There are many issues and challenges in Online learning on the part of learners, educator and content. It is a challenge for institutions to engage all the students and make them participate in the teaching–learning process. Also from the part of teachers, it is challenging to move from offline mode to online mode, to change their teaching methodologies according to technology, and to managing their time. It is challenging to develop content which not only covers the curriculum but also engage the students (Kebritchi et al., 2017). The quality of e-learning programs is a real challenge. As there is no clear guidelines given by government regarding online learning, it lacksinstandards for quality, quality control, development of e-resources, and e-content delivery. One should not merely focus on the pros attached to the adoption of online learning during the crises but should also take account of developing and

enhancing the quality of virtual courses delivered in such emergencies (Affouneh et al., 2020). A lot of time, cost and resources are involved in e-learning. It is not as easy as it seems, a considerable amount of investment is required for the devices and equipment, maintaining the equipment, training the human resources, and developing the online content. Therefore, an effective and efficient educational system needs to be developed to impart online mode education.

As India has a vide gap in terms of socio-economic condition of society, so digital equity is not possible in this time. Not all the teachers and students have access to all digital devices, internet, and Wi-Fi. Last year, during covid crisis we heard about many students who lost learning opportunities due to lack and unavailability of proper digital tools, internet connections, Wi-Fi connections. It's really a big challenge on the part of online learning and efforts should be taken by government as well as institutions to ensure that every student and faculty is having access to the resources required for learning. The educational apps and online platform of learning used by the teachers must work on mobile phones as well, in case students do not have laptops or desktop.

We leant from past year experience, that e learning is need of the hour, stillstudents and teachers across various schools and universities have never really practiced e-learning. A step-by-step guide or manual should be prepared by academic institutions that can guide the teachers and students on how to access and use various e-learning tools and how to cover major curriculum content via these technologies thereby reducing the digital illiteracy. Government should make digital literacy compulsory. Curriculum should be framed in such a manner that it can make best use of technology.

Results and discussions :

Possible Solutions to overcome the challenges

There are a lot of issues related to online education but we cannot ignore its importance in this hard time. The challenge to educational institutions is not only finding new technology and using it but also reimagining its education, thereby helping students and academic staff who are seeking guidance for digital literacy. difficulties can be solved through prerecording video lectures and testing the content. It is essential to make online curriculum

dynamic, interesting, and interactive. On the part of teachers, it is required to set time bound programme and to make them alert an d attentive, they should get reminder .Lectures should be prepared in student centered approach. Personal attention should be given to learners so that they can easily acclimatize to new learning environment. Social media like WhatsApp, telegram and various group forums can be used to communicate with students. The quality of the courses should be improved by discussing with subject expert. Online programs should be designed in such a way that they are creative, interactive, relevant, student-centered, and group-based (Partlow& Gibbs, 2003). Effective online instructions, feedback from learners, assignment, involving learners by asking learners questions to broaden the learner horizon for the course content.

We all understand that technology helped us to overcome the challenge of teaching learning in this difficult time. But this also should be kept in mind that ICT Infrastructure is a prerequisite for online learning. This ICT infrastructure needs to be so strong that it can provide unobstructed services during and after the crisis.

Covid-19 pandemic has changed the way people are receiving and imparting education. To find out the solution to this problem, we need innovations and change. Teachers have become habitual to traditional methods of teaching in the form of face-to-face lectures, and therefore, they hesitate in accepting any change. But now we have no other alternative left other than adapting to the situation and accepting the change.Also,we cannot ignore and forget the students who do not have access to all online technology. Due to wide gap in economic conditions, there are students who arenot capable enough to have digital facility, family is not technological friendly with financial resources restrictions; hence, they may lostclasses occur online, because of the heavy costs associated with digital devices and internet data plans. This digital divide may widen the gaps of inequality.

This tough time taught us that everything is unpredictable and we need to be ready to face challenges. Not only students, teachers are equally facing the problem in online learning. The possible solution is that teacher should encourage activities which make learning interactive, innovative and motivated. Educational institutions must build resilience in their systems to ensure and

prioritize the presence of these skills in their students. Teaching style should be student centric.

In thisalarmed situations, where the lives of many people are at stake, we are searching some mode that maketeaching and learning interesting. This will also reduce the stress, fear, and anxiety levels of people. For this, government support is also crucial at such stage and also proper training, technique and learning support should be provided to teachers and students.It is high time, we all should encourage the pedagogical and technical competency of online educators which is of utmost importance. Rigorous quality management programs and continuous improvement are essential for online learning success and making people ready for any crisis-like situation. Government should facilitate it, so that more and more educational institutions adopt digital teaching and learning process.

Natural disasters can stimulate our motivation for the adoption of highly innovative communication technology and e-learning tools (Tull et al., 2017). It s essential to make e learning effective, we need to focus on the use of technology more efficiently, with minimum cost, it facilitates educational processes. There should be proper clarity on the purpose and context of technology adoption. As several factors affect the choice of a particular technology such as security features, internet speed, internet access, digital literacy at all levels that is both teachers and students should be digital literate. Not only, digital literacy but digital ethics should be properly communicated to teachers and students as well. The essentiality of inclusive education must be kept in mind while providing online education. Such systems need to be developed in educational institutions that make sure that no student is getting deprived of education due to their socio economic problem, geographical location, social class or any other factor. Online methods of teaching support and facilitate learning–teaching activities, but it is necessary to know about the advantages and disadvantages of technology. Such disasters and pandemic such as Covid-19 create a lot of tension and fear in mind of teachers, students, parents and whole educational sector; to overcome this,a balance between technology, teaching learning style and stress should addressed carefully and properly.

Conclusion

There aremany different ways to define online learning and

the educational approaches that can be taken in today's learning environment, but the easiest way to defineonline learning is an innovative approach of learning. It is a holistic way of teaching and learning that meet the need of hour that is the only possible solution of teaching and learning in this tough time. In order to get maximum output of online learning teachers and learners should shift away from traditional classroom practices to an online learning approach of education. Despite the fact that today's learners are digital natives, the use of technology for e-learning can be overwhelming and provide student motivation challenges however, with the proper supports from instructors, learners can be successful within these online learning environments. We should welcome the recommendations given by NEP 2020 on digital education and also make online learning a practice. Teachers should design the curriculum in such a way that it must focus on the overall elements of a well-developed course, which supports the instructor and learner.

References

Assareh A, Hosseini Bidokht M. Barriers to e-teaching and e-learning. Procedia Comput Sci. 2011 Jan

Ayebi-Arthur, K. (2017). E-learning, resilience, and change in higher education: Helping a university cope after a natural disaster. E-Learning and Digital Media, 14(5), 259–274.

Affouneh, S., Salha, S., N., Khlaif, Z. (2020). Designing quality e-learning environments for emergency remote teaching in coronavirus crisis. Interdisciplinary Journal of Virtual Learning in Medical Sciences, 11(2), 1–3.

Baytiyeh, H. (2018). Online learning during post-earthquake school closures", Disaster Prevention and Management. An International Journal, 27(2), 215–227.

Brianna, D., Derrian, R., Hunter, H., Kerra, B., Nancy, C. (2019). Using EdTech to enhance learning. International Journal of the Whole Child, 4(2), 57–63.

Cojocariu, V.-M., Lazar, I., Nedeff, V., Lazar, G. (2014). SWOT analysis of e-learning educational services from the perspective of their beneficiaries. Procedia-Social and Behavioral Sciences, 116, 1999–2003.

Dhawan S. Online Learning: A Panacea in the Time of COVID-19 Crisis. Journal of Educational Technology Systems. 2020

Liguori, E. W., Winkler, C. (2020). From offline to online: Challenges and opportunities for entrepreneurship education following the COVID-19 pandemic

Martin, A. (2020). How to optimize online learning in the age of coronavirus (COVID-19): A 5-point guide for educators.

Nahai F, Kenkel JM. Accelerating Education During COVID-19 Through Virtual Learning. Aesthet Surg J. 2020 Aug

Rieley, J. B. (2020). Corona Virus and its impact on higher education.

Saxena, K. (2020). Coronavirus accelerates pace of digital education in India

Singh, V., Thurman, A. (2019). How many ways can we define online learning? A systematic literature review of definitions of online learning (1988-2018). American Journal of Distance Education, 33(4), 289–306.

Dr. Keerti Singh
685, Shanti Nagar
Near Durgapura Railway Station
JAIPUR-302018

❑ ❑ ❑

Empowering Women Through Education in India

Mrs. Shweta Bajaj • Mr. Abhishek Verma

Abstract :

Education is the basic right of every human being. The term education is very vast but we can use a one liner here as 'Education is the learning and development of ourselves". It imbibes new skills and teach us how to behave with everyone in the most civilized manner.

As mentioned above it is the basic right of everyone and here one should not discriminate amongst the genders. But it is very unfortunate that it still exists in many parts of the mother Earth. Education has a predominant place in women empowerment as the same prepares a female for accepting any challenges that comes on her way and can change their life altogether.

An educated women is empowered with confidence where she can take decision for herself and can have complete control over her decisions. Hence we cannot disregard the magnitude of Learning and Education in Empowering a women. If a women is left without being educated then a major part of the country will not be able to contribute towards its growth which can become a major issue in future. Educating a woman or a female child has become the need of the hour and of prime importance as it is said that when we teach a man, we teach a man only, but a well-read woman is the base of the family. A mother is always the first teacher of her child. Hence, if they are educated they will be able to shape their child's life too with values and will contribute in making him/her a better citizen of the nation. A woman who is learned enough is aware of her rights and

duties and she has rights to contribute towards the progress of the country.

It is very important for women to change her position in the society where it runs mostly by men, because of education there will be less inequalities in the society and this will improve their stature too, not only at home but in society too.

Keywords: Women education, empowerment, participation.

Empowerment can be seen as equipping and making women realize that she is free to make her decision that are the part of her life and she can act on the decisions made by her this will not only make a transformation in a females life, but a complete change in the society too . It is breaking a stereotype is the society from a home maker to a society maker. It is a process to have a complete takeover of her life and become the decision maker of her destiny. Woman is the most important part of the society yet deprived of many rights. Many times she is not even aware of it. All in the society know of about it but no one is ready to accept this brutal fact of inequality. All this has given birth for declining the woman's importance in the society. Because of the growth of such in humane acts there is a die-hard need to empower the most powerful gender of the society. Now it has become the nucleus for the development that has gained the attention worldwide, we need to ask a question today to ourselves that it has been 70 years plus to our independence, but are women really free? The woman is still fighting for equal rights in this male chauvinistic society, this search has given birth to big association and have given birth to many such movements for Women rights. Law has not given the right to divide or discriminate between males and females but the brutal society has deprived woman from her very basic rights, with whom she has been blessed by law. Empowerment is the belief in self to the maximum potential that one possess and improve upon their participation nationally and internationally and to have faith and belief on her Capabilities that she is no less than anyone else in this world of competition.

Woman Education and Its Importance

If you Teach a male you teach one person but when you teach a woman you are confident enough to understand that you literate a whole family. Woman Empowered means that out mother nation is Empowered ‘‘PT JAWAHAR - LAL NEHRU”.

Education of a woman plays a pivotal role in the growth of the country, for the complete improvisation it is essential to educate a woman it will not only change the eminence of life at home but even outside boundaries of the house. Many people have defined the Education in their own way, According to Mahatma **Gandhi Education means "All round development of the best in any individual, body, mind and spirit ".** If we see this definition a Gandhi ji it says that whatever changes that took place in the society are the results of the same.

Every Revolution have moved around the same concept and it's responsible for it. It is the complete change in the thought process, personality and attitude. An educated woman in the society will not Only take good care of her female Child but will also understand the importance other her being educated, more over a literate mother is the best Guiding source to all her Children whether it is a male or a female.

Problems on the Way towards Education.

Females around the county are still facing the gender discriminations which is still prevailing in India. Still the disparities exists in our counter a lot has to be done in this field so that every Women should be educated in our country. There is a huge lacuna in female and male literacy ratio which simply says it all. National average reveals the literacy rate for men is 80.9 per cent and for women is 64. 6 %. This simply tells that quarter of the population is still illiterate which is an alarming sign for any nation which is developing this may be because of the fact that they ae still considered to be home makers and not economy creators

Women empowerment through education

For any society, Women empowerment has always been an essential part and it is not limited to any province or nation at large. We cannot brush aside the role of a woman in any vertical of life. The contribution with which women portrays her limitless venture is incredible and contributing significantly for both the social and economic growth along with the political progress of India. The Indian constitution enables the state to adopt affirmative procedures for stimulating different approaches to empower women. Women Empowerment as an international concern and thought provoking discussion on this is a need of the hour. The idea of empowering

women was presented at the international women conference at NAROIBI in 1985. Well informed women through education as it makes them self-sufficient and self-reliant in all spheres of life. It is difficult to neglect the role of women in any society, which is propelling and striving to come up on the pinnacle of global presence.

Evolving the capacity to establish and stimulus the path of social change, to form a more just social and economic order, nationally and internationally. Therefore it is all about a change in social fabric and a tool to analyse the impact on different global issues that it caters.

It refers to people and society which is equally responsible for this change in mind-set and it is called mind shift process.

Importance of Women participation

Women's participation and involvement may be used both for support by an external agency and as a control device by the propagators of law-makers. It can be varied from direct or indirect, formal or informal and sometimes political to apolitical. The role of women in Panchayat Raj institutions is a living testimony of their active participation. It refers to women participation in all verticals be it policy formulation or execution of existing policies in the betterment of a country.

But woman is still facing the discrimination in all arena of life. It is because of the limited resources or power that they have or a maltreatment they receive because of vested interest of political pressures. Invariably the women having lack of power at the centre and state level.

Equality In Education

We all know that adult literacy programs have been duly acknowledged and has been praised by all across the country. There has been a major improvement in the equality of women as the admission ration was increased in the schools across which was a commendable and appreciating step. Due to this gap in between was reduced at a good level. It is a known fact that the world has achieved the equality in education in both the genders and there are many other parts of the globe where the target has been achieved of literacy and education at all the levels. The part taking of women in politics has been a major step up and keeps on increasing too. According to the latest data, in the year 20-14, 30%

of the parliament members in more than 45 countries at least in one room were females. We have seen in many countries this inequality still persists and the women has to face the problem in education and other areas of development which includes economy and government. They have to face the problems in almost every sector that they work. If we see the numbers more than 60 million women are underprivileged to go for their basic education to schools.2 in 5 women have to face the violence because of the gender they belong to, child marriages are still so common across the world. And the situation is that they are the part of the developing country. So many women die across the world because of the complication in their pregnancy or during the child birth. There are 43% of women who are in agricultural labor force and fewer than 15% of landholders in agriculture are women. Largest inequalities are found in North Africa and near the East, as the percentage is just 5% as landholders who are females.

By keeping both the genders equal we can transform the society in a very professional way, and each sector can grow eventually. The power given to the women is not just the part of the development society as in whole but it is the nucleus of the development. To educate people across the world we will have to have more of educational awareness programs on equality and empowerment to the women and should take the firm step and commit to give the complete support in every sense to the females.

Conclusion

A well-read woman is the guiding lamp for the developing nation towards the destination of development. They need to be preserved for a life in humanity which is a pre requisite for improvisation of any nation. Hence if we are looking for a brighter tomorrow educating a women should be the priority of the country. It is the most important and powerful equipment to change the society. It will not only change the world around but change in this inequality will also improvise the status of the women within her family. To motivate the feeling of educating the women in the society gender biasness has to be completely eradicated and for this there is a need of providing education, skill sets and knowledge to females of the society. There is a need for exclusive schools and colleges to be opened in every state for women so that she can be an active participant in all the public,

administrative and government matters for the complete removal of gender discrimination.

References

1. Suguna M. (2011). Education and Women Empowerment in India. International Journal of Multidisciplinary Research: VOL. 1. Issue 8. (M)
2. http://www.abhinavjournal.com/images/Arts_&_Education/Nov12/1.pdf
3. http://shodhganga.inflibnet.ac.in:8080/jspui/bitstream/10603/8562/9/09_chapter%204.pdf (shoadhganga.inflibnet.ac.in)
4. Shindu J. (2012). Women's Empowerment through Education. Abhinav journal: Vol. 1. Issue- 11. p. 3. (J, 2012)
5. Journal of Education and Practice www.iiste.orgISSN 2222-1735 (Paper) ISSN 2222-288X (Online)Vol.6, No.10, 2015191
6. K. Mahalinga. (2014). Women's Empowerment through Panchayat Raj Institutions. Indian Journal of Research: Vol. 3. Issue 3. (k.mahalinga, 2014)
7. Chibber B. (2010). Women and the Indian Political Process. Mainstream Weekly Journal: Vol. XLVIII.Issue 18. (B, 2010)
8. Bhat T. (2014) Women Education in India Need of the Ever. Human Rights International research journal:Vol. 1 p.3. (T, 2014)
9. www.un.org/milleniumgoals/gender.shtml
10. http://www.usaid.gov/what-we-do/gender-equality-and-womens-empowerment

Shweta Bajaj
Assistant Professor,
Graphic Era Deemed to be University
DEHRADUN

Abhishek Verma
Assistant Director
Career Services,
University of Petroleum and Energy Studies (U.P.E.S)
DEHRADUN

❑ ❑ ❑

Human Rights Perspective of Right to Food and Judicial Response in India: A Review with special reference to the Position of Refugees

"We know that a peaceful world cannot exist (with) one-third rich and two-thirds hungry" ….
Jimmy Carter (39th President of U.S.A)

Tanmoy Roy • Dr. Pradip Kumar Das

Introduction

When 11-year-old Santoshi died on 28th September 2017[1], the State government of Jharkhand claimed that the child had died of extreme illness. However, deceased's family contended that they had not been getting rations and other humanitarian assistances for a consecutive period of six months from the government before her actual death. Another shocking instance of death due to starvation occurred in the Capital itself.[2] In this case, children's mother was found to be mentally unstable, while their father, a rickshaw puller, had not returned home and efforts were on to find him. The three minor girls were from Delhi's Mandawali area died in the hospital. The case reveals that the father had lost his income as his rickshaw was stolen. As a result, the family was not in a position to make ends meet. At afternoon, three minor girls fainted one after another out of extreme hunger. *"There was no trace of fat on their bodies. Postmortem showed the stomach was absolutely empty. It's a case of gross malnutrition"*[3] said Dr Amita Saxena, the MS of Lal

Bahadur Shastri Hospital. The case of Savitri Devi[4], who was 58 years old, stands also on the same footing. Her neighbours claimed that Savitri Devi had hardly anything to eat since she had been refused PDS food since 2012, after her ration card was invalidated. However, the State Government of Jharkhand and its concerned public authorities reported that Savitri Devi ended up dead because of "illness" rather than starvation.

However, the above few instances are only tip of the iceberg in our country. Many people die due to starvation and malnutrition in several parts of our country. After the death takes place, a small column of the print media is sometimes reserved for them. In some cases, some media reporters jump over the matter towards the race of publishing the news first. Few hue and cry are here and blame games are there. But, with the efflux of time, everybody used to forget about that. Poor, downtrodden and helpless destitute people, perhaps, wait for their next turn to be in the news. Governments have taken various steps, many laws are enacted in India to prevent death, judiciaries have given many judgements making Right to Food as Fundamental Rights, politicians have given many assurances to stop starvation death, but still, it is a continuing menace. In fact, we the people of India should be ashamed of this in the 21st century when we are talking about digitalization and introduction of 5G spectrum and sending Mars Orbiter Mission and launching other satellite missions at par with NASA.

It is on this socio-legal spectacle, the authors have ventured to write this article of immense importance. We have discussed the concept and meaning of human rights, violation of human rights due to starvation death, judicial views about right to food, right to food available to refugees and finally few suggestions in this regard are given to curb out this menace.

In this case, children's mother was found to be mentally unstable, while their father, a rickshaw puller, had not returned home and efforts were on to find him. The three minor girls were from Delhi's Mandawali area died in the hospital. The case reveals that the father had lost his income as his rickshaw was stolen. As a result, the family was not in a position to make ends meet. At afternoon, three minor girls fainted one after another out of extreme hunger. *"There was no trace of fat on their bodies. Postmortem showed the stomach was absolutely empty. It's a case of gross*

malnutrition"[4] said Dr Amita Saxena, the MS of Lal Bahadur Shastri Hospital. The case of Savitri Devi[5], who was 58 years old, stands also on the same footing. Her neighbours claimed that Savitri Devi had hardly anything to eat since she had been refused PDS food since 2012, after her ration card was invalidated. However, the State Government of Jharkhand and its concerned public authorities reported that Savitri Devi ended up dead because of "illness" rather than starvation.

However, the above few instances are only tip of the iceberg in our country. Many people die due to starvation and malnutrition in several parts of our country. After the death takes place, a small column of the print media is sometimes reserved for them. In some cases, some media reporters jump over the matter towards the race of publishing the news first. Few hue and cry are here and blame games are there. But, with the efflux of time, everybody used to forget about that. Poor, downtrodden and helpless destitute people, perhaps, wait for their next turn to be in the news. Governments have taken various steps, many laws are enacted in India to prevent death, judiciaries have given many judgements making Right to Food as Fundamental Rights, politicians have given many assurances to stop starvation death, but still, it is a continuing menace. In fact, we the people of India should be ashamed of this in the 21st century when we are talking about digitalization and introduction of 5G spectrum and sending Mars Orbiter Mission and launching other satellite missions at par with NASA.

It is on this socio-legal spectacle, the authors have ventured to write this article of immense importance. We have discussed the concept and meaning of human rights, violation of human rights due to starvation death, judicial views about right to food, right to food available to refugees and finally few suggestions in this regard are given to curb out this menace.

Meaning and Concept of Human Rights

Despite the presence of numerous international human rights instruments in the modern twenty-first century, the expression "human rights" so far has hardly been defined objectively in any of these documents. Briefly speaking, human rights refer to those core and intrinsic rights that every human being must have by virtue of being human.[6] Human rights, being inalienable and innate

in all human lives, do not recognise or acknowledge any other factors or circumstances, such as race, caste, creed, sex, language, religion, colour, or place of birth. Resultantly, it would be suffice to assert that human rights are certain impulses of humanity shared by all, regardless of any other factor.[7] According to Jack Donnelly, human rights are often understood to mean what 'Locke' and his descendants indicated by the concept of natural rights. It denotes those basic entitlements of human life which are owned and possessed merely by virtue of being a human person and not by anything else. These rights are natural in the sense that its essence and instinct are derived from human nature itself.[8] As such, these rights are not subject to any geographical restrictions or temporal limitations. Thus, every human life, no matter whereever they are and whatever they are, is entitled to the protection of their basic inalienable rights, and it is the obligation of any state that claims to be civilised to recognise, respect and defend these basic and universal rights on its respective territory.[9] According to Durga Das Basu, *"human rights are those minimal rights which every individual must have against the state or other public authority by virtue of his being a member of human family, irrespective of any other consideration"*[10]. In India, the term 'human rights' have been depicted as *"the rights relating to life, liberty, equality and dignity of the individual guaranteed by the Constitution or embodied in the International Covenants and enforceable by Courts in India"*[11]. The seminal value of human rights would become firm and evident in the words of Aristotle when he expressed *"that which has everywhere in the world the same force, and is independent of will of the lawgiver…and it has the same force everywhere just as fire burns both here and in Persia"*.[12] In a civilised community, these rights are perceived as revered and venerated for the physical, moral, social, and overall development of a human being, as well as for attaining the pinnacle of all human qualities and virtues. The ultimate goal of these rights is to preserve and safeguard the revered concept of "human dignity."[13] The avowed object is also to develop and prosper one's personality[14] as much as practicable. In the modern 21st century, the contour and purview of human rights are gradually expanding to embrace new and broad components within its dimension on a constant basis. It has progressed beyond the realm of civil and political rights to the contours of economic, social, and cultural rights and is presently

embracing the notion of group or solidarity rights within its ambit.[15] Generally civil and political rights like equality of status and opportunity, freedom of through, expression, belief, faith and worship, freedom of association, protection against torture, right to life, liberty and security, right to fair trial, right to marry, abolition of forced labour and slavery are almost everywhere recognised and protected without any spell of hesitation and confrontation. But the actual problem revolves around the realization and implementation of economic, social and cultural rights. In a developing and poor nation like India, Civil and Political rights seem to be merely rhetorical and ornamental without the actual back up of economic, social and cultural rights. Human Rights Jurists often assert that first generation civil and political rights are nothing but illusory without the recognition and guarantee of real economic, social and cultural rights. A careful perusal of the International Bill of Human Rights would reveal that a subtle demarcation has been drawn between these two sets of human rights in the Universal Declaration of Human Rights, 1948 and also later in the two binding International Covenants of 1966. The international community in their ultimate consensus when finally came up with the two binding Covenants of Human Rights, an explicit and obvious distinction had been noticed with the profound presence of two separate instruments of the same genus. One specifically deals with 'Civil and Political Rights' and the other interacts with 'Economic, Social and Cultural Rights'. Under this second group of human rights, right to social security, right to work, right to leisure, right to adequate standard of living, right to food, clothing and shelter, right to physical and mental health come within its purview. One being enforceable and the other heavily depends on the availability of the State resources. In every State, its implementation and enforcement largely hinge on the goodwill and bonafide intent of the State as well as the resources and purses of the State, which would be evident from Article 2 of the International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights, 1966 (ICESCR). The employment of the language "to the maximum of its available resources" in Article 2 of ICESCR, 1966, makes it abundantly clear that State parties are not under an instant obligation to fulfil the stipulations of the Covenant. So far as Indian position is concerned, our Indian Constitution also makes an explicit division between these two groups of human rights in the form of Part-III and Part-IV. Part-III of Indian

Constitution dealing with 'Fundamental Rights' in essence embodies Civil and Political Rights, whereas, Part-IV addressing Directive Principles of State Policy, actually encompasses Economic, Social and Cultural Rights. But the twist is that while fundamental rights as contained in Part III of our Constitution are made enforceable through the recourse of judiciary, Part IV of our Constitution are totally non-enforceable and non-justiciable. Nevertheless, the rights of Part-IV are fundamental in the governance of the Country.[16] At this juncture the poignant question that can be raised here: whether these second set of human rights are only for rhetorical illustration or actual illumination?

Right to food as Human Right-

Taking a cue from one of the basic tenets of human rights, namely, human dignity, it goes without saying that food is an integral part towards a dignified and meaningful human existence and its survival.[17] A human being's health and potential are inextricably linked to the enjoyment of all other human rights, as well as their actual and meaningful inclusion and participation in every sphere of social and economic life. Human health, its vitality and potential are invigorated with the intake of nutritious food and pure water from the beginning to the end of the day. One can hardly hesitate that adequate food and sufficient nutrition are the linchpin of a healthy life and appear as the ultimate mantra of decent survival. The notion of malnutrition is antithesis to it. Both can't fit themselves in the same boat. But the fact is that malnutrition engulfs and afflicts practically almost every poor developing country of the globe. India is no exception to it. The troubles and tribulations of malnourished human subjects, be it children, women, aged or any human being, is largely invisible and imperceptible. Every year a significant fraction of the population succumbed to various causes pertaining to malnutrition or from hunger related causes. 'Oxfam', an anti-poverty organisation, claimed in its recent report entitled *"The Hunger Virus Multiplies"*[18] that 11 people die every single minute as a result of hunger and starvation.[19] Oxfam has labelled several countries including Afghanistan, South Sudan, Syria as "worst hunger hotspots"[20]. According to a recent UNICEF research, malnutrition is a causative factor towards half of all deaths among children

under the age of five[21]. Of course, the ultimate coroner's report is never "starvation" or "hunger," but rather a more acute condition such as diarrhoea or pneumonia. However, the remote but connecting cause is hunger, which has deprived the body of the required biological support that might prevent these disorders and ailments. It is bitter but undeniable that in the 2021 Global Hunger Index, India ranks 101st out of the 116 countries. With a score of as low as 27.5, India falls into the category of truly terrible and appalling hunger nation and holds the backbenchers' tag in this direction.[22] The notion of 'roti, kapda and makan' (food, clothing and shelter) makes itself prominent only in the election manifestos and loud in the so-called slogan of election rallies of almost every political party after every interval of five years. Even after a lapse of consecutive periods, only the rulers are at best subject to change, but the situation and plights of the ruled, particularly the poor and impoverished, remains mostly unchanged and static. In reality, these basic and grassroot human rights only remain as pious hope and fond wish for every poor and average human subject in our poor developing nation. But recently a paradigm shift has been noted in the human rights discourse and debate, which is leaned and tilted towards rights-based level from discussion level in order to implement it at grassroot and demotic base. This rights-based approach demand human right to food from charity and benevolence zone to a question of entitlement zone of every human being by virtue of their basic human existence.

The right to adequate food includes within its ambit right to adequate standard of living, which tend to promote and proliferate health and well-being of every individual. It is inextricably linked with right to health, right to life and right to human dignity and right to overall development. In 1948, the Universal Declaration of Human Rights (UDHR), unequivocally declares that *"everyone has the right to a standard of living adequate for the health and well-being of himself and of his family, including food, clothing, housing and medical care and necessary social services…"*[23]. This human rights norm took the binding form and character in International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights, 1966. Article 11 of the International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights in 1966 in the same tune recognizes "adequate standard of living…including adequate food, clothing and

housing"[24]. It further embraces *"the fundamental right of everyone to be free from hunger"*[25] In 1974, at the United Nations World Food Conference at Rome along with 22 Resolutions, one Universal Declaration on the Eradication of Hunger and Malnutrition was adopted. Paragraph 1 of such Declaration unambiguously states that *"every man, women and child has the inalienable right to free from hunger and malnutrition in order to develop fully and maintain their physical and mental faculties"*[26]. In tune with this spirit, Food and Agricultural Organisation (FAO) had been set up and World Food Programme has been initiated by the joint venture of United Nations and said FAO. But the naked reality is that barring 1966 ICESCR, both the UDHR and UDEHM are only declaratory in character and do not have any binding effect. It's fulfilment and implementation largely depend on the goodwill and the political intent of the State concerned.

Now moving to the Indian position, it seems quite arguable that right to food falls within broad sweep of 'right to life' under Article 21 of our Indian Constitution. One can find considerable logic and reasonable prudence that if right to life includes right to live with basic human dignity, then why right to food being integral and concomitant of right to life, would not be included within its broad ambit. That apart, Article 39(a) of Indian Constitution directs the State to frame out its policy towards securing right to an adequate means of livelihood. Besides this, Article 47 of the Indian 'Grundnorm' which addresses 'Directive Principle of State Policies' also imposes an obligation upon the State to raise the level of nutrition, standard of living and further to proliferate the condition of public health. Besides this, State is also under obligation to come up with the prohibitory policies and measures regarding consumption of intoxicating drinks and drugs except for medicinal use. Although DPSPs are not judicially enforceable, but there is catena of decisions from which one can easily infer that this characteristic of Part IV of Indian Constitution has in practice been diluted by the Indian Judiciary by riding on the back of Article 21 of Indian Constitution.

Position of Refugees in India and Right to Food

Despite the fact that India is not a signatory to the 1951 United Nations Refugee Convention nor there is any dedicated

legislative framework in place to deal with refugee influxes, our country has a long history of welcoming and accepting refugees from basically every nook and corner of the globe. We have historically treated refugees with welcoming gestures and provided them a place of dignity and honour for their dignified survival and meaningful existence. However, the lack of a particular regulatory legislative framework creates a breeding ground for obvious discrimination and distinction. They are treated as per ad-hoc administrative policies of the government concerned, keeping in mind the place of origin, India's relationship with those countries and obviously global ramifications. Thus, these policies can rightly be asserted as *"politics of care and power"*[27]. Some refugee groups used to receive full benefits, while others face discrimination and struggle to obtain even basic human privileges and entitlements. When the term 'basic entitlements' are used, the first thing that springs immediately to one's mind is the right to food. The question now is whether refugees, as one of the world's most disadvantaged and vulnerable populations, are able to exercise their basic human rights in this host country without confrontation and friction. It is clear from the preceding discussion that access to safe and nutritious food partakes the character of fundamental human right of every human being. Refugees and asylum seekers are undoubtedly those wretched human beings who have been rejected by their own country of origin. They are constrained to cross national boundaries in order to protect themselves from persecution and its unwarranted repercussions and ramifications. Their voyage from their roots to a new nation, however, is not one of daisies, but of thorns and iron fences and filled with armed barricades. They are met by an unwelcoming banner almost wherever they go. They used to encounter several hurdles when they arrived in a new nation in search of a safe refuge and a decent living. Poverty, unemployment, tight visa restrictions, poor physical and mental health, and linguistic and cultural challenges can all contribute to their plights and traumas. With these, lack of adequate food, scarcity of pure drinking water and unhygienic condition in the refugee camps subdued the other apathy and indifference and exacerbated the situation further. In an alien environment, with hardly any identity documents, no employer or organisation is inclined to hire them even for unorganised jobs. Even when they

are hired by some agents or organisations, they are exploited without adhering to the norms of minimum wages, social security measures and other labour norms. They are given half of the wages, although they are squeezed more than the normal citizens. The plights and predicaments of women refugee are far worse than their male counterparts. They have to surrender their bodily integrity and self-esteem in such unknown land in order to earn their daily bread and support their families. The male heads of the refugee families are not even inclined to show the remote interest to enrol their children and wards in government-funded or UNHCR-assisted schools. As a result, the refugee children can barely complete even their elementary education and the school dropout rates appear to be substantially greater as compared to the wards of BPL Indian citizens. Their parents have willingly assigned them to unorganised sectors or to rich citizenry's household chores so that even their child may contribute towards their minimal livelihood in this distant harsh land. Education is a faraway dream for them, and earning a daily bread is their actual aim and aspiration.

In this context, the decision of ***Digvijay Mote vs. Government of India***[28] seems pertinent and germane. In this case, an appropriate direction was sought upon the state government to provide food and arrange other social welfare amenities for 150 Srilankan Tamil Refugee children who are staying in a residential school at Jakkur of Karnataka. Initially, various individuals as well as the state government contributed significantly to the school's funding. However, when the government of the Concerned State unexpectedly stopped providing humanitarian help, the school and its pupils found it extremely difficult to continue and survive. As a result, when the right of these refugee children to a dignified living was jeopardized, the State government's hasty and whimsical move was brought to the judicial notice by filing a Public Interest Litigation and was sought to be redressed. It was contended that the refugee children of the concerned school were passing their lives in starvation and that the situation would inevitably lead to starving fatalities. The Karnataka High Court gave notice on all of the State Respondents. However, when the State told the Bench that a high-level discussion had been organised with all involved social welfare departments of the State with the aim of offering humanitarian aid, the Court disposed the matter without delving into

merit. The Court thinks it appropriate to dispose the Writ Petition without entering into the merits of the matter because the State declared its willingness to serve breakfast, lunch, and dinner to the inmates of that school on an ad hoc basis.

Recently, a petition has been moved to the Supreme Court of India[29] regarding rights of refugees in India. In this petition, the Supreme Court sought responses from the Centre and state governments on a PIL, which sought free dry ration or cooked food thrice a day to Rohingya Muslims and refugees from other countries claiming that their right to food has been violated during the lockdown and consequent economic slowdown as most of them work as daily wagers. A bench comprising *Justice D.Y. Chandrachud and Justice A.S. Bopanna* issued notices to the Centre and some states, where these refugees are settled after petitioner claimed that there were more than two lakh refugees or asylum seekers in India, mostly working as daily wagers, living in pitiable conditions because of the apathy of the governments in providing them food, a constitutionally guaranteed right.

Right to Food and Judicial Response in India:

In ***Francis Coralie Mullin* v. *Administrator, Union Territory of Delhi***[30], the Hon'ble Supreme Court held that right to life under Article 21 of Indian Constitution includes the right to live with human dignity and all that goes along with it, namely, the bare necessaries of life such as adequate nutrition, clothing and shelter and facilities for reading, writing and expressing one-self in diverse forms, freely moving about and mixing and commingling with fellow human beings. Of course, the magnitude and content of the components of this right would depend upon the extent of the economic development of the country, but it must, in any view of the matter, include the right to the basic necessities of life and also the right to carry on such function. Hon'ble court also held that the right to life enshrined in Article 21 cannot be restricted to mere animal existence. It means something much more than just physical survival.

Again in ***C.E.S.C. Limited* v. *Subhash Chandra Bose***[31], the Indian Apex Court, inter alia, held that the right to social justice is a fundamental right. Right to livelihood springs from the right to life guaranteed under Article 21. The health and strength of a worker is

an integral facet of right to life. The aim of fundamental rights is to create an egalitarian society to free all citizens from coercion or restrictions by society and to make liberty available for all. Right to human dignity, development of personality, social protection, right to rest and leisure as fundamental human rights to common man mean nothing more than the status without means. To the tillers of the soil, wage earners, labourers, wood cutters, rickshaw pullers, scavengers and hut dwellers, the civil and political rights are 'mere cosmetic' rights. Socio-economic and cultural rights are their means and relevant to them to realize the basic aspirations of meaningful right to life. The Universal Declaration of Human Rights, International Conventions of Economic, Social and Cultural Rights recognize their needs which include right to food, clothing, housing, education, right to work, leisure, fair wages, decent working conditions, social security, right to physical or mental health, protection of their families as integral part of the right to life. Our Constitution in the Preamble and Part IV reinforce them compendiously as socio-economic justice, a bed rock to an egalitarian social order. The right to social and economic justice is thus fundamental right. So, right to food will also be part of fundamental rights of the people under Article 21 of the Constitution.

In the epoch-making decision of ***Kesavananda Bharati* v. *State of Kerala***[32], the Hon'ble Supreme Court held that the object of the people in establishing the Constitution was to promote justice, social and economic, liberty and equality. The modus operandi to achieve these objectives is set out in Parts III and IV of the Constitution. Freedom from starvation is as important as right to life. It indicates that right to food is part and parcel of right to life.

Further in ***Olga Tellis v. Bombay Municipal Corporation***[33], their Lordships observed that the sweep of the right to life conferred by Article 21 is wide and far reaching. It does not mean merely that life cannot be extinguished or taken away as, for example, by the imposition and execution of the death sentence, except according to procedure established by law. That is but one aspect of the right to life. An equally important facet of that right is the right to livelihood because, no person can live without the

means of living, that is, the means of livelihood. If the right to livelihood is not treated as a part of the constitutional right to life, the easiest way of depriving a person his right to life would be to deprive him of his means of livelihood to the point of abrogation. Such deprivation would not only denude the life of its effective content and meaningfulness but it would make life impossible to live. And yet, such deprivation would not have to be in accordance with the procedure established by law, if the right to livelihood is not regarded as a part of the right to life.

In ***Shantistar Builders* v. *Narayan khimalal Totame***[34] (1990) 1 SCC 520., the Hon'ble Supreme Court opined that the basic needs of man have traditionally been accepted to be three, i.e.; food, clothing and shelter. The right to life is guaranteed in any civilized society. That would take within its sweep the right to food, the right to clothing, the right to decent environment and further a reasonable accommodation to live in.

Again, in ***Peerless General Finance and Investment Co. Ltd* v. *Reserve Bank of India***[35], the Hon'ble Supreme Court was of the opinion that Article 25 of the Universal Declaration of Human Rights provides that "everyone has a right to a standard of living adequate for the health and wellbeing of himself and of his family, including food, clothing, housing and medical care." Right to life includes the right to live with basic human dignity with necessities of life such as nutrition, clothing, food, shelter over the head, facilities for cultural and socio-economic wellbeing of every individual. Article 21 protects right to life. It guarantees and derives there from the minimum of the needs of existence including better tomorrow. The court also observed that poverty is not always an economic problem alone. Very often it is a social as well as human problem.

Also, in ***Chameli Singh* v. *State of Uttar Pradesh***[36] the Hon'ble Court was also of the view that in any organized society, right to live as a human being is not ensured by meeting only the animal needs of man. It is secured only when he is assured of all facilities to develop himself and is freed from restrictions which inhibit his growth. All human rights are designed to achieve this object. Right to live guaranteed in any Civilized society implies the right to food, water, decent environment education, medical care and shelter. These are basic human rights known to any civilized society.

Similarly, ***Kapila Hingorani* v. *State of Bihar***[37] the hon'ble Supreme Court reiterated that Article 21 of the Constitution of India would include a right to food, shelter and other basic amenities. Neither any state nor the State of Bihar can escape their liability from enforcing the rights of the citizens of India under Articles 21 and 23 of the Constitution of India.

But in ***Kishen Pattnayak* v. *State of Orissa***[38], the Apex Court for the first time, moving beyond the mere declaration as a fundamental right, has shown the actual courage to take up the issue of poverty and starvation deaths in the State of Orissa. In this case, the self-innovated epistolary jurisdiction of the Supreme Court has been invoked for treating this matter as a public interest litigation. Here, direction has been sought upon the State government to take immediate steps to proliferate the misery and plights of the human subjects of Kalahandi. On assurance of undertaking several bonafide measures to curb this inhuman menace by the government concerned, the Supreme Court find itself satisfied with the actual adoption of several measures and disposed of the Public Interest Litigation.

Conclusion and suggestions

So, from the above discussion, it is evident that 'Right to Food' is one of the fundamental rights of the people. This is recognized by the apex court of India in a series of decisions. This has also been recognized by various international conventions including Universal Declaration of Human Rights and International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights. State has no doubt limited resources. But, in spite of that, State must try its best to protect this seminal fundamental right of 'we the people'. Because, in the absence of protection of this fundamental right, the basic tenet of welfare state will be in question. However, our government has implemented various projects and taken various initiatives in this direction. For example, Annapaurna Yojna, Deen Dayal Upadhyaya Antyodaya Yojana etc. Through these projects, government has ensured that no one would die without food. However, precaution should be taken in the implementation of these projects. In some parts of the country, these initiatives may be interrupted due to corruptions of the persons involved in the process of distribution and also in the loopholes of Public

Distribution System. In few cases, foods are not distributed to the actual needy people rather these are left in the hands of dishonest ration dealers and local political leaders. Honesty and cooperation from both Central and State Government is sine qua non for successful implementation of these policies. One Country one Ration Card policy of the Government may be useful to make these project successful. However, before we finish, we must say that let us gird up the loins to prevent a single death due to starvation from our country by ensuring right to food to everyone.

REFERENCE

1. Tavleen Singh, "Santoshi died of starvation", *The Indian Express*, October, 22, 2017, *available at:* https://indianexpress.com (last visited on January 9, 2022).
2. Express News Service, "Delhi: Three minors starved to death confirms autopsy report, govt orders inquiry", *The Indian Express*, July 26, 2018, *available at:* https://indianexpress.com/article/cities/delhi/three-girls-starved-to-death-confirms-autopsy-report-govt-orders-inquiry-5276368/ (last visited on January 9, 2022).
3. *Ibid.*
4. Vikram Patel, "Starvation deaths in 2018", *The Indian Express*, July 26, 2018, *available at:* https://indianexpress.com/article/opinion/columns/starvation-deaths-in-india-global-hunder-index-unicef-poverty-national-health-mission-5276194/ (last visited on January 9, 2022).
5. Dr. H.O. Agarwal, *Human Rights* 2 (Central Law Publications, Allahabad, 16th edn., 2016).
6. K.C. Joshi, *International Law & Human Rights* 466 (Eastern Book Company, Lucknow, 4th edn., 2019).
7. Jack Donnelly, "Human Rights as Natural Rights" 4 *Human Rights Quarterly* 391 (1982).
8. The concept of human rights stands on universality and its main facets are "freedom, equality and liberty". K.C. Joshi, *International Law & Human Rights* 432 (Eastern Book Company, Lucknow, 4th edn., 2019).
9. Durga Das Basu, *Human Rights in Constitutional Law* 8 (LexisNexis Butterworths, New Delhi, 2008).

10. The Protection of Human Rights Act, 1993 (Act 10 of 1994), s. 2(1)(d).
11. FS Ruddy, "Jurisprudence: Jus Gentium and the Origin of International Law" 13 *Loyola Law Review* 128 (1966-67)
12. In the Dashrathmal Singhvi Memorial Lecture, (2002), J.S. Verma as the then chairperson of NHRC, referred human dignity as its 'quintessence'. Justice J.S. Verma, "Human Rights: The Essence of Constitutional Governance", *available at:* https://nhrc.nic.in/press-release/human-rights-essence-constitutional-governance (last visited on August 19, 2021).
13. Justice A.K. Sikri, "Human Dignity as a Constitutional Value", *available at:* http://blog.hawaii.edu/elp/files/2016/06/HUMAN-DIGNITY-HAWAI.pdf (last visited on August 19, 2021).
14. *Ram Deo Chauhan* v. *Bani Kant Das*, AIR 2011 SC 615; (2010) 14 SCC 209; (2011) 2 CHN 187; (2011) 99 AIC 103.
15. The Constitution of India, art. 37.
16. Ajay Kumar & Abhay Pandey, "Right to Food in India: A Human Rights Perspective" 7 *Vidhik Chetana* 216 (2014).
17. AP, "Oxfam: 11 people die of hunger each minute around the globe", July 9, 2021, *available at:* https://indianexpress.com/article/world/oxfam-11-people-die-of-hunger-each-minute-around-the-globe-7396159/ (last visited on January 8, 2022).
18. Oxfam International, "The hunger virus multiplies: deadly recipe of conflict, Covid-19 and climate accelerate world hunger", July 9, 2021, *available at:* https://www.oxfam.org/en/research/hunger-virus-multiplies-deadly-recipe-conflict-covid-19-and-climate-accelerate-world (last visited on January 8, 2022).
19. *Ibid.*
20. *Supra* note 5.
21. GHI, "Global Hunger Index 2021: India", *available at:* https://www.globalhungerindex.org/pdf/en/2021/India.pdf (last visited on January 8, 2022).
22. Universal Declaration of Human Rights, 1948, art. 25.
23. International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights, 1966, art. 11(1).
24. International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights, 1966, art. 11(2).

25. Dr. U. Chandra, *Human Rights* 236 (Allahabad Law Agency Publications, 8th edn., 2010).

26. Shuvro Prosun Sarker, *Refugee Law in India: The Road from Ambiguity to Protection* 25 (Palgrave Macmillan, Singapore, 2017).

27. Unreported decision of the Karnataka High Court in WAN No. 354 of 1994.

28. Editorial, "Supreme Court seeks responses from Centre and states on refugees' right to food" *The Times of India*, November 30, 2021.

29. AIR1981SC746: 1981CriLJ306: 1981(1) SCALE 79: (1981) 1 SCC 608: (1981) SCC (Cri) 212: [1981]2SCR516.

30. AIR 1992 SC 573: JT 1991(6) SC 373: 1991(2) SCALE 996: (1992)1 SCC 441: [1991] Supp 2 SCR 267.

31. (1973)4 SCC 225: AIR 1973 SC 1461.

32. (1985)3 SCC 545.

33. (1990)1 SCC 520.

34. (1992)2 SCC 343.

35. (1996) 2 SCC 549.

36. (2003) 6 SCC 1.

37. 1989 Supp (1) SCC 258: AIR 1989 SC 677: (1989) 68 Cut LT 104

TANMOY ROY

Research Scholar, Department of Law and Governance

Central University, SOUTH BIHAR

Dr. PRADIP KUMAR DAS,

Associate Professor, Department of Law and Governance

Central University, SOUTH BIHAR

GAYA. FORMER ASSISTANT PROFESSOR-II, SCHOOL OF LAW, KIIT UNIVERSITY, BHUBANESWAR, ODISHA

❑ ❑ ❑

A Study On The Relationship Among Positive Body Image, Big Five Personality Factors and Self Esteem

Sneha Sharma • Dr. Megha Arya

ABSTRACT

Positive body image is the positive outlook of individuals for their body attributes. It is a true and clear perception about their body shape, size, and appearance. It doesn't mean that everything in the body is perfect rather than it is all about accepting the body, as it is with its unique shape, size, and performance. People with positive body image give much more importance to their ability and inner characteristics rather than their body appearance. They prefer to give time to achieve their goals than waste it worrying about body appearance. The field of body image had filled with body image disturbance and negative body image-related researches. In the cultural context of the Indian population very limited researches is available on this new dimension of body image. The aim of this research was to see the relationship among positive body image, big five personality factors- (extraversion, openness, agreeableness, conscientiousness, neuroticism), and self-esteem. Personality factors and self-esteem seem very closely associated with positive body image development. The data of 100(18-22 age) students were collected from different colleges of Jaipur with the help of purposive sampling. The self-report questionnaires for collecting the data were the Body image scale (Jain & Tiwari), NEO-5 factor inventory (McCrae & Costa), and self-esteem scale (Rosenberg). The result of this study revealed that positive body image was positively correlated with extraversion, agreeableness, and openness

to experience, conscientiousness, and self-esteem and negatively correlated with neuroticism.

Keywords: Positive body image, Personality Factors, Neuroticism, Extraversion, Openness to Experience, Conscientiousness, Self-esteem.

INTRODUCTION

In simple words, body image is the perception that people have of their physical self. It also includes beliefs, thoughts, behavior, and emotions related to that perception. It is developed by both self-observation and the reaction of others about their bodies. According to Cash (2004) researches in the body, image field has a vast history that was stretched across the century and revealed its different aspects related to its outcomes, predictors treatments, and relationship with other variables. After a detailed literature review, it can be concluded that most of the history of the body image field was filled with pathological researches, that intended to know body image disturbance, negative body image, or eating disorders in the absence of Positive body image construct (Smolak & Cash, 2011; Tylka, 2011,2012).

Positive body image is the positive outlook of the individuals for their body attributes which have closely been found to be associated with the promotion and maintenance of health and well-being. This concept was initially given by Striegal- Moore, and Cachelin in 1999 and further extended by Tylka and Barcalow in 2015a. Positive body image is not just the absence of negative body image. It has some exceptional characteristics i.e. inner positivity, spirituality, and widely conceptualizing beauty standards which detached it from negative body image. These characteristics can be further developed as basic features of positive body image and also the factors which are responsible for its emergence and development. Positive body image helps individuals to develop a cognitive schema, which works as a filter to interpret incoming information. It filters external information in body protective manner. It rejects or reframes body image harming information and only allows positive information to go for the internalization process. A person with a positive body image focus on body assets and minimize body imperfection, they have love and respect for their body. Positive Body image permits individuals to cherish the

uniqueness of their bodies and to feel gratitude for the functions that it performs for them.

People with positive body image feel confident, pleased, secure, and beautiful about their bodies, which is shown as an outer radiance or glow on their faces. It helps to develop a mindful connection with their body which allows them to realize and fulfil their body needs effectively. For healthy psychological and physical development, positive body image plays an important role. A positive body image is linked with:-

- **Higher self-esteem** :– It is defined as a feeling of a person towards themselves that may influence every aspect of life and can lead to better well-being and happiness.
- **Self-acceptance**:– The person with a positive body image feels comfortable and looks happy. They are less likely influenced by unrealistic and negative content of media.
- **Better mental health**:– The individual has better mental health with a positive body image attitude instead of a negative body image.
- **Healthier lifestyle:**– The healthier attitude brings a balanced lifestyle which further instigates towards a healthy outlook and behavior.

Personality and self-esteem seem very closely associated with positive body image development. Personality determines individual's unique adjustments with his environment because it is a dynamic organization of Psycho-physical system that lies within individuals. (Allport,1937). Recently evidence has emerged that there are five basic traits of personality - Conscientiousness, Neuroticism, Openness to experience, Agreeableness and Extroversion (Goldberg, 1990). And self-esteem refers to an individual overall positive evaluation of the self (Rosenberg 1965).

From the last 10 years, an important change was seen in body image literature field, the focus of researchers was shifted to positive body image from negative body image or body image disturbance related researches. A strong empirical basis for the study of positive body image was provided by existing evidences but it is also true that positive body image literature is in its infancy. There are only a few studies which focus on positive body image, personality factors, and self-esteem relationship.

Khokhar (2018) conducted a study on 400 students and explains that all the dimensions of the big 5-factor personality are significantly related to positive body image. All the negative pole of NEO-FFI is found associated with body image disturbance and all positive poles are significantly related to positive body image.

A meta-analysis of 26 studies was conducted by Allen and Walter in 2016 which concluded that a higher level of neuroticism is correlated with negative body image as well as the lower level of extraversion. The other dimension of personality, Agreeableness found no relation with body image, and the rest two which were conscientiousness and openness to experience were found intermediate. From a deeper point of view, the study concluded that a lower level of consciousness was related to negative body image, and neuroticism was found related to negative body image in both males and females.

To analyze the longitudinal development of body image Hartmann & Siegrist (2015**)** conducted a study to identify the role of personality traits in body size perception. 2905 males and females were selected for the sample. After one year of the analysis showed individuals who scored higher on consciousness found themselves thinner. It was also concluded from the study that women who scored higher on neuroticism perceived themselves heavier after one year and men found no significant relation.

Swami, Kanaan, Tran, Luesse, Brooks, Nader, Stieger, Pietschnig, Voracek (2014) did research to explore the associations between body image and personality factors. They conducted two studies, the aim of their study was to see the relationship between the big five factors, actual-ideal weight discrepancy, and body appreciation. The sample size of their first study was 1,950 women and for the second study, they selected 2,339 women. It was concluded from both the study that actual-ideal weight discrepancy was found positively associated with neuroticism and body appreciation was found negatively associated with neuroticism.

The research was conducted on 112 college students by Latty in 2020 which explored the relationships among body appreciation, self-esteem, academic, and self-efficacy, and academic

achievement. The result of the research revealed a significant association between self-esteem, self-efficacy, and body appreciation.

Bortamuly (2017) did research on 200 adolescents to explore the role of self-esteem in the positive body image development process. The results concluded a significant positive correlation between self-esteem and body image satisfaction. Additionally, females reported a higher level of body image satisfaction and higher self-esteem as compared to males. It was concluded that higher body image satisfaction results in higher positive body image.

Brubaker (2014) performed a study to identify, self-esteem and body image relationships. The sample of the study was 147 males. In this study, a positive correlation was found between self-esteem and body image when taking the whole body into account as well as individual parts.

Uçar, Ayhan, Çakiroðlu, and Neriman (2010) researched to identify the relation between self-esteem and body image acceptance. The sample size of the study was 937 high school students with normal and abnormal body weight. The results found a positive correlation between body image and self-esteem in adolescents.

Exploratory research was done by Schacter (2009) on the "Relationship between Body Image and Self-esteem of Ninth and Twelfth Graders". The samples who gave consent for the study are 36 ninth-standard students and 38 twelfth-standard students. The result revealed that females had a lower level of self-esteem and body image than males.

A research which was guided by Khalaf & Khalaf in 2006 aimed to explore the association between body image, depression, social anxiety & self-esteem. For the sample of the study 633 students have been randomly selected from different schools in Syria. According to the results, there was a positive correlation among all the variables.

Among college students, research was completed by Lowey et al. in 2005. The research aim was to examine the relationships

between self-esteem, and health-related behaviors, and body image. The data of 267 females and 156 male students were collected from 24 different classes of college. The result of their study demonstrated that females showed more negative body image than males. It was also shown that females who did the exercise on a daily basis also showed greater negative body image than men. For body image dissatisfaction self-esteem was associated in women. It was also revealed that for positive self-esteem and body image physical fitness and positive health-related behavior can play a major role.

In an individual's body image perception, self-esteem and personality are two important factors which are linked together. To make a positive personality perception, Positive thoughts and attitudes towards the body contribute enormously.

For a healthy life and better psychological health positive body image is very important. According to Al-Dahar (2004), it is the individual's attitude towards themselves. Also, Furnham (2005) defines it as the judgment of an individual about him/her which can influence their life. People who are found high in self-esteem also have high satisfaction in their life, independence, and optimistic characteristics. For the males, self-esteem can be achieved through authority and position in their life while in the female it can be achieved by the attractiveness and beauty of their body as mentioned by Robins et al. (2002). It is also indicated by Dohnt and Tiggemann (2006) that the views and judgment of others about the body is very important, it can shape the self-esteem of a person. The negative views can lead to body image dissatisfaction and further can be responsible for lower self-esteem. So it is essential to find the relationship of positive body image with personality factors and self-esteem.

OBJECTIVE

1. To study the relationship among positive body image, big five personality factors, and self-esteem.

HYPOTHESES

1. There is a significant and positive correlation between

Positive body image and openness to experience and extroversion and a significant negative correlation between Conscientiousness, Agreeableness, and Neuroticism.

2. Positive Body Image is significantly and positively correlated with Self Esteem.

METHODOLOGY -

Sample

The sample of the study comprised 100 students (N = 100) in the age range from 18-22 years who were randomly selected from the private colleges of Jaipur. A total of 100 students were included. The reason for selecting college students in the age range from 18-22 years in the sample is because research suggests that at this age person goes through a positive transformation related to his/her body image perceptions. A person develops a positive attitude and acceptance of his/her body. Purposive sampling was employed to collect the data.

Tools used-

Body Image Scale –To measure the positive body image of the participant's body image scale was used. This scale was developed by Dr. Pankaj Jain and Dr. Gyanesh Kumar Tiwari in 2017.

A) NEO-5 Factor Inventory – This test was developed by Costa and McCrae in 1992 to access the personality type of participants. This inventory has 60 items and 5 domains (12 items per domain). The 5 domains are - Extraversion, Agreeableness, Conscientiousness, Neuroticism, and Openness to experience.

B)Self Esteem Scale –To measure the self-esteem level of all the participants Rosenberg's self-esteem scale was used. This scale was developed in 1965 by famous sociologist Morris Rosenberg. This scale has a total of 10 items. It is used to measure global self-esteem and a general feeling of self-worth.

Data Analysis and results -

The following table shows the data analysis and its interpretation:-

Table 1
Correlation for all the variables for the total sample (N= 100)

	Positive Body Image	Neurot-icism	Extra-version	Openness To Experience	Agree-ableness	Consci-entious-ness	Self Esteem
Positive Body Image	1	-.211*	.337**	.478**	.458**	.458**	.304**
Neuroticism		1	-0.067	-0.141	-.317**	0.090	0.019
Extraversion			1	.306**	0.062	.253*	0.116
Openness to Experience				1	.328**	.482**	.214*
Agreeableness					1	.218*	.462**
Conscientiousness						1	.320**
Self Esteem							1

* .05 significance level
**.01 significance level

Table 1. for the total sample reveals that Positive body image is **positively** correlated with Conscientiousness r =.458, p< 0.01, Extraversion r = .337, p< 0.01, Agreeableness r = .458, p< 0.01, Openness To Experience r = .478, p< 0.01 and Self Esteem r = .304, p< 0.01. Positive body image is **negatively** correlated with Neuroticism r = -.211, p< 0.05.

DISCUSSION :

The crucial step towards developing a positive body image is to know the importance of accepting body attributes with its body shape & size and challenge the unrealistic beauty ideals. Individuals having positive body image know that their ability and characteristics are much more important than their appearance. They work hard to achieve and maintain a healthy and fully functioning body rather than waste time thinking about their body attributes. The main aim of this research paper is to find out the relationship between positive body image, self-esteem, and personality factors. The data of 100 students were selected from different private colleges of Jaipur randomly to ensure greater generalizability. To collect the data purposive sampling method was used. The age range which was taken in the study was 18 to 22 years, this aged person goes through a positive transformation related to his/ her body image perception.

Table 1 clearly shows the relationship among all the variables. The correlation between Positive body image and Neuroticism found is -.211 which shows the negative correlation between the two of them. The result is significant at a .05 level of confidence. The results depict that people with lower neuroticism have a better positive image. The person who is more positive and confident about their body shows less anxiety, depression, and negative behavior. The study of Narula and Varma (2018) confirmed a significant direct negative influence of neuroticism on body image. So females with a higher level of neuroticism had a high level of negative body image

The statistical results confirmed a positive correlation of .337 between positive body image and Extraversion which is significant at a .01 level of confidence. The significant positive correlation shows that individuals who have a high positive perception about their bodies are energetic, sociable, enthusiastic, and outgoing. Levallius et al.(2016) state that participants who scored higher on extraversion may be more able to accept their body and this acceptance leads to positive body appreciation.

The correlation between positive body image and openness to experience is found .448. The result showed a positive correlation at a .01 significant level of confidence. This dimension of personality defines the individual who is imaginative, artistic, having wide interest and unconventional values. The result concludes that

the people having positive body image are having all these capabilities. The study of Soohinda et al.(2019) support that openness to experience was negatively correlated to body dissatisfaction which shows that person who is an artistic and wide range of interest are satisfied with their body.

The statistical result between positive body image and agreeableness was found .458 which was significant at a .01 level of confidence. In earlier researches, there was no relationship found between body image and agreeableness (Allen & Walter 2016), some researches show a positive relationship with body image concerns (Rasooli & Lavasani, 2011), But later researches explains a positive relationship between these two constructs. As people with high agreeableness trait includes attributes such as trust, affection, kindness, and helping behavior. These people are very competitive, sometimes manipulative, and have a good sense of self-confidence. These all characteristics help them to build a positive body image. So the result of this study rejects the hypothesis as we found that agreeableness is positively correlated with positive body image. Nouri, Dolatshahi, Dadkhah, Falahatdoost's (2014) research also supports a positive and significant correlation between agreeableness and body image satisfaction.

The correlation between the last dimension of personality, consciousness, and positive body image was found .458 which was also significant at a .01 level of confidence. Some earlier researchers found that consciousness was negatively associated with body appreciation (Swami, Hadji-Michael, & Adrian Furnham,2008) but recent researches explain that individuals with high consciousness trait are organized, efficient, responsible, not impulsive, and achievement striving person. It is the dimension of personality which is characterized by goal-oriented behavior. The result depicts that people having confidence about their bodies are holding all these characteristics of consciousness which means the higher the positive body image, the higher the consciousness. Our results reject the hypothesis as we found that Conscientious individuals display higher levels of confidence and generally are less prone to affective instability. This sense of confidence makes them less receptive to exposure to idealized physical appearance and unrealistic social norms. These individuals generally show a high level of confidence and are less prone to affective instability. So this is the reason that consciousness is positively correlated to positive body image. Also, it is shown that these individuals also have

healthy eating habits, which turns them to build a positive appreciation towards their bodies (Lunn et al., 2014; Roberts & Goods, 2010). The result of their study concluded a negative correlation between consciousness and body dissatisfaction. Skorek, Song, Dunham's (2014) research findings also establish a positive correlation of body esteem with consciousness.

A positive correlation between positive body image and self-esteem was found as 0.304. The positive result shows the. 01 level significance which depicts that people having higher positive body image has high self-esteem. People with Self-esteem are assertive in expressing their views and needs. They are more confident in their ability to make decisions. They never compare themselves with others which may boost them to hold a positive body image. The research done by Qaisy (2016) supported our result by stating that self-esteem is positively correlated with body image. It is also said by Jones & Smolak (2012) that positive body image can be promoted by self-esteem but it is also possible that positive body image improves global self-esteem.

CONCLUSION

It is concluded from the study that positive body image, Personality, and self-esteem are interlinked. Positive body image is found positively correlated with consciousness, openness to experience, agreeableness, extraversion, and self-esteem. The positive body image is negatively correlated with neuroticism. The people who are having positive body image are higher in openness to experience, extraversion, consciousness, agreeableness, and self-esteem. The people who are less confident in their body are more anxious, depressive, and negative behavior i.e. higher in neuroticism.

REFERENCES

- Al- Daher , A. (2004). Self-Concept between Theory and Practice, Amman: Dar Wael for Publishing and Distribution.
- Allen, M. S., & Walter, E. E. (2016). Personality and body image: A systematic review. *Body Image*, 19, 79–88. 10.1016/j.bodyim.2016.08.012
- Bortamuly, G. (2017). *PDF - relationship between body image and self esteem a study on relationship between body image and self esteem among adolescents: Course hero*. Bortamuly, G (2017).pdf

- Brubaker, M. K., Bohon, L. M., & Endriga, M. (2014). *The effect of gender role stereotype exposure on body image, self-esteem, and gender-typical responding*.
- Cash, T. F., Jakatdar, T. A., & Williams, E. F. (2004a). The Body Image Quality of Life Inventory: Further validation with college men and women. Body Image, 1, 279–287.
- Cash, T. F., & Smolak, L. (Eds.). (2011). Body image: A handbook of science, practice, and prevention (2nd ed.). New York, NY: Guilford Press.
- Dohnt, H.,& Tiggemann, M. (2006). The Contribution of Peer and Media Influences to the Development of Body Satisfaction and Self-Esteem in Young Girls: A Prospective Study.Developmental Psychology. 42(5). 929 – 936.
- Furnham, A. (2005). Body Image Dissatisfaction: Gender Differences in Eating Attitudes, SelfEsteem, and Reasons for Exercise. The Journal of Psychology.136 (6). 581-597.
- Hartmann, C., Siegrist, M.(2015). A longitudinal study of the relationships between the Big Five personality traits and body size perception. *Body Image*, 14,67-71. doi: 10.1016/ j.bodyim.2015.03.011. Epub 2015 Apr 16. PMID: 25900399.
- Jain, P. & Tiwari, G. (2016). Positive Body Image and General Health: A Mixed Methods Study. The International Journal of Indian Psychology. 4. 2348-5396.
- Jones.D.C.,Smolak.L.(2011). Body Image during Adolescence: A Developmental Perspective: Encyclopaedia of Adolescence,77-86.
- Khalaf A., Al- khalaf A. (2006). Social Anxiety and Its Relationship with Depression and Body Image and Self-Esteem, Unpublished Master Thesis, Khartoum University.
- Khokhar, D. (1970, January 1). *A study of body image disturbance among youth in relation to personality mental health and subjective well being*. Shodhganga@INFLIBNET: A study of body image disturbance among youth in relation to personality mental health and subjective well being. Retrieved December 20, 2021, from http://hdl.handle.net/10603/238662
- Latty, A. C.(2020).The Relationships among Body Appreciation, Self-Esteem, Academic Self-Efficacy, and Academic Achievement. *Walden Dissertations and Doctoral Studies*. 8624. https://scholarworks.waldenu.edu/dissertations/8624

- Levallius J, Roberts BW, Clinton D, Norring C. Take charge: Personality as predictor of recovery from eating disorder. *Psychiatry Res.* 2016;246:447–52. [PubMed] [Google Scholar]
- Lowery et al. (2005). Body Image, Self-Esteem, and Health-Related Behaviors Among Male and Female First Year College Students. Journal of College Student Development, 46 (6), 612-623.
- Lunn, T.E., Nowson, .C.A., Worsley, A., Torres, S.J.(2014). Does personality affect dietary intake? *Nutrition*. 30(4),403-409.
- Narula & Varma. (2018).The influence of personality (Extraversion and neuroticism) on body image , mediated by celebrity worship, among thai female adolescents in Bangkok, Graduate School of Human Sciences,*Core*.
- Nouri,M., Dolatshahi,B., Dadkhah,A., Falahatdoost,M. (2014). The Role of Personality Factors and Sexual Self-schema in Body Image Dissatisfaction**. *Practice in clinical psychology,* 2(2),127-134.**
- Qaisy.L.M.(2016). Body image and self esteem among ISRA' University students. British Journal of Education,4(8),63-71. ISSN 2055-0227
- Rasooli.s.s. & Lavasani,M.G.(2011). Relationship between personality and perfectionism with body image. *Procedia Social and Behavioral Sciences,Elsevier.*
- Roberts, A., Good, E.(2010). Media images and female body dissatisfaction: the moderating effects of the Five-Factor traits. *Eating Behaviour*, 11(4), 211-216.
- Robins,R.,Trzesniewski, T., Gosling,S., & Potter,J (2002). Global Self-Esteem across the Life Span. Psychology and Aging. 17(3). 423-434.
- Rosenberg, M. (1965). **Society and the adolescent self-image**. Princeton, NJ: Princeton University Press.
- Schacter, D. L., Gilbert, D. T., Wegner, D. M. (2009). Selfesteem psychology (2nd ed.). New York: Worth.
- Skorek, M., Song, A. V., & Dunham, Y. (2014). Self-esteem as a mediator between personality traits and body esteem: Path analyses across gender and race/ethnicity. *PLoS ONE*, 9(11), 1–9 .doi 10.1371/ journal.pone. 0112086

- **Soohinda,G.,Mishra,D., Sampath,H.,Sanjiba,D.(2019). Body dissatisfaction and its relation to Big Five personality factors and self-esteem in young adult college women in India , 61(4), 400–404.doi: 10.4103/psychiatry.IndianJPsychiatry_367_18**
- Striegel-Moore, R. H., & Cachelin, F. M. (1999). Body image concerns and disordered eating in adolescent girls: Risk and protective factors. In N. G. Johnson, & M. C. Roberts (Eds.), Beyond appearance: A new look at adolescent girls (pp. 85-108). Washington, DC: American Psychological Association. http://dx.doi.org/10.1037/10325-003
- Swami, V., Hadji-Michael, M. & Furnham, A. (2008). Personality and individual difference correlates of positive body image. Body Image, 5, 322–325.
- Swami, V., Tran, U. S., Hoffmann Brooks, L., Kanaan, L., Luesse, E.-M., Nader, I. W., et al. (2013). Body image and personality: Associations between the Big Five personality factors, actual-ideal weight discrepancy, and body appreciation. Scandinavian Journal of Psychology, 54, 146–151.
- Tylka, T. L., & Wood-Barcalow, N. L. (2015). The Body Appreciation Scale-2: Item refinement and psychometric evaluation. Body Image, 12, 53-67. doi: http://dx.doi.org/10.1016/j.bodyim.2014.09.006
- Ucer et al.(2010). A Study on the Relationship between Body Image Acceptance and Self-esteem among Adolescents of Normal and Abnormal Body Weight. *The International Journal of earning Annual Review*, 17(8), 251-260.

Sneha Sharma
Research Scholar,
IIS (Deemed to be University), Jaipur

Dr. Megha Arya
Assistant Professor,
IIS (Deemed to be University), Jaipur

❑ ❑ ❑

Understanding the Cross-Region Marriages in Haryana and the Consequential Conditions of Cross-Region Brides

● **Ashish Kumar**

Abstract: At present, there is a global problem of skewed sex ratio in developingcountries like; Bhutan, China, Afghanistan, South Korea, India, Pakistan, and Bangladesh, etc. Among north Indian states, Haryana and Uttar Pradesh face theproblem of declining sex ratio. Both of these states have many differences such as cultural, linguistic, economic conditions as well as have similarities such as social backwardness, honour killing, patriarchy, crime against women, female foeticide, and highly masculine sex ratio. These practices are responsible for the shortage of marriageable girls, leading to marriage squeeze and a hike in the number of marriageable bachelors. To overcome such circumstances, bachelors are moving towards cross-region marriages that lead to a great influx of cross-region brides in the rural area of Haryana and Uttar Pradesh. This article analyses the living conditions ofcross-region brides and their offspring. The impact of such alliances, which have become a social phenomenon that has deeply impacted the social fabric of the above-said states.

Key Words: Haryana, Daughter Elimination, Imbalanced Sex Ratio, Cross-Region Marriage, Migrant Brides

Introduction

Marriage covers the largest segment of an individual life, which constitutes his/her individual life to social life. Further, it

helps to assign significant status in the society and personality development of an individual through the complex experiences in marriage (Ahlawat 2009). In agricultural societies like India, there are low levels of education and not so much prospect of income gains that lead to early marriage, especially when living in extended families. Urbanization and economic development add to the value of waiting for marriage, especially where new families are cheated after marriage. The value of waiting is reduced if the marriage takes place among one's own linguistic and caste group (Gupta 2014).

Marriage is considered as a sacred relation in Indian society as per Hindu mythology, while in Islam it is counted as a social (civil) contract (Husain 1976). K. M. Kapadia (1955: 160) clearly defined "Hindu Marriage is a sacrament. It is considered sacred because it is said to be complete only on the performance of the sacred rites accompanied by the sacred formula". According to the Hindu religion, marriage is not considered only for sexual pleasure but a belief in the spiritual development of an individual (Husain 1976).

The literature in India is replete with a thought that girls should attain marriage ceremony before 16 years of age and if fail to do this they are considered too old. Before the passage of the Child Marriage Restraint Act or Sarada Act of 1930, there was a tendency of marrying girls even under the age of 14. This tendency declined over the twentieth century. Even the census data of 1981 shows that the proportion of married girls in the 15-19 age group was around 44 percent and it was only 7 percent for the 10-14 age group. These figures were higher in the census of 1931- 84 percent for the former age group and 44 percent for the later age group (Gupta 2014).

In India, there is also a north-south divide in terms of the rules for marriages. In south India, endogamous marriages among blood relatives take place in Hindus and Muslims. The logic behind this system is to maintain the unity and solidarity of the clan. On the other hand, marriage within the same village and between blood relations is forbidden in northern Hindus (Vishwakarma et al. 2019). The kinship system of Hindus in north India has a strong link with an arranged marriage, which has a positive tie with the patrilineal and patrilocal family system and the caste system. Arranged marriages are most entrenched in north India. Further, sexual purity

and the seclusion of women are more emphasized and practiced. Parents normally have more control while arranging marriages (Allendorf and Pandian 2016).

Marriage System in Haryana

Marriage is compulsory for both men and women in Haryana. In the case of women, it is for maintaining family honor or protects their sexuality (Dube 2007). For Men, bachelorhood is not acceptable in society as it hampers the development of their social adulthood. It can be linked with their masculinity, about the control over their wives and children.

Moreover, the rule of hierarchy and equality is prevalent in a very complex way in north Indian provinces. The practice of the gotra[1] system is based on patrilineal clans and it's all members considered descendent of a common ancestor. Social hierarchy exists in the form of a caste system which lies within its different gotras and its different dominant and subordinate gotras (Karve 1965; Chowdhry 2004c). It is a very interesting fact about the marriage sanction in the village that except Khumhars(Prajapat caste) no other caste establishes marital relation in three gotras such as mother, father, and paternal grandmother (father's mother). Whereas grandmother's (mother's mother's) gotra is ignored; in this regard saying in the village: *'nani-kanikisnemani'* (no one bothers about maternal grandmother's gotra) (Ahlawat 2015).

In Haryana, people give importance to the concept of *bhaichara* (brotherhood) because of which marriage is also not possible with a girl from the same village as well as from a shredding boundary with the village (Yudhvir 2014). There are certain families in the rural area that do not allow anyone to get married within the hundred miles distance range of the village boundaries just because of the notion of brotherhood to closer villagers (Jayapalan 2002). Most upper and lower castes do not marry within their lineage and follow the rule of three or four gotra exogamy (Lewis 1958). They must leave three or four ancestral lineages at the time of marriage**.** In most of the rural and urban areas, the marriage of the youth is arranged by following the norms of social brotherhood, caste endogamy, clan exogamy, and village exogamy *(GaamGavahand)* (Dube 2007).

The employed males are in demand in Haryana which is

responsible for high dowry demands. On the other hand, girls are highly educated and married to most undeserving boys. In such marriages, boys can be seen working as a constable in police, driver, and conductor in public transport services. These marriages are mentally incompatible matches that lead to violence in the family and such consequences make it difficult to get the marriage of boys locally (Ibid).

According to the 2001 Census report, 10-15 percent of men in the 25-49 years age group remained single and local media specified that 50 men from each village are unable to find a marriageable girl locally across 7,000 villages of Haryana. This is happening because the practices are not favourable towards girl children in Haryana.That's why United Nation report place Haryana in the list of top four bride's buyer state and bride trafficking conviction rate is declined while organised bride trafficking is increasing surprisingly (Shetty, 2015).

Khap Panchayats in Haryana

The origin of Khap Panchayat from the clan can be traced in the form of gotras of dominant castes in an area such as *Hooda Khap, GathwalaKhap, Dahiya Khap, etc*. Further, many Khap Panchayats are known after their geographical area such as *BawalChaurasi* (eighty-four villages in surrounding of Bawal in Rewari district), *MehamChaubisi* (twenty-four villages from Meham which comes under the territory of Rohtak district) (Chowdhry 2004a).Chowdhary (2004b) focuses on the extra-judicial role played by Khap panchayats for the continuation of caste hierarchy in rural Haryana through the social boycott of inter-caste marriages.

The Khap panchayat is denoted as Kangaroo panchayat which limits the choices of mate selection by enforcing caste endogamy rules for marriage. It is a kind of council of tribal men which is framed to settle disputes (Pradhan 1966). Prem Chowdhry(2004a) denotes Khap panchayat as caste panchayat and linked it with the rural dominant castes of Haryana, which reinforce traditional norms in the prospect of marriage. Moreover, it has importance for maintaining peace and harmony in the countryside by resolving property and matrimonial disputes when the matter goes out of the control of the village panchayat **(**Chowdhry 2004b).

A step towards marriage reform in Haryana was introduced by the biggest KhapPanchyat known as "Satrol" in Hisar district after the struggle of more than four years. This reform approved a resolution against the practice of the caste system in the presence of the chief of the "SatrolKhap Panchayat" Inder Singh Mor, Narnaundwhich allowed inter-village marriages and inter-caste marriages within the territory of 42 villages known as *Bhaichara* (Brotherhood). The decision of Khap Panchayat relaxed on 700 years old caste endogamy boundaries (Kaur 2014). But this decision was opposed by one of its tapas[2] (Kukreja 2018). However, the marriage within the village, same gotra, and bordering village are still banned, but it is still a big relief for the youths who were unable to get married locally due to 'gotra exogamy' and 'village exogamy' rules (Kaur, 2014).

"SatrolKhap Panchayat" in Hisar (Haryana) took one more step towards reform to stop the female feticide and swear to take eight rounds of '*Pheras*'[3] instead of seven rounds of '*Pheras*'; the '*Phera*' number eight is added and will be performed by every couple to make a promise to save daughter while performing their marriage ceremony (AajTak, 2015).

Sex Ratio in Haryana

Haryana is one of the prosperous states of India. It has the highest per capita income in the country (Indian Census 2011), but it has a dark face as well. The dark side of its face has been its social backwardness through its poor sex ratio which is 879 females on 1000 males, whereas the national sex ratio is 940 females on 1000 males (Census of India, 2011). The difference of 121 females on every 1000 males indicates imbalanced sex ratios in Haryana and it creates a big threat for the institution of marriage. In India, the number of never-married men is on the rise as per the National Family Health Survey (NFHS) 2015-16 report. This report indicates the ratio of never-married men is 15 percent which is higher than never-married women under the age of [4]15 to 49 years.

The declining sex ratio in north Indian provinces has been recorded since the 1871 Census. Demographers and social scientists focused on the phenomena of 'missing women' and point towards the family size and 'at least one son in the family' thinking

(Premi and Raju 1996). The sex ratio in Haryana has continuously been low from 867 girls in 1901 to 879 girls for every 1000 boys in 2011 (as can be seen in Table 1).

Table 1. Sex Ratio of Haryana

1901	1911	1921	1931	1941	1951	1961	1971	1981	1991	2001	2011
867	835	844	844	869	871	868	867	870	865	861	879

Source: Census of Haryana 2011

The data after 2011 of sex ratio in Haryana has been made available through a press release by the Chief Minister Office of the state. According to this release, the sex ratio in Haryana had dipped to 871 girls for every 1000 boys in the year 2014 and then improved to 922 girls in 2020 despite the pandemic of COVID-19 (Chief Minister Office Haryana 2021). Moreover, population growth after 1931 also created an age gap at marriage, and thereby each group of brides became larger than a group of men with whom they are matched. Therefore, this population growth helped in reducing the scarcity of brides in some regions and in increasing the scarcity of men in others. On the other hand, a trend has been noticed in the conditions of a surplus of men that the richer men get married but those among the poor sections remain unmarried (Gupta 2014). Besides, a more skewed sex ratio is prevalent among upper-caste Hindus (Liddle and Joshi 1986).

A well-known demographer Ashish Bose (2001) coined the term Daughter Elimination Males Aspiring Rage for Ultrasound (DEMARU) regarding the situation in Haryana, Himanchal Pradesh and Gujarat. The social backwardness of Haryana is deeply rooted in its rigid customs and traditional beliefs. Often traditional beliefs lead to unfriendly practices related to women that are responsible for an imbalance in the sex ratio of Haryana. The women of Haryana face multiple hazards for example patriarchal nature of society, negligence of the girl child, sex-selective abortion [while it is prohibited since the Pre-Natal Diagnostic Techniques (PNDT) Act, 1994], female infanticide, and high maternal mortality rate which are responsible for continuous declining of sex ratio of the state.

Nonetheless, Kaur (2016) highlights some positive impacts of skewed sex ratios and shortage of brides which lead to declines in dowry practices in cross-region marriages. This also increased involvement of women in various activities compared to the earlier phase when they were bound with various restrictions. At present, their participation is increased in household decision-making and attitudes of parents have changed regarding daughter's right to ancestral property. Further, it has been found that in various cases of cross-region marriages, son-in-law's from Kangra district in Himachal Pradesh living with their in-laws at their home when in-laws don't have their son. In that case, their property rights go to their daughter or sons-in-law. Due to patriarchal dependency, it was difficult to think about a family without a son for the members of that family and who will take care of the parents in old age. At present, the scenario is changing, and parents started giving equal importance to their children. Finally, the situation may change the imbalanced sex ratio, the belief system of preference to male child and negligence of girl child and later it may play an important role in the improvement of overall sex ratio and reduce gender inequality (Kaur 2016).

Across the country, around 55 districts have been identified with the lowest sex ratio of less than 910/1000 males. Among them, the districts from Haryana Kurukshetra, Kaithal, Jind, Hissar Amritsar, Patiala, Fatehgarh Sahib, Faridkot, Behind, Jaisalmer and Salem. In these districts, the girl child sex ratio is below 870 for every 1000 males. The killing of girl children has a very long history in northwest India and is common in some regions and communities (Premi& Raju 1996).

There have been massive declines in child sex ratio and female literacy in Haryana in the period between 1991-2011 censuses. There are some interesting facts about the rising level of literacy but continuously declines in child sex ratio during the 1991-2011 periods as per the last three censuses of the state. Kurukshetra has the lowest child sex ratio whereas the child sex ratio of Gurugram is the highest. The highest female literacy rate was found in Ambala and the lowest female literacy rate was found in the Gurugram district of Haryana (Census of Haryana 1991, 2001, and 2011).

Mukherjee (2013) pointed out that the people in Haryana do not seem to consider low sex ratio as a grave problem and they are handling it by bringing brides from other states. That is why the problem has been sustaining in the state for the last 40 years. However, scholars have started to ponder upon this issue for the last couple of years which has made others also discuss this issue seriously.

Role of Technology in Daughter Elimination

Many of the researches linked low sex ratio with the massive girl child killing with the help of technology which is responsible for the missing daughters in Haryana. The new technology facilitates 'sex-selective preference' which leads to the elimination of girl children before birth. Eventually, this trend is spreading continuously just because of son preference (Agnihotri, 2000; Bose, 2001; Premi, 2001) and family is not considered complete without a male child. Among Hindus, sons are important because they perform funeral rites. The more the preference for sons and the lower the cost of selection, the more skewed the sex ratio will be (Gupta 2014). Hence, the practice of son preference and gender inequity is not highly prevalent among Scheduled Castes and Scheduled Tribes (Kishore 1993) as they are normally unable to bear the cost of technology (Vishwakarma 2019). Nowadays young parents do not prefer big families and they try to have the desired child with the help of technology. According to the media reports, many of the girl infants are aborted in the advanced stage of pregnancy even though this is considered a heinous crime (The Tribune, August 10, 2006).

Even after having the Pre-Natal Diagnostics Techniques (Regulation and Prevention of Misuse) Act, 1994 or Prohibition of Sex Selection Act, 2003, daughter's elimination with the use of technology is going unabated in private clinics by the nexus of medical staff in small towns and cities of Haryana. Abortion is the most popular model for female-feticides. Ultrasound is considered the most appropriate model for the estimation of the gender of the embryo in the womb (Ahlawat 2013). The sex-selective abortion trend is found in all classes of society rich-poor and rural-urban. However, the numbers of sex-selective abortions are high in a well-

educated society which is very well documented. The killing of the girl child takes place in the name of family planning and managing family resources (Coal, 1991; Sen, 1990).

The daughter elimination leads to an imbalanced sex ratio which further becomes the reason for the 'marriage squeeze' in Haryana. The marriage squeeze denotes the problem of one sex outnumbering the other. This term was introduced by Glick in 1967. When the marriage squeeze takes place, the possibility of getting married to the members outnumbering sex decreases as they age. This is not only a demographic term; the cultural norms and the socio-economic factors also are linked with the processes that shape marriage squeeze (Vishwakarma et al. 2019).

Cross-Region Marriages in Haryana

Mishra (2017) focuses on the imbalanced sex ratio of Haryana State and resulting in bride scarcity while researching "47 cross-region brides" from five villages of Haryana's districts Sonipat and Hisar in 2012-2013. She finds that the imbalanced sex ratio strengthens inter-caste marriages with brides from other states. These marriages largely affect the caste system and breach the caste endogamy rules. Such marriages have fewer chances of societal and familial violence as compared to local inter-caste marriages because they are not self-chosen but driven by the consequences (Mishra 2013). Cross-region marriages are being largely accepted by society.

A study by Ahlawat (2016) shows the rapid growth in long-distance marriages. The estimated average per year is that approximately twenty million women migrate due to marriage in India (Walford 2013). Poor and forced women from Eastern and South Indian provinces are sold illegally to North Indian men (Rakesh 2014). In cross-region marriages, brides are purchased from the far-off states (Ahlawat 2016). Reshma (2018) conducted a study in Rohtak district of Haryana in which she has identified major factors responsible for cross-region marriages such as unemployment, less agricultural land, second marriage, alcoholic habit, drug addiction, and physical disability, etc. The age difference between men and women in such marriages is ten or more (Mukherjee 2013).

Kukreja (2018) discusses the trend of cross-region marriages that began in the mid-1990s in Haryana and Rajasthan when surplus bachelors start moving in search of wives to other states. In her study, the brides were found married in Hindu and 'Meo-Muslim'[5] communities. In this research, it has also been observed that brides faced exclusion and discrimination by their conjugal members due to their underside caste, different ethnicity, dark skin color, or unknown religious identity. Their children also carry a two-fold burden in their life: firstly, when their mother is insulted by family members, close family friends in their own home and publicly in the village; and secondly, they face exclusionary behavior from the age of childhood, which extends to their adult age and affects them throughout life. The inter-generational stigma affects their psyche and promotes psychological distress and turns their behavior into aggressiveness (Kukreja 2018).

Local inter-caste marriages are considered taboo in the entire state of Haryana. On the other side, long-distance conjugal relations are strategically fabricated for the higher caste identity of the brides, tactically prohibiting the local inter-caste marriages and thereby sustaining the local inter-caste unequal relations. Among these cross-region brides, most of the brides are from lower castes (scheduled caste and scheduled tribes). They have to tolerate caste ostracism in their conjugal relations. Children from cross-region marriages carry their mother's identity throughout their life. They are considered as diluted '*Jat'*which also becomes hurdles in the prospect of their marriage and carries lower caste identity throughout life (Kukreja 2018).

A survey of 1247 cross-region brides from 226 villages and a detailed study of 54 cross-region brides shows that these brides are victims of 'colorism' due to dark complexion. They are rejected in the local marriage market and therefore are offered for long-distance alliances (Kukreja& Kumar 2013). Dowry-free proposals from north Indian men are seen as more profitable by the parents of black-skinned girls (Kukreja 2021). In another study, it is noticed that cross-region brides are not treated normally (especially in the beginning) and they live in pathetic conditions. They continuously face physical, sexual and mental harassment from their husbands and family members (Yudhvir 2014).

Patriarchal behaviour is a very normal thing in the society of Haryana which is reflected in the violence inflicting practices on wives by their husbands (Kumar 2017). However, it is observed that the brides from other states face extreme violence than local women due to a lack of agency and familial support from their native places. The parents of the brides are very poor and can't help their daughters. Many of them feel that their life is dependent on the mercy of the family. They have no way to come out of such problems and these problems are accepted as the fate of their destiny. There is no support from any informal or formal agencies i.e., community, village panchayat, police and Non-governmental Organizations, etc. In some cases, it is reported that mothers-in-law force these brides to establish a sexual relationship with their other overage unmarried son (Ahlawat 2016). This practice take place in those families where they cannot afford a separate wife for every son (Kumar 2021).

Negotiation by Mediators during Marriages

Normally, such marriages take place through *Mausi* or *Bua* who play the role of mediators. The literal meaning of *Mausi* is mother's sister and that of *Bua* is father's sister. But they are not real relatives of the girls whose marriage is attained with a boy in Haryana. They are from girls' native place and they are affectionately called *Mausi* and *Bua.* Most of these *Mausi* and *Bua* themselves are married and have settled in Haryana for the past 30-40 years (Mukherjee 2013).

Negotiation by such mediators is a very important factor in the arrangement of marriages. While establishing long-distance conjugal relations mediators do negotiate with both parties. These mediators normally develop networks in these marriages. Generally, a huge gap in the socio-economical background of the couples has been noticed in these marriages. Various factors are responsible in such marriages for creating hurdles during matchmaking i.e., distance, culture, religion, caste and language, age gap, physical disability, lack of feminine look, educational differences, unemployment, and remarriage. These differences are looked at and the strengths and weaknesses of both sides are compared by the mediator. These mediators charge some amount for their job as

well as ask for the traveling expenses from the groom's family (Kukreja 2018).

Blanchet (2013) found in his study that the wedding ceremony expenses are bear by the grooms which cost 15,000 to 50,000. Apart from these expenses, the grooms' families also payout for brides' clothes and travel expenses. A big amount of money is taken by the mediator in these marriages, but it is not openly accepted and kept secret by both parties to avoid any legal issue. It has also been found that some of the poor parents take money from the groom and also have hope of receiving remittance in the future (Reshma 2018).

Monitoring of Brides after Marriages

The cross-region brides face at the beginning of their married life various problems related to language, food, culture, and long veil system. It has been found that many of the cross-region brides are living miserable life or unable to get help from their parents as local brides availed. On the other hand, some of them are having happy married life because there is no lack of food, milk, and ghee (Reshma 2018).

However, when the girls are purchased in marriage from other states, they not only live-in pathetic conditions at marital homes but they are also monitored to avoid any risk of run away from home (Rakesh 2014). When Ahlawat (2016) researched eight villages from the district Jind, Rohtak, and Hisar among the dominant Jat community regions of Haryana, he came across a lot of problems interacting with these brides because they were being closely monitored by their in-law-parents. In this research, a total of 124 brides were identified as respondents but out of these 124, only 56 were investigated and the remaining 68 were not investigated just because of refusal from the family side or unavailability.

Out of the 56 brides, 17 were facing extreme violence since they got married there. Most of them were from backward castes, lower castes, and some of them from a higher caste. These marriages are considered incompatible matches, whereas in many cases ages of the husbands remained 10-15 years older than the

wives. The researcher also found that out of these seventeen cases, nine brides were married under eighteen-year of age, which is not the legal age for marriage. The majority of the husbands in these cases are having a very low education status than their wives and working as truck drivers, taxi driver, construction labour, agricultural labour, a peasant who have a small piece of agricultural land. The husbands from the Jat community practice more violence with their wives than other castes (Ahlawat 2016).

Mukherjee (2013) also witnessed during her fieldwork in the villages in Haryana that initially women refused to come out and meet with the researcher. After some time, even when they appeared for interviews and discussions, they were standing their heads hung in shame as if they had committed any crime for which they want to apologize.

Derogatory Treatment with Cross-Region Brides

As the practice of dowry is very much prevalent in north Indian states including Haryana, the same is reflected in the case of cross-region brides and local brides. The distant bridge is called *'mol ki'* (bought wife) but local brides are considered in her husband's home as 'tol ki'she comes through marriage alliance and having equal socio-economic status as well as negotiation from both the side about dowry). In these two words, *'mol ki'*word is considered derogatory in comparison to the word '*tol* ki' because they did not bring any dowry articles with them. Consequently, the distant brides do not get good treatment in the family (Ahlawat 2016).

Similarly, Khan (2009) pointed out in his study the derogatory term '*Paro*' used for brides from other regions. The literal meaning of '*Paro*' is 'from the other side of Yamuna' who are brought for working in homes as well as in the form of concubine. The study found that68 percent of *Paro* women came through those *Paro* women already living in Mewat, 26 percent came through mediators, and 6 percent through professional brokers. The supply of *Paro* women in Mewat district is from various 40 districts of different states throughout India; the major three states being West Bengal, Assam, and Andhra Pradesh.

The average age of *a Paro* woman is 17.11 years. These *Paro* children (who did not attain 18 years of age) faced more exploitation and psychological stress. It has also come to the fore that their life is worse than sex workers and bonded labour; the latter enjoy more freedom than these *Paros* because they can quit according to their wish. Their conditions are like, coming out of the frying pan to the fire (Ibid).

Conclusion

The tradition of Haryana has been working against women causing lower status to them. Many practices like female infanticide, female feticide and selective sex abortion have led to a lower sex ratio in the state. This has made a situation wherein all the boys cannot get girls for marriage in the local marriage market as well as there is competition among boys for brides. The marriage system in the state allows marriages to take place within caste and outside of gotra. It is well known that Khap Panchayats administer the village conducts, especially for making people follow the rules of marriages. This again adds to the difficulty of finding marriageable girls within the particular allowed group.

As a solution to this problem, boys in Haryana establish marriage relations with girls from other states. The interesting thing is that marriages do not take place of upper caste boys or Jat boys with girls belonging to Scheduled Caste or Backward Class in local marriage market but these boys bring brides belonging to the same categories from other states. These cross-region marriages take place through mediators who charge fees for them. The groom's family also gives money to the bride's family instead of asking for dowry and bears all the expenses of marriage. In many cases, it has been found that girls are purchased from far-off states. The age difference between husband and wife in such marriages is around 10 years.

After marriage, the cross-region brides face more violence than local brides. They get little freedom in their in-laws' families. Their all activities are monitored and a watch is kept on them so that they should not run away. Moreover, derogatory words like '*mol ki*' (bought wife) are used for them and they are compared

with '*tol ki*' (wife of good status). There is also a practice of bringing girls from other states and keeping them as concubines. A derogatory term '*paro*' is used for them. In many cases, these brides are forced to have sexual relationships with another overage unmarried son in the family. These conditions of cross-region brides are worse than those of local brides in Haryana who themselves are the victims of patriarchy. Thus, the tradition of Haryana is highly inimical to cross-region brides.

References

AajTak (September 21, 2015). *Khap Panchayat Introduces New Marriage Norm*. Retrieved on 11th September 2021 from https://youtu.be/Hh_ACdJmeqw

Agnihotri, S. B. (2000). *Sex ratio patterns in the Indian population: a fresh exploration*. New Delhi: Sage Publications Ltd.

Ahlawat, N. (2005). Domestic violence against women: emerging concerns in rural Haryana. *Social Action*, *55*(4), 387.

_____ (2009). Missing brides in rural Haryana: A study of adverse sex ratio, poverty and addiction. *Social change*, *39*(1), 46-63.

_____ (2013). Dispensable daughters and indispensable sons: Discrete family choices. *Social Change*, *43*(3), 365-376.

_____ (2015). Marriage Norms, Personal Choices, and Social Sanctions in Haryana. *Sociological Bulletin, 64*(1), 91-103.

Ahlawat, N., & Kaur, R. (2016). The dark side of the marriage squeeze: Violence against cross-region brides in Haryana. *Too many men, too few women: Mapping the adverse consequences of imbalanced sex ratios in India and China*, 197-219.

Allendorf, K., & Pandian, R. K. (2016). The decline of arranged marriage? Marital change and continuity in India. *Population and development review*, *42*(3), 435.

A son Killed his father when his father failed to get married. (March 16, 2012). Danik Bhaskar, Sirsa District.

Blanchet, T. (2005). Bangladeshi girls sold as wives in North India. *Indian Journal of Gender Studies*, *12*(2-3), 305-334.

Bose, A. (2001). *India's billion-plus people 2001 census highlights, methodology and media coverage.* Delhi: BR Publishing Corporation.

Census of Haryana (1991). *Haryana Population Sex Ratio in Haryana literacy rate data*.Directorate of Census Operations, Haryana.

_____ (2001*) Haryana Population Sex Ratio in Haryana literacy rate data.* Directorate of Census Operations, Haryana.

_____ (2011*) Haryana Population Sex Ratio and Haryana literacy rate data.* Directorate of Census Operations, Haryana.

Chaudhry, S., & Mohan, T. D. (2011). Of marriage and migration: Bengali and Bihari brides in a UP village. *Indian Journal of Gender Studies*, *18*(3), 311-340.

Choudhary, R. (2014). Drought of Brides in the Fertile Land: A Study in Context of India. *International Research Journal of Social Sciences & Humanities,* 3, 88-94.

Chowdhry, P. (2004a). Private lives, state intervention: cases of runaway marriage in rural north India. *Modern Asian Studies*, *38*(1), 55-84.

_____ (2004b). Caste panchayats and the policing of marriage in Haryana: Enforcing kinship and territorial exogamy. *Contributions to Indian Sociology*, *38*(1-2), 1-42.

_____ (2004c). *The veiled women: Shifting gender equations in rural Haryana*. New York: Oxford University Press.

Desai, S., & Andrist, L. (2010). Gender scripts and age at marriage in India. *Demography*, *47*(3), 667-687.

$usain, Š. A. (1976). Marriage customs among Muslims in India: a sociological study of the Shia marriage customs. New Delhi: Sterling.

India, P. (2011). *Census of India 2011 provisional population totals.* New Delhi:Office of the Registrar General and Census Commissioner.

Jayapalan, N. (2002). *Rural sociology*. New Delhi: Atlantic Publishers.

Jones, G. W. (2010). Changing marriage patterns in Asia. Singapore: Asia Research Institute, National University of Singapore.

Karve, I. K. (1965). *Kinship organization in India*. Bombay: Asia Publishing House.

Kaur, R. (2010). Bengali bridal diaspora: Marriage as a livelihood strategy. *Economic and Political Weekly*, 16-18.

_____(2014). Sex ratio, khaps and marriage reform. *Economic and Political Weekly*, 18-20.

_____ (Ed.). (2016). *Too many men, too few women: Social consequences of gender imbalance in India and China*. New Delhi: Orient Black Swan.

Kishor, S. (1993). " May God give sons to all": gender and child mortality in India. *American sociological review*, 247-265.

Kolenda, P. (1987). *Regional differences in family structure in India*. Rawat Publications.

Kukreja, R. (2018). An unwanted weed: Children of cross-region unions confront the intergenerational stigma of caste, ethnicity and religion. *Journal of Intercultural Studies*, *39*(4), 382-398.

_____ (2021). Colorism as Marriage Capital: Cross-Region Marriage Migration in India and Dark-Skinned Migrant Brides. *Gender & Society*, *35*(1), 85-109.

Kukreja, R., & Kumar, P. (2013). Tied in a knot: Cross-region marriages in Haryana and Rajasthan: Implications for gender rights and gender relations. Kingston: *Tamarind Tree Films*.

Kumar, A. (2017). Awareness of domestic violence among married female students of the faculty of Social Sciences and Arts & humanities at Kurukshetra University in Haryana- A sociological Study [Unpublished M. Phil Dissertation]. Department of Sociology, Kurukshetra University, Kurukshetra.

Kumar, A. (2021). An Analysis of Recent Trend of Cross-Region Marriages: A Special Reference of Haryana and Uttar Pradesh [Unpublished Manuscript]. Department of Sociology, Central University of Haryana., Mahendargarh.

Lewis, O., & Victor, B. (1958). Village Life in Northern India: Studies in a Delhi Village. *International Affairs*, 35(2), 257–258.

Liddle, J., & Joshi, R. (1989). *Daughters of Independence: Gender, caste, and class in India*. Rutgers University Press.

Misra, R. (2011). Social Consequences of Declining Sex Ratio: Experiences from Rural Community in Uttar Pradesh. *The Indian Economic Journal*, *59*(2), 152-162.

Mishra, P. (2017). *Transcending boundaries, negotiating identities: a study of cross region marriage in north India* (Doctoral dissertation)., Indian Institute of Technology, Delhi.

Muhsam, H. V. (1974). The marriage squeeze. *Demography*, *11*(2), 291-299.

Mukherjee, S. (2013). Skewed sex ratio and migrant brides in Haryana: Reflections from the field. *Social Change*, *43*(1), 37-52.

Pradhan, M. C. (1966). *The political system of the Jats of Northern India*. Bombay: Oxford University Press.

Premi, M. K. (2001). The missing girl child. *Economic and Political Weekly*, 1875-1880.

Premi, M. K., & Raju, S. (1996). Imbalance in child sex ratio in Madhya Pradesh. *Unpublished Report, sponsored by the Ministry of Human Resource Development, Government of India*.

Reshma (2015). Across region marriages: A case study of Khidwali village, Rohtak (Haryana). *International Journal of Applied Research*, 1(5), 26-31.

Verma, S. (2000). *Marriage Scenario of India with special reference to marriage squeeze* (Doctoral dissertation, Ph. D. Thesis, International Institute of Population Sciences, Mumbai, India).

Visaria, A. (2015). *Religion and son preference in India and Bangladesh: Three essays on comparing Hindus and Muslims on son preference and sex differentials in child health*. University of Pennsylvania.

Vishwakarma, M., Shekhar, C., & Yadav, A. (2019). Variations in marriage squeeze by region, religion, and caste in India. *Journal of Comparative Family Studies, 50*(4), 313-330.

Yadav, A., Singh, T. B., & Vishwakarma, M. (2018). Changes in the Marriage Patterns of Northern and Southern States of India, 1971-2011. *Social Science Spectrum, 3*(2), 93-103.

Yudhvir (2014). Across Region Marriages and Changing Social Relation in Rural Haryana. *Maharishi Dayanand University, Research Journal (Arts),* 10, 137-142.

Footnotes

1 The term gotra is considered to be corresponding to lineage among Hindus. It is a belief that people belonging to a particular gotra are descendants in an unbroken male line from a common male ancestor or patriline.

2 Particular number of villages together makes a '*Tapa*' which is a unit of *Khap Panchayat*. Various *Tapas* collectively create one *Khap*. In the*SatrolKhap*, there is a Petwar *Tapa* which governs a group of 12 villages in Hisar District of Haryana.

3 During SaathPhere, both bride and groom and circumambulate (walk around) sacred fire seven times and they take pledges. Both consider the fire as a witness (Agni Sakshi) and they promise to take perform their duties of taking care of each other.

4 The Meo-Muslims are also called Mev or Mewati Muslims. They identify themselves as a distinct socio-cultural ethnic community, and despite their being Muslims, they find their lineage to the Hindu Rajputs in north India.

Ashish Kumar

Ph.D.

Research Scholar at Central University of Haryana's Department of Sociology in Mahendergarh, India,

& an ICSSR Doctoral Fellow in New Delhi, India.

❑ ❑ ❑

Rescinding of an Airport Project : An Epic Campaign Against Ecological Destruction

• **Dr. Lekha Pillai**

Abstract

The catastrophic scale of consequences due to the unmindful exploitation of natural resources in the name of development is a great challenge to our intellect and wisdom. The progressive projects carried out without giving due attention to ecology and environment were harmful to the posterity. This realization by the natives of Aranmula led to a successful heroic protest against a developmental project i.e, the construction of a Private International airport in the land.

Keywords: Aranmula, Paddy field, Puncha, Ecology, Airport, EIA Report

Introduction

In the 21st century developmental projects are necessary but it should be progressive and sustainable**.** The 1st half of the 20th c, studies in Ecology revealed how anthropogenic activities disrupted the natural ecological processes and how it led to the degradation of environment, bringing untold sufferings to both flora and fauna. The developmental projects carried out without giving due consideration to the ecology and environment were detrimental to the posterity. The unmindful exploitation of natural resources in the name of development is a great challenge to our intellect and wisdom.

This paper seeks to analyze the protest movement by the

villagers against a developmental project in the name of a Private International airport. The natives of the place with the help of the environmentalists protested against the project because, if implemented, it would turn out to be a great danger to the environment and the lives of countless of men and women. Aranmula airport was sparred after local villagers as well as representatives of various political parties against it and launched a mass movement under the banner of the Joint Action Council. Sugathakumari, the poet, who hails from Aranmula, joined the agitation and various socio-political and religious leaders aligned with her. This paper is divided into two parts .the 1st part deals with the Cultural, and ecological importance of Aranmula and the 2nd part deals with the origin of the airport problem, the protest campaign against the project and its subsequent withdrawal.

Aranmula - Its Cultural Importance

Aranmula is a famous temple village in Pathanamthitta district in Kerala and is famous for the Parthasarathy temple. It has a historical heritage of 1500 years and is one among the 108 Vishnu temples which existed all over India. Aranmula is one of the two heritage villages of South India selected by the Government of India and also selected by the UNDP for village development for which they provided Rs.70 lakhs[1]. Aranmula is also included in the list of UNESCO as one among the four heritage villages in India[2]. Aranmula is well known for the Aranmula Vallam Kali (boat race), snake boat building, art and crafts, etc. It also boards the master craftsmen who make the traditional metal mirrors called the Aranmula Kannadi[3].

Ecological Importance of the region

If we analyse the region from the ecological point of view we can see that it is an ecologically fragile region. It feeds the river Pampa and also provides life giving water. The wet lands around the area are unique and were a breeding ground for a large number of diverse flora and fauna. On the onset of Monsoon in June when the water begins draining into river Pampa, several species of fish migrate upstream from the river through the canal to the water logged paddy fields for breeding. The Wetlands act as ground for egg laying, hatchery, and nursery[4]. In September when the

activities for Puncha initiate, they migrate down into river Pampa which acts as a feeding ground. At present on the whole 212 species of plants, 60 species of fishes and about 80 species of birds are found in the area. Reclamation of these wet lands would deprive the fish of their breeding grounds, and could lead to biodiversity loss and water shortage[5].

Importance Paddy Fields

Even though paddy cultivation has reduced to a large extend, this lowland serves as natural flood control in the area whenever the river Pampa over flows, reducing the impacts of flood on the local population and their lives considerably[6]. If the 400 acres of paddy fields are filled or converted, it will check the flow of water to 3500 acres of lands around[7]. Even if no cultivation is made and if the paddy fields are left as such, their ecological services go unhindered. It acts as a permanent source of drinking water by supplying it to the wells and ponds of the entire region[8]. These wetlands and paddy fields serves as reservoirs and functions as natural irrigation system. The contrast lies in the fact that while most of the nations are realising the importance of paddy fields and its role in replenishing ground water reserves and trying to create more wetland fields to solve water problems, the UDF led government in Kerala is encouraging the destruction of paddy fields and wetland in the name of development.

Origin of the Problem

It is at this cultural and heritage site that a developmental project in the name of a private international airport was announced. It is proposed to build by a Chennai based business group known as KGS Aranmula Airport Ltd in an area extended to Aranmula, Kidangannoor, and Mallapuzhasseri villages in Kozhencherry Thaluk, Pathanamthitta district[9]. The idea of an airport in this area was originally put forward by Mr Abraham Kalamannil, Chairman of the Mt Zion Engineering Group, Kadammanitta. Initially he planned to have only an airstrip to cater for the needs of the aeronautical engineering department of his college. He bought a large extend of paddy fields and began to fill it by razing down the nearby hill. The local people began to realise the adverse impact inflicted on the environment and their livelihood by the airport project. So they started agitations against it. Recognising

that the project is impractical on the face of public distrust, he left the project half way and sold the entire wetland he bought to the KGS group. Based on their high influence on the govt apparatus and ignoring of public protest the KGS decided to go ahead with their project. If implemented it would be the 5th international airport in Kerala. This airport is planned to be built on about 500 acres of land as given in the EIA report, but in the website of KGS Aranmula it is given as 700 acres. The total cost estimated is Rs 2000 crores[10] . The company planned to have a special economic zone, a multispecialty hospital, a shopping mall, a luxury hotel and an international school within the airport complex.

The very problem lies in the fact that the proposed site is not suitable for an airport as it is an ecologically fragile area of wetland. Out of the 700/500 acres of land needed for the airport 400acres are paddy fields and wetlands. The KGS had grabbed the land on the false notion that the land was not cultivated for the past 10 years. If we analyse the history of how cultivation became impossible here, we can attribute it to a small scale development that happened in this region. This geographical region consisting of 1200 acres of Puncha and 1700 acres of Paddy fields had been cultivated till 2000. Gradually cultivation became impossible because of the blockade of the Valiathode during the construction of Nalkallical Bridge over it on the Aranmula –Kulanada road which flooded the Paddy Field and destroyed the cultivation. Further the flooding of the Puncha was caused by the blockade of the Kozhithode, when Kozhipalam was constructed over it in 2005 on Aranmula Chenganoorroad.[11]This shows how vital both Kozhithode and Valiathode are for the natural irrigation and natural drainage system of this region.

In the case of Airport, the runway was constructed over the Karimaramthode, which is a part of the Kozhithode. If such small developments in the region can topple down the centuries long agricultural tradition, the airport can cause irreparable damage to the ecosystem, biodiversity and the people[12].The Kerala State Bio Diversity board warned the government of water scarcity and flooding in areas neighbouring the project site if paddy fields and water bodies were converted for the construction of the airport. Here I can site an example of the SAHAR airport (Now the Chatrapathi Shivaji International Airport) Mumbai. An expert study

conducted by Hrishikesh Samanth who is the head of the Geology department at St. Xavier's College, blames forcible diversion of the Mithi River Channel for perennial flooding. During the early 1970's Boeing 747entered India .This created a need for extending the second runway of the airport. However since the Mithi River's wide channel was flowing there, the authorities reclaimed large parts of the channel and forced it to flow under the runways. This makes the river flood substantially, as was seen during the massive floods of July 2005[13].

The Airport Authority of India report clearly states that there is no urgent requirement to construct a green field international airport at this juncture as the requirements of the international passengers are well catered by the existing airports .The Government of India's guidelines for the green field airport specify that it should be normally 150km from any existing airport. The distance to Aranmula from both the Thiruvananthapuram International Airport and the Cochin International Airport is just 96 km by air. And by road, from Thiruvananthapuram to Aranmula is about 125km and from Cochin airport even less than 104 km .The report of the parliamentary standing committee on transport tourism and culture noted that the proposed Aranmula airport was violating the rule of 150 km distance and the saturation of the nearby existing airport. The committee, therefore, recommends that the proposal for construction of Aranmula Airport may be reconsidered by the Government.

Protest

Many social and environmental organisations led an agitation against the airport project saying that it would destroy many of the characteristics that qualify Aranmula as heritage village. Prominent personalities including the Poet Sugathakumari, have come out to support the agitation against the project. Many argue that estates and plantations with expired leases were available in Chandanapally, Kodumon, Perunadu, Lahai and Cheruvally regions located in Pathanamthitta which could be used for the project[14]. Studies states that the K G S group wanted to construct an airport city that requires more than 3000 acres of land and that such a large project would be detrimental to the environment and ecology of Aranmula. Approximately3000 families will have to be dislocated.[15]

The company had created a false notion that the project area was not much populated and that there were only six houses in the proposed 500 acres. It was on the basis of the report of the company and not making any further investigation of the area that the government declared the proposed area as an Industrial Area. But from the satalite map later created by Sri K.P. Sreeranganathan it was clear that about 900 houses existed in the project area.[16] According to himwhen the hills in the populated area were bulldozed and thousands of paddy fields were reclaimed for the airport purpose there was ground water depletion leading to an acute water shortage in the nearby areas.[17] Keeping this in mind the people of Aranmula decided to start a strong protest movement against the airport for protecting the life giving water and the cultural heritage of Aranmula.

The first instance of protest against the project started on 09/12/2011 when the villagers protested against the notification issued by the Industries department declaring 500 acres of land spread across the Mallappuzhassery, Kidangannoor and Aranmula villages as an industrial area.[18] The agitated villagers under the aegis of the People's Action Council laid siege to the office of the KGS Aranmula Greenfield Airport Office on the Kidangannoor Road. The Action council leaders, purported that the international airport project itself was part of a big land scam and fraud as the promoter company did not have a single cent of land of its own in Aranmula.[19] The People's Action Council at Aranmula planned a day-long fast on Sunday15/1/2012 to protest against the proposed private international airport project.[20] Council leaders including Mr. K.S. Suresh, Mr. R. Geethakrishnan, Mr. Vijayan Achari said this would be the beginning of a popular agitation against the controversial airport project and related unscientific development schemes.[21]

As a part of the Aranmula protest a fasting was conducted at Thiruvananthapuram by important personalities drawn from social, literary and cultural fields declaring solidarity to the movement against Aranmula projecton 18/06/2013. On the same day a long petition was prepared and signed by 74 MLAs of the Kerala Assembly and also by other social, literary and cultural luminaries for submitting before the Central- State governments.[22] But very accidently the Central Environment minister Jayanthi Natarajan

signed the consent letter with the KGS company to start its construction works on 18/11/2013. It was against this that an appeal was filed in the green tribunal by the natives of Aranmula. The South Zone bench of the NGT had cancelled the clearance given to the airport project and restrained the KGS group from carrying out any construction work or other activities at the site. The tribunal had concluded that the EIA report on the airport was not prepared by a competent agency. Further, it had held that the public hearing conducted for the project was in violation of the mandatory provisions of the EIA notification of 2006.[23] Based on the NGT verdict the environment ministry annulled the environment clearance given to the project on the ground that the Evirocare which studied the environment impact of the project did not have the prerequisite to do so.[24] Though the KGS filed an appeal against this in the supreme court, the Supreme Court upheld a ruling of the National Green Tribunal (NGT) that stopped the construction of the Aranmula airport project in Kerala because it did not have environment clearance.

But later Union Environment Ministry approved fresh environmental impact assessment (EIA) study of the Rs 2,000 crore Aranmula International Airport project. The move may lead to revival of the airport project though the National Green Tribunal (NGT) stayed its construction in May 2014.The new EIA study was given to SGS India, an inspection and certification company. The Expert Appraisal Committee (EAC) of the Union environment ministry allowed the promoters of the project to go ahead with the fresh EIA while considering their plea in this regard. The EAC rejected the arguments that the proposed site was not suitable for the airport project.[25]

Later the LDF led government in Kerala cancelled all orders related to the proposed Aranmula airport project, including the grant of in-principle sanction in 2016.The project, promoted by KGS Group, had run into trouble after it was mooted for nearly seven years with environment groups and people in the area holding that it would cause environmental hazards.[26] The State Government had decided to takeimmediate steps to cancel its decision to notify approximately 500 acres of land in Aranmula as an industrial area.The government also stated that it was found that the proposed project area constitutes large extent of paddy and wetland

which cannot be legally converted for the purpose of a private company in view of existing legal provisions.[27]

Thus it is evident that corporates and land maphias are making their intrusion into every aspects of society and environment. The paper shows how the land maphias along with those in power were trying to topple down the existing laws for starting big enterprises the subsequent protest of the people. The protest was not only a triumph of the local people against a project but also a warning to the corporates and to those in power that power and money could not any more dominate the environment and ecology.

Kumamoto city in Japan

The city of Kumamoto in Japan once used to be called as the city of Forest .But with the rapid urbanisation during the early 1970's the amount of ground water that percolates decreased while the use of water has increased. She does not have alternative sources for ground water. The decline in ground water recharge levels from paddy fields due to conversion of paddy fields into dry fields has accelerated the fall in ground water levels which made an acute water shortage in the city. Many researches were conducted to retain the level of ground water which finally revealed that the ground water recharge depends on the farm land and the forests.

In order to maintain the recharge from paddy fields Kumamoto city started a flooding project with the cooperation of the council for sustainable water use in agriculture. The project provides subsidies to encourage farmers to flood their converted paddy fields with water from Shirakava River. The Flooding is effective not only to recharge ground water levels, but also to limit negative effects of weeds, insect borne diseases, and continuous cropping troubles.[28] Similarly ongoing researches about paddy fields in Taipei reveal that they help to regulate flood water and replenish ground water.

If we trace the historical background of such kinds of unsustainable development we can attribute the legacy to our colonial masters. This can be summed up in the words of MadhavGadgil and Ramachandra Guha: "***British Imperialism could not wipe out the population of India –but it did certainly disrupt,***

perhaps irrevocably, the ecological and cultural fabric of its society. And after it formally left the Indian shores, the tasks it has left unfinished were enthusiastically taken up by the incoming nationalist elites, whose unswerving commitment to a resource intensive pattern of industrialization has only intensified the process of ecological and social disturbance initiated by the British." [29] (This Fissured Land)

FOOTNOTES

1. Personal Testimony, Sreeranganathan, k.p, Sreepadamvadakke kottaram, Kizhakkenada , Aranmula, 23/09/2013
2. Muraleedharan Nellikkal, Aranmulayude Samskarika Paitrikam, Rainbow book publications, 2009
3. Aranmula Kannadi is a special type of mirror produced at Aranmula. Composed of a special metal instead of glass; the Aranmula Kannadi is a front reflection mirror, which eliminates secondary reflection. The exact metals used are unknown but are mixed with copper and tin to cast the mirrors.
4. SAF report ,opcit,p3
5. Ibid,p2
6. SAF report ,Opcit,p2&3
7. Report of the Kerala Legislative Assembly committee on environment ,opcit,9/7/2012
8. SAF report ,opcit,p3
9. The proposed Aranmula Greenfield Airport: Its Potential ecological, social and economic impacts-a preliminary appraisal. Report of Salim Ali Foundation, Thrissur, 29th March 2012, p1
10. Ibid,p1
11. Personal Testimony,Sreeranganathan,k.p,opcit,10/10/2013
12. Aranmula Greenfield AntharashtraVimanathavala Padhadi Uyarthunna Paristhithika Prasnangal Sambandhicha Report, (Malayalam) Kerala Legislative Assembly committee on environment , 9-7-2012
13. Deshmane Akshay, Lost in Reclamation, Science and Environment Fortnightly Down to earth, April 16th 2013
14. Personal Testimony,Sreeranganathan,k.p,opcit,10/10/2013
15. SAF report, opcit, p5

16 Sreeranganathan K P, Aranmula Aithihyavum Charitra Sathyangalum, Vallathol vidyapeedom, NBS, Kottayam, 2018, p. 562.

17 Ibid.

18 Protest mounting against Aranmula Airport Project, The Hindu, Dec 9, 2011.

19 Ibid.

20. G. K. Nair, Protests mount against Aranmula airport plan, Business line, January 12, 2012.

21 Ibid.

22 Sreeranganathan. K P, op.cit., p. 563.

23 https://www.downtoearth.org.in/news/centre-orders-fresh-eia-for-aranmula-airport-project—49572

24 Sreeranganathan. K P, op.cit., p. 563.

25 https://www.downtoearth.org.in/news/centre-orders-fresh-eia-for-aranmula-airport-project—49572.

26 https://www.thehindubusinessline.com/economy/logistics/ldf-govt-cancels-order-for-aranmula-airport-project/article21783725.

27 Ibid.

28 www.un.org/water for life decade/winner 2013.html

29 Gadgil M and Guha R ,opcit,p.242

Dr. LEKHA PILLAI

Assisstant Professor

Department of History

N.S.S. COLLEGE, PANDALAM

❑ ❑ ❑

Bikaner Region Heritage and Gastronomy Culture :Attraction for National and International tourists

Mr. Umang Bhartwal • Dr. Naveen Sharma

ABSTRACT :

In every horizon Urban and rural sector have equal opportunities for the tourism. In the vast and vivid light of tourism Bikaner is one such region of Rajasthan having both kind of Urban as well as Rural beauty. In Bikaner region there are so many forts which are regarded as classical heritage where as rural Bikaner has few of the finest examples of religious places which are the part of Bikaner Region under the Tehsil of Shree Dungarh named as Momasar, Katariasaer and Toliyasar. In the study it has been found that urban vicinity has sufficient information placed into the e-platform in regard of tourism where as for rural spots it is less. Due to that Rural areas are facing the situation of PPT "Pro Poor Tourism". Gastronomic produces are placed at the same level in terms of similarity.

Key Words: Heritage Tourism, Urban, Rural, Gastronomic, Pro-Poor Tourism, Religious Tourism, Gastronomy, UTSAV, E-Platform

Introduction

Every place, local area and host destinations have the uniqueness in term of values, cultures, traditions, and beliefs. History and Heritage are the components which imparts the awareness into the rest world about each and every place. These

places are broadly classified into “RURAL and URBAN”. Urban having the lots of potential as these are large in resources as compared to rural especially in aspect of human resources and technology infrastructure in recent days. In Tourism industry, these places have large potential in comparison to rural. However both classifications have their own distinctive features and diverse outlook with each other. These places which are rich in Heritage either in “Natural or Man Made” talking about every places.

In this study we are going to discuss about the Bikaner district –urban and more over rural tourism via fairs, festivals and festive dishes as tourists attraction product of “MOMASAR and KITHAR SAR” small villages of ShreeDungarh, Tehsil.

As per the United Nation World Tourism Organization “ Tourism means movement of native people from one place to another places involving country (legal boundaries of nation) for the any motive like leisure, luxury, heritage, and more in motive list of tourism”. Bikaner is the city of Rajasthan in India. Presently holding the status of District Headquarters located in the northwest state of Rajasthan having the distance of 330 kilometers form capital of Rajasthan that is Jaipur. As per the historical evidence present in the literature and manmade heritage “Bikaner” was formerly the capital of Bikaner province founded by RAO BIKA who was the son of Maharaja Rao Jodha in the 1488.



The Maharajah Ganga Singh of Bikaner (1880–1943) Source: https://en.wikipedia.org/wiki/Bikaner#History

AIMS of Study

This writing comes across into the facts and information for general public as tourist or guest about the “URBAN & RURAL

Tourism" in Rajasthan. Rajasthan has declared tourism as industry in the year 1989. Rajasthan is known for its heritage places, colorful history, tradition, values and culture at urban as well as rural areas in form of religious belief or temples, gastronomy, classical sports, recreational activities etc. This helps to improve more in terms of marketing and branding tools among the upcoming travelers, tourists and guests. That's directly improve the lively hood of host society and destination via offerings more economical activities as it constitute in Tourism sectors name as heritage accommodation industry, food industry, transportation, leisure, banking, e-infrastructure, and many more.

The objective of the study is to identify the potential of the tourism dimension in the Bikaner region name as Heritage Places or forts, Religious Places, and Gastronomic in a wider way that helps to motivate the national and international tourist footfall in the region of Bikaner as well as Rajasthan Province. In this piece of work, Bikaner Region is broadly Classified into two; "URBAN TOURSIM AND RURAL TOURISM"

Key Concept related to Bikaner Tourism Region

Urban Tourism: As per the words given by the United Nation World Tourism Organization about the Urban Tourism is an activity which takes place in the urban area or space which is featured by administrative, trade and services, but not include agriculture based economic activities. As per the concern of "URBAN TOURISM BIKANER REGION" Bikaner city was previously involved as centre of administrative activities in the forts and offices, presently they are declared as Heritage property as per the guideline given by United Nation Heritage Sites. This has been found that Urban Tourism is driven towards the development of cities, places or locals.

Rural Tourism: In simple words, rural tourism means involving and focusing in the rural lifestyle. It's one of the parts of ecotourism. As many aspect involve in the rural tourism mainly agriculture, and some of the rural local known for religious places. It has recognized that villagers are more hospitable and keen to welcome.



https://www.rajasthandirect.com/wp-content/uploads/2012/11/Bikaner-Map.jpg

Three major attraction of the region identified, which acts as a motive for both National & International Tourists are as following:

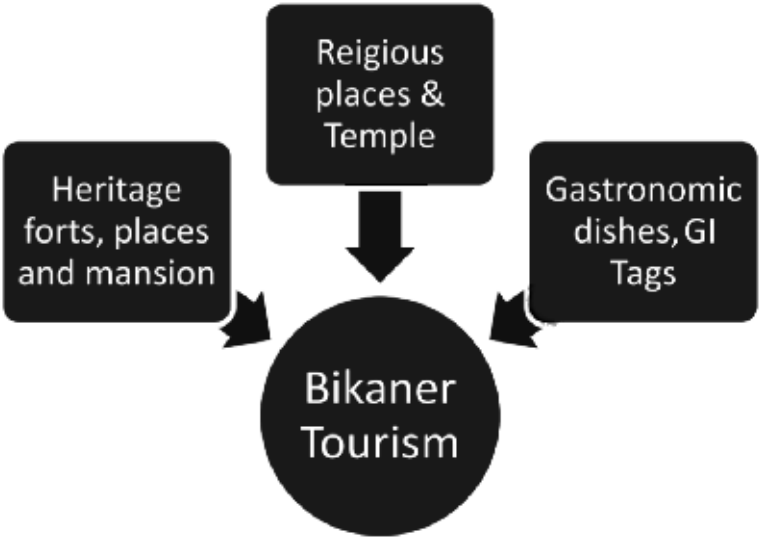
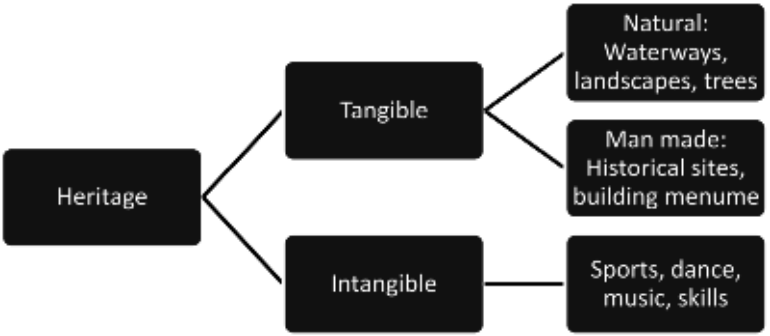


Figure 1.1

1.1. A Heritage : Heritage is the word which elaborate the legacy and influencing past impacted to us, it mainly include values present and what we need to preserve for our future generations. At far it is concerned with our society, business, politics and many more. Heritage can be broadly divided into two Tangible and Intangible.

Bikaner region is full of heritage places in both urban and rural as per the table below in term of Tangible like forts, museum and for natural one for heritage most of the tourist consider desert – sand dunes, camel (Camel research farm Jodbead) etc.



1.1. B: Religious Place: Religious places play a significant role in this region for the host as well as for tourist, who really consider to study about the social belief of this region. In this study, Katariasaer and Toliyasar consider one of the remarkable places for the rural tourism and few world famous religious temples are also described in Table

1.1. C: Gastronomy: This region is having very rich gastronomy which is impacted by so many factors like heritage, history, tradition, values, culture and social belief. Climatically "war like situation" also molded the food habits of the host mainly having the features of vegetarian and preserved ingredients based dishes, almost part of every meal of the day. As major part having the deadly desert in landscape creates the scarcity of the water, as a result limited fresh vegetables are available and it calls for ingredients depending upon the availability in the extreme climatic conditions of the region.



Junagarh Fort Palace (Built in around 1594 CE by Raja Rai Singh also known as Chintamani built on hilly terrain)
https://en.wikipedia.org/wiki/Bikaner#Junagarh_Fort



Laxmi Niwas Palace (This was the former resident ial palace for royal family build by the Maharaja Ganga Singh ji known for Indo –Saracenic articture design by the British Architect Mr. Samuals winto Jacob
https://sites.google.com/site/bikanerdesert com/bikaner-history-and-the-rise-of-rao-bika



Rao bikaji's Fort (This was the first Fort built in the year 1478 also called " Bikaji Ki tekri" located 1.5 kilometer from city name Junagarh Fort

https://sites.google.com/site/bikanerdesertcom/bikaner-history-and-the-rise-of-rao-bika.



Karni Mata Temple (One of the religious place in form of Temple located 30 kilometer away from Bikaner City, on the name of Karni Mata (incarnation of goddness Durga) This temple having the Kaabe(Plural) in form of Rats. Kaabe believed that these are the devotees of Karni Mata, and they are those human being who did not satisfy with their devotion.

https://zeenews.india.com/hindi/india/rajasthan/ bikaner/bikaner-deshnok-karni-mata-temple-will-open-from-july-1-corona-with-protocol/931548



Mukam Bishnoi Temple (Also famous as Mukti Dham Mukam is located in NOKHA. Mokam is the holy place for Bishnois. The Sect of this community GURU JAMBESHWAR. Locals believe that soul of Guru Jambeshwar still reside.)

https://www.facebook.com/Bishnoisunil0029/posts/muktidham-mukam-is-the-most-important-religious-place-of-the-bishnoi-community-s/1926685210689231/



Laxminath Temple (This is the oldest temple of Bikaner, built by the Maharaja Rao Lunkaran. Just four Kilometer away from Junagarh Fort. Lord Vishnu and Goddess Laxmi, graced the scared sanctum of the temple. Festivals like Janmashtmi, Nirjala Ekadashi, Ram Navami, Diwali and Gita Jayati are celebrated here at large scale at the Temple.)

http://www.aapnodesh.com/tag/laxminath-temple-bikaner/



Bhandasar Jain Temple (This is the Temple was built by the Bhandasa Oswal in the century 15th. Known for frescoes, ornamented mirror work and leaf Painting. Constructed with red sandstone with beautiful painting on walls and pillars.

https://www.google.com/imgres?imgurl=https://live.vernacular-furnitureofin dia.com/wp-content/uploads/2021/03/HKr_Tik_Res7_Obj_Hea_Haa_1-2.jpg&imgrefurl https://live. vernacular furnitureof india.com/collections/haara-karnal- haryana/&tbnid= xhfVHb4HZ2_LYM&vet=1&docid=Y27StciKc6kL-M&w= 1620&h= 1080&itg=1&source=sh/x/im

Bikaner is also known for their festivals which plays a significant role in the tourism activity name as "Foundation Day festivals" of Bikaner and "International Camel Festivals". Foundation day is celebrated on **AKSHAYA TRITIYA.** On this festivals host and locals celebrate by flying kites and enjoying festive dishes includes Bajre Ka Khichda in main course and Imli Ka Panni (Tararind water) as Accompaniments. This festival runs for two days term as Chhoti Akha Teej and Badi Akha Teej. Host people can be observed via showing more interest in flying kites from early morning 5:00 AM till late sunset.

International Camel Festivals used to be held in the month of January Organized by the department of Rajasthan Tourism Development Corporation (RTDC), Culture and Arts. In this festivals honor is given to **"SHIP OF DESERT-THE CAMEL"**. In this festivals splendidly decorated camels and performances by

artists from different regions are the key attraction for international and domestic tourists. The festival includes events and performance such as Camel Dance, Camel Race, Neck Shaking Camel rides. Two competition name as Mr. Bikana and Miss Marwan are also held during this festive period.

Not only has the Bikaner main city having the tourism where as the small villages of Bikaner districted also having the seasonal tourism activities. This can be understood by focusing the tourism activities at Katariasaer and Momasar.

Katariasaer is the small village of Bikaner district of Rajasthan. This village is having the population of 3,554 (1,849 males & 1,705 females) as per the census of 2011.This village is inhabited of Shree Jasnathjis. This village is 45 Kilometer form Bikaner city on the Jaipur to Bikaner highway. This village is known for its rich cultural, rural and ethnic desert life. In this village one can enjoy the sun rise and sunset on desert landscape along with walk on sand dunes. The main tourist attraction of this village is Jasnathjis temple, fire dancers and some of the inhabitant like chinkaras, desert foxes, rabbits, peacocks, partridges and parrots. This village is also known for their religious gastronomic dishes famous as KAKADIA KI SUBJI, MANGODI SUBJI, SIRA (Sweet Dish), and BATTAI

Momasar is the largest village of Shree Dungarh Tehsil, Bikaner district, India. This village is having the distance from Shree Dungarh, Sub- district headquarter around 37 Kilometer and 107 kilometer from Bikaner district head quarter. Total area of Momasar village is 11147.09 hectares. As per census total population of this village is 13,337 (7014 males & 6,323 females) resident. Momasar “UTSAV” one of the attractive events shows the “Rajasthan Living Roots”. It’s a two days event; bring so many artistic performances tougher from different region of Rajasthan to showcase the only one of its kind carnival of folk tradition. This UTSAV is one of eye catching and unforgettable for every “Folk art lover from far and wide”.

In these days, host welcomes the guest, tourist or visitors via creating the barrier free atmosphere from nearby villages, cities and even from countries (from different backgrounds and beliefs). During event, guest or visitors loose himself or herself in the ethnic

atmosphere of this village which offers the space to every individual who alloyed traditional of this cultural or classical land. Walking through narrow lane having the "PALATIAL MANSION" (built in earlier centuries) on both the side every after few meters gives the chance to feel of rich heritage at soulful land. There are so many unforgettable affair includes in the events like spending times at Heritage Temples, staying in Traditional mansions, understanding the "Johad"(traditional water harvesting structure) built around 250 year ago an excellent demonstration of regional architectural , host gastronomic experiences, Meditation in ethnic environment, midst of peeping bird and many more.

Momosar Chaupal one of the vibrant "MELA" shown the crafts ship displaying state of art sign of Classical Heritage's Momasar. Momasar Gastronomy plays an emotional and significant part of Hospitality. Festive dishes is one of the memorable moment for every visitors or guest in the event as "UTASV" these dishes shows the legacy as Gastronomic of this host region from past which shows the war like condition for the living in term of cultivation and limited resources which are names as" BAJARA KI ROTI and MISSI ROTI (MOTH FLOUR BREAD), RABARI(Curd preparation usually in every meal), GUAR KI FALAI –SABZI, KAKADIA KI –SABZI (the sources of these vegetable like GUAR FALAI, KAKADIA don't required lot of water for cultivation), MOTH KI SABZI (A lentil based preparation in local language "DESI FAHALI"), PUCH MALI KI SABZI (Prepared from five vegetables; GUAR KI PHALI, MOTH KI PHALI, KAKADIA, MITRI (MINI WATER MELON),

TINDICI (ALSO KNOWN AS TINDA), Some of the vegetables are prepared form storage ingredients like BADI KE SABZI, PAPAD KI SABZI (DRY LENTIL PASTE) and in dessert course normally prepared SIRA (made up from) FLOUR, GHEE, MILK AND SUGAR - A kind of Roux based dish), GUAR KE CHAWAL (JAGARY RICE), LAAPSI(SWEET DALIA). As a dip most of the time they serve LUSSIAN KI CHUTANI (GARLIC DIP).

For some of the dishes, host used special cooking equipment like Clay CHULA, and "HAARA" an equipment which suitable for simmering cooking .preparation like RABARI, KHEER, LENTILES and RICE.



https://www.google.com/imgres?imgurl=https://live.vernacularfurnitureofin dia.com/wp-content/uploads/2021/03 HKr_Tik_Res7_Obj_Hea_Haa_1-2.jpg&imgrefurl https://live.vernacularfurnitureofindia.com/collections/haara-karnal- haryana/&tbnid=xhfVHb4HZ2_LYM&vet=1&docid=Y27StciKc6kL-M&w=1620&h=1080&itg=1&source=sh/x/im

Toliyasar, one of the religious famous place of shree dungarh tehsil, situated 23 Kilometers away sub- tehsil,headquarter. Toliyasar established its recognisation in the local and international region for their "BHERU JI MAHARAJ TEMPLE", which fills with fair once in a year. In this fairs people from different places comes by walk and participate in beliefs. In a gastronomic way this places offers big ball of kneaded dough cooked on the cow dung and hot sand dunes, which serves as a PRASAD to its visitors after mixing of powder sugar and ghee. These Prasad need to be consumed with in the boundary of the place, as per belief of locals.

Research Methodology: The methodology opted for the study mainly literature review which are available on paper book, Articles of the journal, and reading material on e-platform.

Literature Review:

Printed manuscript is always an important source of information for such kind of studies. There are some views which are presented about the different aspect of tourism as well as gastronomic along with religious beliefs of all over the world. Tourism and Travel is regarded as an important economical activities all over the world and most of their places, it has the great

impact in every economy of the host destination via contribution in significant different way from large to small level(World Travel & Tourism Council, 2011). World tourism organization an international body promoting the tourism indicators since 1990s and suggesting the different policy makers authorities or committees in the planning and management process at destination, WTO suggested 40 indicators list which mainly includes natural resources management(water, waste , energy, etc), satisfaction of guest or tourist as well as host, conservation of Heritage, climate changes and economic linkages, for each resources some measurement and evaluation aspects describe with systematic application of tools in impressive way (World Tourism Organization, 2004). Both manuscript elaborate that tourism and travel activities contribute in the economical activities of the local region in many ways like accommodation, food, transportation, local handicraft, heritage sightsee and many more. And the same, observed in the Bikaner region either on urban or rural locations.

In the paper, authors remark the factors mention as cultural exploration, supposed value, place affection and pleasure affect the tourist's loyalty cuisine tourism (Cheng Yi Joyce Teh Li Chi Ong Hui Ying Wong Wen Wei, 2018). As per words of Hsu sun, sea and sand are the traditionally reason for travelling by the tourist, however in addition to Tourism life cycle extent try to attract more tourist, food tourism places as product in last two decade in the marketing and branding among the tourist for the host destination (Hsu, 2014). In understanding, cultural exchange via participating and experiencing of the host and visitors can creates the peace and growth at different level of society. Also consider the

Tourism life cycle, so that better decision or steps can be taken for the betterment of tourism in the host region like Bikaner.

Author examine the variables these are guest satisfaction in concern with local food of Hanoi in view of loyalty intention with tourist destination via considering the factors analysis by identification of local food images includes food culture, food quality, atmospheric and contexture features(Minh Tu et al., 2017).After observing the views of author guest satisfaction plays an important role in the development of the tourism in the destination after workout the factors as given.

In this writing author studies about the food tourism in the significant and insignificant identification in food within the same geographical boundaries , that helps to formulation of food tourism polices and marketing strategies with concern of region (Akdag et al., 2018).As per article local and regional food contribute to sustainable competitiveness as potential, also offered the suggestion that important components and evaluation of these components must be consider while framing the tourism policies for any of the region. (du Rand & Heath, 2006).

Human being as tourist or guest and host used multisensory dimension while experiencing the host cuisine dishes mainly having taste, smell, see, and touch where as one more present in the human body known as listen (Spence et al., 2021). Simple words, all human senses plays significant role for enjoying the host cuisine dishes.

Conclusion:

When we are talking about tourism, it has many purpose and motives to visit any particular destination. In this paper, we come to know that weather the urban or rural, both have reason for the tourist to visit any places. Here the Bikaner region of Rajasthan, India is rich in heritage, religious values and gastronomic in its ethnic ways. The Bikaner itself has many heritage and dishes which has the GI-TAG like “Bikaneri Bujia” which shows and add on the gastronomic motives to tourist apart from that religious places also contributes a lot in the tourism of this region name at international level like Deshnoke Karni Mata Mandir, Laxminath Temple, Mukam Bishnoi Temple, Bhandasar Jain Temple . At the end I would like to sum up that host tradition, beliefs, values, and culture having the magnetic effect among tourist and guest for this destination. As per literature presented in this paper, these can be places as product for the marketing and branding of this region at international level. At the end of the study, I would like to contribute and offer few point for the development of the tourism policy frame work for this region as to place the Heritage, Religious and Gastronomic as product at the national and international level for footfall of the more and more national and international tourists, so that every part of the region upgrade in term of living standard of the local

residents by way of generating the revenue by inculcating economic activities.

Reference:

Akdag, G., Guler, O., Dalgic, A., Benli, S., & Cakici, A. C. (2018). Do tourists' gastronomic experiences differ within the same geographical region? A comparative study of two Mediterranean destinations: Turkey and Spain. *British Food Journal*, *120*(1), 158–171. https://doi.org/10.1108/BFJ-01-2017-0017

Cheng Yi Joyce Teh Li Chi Ong Hui Ying Wong Wen Wei, B. S. (2018). *Factors Influencing Tourists' Loyalty Towards Food Tourism in Malaysia*. *August*.

du Rand, G. E., & Heath, E. (2006). Towards a framework for food tourism as an element of destination

marketing. *Current Issues in Tourism*, *9*(3), 206–234. https://doi.org/10.2167/cit/226.0

Hsu, F. (2014). *Food Tourism/ : Consumer Behaviour in Relation to Traditional Food*. 206. file:///C:/Users/IUU/AppData/Local/Mendeley Ltd./Mendeley Desktop/Downloaded/Hsu - 2014 - Food Tourism Consumer Behaviour in Relation to Traditional Food A thesis submitted for the degree of Doctor of Philosophy.pdf

Minh Tu, Soo-Han Park, & tÇ-°Æ. (2017). The Relationships among Food Image, Tourist Satisfactions and Destination Loyalty Intention: A Case of Hanoi Local Cuisine. *Culinary Science & Hospitality Research*, *23*(6), 70–77. https://doi.org/10.20878/cshr.2017.23.6.008008008

Spence, C., Youssef, J., & Levitan, C. A. (2021). Delivering the Multisensory Experience of Dining-Out, for Those Dining-In, During the Covid Pandemic. *Frontiers in Psychology*, *12*. https://doi.org/10.3389/FPSYG.2021.683569

World Tourism Organization. (2004). Indicators of Sustainable Development for Tourism Destinations. In *Tourism's potential as a sustainable development strategy. Proceedings from the 2004 WTO tourism policy forum at the George Washington University, Washington, DC, USA, 18-20 October 2004.*

World Travel & Tourism Council. (2011). Travel and Tourism Economic Impact 2011. In *Tourism*.

Source:

https://en.wikipedia.org/wiki/Bikaner#History
https://www.rajasthandirect.com/wp-content/uploads/2012/11/Bikaner-Map.jpg
https://en.wikipedia.org/wiki/Bikaner#Junagarh_Fort
https://sites.google.com/site/bikanerdesertcom/bikaner-history-and-the-rise-of-rao-bika
https://sites.google.com/site/bikanerdesertcom/bikaner-history-and-the-rise-of-rao-bika
https://zeenews.india.com/hindi/india/rajasthan/bikaner/bikaner-deshnok-karni-mata-temple-will-open-from-july-1-corona-with-protocol/931548
https://www.facebook.com/Bishnoisunil0029/posts/muktidham-mukam-is-the-most-important-religious-place-of-the-bishnoi-community-s/1926685210689231/
http://www.aapnodesh.com/tag/laxminath-temple-bikaner/
https://www.google.com/imgres?imgurl=https://live.vernacularfurnitureofindia.com/wp-content/uploads/2021/03 HKr_Tik_Res7_Obj_Hea_Haa_12.jpg & imgrefurl
https://live. vernacularfurnitureofindia.com/collections/haara-karnal haryana/&tbnid=xhfVHb4HZ2_LYM&vet=1&docid=Y27 StciKc6kL-M&w=1620&h=1080&itg=1&source=sh/x/im

Bibliography:

https://en.wikipedia.org/wiki/Bikaner
http://www.tourism.rajasthan.gov.in/bikaner.html
https://www.holidify.com/places/bikaner/
https://www.britannica.com/place/Bikaner
https://www.thrillophilia.com/cities/bikaner
https://www.india.com/travel/bikaner/https://wikitravel.org/en/Bikaner

Mr. Umang Bhartwal
Research Scholar
SuresGyan Vihar University, Jaipur

Dr. Naveen Sharma
Controller of Examination,
Suresh Gyan Vihar University, Jaipur

❑ ❑ ❑

Kolkali Dance and Physical Wellbeing : A Special Emphasis On Muscular Strength

● **Dr. Jayakumar K.**

ABSTRACT

The purpose of the study was to determine the effect of Kolkali dance training programme on Muscular strength. Randomly selected 60 high school boys were divided into two equal groups as 'A' and 'B'. After taking the pre-test for Muscular strength the training programme was given to experimental group 'A' where as the group 'B' was the control group. The experimental group 'A' had undergone the training programme in Kolkali dance, thrice a week for 16 weeks. Two middle tests after 5 weeks and 10 weeks and a post test were conducted. The t-test was employed to analyse the significance of difference from the pre-test to post test on selected variable. The result reveals that there was significant improvement in Muscular strength for the experimental group as a result of the training programme conducted for a period of four months.

Key Words: Kolkali Dance, Muscular Strength, Experimental Group, Control Group.

Physical fitness is a general state of health and well-being and, more specifically, the ability to perform aspects of sports, occupations and daily activities. Physical fitness is generally achieved through proper nutrition, moderate-vigorous physical exercise, and sufficient rest. It is the responsibility of every country

to promote physical fitness of its citizens because physical fitness is the basic requirement for most of the tasks to be undertaken by an individual in his daily life.

Many people believe that there is a kinaesthetic sense which is embedded in our bodies, an aesthetic force, which dance experiences can liberate. Dance can have far-reaching effects on personality and on the concept of self, so that even children can be given an awareness of their bodies as a physical presence and an instrument of communication during dance lessons- an essential part of their education. Children usually have a sense of rhythm, a natural love for rhythmic movement, and an innate creative ability. How extensively all of these qualities are developed depends upon the opportunities a child has, to express them. Those opportunities are provided by a variety of dance forms. Early study of dance may become a foundation for a lifelong leisure activity. So the time is ripe for the promotion of serious dance education.

Because folk dance is an art form, it is a valuable part of the school curriculum in the study of other countries and people. Folk dances should not be taught for the exclusive purpose of learning the steps or formations. These should be learnt out of context of a dance and become a part of the child's movement vocabulary. The folk dance can make this aspect come to life for the student and enrich learning in social studies, language, literature, music and art (Davis, Juke,1971).

One of the popular art forms of Kerala, Kolkali literally meaning 'dance with sticks' is believed to be around 200 years old. Physical flexibility, control of steps and rhythm are essential to learn it. Like Kalaripayattu, there are teachers called *Asans* to impart training in Kolkali. Thalassery and Payyannur towns in Kannur district are famous for their legacy of Kolkali. It is carried out by different religions and castes. So there is a lot of variation between their own traditional kolkali and it is more popular among the Muslims. This magnificent art needs a lot of skill, practice and the correct body language to carry it out. This dance is supposed to have a link to 'kalaripayattu' as the experts of 'kalaripayattu' also teach 'kolkali'. It has been found by historians that the modern

'kolkali' is somehow related or connected to 'purakali'. There are many myths among the Hindus about the origin of 'kolkali'. It is said that it was played for entertainment during the period of the Yadavas. Another myth says that Dronacharya the teacher of the Pandavas and Kauravas taught them this art form.

In Kolkali dance the number of participants may be about 8 to 10 pairs. The participants will be divided into two groups. 'Akam' and "Puram". The former will stand inside while the latter will stand outside. Kolkkali songs are very rhythmic. The tribes of 'kuricher' 'kurumar' etc perform this wonderful dance form. It is worth noting that there is usage of different types of languages such as Tamil, Sanskrit, Tulu etc. in the kolkali songs, while for the Muslims mostly Arabic terms are used.

Dance is considered an activity that offers the involvement of different senses and connects movement to music with self-expression and applies different aspects of personality (Kaufmann, 2011; Studer-Lüthi and Züger, 2012). The rhythm of this dance is set by a harmonious synchronisation of the tapping of feet to the beating of sticks. The movement is circular and the artists sing as they dance and strike the sticks in unison. Though the dancers break away to form different patterns they never miss a beat.

Muscular strength is defined as the amount of force a particular muscle group can apply in a single effort (Vivian, H. Hayward, 1991).Muscular strength is defined as the amount of muscular force, one is capable of exerting in a single muscular contraction (Hazeline, Rex,1985). Muscular strength is important for smooth and easy performance of everyday activities, such as carrying groceries, lifting boxes and walking upstairs as well as for emergency situations. It has obvious importance in recreational activities.

To measure arm and shoulder girdle strength the test performer hangs from the bar using the overhand grip with his legs and arms fully extended. His feet should not touch the floor. He pulls himself upward in a metal or wooden bar approximately 1½ inches in diameter until his chin is over the bar and then lowers his body to a full hang position. He repeats the exercise as many times

as possible. Only one trial is administered, unless it is obvious the performer can do better with a second attempt. The score is the number of completed pull-ups. The knees must not be flexed, and kicking motions, swinging, and snap-up motions are not permitted. The test administrator may prevent these actions by holding an extended arm across the front of the performer's thighs.

Objective of the study

The purpose of the study was to determine the effect of Kolkali training programme on Muscular Strength of high school boys. The study may help the people to know the effect of Kolkali dance, on selected variable of health related physical fitness and probably make an impact on the public to follow traditional dances in the form of body exercises to maintain good health and fitness. Further, this study may educate parents and academicians of school education to include dances in their co- curricular programmes.

Hypothesis

There will be significant improvement in Muscular strength as a result of training programme in Kolkali dance.

Design of the study

Randomly selected 60 subjects were divided into two equal groups as 'A' and 'B'. After taking the pre-test for Muscular Strength (Pull ups test), the training programme was given to experimental group 'A' where as the group 'B' was the control group. The experimental group 'A' had undergone the training programme in Kolkali dance, thrice a week (Monday, Wednesday and Friday) for 16 weeks. Two middle tests after 5 weeks and 10 weeks and a post test were conducted.

ANALYSIS OF DATA AND DISCUSSION OF FINDINGS

The t-test was employed to analyse the significance of difference from the pre-test to post test on selected variables. The level of significance chosen was 0.05.

The following table of statistical descriptions reveal the effect of training programme in Kolkali.

Table 1

Significance of Differences Between the Pre-Test and Post-Test Means of the Kolkali and Control Groups on Muscular Strength

Means								
Groups	Initial	First middle test	Second middle test	Final	MD	SD	SE	't' value
Kolkali (N=30)	3.00	4.00	5.76	6.40	3.40	0.8136	0.1485	22.887*
Control Group (N=30)	2.566	2.533	2.433	2.466	0.10	0.4806	0.0877	1.140
* Significant at 0.05 level 't' value required at 0.05 level = 2.045 (df 29)								

The statistical results presented in table 1 indicate that the Kolkali group exhibited significant improvement in muscular strength with initial mean score (3.00) and the final mean score (6.40). Further it demonstrates that the obtained 't' value (22.887) is higher than the tabulated 't' value (2.045) at 29 degrees of freedom. Hence the obtained 't' value was found to be highly significant at 0.05 level. On the other hand, the initial mean value (2.566) and the final mean value (2.466) for control group showed negligible difference. Since, the obtained 't' value (1.140) is less than required 't' value (2.045), it was therefore insignificant at 0.05 level. The graphical representation of means of the Kolkali and Control groups are shown below.

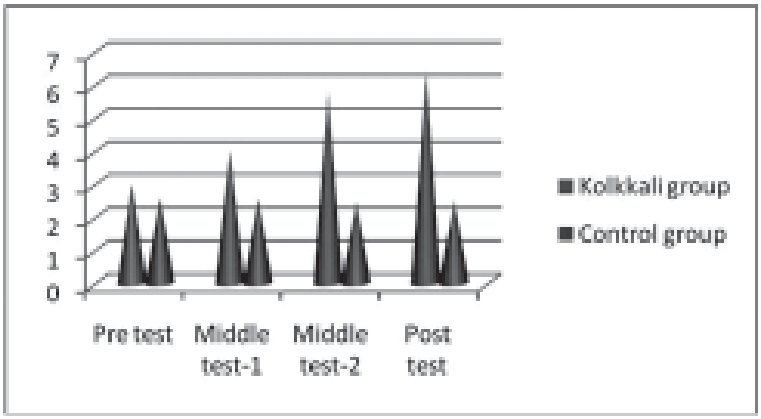


Figure 1: Graphical representation of mean difference of Kolkali and Control groups on muscular strength

CONCLUSION

Dance is considered an activity that involves coordinating movements with music, as well as brain activation because it is constantly necessary to learn and remember new steps. Dance as a musical-kinetics skill, requires the coordination of body movements with rhythmic stimuli, developing the adaptability of the movement. Dancing is a whole-body workout that's actually fun. It's good for your heart, it makes you stronger, and it can help with balance and coordination. Based on the analysis of statistical results, it was observed that there was significant improvement in Muscular strength for the experimental group as a result of the training programmes conducted for a period of four months. There was no significant improvement shown by the control group.

References :

Davis, Juke (1971) "Personal rhythm and movement" ***Completed Research in Health, Physical Education and Recreation***, Vol -14:250

Hazeline, Rex (1985) ***Fitness for Sports***. Marlborough: The Crow-Wood Press.

Kaufmann K. (2011). Movement as a metaphor: how persistence, the tao and the wisdom of the ostrich helped build school dance programs. *J. Phys. Educ. Recreat. Dance* 82, 37–45. 10.1080/07303084.2011.10598627 [CrossRef] [Google Scholar]

Phillips, D. Allen and Haornak, E. James (1979) ***Measurement and Evaluation in Physical Education***. New York: John Wiley and Sons.

Vivian, H. Hayward (1991) ***Advanced Fitness Assessment and Exercise Prescription***. 2nd Edn, Champaign: Human Kinetics Publishers, Inc.

Dr. JAYAKUMAR. K.,
Associate Professor
of Physical Education,
N.S.S. College, PANDALAM

❑ ❑ ❑

Organoleptic Acceptability and Nutritional Properties of Millets Based Low Glycemic Index Value Added Ready To Cook Cheela Mix

Alisha • Dubey Prakash Ritu • Prasad Ranu

ABSTRACT

The main aim of this study was to develop a low-glycemic index value-added ready-to-cook food product. Millets like buckwheat, foxtail, and barnyard millets and dehydrated leaves (bathua and chickpea) were taken as main ingredients for the formulation of the product. Millets are used in human nutrition to improve nutritional health benefits. Millets are nutritionally superior to conventional food grains and exhibit hypoglycemic effects due to the presence of a higher proportion of unavailable complex carbohydrates, resistant starch, and sugars released slowly. Millets (buckwheat, foxtail, and barnyard millets flour) and dehydrated leaves were incorporated with Bengal gramme flour, and vegetables in various ratios to make four treatments(T1, T2, T3 and T4) per 100g. A 9-point hedonic scale was used to assess the sensory quality of all four treatments of ready-to-cook cheela mix. The experiment was repeated three times, and the results of the inquiry were examined statistically using analysis of variance (ANOVA).The treatment T3 scored the highest for colour and appearance, body and texture, taste and flavor, and overall acceptability, with scores of (8.6), (8.8), (8.8), and (8.8), respectively, and hence, was found to be the best. The proximate analysis of the cheela mix resulted in a high increase in fiber,

protein, and iron content. Hence, this product found that it is healthy for diabetes, obesity, and cardiovascular diseases.

KEYWORDS

Low Glycemic Index, Millets, ANOVA, Nutrients, Treatments, Chickpea Leave,

INTRODUCTION

Several traditional ready-to-eat mixes that are suitable for the Indian palate have grown in popularity. The purpose of such food mixes is to save time for the homemaker due to the "kitchen's" ease, as well as to fulfil the urgent and unexpected needs of the family. Providing hospitality to unexpected visitors in a pinch. Millet is one of the oldest foods known to humans, and it has been a staple food in India for thousands of years. Millet is a versatile grain that is high in nutrients, non-glutinous, and acid-free. Buckwheat millet (Kuttu), pearl millet/spiked millet (Bajra), finger millet (Ragi), great millet/sorghum (Jowar), foxtail millet (Samai), and barnyard millet (Jhungori/sanwa) are the most common millet varieties grown in India, and are staple foods for people from lower socioeconomic groups, tribes, and hilly regions**. (Muniappan, Karthikeyan, 2018)**

The millets being disease resistant, adaptive and tolerant to adverse environmental conditions, grown with minimum input costs from grower's side. These are used for various purposes viz., food, feed, fodder, green manure and medicines. Millet grains are nutritionally comparable and even superior to major cereals with respect to protein, energy, vitamins, and minerals as well as dietary fiber. **(Sehgal and Kwatra, 2007)**. Millets are the rich source of minerals, nutraceuticals and higher dietary fibers than rice or wheat and which contains 9-14% protein, 70-80% carbohydrates. These are rich sources of phytochemicals and micronutrients. **(Singh, P. and Raghuvanshi, R. S., 2012)**

Chickpea (Cicer arietinum L.) commonly known as chana and Garbanzo beans, is the third most important food legume of the world. Madhya Pradesh, Maharashtra, Rajasthan, Uttar Pradesh, Andhra Pradesh, Telangana, Gujarat, Tamil Nadu, Jharkhand, and Bihar are the major producers of chickpeas and bathua in India.

These leaves are low in glycemic index, Which is good in diabetes mellitus, obesity.

MATERIALS AND METHOD

3.1 Procurement of raw material

Raw materials like ***buckwheat, foxtail millet, barnyard millets, chickpea leaves, bathua leaves, carrots, chilli, and ginger*** were procured from the local market of Prayagraj (chowk) for the preparation of products.

3.2 Experimental site:-

a. The experimental work for preparation and chemical analysis of different products (*Idli* and *Cheela*) was conducted in the research laboratory of Department of Food and Nutrition and Public Health, Ethelind College of Home Science, SHUATS, Prayagraj.

b. Preparation of flour mixture

The selected millets, leaves and other ingredients were cleaned to remove the impurities and processing were done as required by the other ingredients. Then raw materials were ground to fine powder separately, sieved and store in air tight container.

The flowchart for the Processing of selected millets are describes as follows:

Millets (buckwheat, barnyard, foxtail)

↓

Cleaning (chaff, dirt, etc.)

↓

Sun drying in thin layer still 10% moisture remains

↓

Grinding to fine smooth flour in Atta maker machine

↓

Storing in air tight container (At room temperature in dry place)

FIGURE: 3*.1 Flow Diagram For Processing Of Millets (Buckwheat, Barnyard, Foxtail Millet*)

(*Source: Sahai and Singh, 1991*)

Dehydration of selected Green leaves.

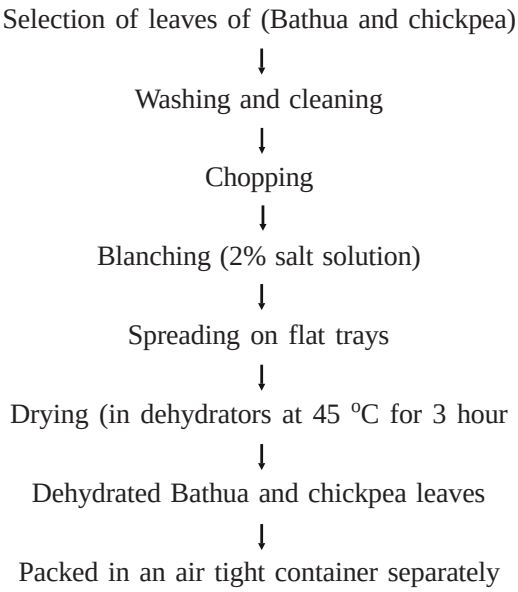


Figure 3.2 : – Flow Diagram For Processing Of Bathua And Chickpea Leaves

Sources*:* –Srivastav and Kumar, (2009)

NUTRITIONAL ANALYSIS OF LOW GLYCEMIC VALUE ADDED READY TO COOK MIXSES *IDLI* AND *CHEELA* OF DIFFERENT TREATMENT

Nutritive value of the prepared value added products was determined by using the value obtained by analysis of multi millet flour and dehydrated leaves**.** Methods describe by **AOAC (2005)** was used for determination of chemical composition of prepared RTC mixes this included *:* –

- Determination of moisture by FSSAI Lab manual method .
- Determination of fat by soxhlet method
- Determination of Crude fiber estimation using extraction method

- Determination of protein by Lowry method
- **Estimation of Carbohydrate:**
- Determination of energy total carbohydrate was done using the FSSAI Lab manual method

  CHO (g) = 100 – Protein (%) + Fat (%) + Ash (%) + Moisture (%)
- Determination of calcium by titration method
- Determination of iron using spectrophotometer method

STATISTICAL ANALYSIS

The data was statistically analyzed by using analysis of variance (two way classification) and critical difference technique. A significant difference between the treatments was determined by using CD (Critical difference) test (Appendix C). 't' test was performed for comparing the difference in the nutritional content between control and best treatment of the developed food products. **(Chandel, 2006).**

RESULT AND DISCUSSION

Low Glycemic Index Ready to Cook *Cheela* Mix

Barnyard millets, Foxtail millets, and buckwheat as the main ingredients used in cheela. For the preparation of the RTC low glycemic index *cheela* mix, multimillets and dehydrated leaves flour and vegetables are mixed as side ingredients. For the purpose of standardization, a number of preliminary trails were conducted. Different kinds of blends, along with 100 percent Bengal gram flour as control was used to make products. All the ingredients were mixed in a proper ratio and a small amount of salt was also added.

Table 1: Average sensory scores of control and treated sample of *CHEELA.*

Control and Treatments	Colour and Appearance	Body and Texture	Taste and Flavor	Overall Acceptability
T0	7.86±0.06	8.2±0.1	7.4±1	7.8±0.1
T1	8.2±0.10	7.9±0.1	7.4±0.4	7.9±0.2
T2	7.1±0.06	7.7±0.7	8.1±0.5	8±0.11
T3	8.6±0.06	8.8±0.1	8.8±0.3	8.8±0.13
T4	6.9±0.17	6.7±0.1	7.6±0.6	6.6±0.13
F-test	38.16	3.9	14.7	45.4
C.D	0.37	1.2	0.48	0.37

*M ±SE = Mean ± standard error, *significant difference*

Table 1 presents that the overall acceptability of cheela at the 57 percent level of replacement scored the highest scores on the hedonic scale, while all cheela treatments were considered to be acceptable by panel members. The cheela with 57 percent replacement was optimised and found to be the best in terms of colour, texture, taste, and overall acceptance, as shown in the table. All the result were significant.

Table : 2 Average Nutrient Content In Control And Different Treatment Of *Cheela* Mix Per 100g.

Particulars	Control T_0	Treatments			
		T_1	T_2	T_3	T_4
Moisture (g)	10.70	10.01	9.45	8.60	8.01
Energy (kcal.)	360	367.20	365.38	362.20	359.80
Protein (g)	17.70	22.90	24.40	26.70	28.30
Carbohydrate (g)	60.90	62.20	68.90	73.25	78.20
Fat (g)	5.20	4.50	3.42	2.70	2.01
Crude fiber (g)	1	2.80	4.23	5.90	6.40
Calcium(mg)	56	46	38.56	33.01	30.31
Iron (mg)	5.3	7.1	10.28	14.2	18.9

As the replacement of Bengal gram flour with (buckwheat, foxtail and barnyard) millets and dehydrated leaves (chickpea and bathua) decrease, the percentages of moisture content in treatments. Moisture content of flour mixture was highest in T0 (10.70) followed by T1(10.01) and T2(9.45) per 100g respectively. Results revealed that highest energy was found T1 (367.2) followed by T2 (365.38), T3 (362.20), T0 (360) and T4 (359.8) kcal per 100g respectively. Protein content of flour mixture was highest in T4 (28.30) followed by T3(26.70), T2(24.40), T1(22.90) and T0(17.10) gram per 100g respectively. The protein content of the flour was increase as the incorporation level of dehydrated leaves bathua and chickpea increased.

Carbohydrates content of flour mixture found to be highest in T0 (60.9) followed by T1 (62.20), T2 (68.90), T3 (73.25) and T4 (78.20) gram per 100 g respectively. Fat content as the incorporation level of millets decrease the level of fat content.

Calcium content of ready to cook Cheela mixture was highest in T0 (56) followed by T1 (46), T2(38.56), T3(33.01) and T4 (30.31) per 100g respectively. Protein content of the mixture was increase as the incorporation level of Bengal gram flour increase. Iron content of ready to cook Cheela mixture was highest in T4 (18.9) followed by T3 (14.2), T2(10.28), T1(7.1) and T0(5.3) per 100 g.

CONCLUSION

From the findings of the study undertaken, it is concluded that selected Millets like buckwheat, foxtail, and barnyard millets and dehydrated leaves (bathua and chickpea) were taken as main ingredients for the formulation of the product were highly acceptable in terms of taste and flavor, body and texture, colour and appearance and overall acceptability when compared with control by the Sensory evaluation of all the four treatments of prepared cheela premix was done by using a 9-point hedonic scale. The proximate analysis of the cheela mix resulted in a high increase in fiber, protein, and iron content As a result, low-glycemic cheela mix was shown to be highly recommended for people with diabetes or obesity.

REFERENCE

Association of Official Analytical Chemists (AOAC) (2000). Official methods of the Association of Official Analytical Chemists. 17 ed. Gaithersburg: A.O.A.C. USA.

Sehgal, A. and Kwatra, A.,(2007) Use of pearl millet and green gram flours in biscuits and their sensory and nutritional quality. Journal of Food Science and Technology, 44(5): 536-538.

Singh, P. and Raghuvanshi, R. S., (2012) Finger millet for food and nutritional security. African Journal Food Science, 6(4): 77-84.

Sahai, K. M. and Singh, K. K. (1991) Milled jowar: availability, constraints and prospects, Productivity, **32** (2): 258-261.

Srivastava, R.P and Kumar.S. (2002) Food trends and the changing consumer. *Journal of molecular nutritional food research.* 36(3):320-321.

Chandel S.R.S., (2006) Analysis of variance .Hand book of Agricultural Statistics, 4th Edition, 13-17;B35.

Shrilakshmi, B. (2010) Nutrition Science.7th edition, *New Age International (P) limited, Publisher* (417-440).

Muniappan, Karthikeyan;Raghavan, Vijaya; Nachimuthu, Varadharaj; Raveendran, Malathi; Panaiyuran, Saravanan; Vediyappan, Vediyappan; Nayak, Bijaya Kumar; (2018) DHAN FOUNDATION AND MCGILL UNIVERSITY

Alisha
Research scholar

Dubey Prakash Ritu
Associate Professor

Prasad Ranu
Professor and Dean

Department of Food Nutrition and Public Health,

Ethelind college of Home Science, Sam Higginbottom University of Agriculture, Technology and Sciences, Allahabad-211007(U.P.)

❑ ❑ ❑

Communication Patterns and Technologies for The Prisoners in Jails in India

Preetinder Kaur • Dr. Ekta Mahajan

Abstract

The communication policies of Prison system in India concerns the aspect of how people who are in the prison receive information and communicate with people outside of the Institutions where they are confined. Incarceration adversely impacts the life of not only the individual but of the whole family. Empirical research shows that the regular communication with the family of the incarcerated person not only improves family stability but also helps him/her to reintegrate with the social system at their release. However, the current Prison rules in India create a barrier that significantly impacts the ability of inmates and their families to communicate. There are traditional and newly developed communication tools that have inherited advantages and disadvantages. In this paper we have discussed how various Prison systems around the world that have adopted Communication tools, that can be engaged with a regulated approach for better communication services to effectively reduce barriers and improve outcomes in Prison system in India.

This research work opens with a **brief review of the History of Prisons in India and of the communication technologies being in use and are useful in future, taking into account the emphases on correction, reformation and rehabilitation.**

The further study describes the Prison reforms before and

after independence of India, the present status of communication technologies being in use, inside and outside the Prison, recent trends in communication technologies being introduced in the Prison system in India. The secondary data has been collected in the form of websites, journals as well as books for the purpose of collecting the facilities being provided in the Prisons in India.

Keywords: Prison Reforms, Communication Technologies, Correctional Reforms, Communication Tools

Introduction

"Technology is the best when it brings people together", Matt Mullenweg has said. However, the systematic barriers in the Prison system significantly impact the ability of inmates and their families to communicate. Prisons are existed to the time immemorial and are known by different words, like correctional homes, detention homes or centers, jails, remand centers, etc. Prison in itself is a system of institutional establishment for convicts and undertrials during their period of trial. In any society, crimes exist and so the prisons also exist. Imprisonment solves the objective of the punishment of various crimes as abided by the laws of the country.

Prisons are meant for the formal purpose of detaining the culprits. Prisoners are deprived of their movement and freedom in the prisons. The actual purpose of sending the prisoners to the prison is to transform them into a law abiding citizens and transform them to a better human being. These correctional homes have a responsibility to rehabilitate the prisoner to the normal outer world to lead a normal life. This objective can only be achieved by putting emphasis on social, ethical values and above all addressing the inmate communications as needed. Efforts have to be put to address the need of proper and modern communication technologies to be introduced in the Prison system and Prison reforms with a regulate approach for communication services to effectively reduce the barrier between the prisoner and the outer world even in restricted environment.

Meaning of Prison

The term prison is derived from the **Latin language, which means to seize**. According **to Oxford English Dictionary,** prison means a place properly efficient and equipped for the reception of

persons who by legal process are committed to it for safe custody while pending of trail and punishment.

Under the **Government of India Prisons Act, 1870** prison means any goal or penitentiary including the airing grounds and other grounds or buildings engaged for the use of the prison. Prison means jail or any place which is used for the detention of prisoners permanently or temporarily under the general and special orders of a Local Government.

According to the **Encyclopedia Britannica,** Prison means an institution used for the confinement of persons who convicted for major crimes or felonies.

Traditionally, Prison means a place in which persons are kept in custody when trial is pending or in which they are confined as punishment after conviction. The meaning of prison is different for different people like for law abiding person it is a place where criminals end up and for criminals it may be a vague peril or an unavoidable humiliation and for social inadequate it may be a shelter and for some isolated persons prison may be a place where they can find some appearance of championship and for prison officer prison is a place of work and for the psychologist it is a career in studying behaviour and for other persons it is an experience which slows up time, which crows them together, sets them apart and changes the course of their lives.

In India there are three levels of Prison such as Taluka level, district level and central level (sometime it is also known as zonal / range level). The jails in these levels are known as Sub jails, district jails and central jails respectively. In general the infrastructure, security, medical facilities, educational and rehabilitation facilities are better from sub jail to central jail. There are also some other types of jail such as women jails, Borstal school, open jails, and special jails.

Prison Reforms in India

Prison Reforms-Pre-Independence

In 1835, the modern prison system in India was introduced by TB Macaulay. A committee was formed named as "Prison Discipline Committee" in 1836 which submitted a report in 1838 and recommended increased rigorous treatment towards prisoners meanwhile rejecting humanitarian needs and reforms for the

prisoners. Due to this recommendation, Central Prisons/Jails were constructed. Thus, the contemporary prison administration is a legacy of the British Rule in India.

The 2nd commission enquiry in 1864 made similar recommenda-tions regarding the jail management and discipline, but in addition, they made suggestions regarding the accommodation for the prisoners, adequate diet and medical care to be given to prisoners.

In 1919-20, the Indian Jail Reforms Committee was appointed to suggest measures for bringing reforms in the Prison system. The committee was headed by Sir Alexander Cardio. The committee recommended that the intake of every jail to be measured and checked according to the size of the jail.

In 1946, a Jail Reform Committee was constituted, for the formation of the jails. The Committee gave lots of recommendation, among them major recommendations were, to treat child offenders separately, Women offenders, habitual offenders and handicapped offenders to be classified separately and modern jails to be constructed.

Prisons Reforms after Independence

The reformation of jails fastened in 1956, and the punishment was substituted with the imprisonment for life. In 1949, a major reform was introduced, wherein the Pakawasha Committee permitted for taking work from prisoners like making roads and for that wages to be paid to the prisoners. After that in 1951, Dr. W.C.Reckless who was the technical expert gave suggestions on which All India Prison Manual was formed in 1957.

Under the Chairmanship of Anand Narain Mulla, All India Committee on Jail Reforms was constituted by Government of India, to review the laws, rules and regulations.

Juvenile Justice Act got enacted in 1986 wherein Observation Homes, Special homes and Juvenile homes were constituted wherein the neglected and delinquent children can be kept for their safety when they are in need.

The Justice Krishna Iyer Committee appointed by Government of India, undertook the study to see the situation of women in prisons in India in 1987.

In the landmark decision of the (1997) 2 SCC 642, The case

has identified **Six Major Problems**, that needed immediate attention **Supreme Court in Ramamurthy Vs. State of Karnataka** for the reforms to be implemented.

- Deficiency in Communication
- Overcrowding
- Delay in Trial
- Neglect of health and hygiene
- Insufficient food and inadequate clothing
- Management of open prisons

Communication Technologies in Prison System in India

Technology plays a vital role in communications and under certain circumstances like during incarceration, communication is needed for reducing barriers between the prisoner and his/her family. Being in prison impacts the whole family of the prisoner, whether it is family relationships, financial stability, mental health or well being of the family members, it affects a lot. However, systematic approach towards communication techniques in the prison helps the prisoner to be in touch with the family and the outside world, which helps the inmate and the relatives to be in touch and boost morale at both ends.

It immediately disturbed my whole family because of the distance and the cost incurred to visit me in jail. I become a dead person for my family and my mother subsequently died after a month of my trial. It's been a devastating state for me to see myself living all alone and I exist for no one in my family.

• Recently shifted prisoner to Ropar District Jail

The separation created by incarceration adversely impacts relationships between inmates and their significant others, spouses, and children.[1] Divorce is more likely for those who are incarcerated.[1] Living arrangements for children are likely to change, often resulting in the separation of siblings.[2] The loss of the inmate's support and the fines and fees that often accompany incarceration can create devastating financial problems.[3] Communications between inmates and their family members can help alleviate many family relationship issues. The benefits extend to both inmates and their non- incarcerated family members.[4] These

benefits include better family relationships, reduced physical and mental health issues, and improved academic performance for children in school.[5]

Similarly, communications can help improve the behavior of inmates during and after incarceration.[6] Recidivism rates for inmates are alarming, with more than two-thirds of prisoners re-arrested within three years of release and more than three-fourths re-arrested within five years.[7] Studies show that inmate-family communications can promote successful reentry into society and help reduce recidivism.[8] Additionally, communications can positively impact conduct during incarceration.[9]

Despite these benefits, physical and practical obstacles often prevent communications. While physical distance between correctional institutions and families is often the primary hurdle for visitation.[10] Policies and rules purported to promote security, and child-unfriendly environments also create substantial barriers for communications between inmates and their families.[11]

Can technology brings a change in bringing synergy to communications inside the prison and removing obstacles associated with in-person visitation? New communication tools are in line as from landline phones to mobile phones, from text messages to emails, from Skype to video conferencing, from Face Time to Video Chats, technology is expanding its wings everyday and giving us solutions to be adopted.

Since technology is giving us lots of options but the promise to adopt such solutions raises various questions on the part of the security of the inmates and the Prison system. Moreover, the Jail system which even restricts the in-person meetings can favour to adopt the new technology communication system that is swift to use and needs more vigilance in terms of communication is concerned.

Furthermore, jails are typically more restrictive on communications than prisons.[12] In particular; jails may charge more than prisons for telephone calls and may restrict mail communications to postcards.[13] Additionally, many jails limit or even ban contact visitation.[14] The restrictive visitation policies of jails can have detrimental effects on children, especially infants and newborns.[15] The need for physical bonding during the child's first

year is essential to the child's relationship with the child's parent.[16] Disruptions to this bonding can create trauma, fear, distrust, distress, and anxiety for children.[17]

Communication in the Prison System

Communications help preserve family stability for people who have an incarcerated parent or spouse. For children, communications with an incarcerated parent can help reduce anxiety and foster parent-child relationships.[18] Significantly, studies have shown adverse health consequences associated with the inability to have regular contact with incarcerated family members.[19] Children who communicate with incarcerated parents "exhibit fewer disruptive and anxious behaviors.[20] Programs that promote and facilitate visitation with incarcerated parents report positive impacts for children, including stronger parent-child bonding, less anxiety and fear, better performance in school, and improved behavior.[21]

In addition to improving family stability and inmates' mental health, communications between inmates and their families reduce crime rates and positively affect inmates' reintegration into communities.[22]

Studies not only show the potential for visitation to reduce crime after release but also show better inmate conduct during incarceration.[23] Scholars have asserted several grounds to explain why visitation may improve inmates' behaviors, including that visitation alleviates some of the stress and social isolation associated with incarceration, "maintain[s] social bonds," and "improv[es] prisoners' perceptions of and attitude towards the prison system and its staff.[24] Researchers have concluded that both theory and empirical research support the claim that communications from outside sources can help reduce behavioral problems during incarceration and recidivism upon release.[25]

Traditional Methods of Communication in the Prison System in India

Traditionally, communications with inmates have occurred via visitation, mail, or telephone. [26]

Visitation

The Indian Jail Committee, 1919-20, had laid down guidelines for the appointment of prison visitors stating that

"The person selected for the position of a non-official visitor of a jail should be chosen on the ground of definite qualifications, such as an interest in prison matters or other social work, or ability and willingness to assist in finding work for prisoners on release. Selection should not be made solely on the ground of social position, wealth or political influence, but on the basis of special fitness." (515 Report of the IJC- 19-20)

Visitation for inmates is generally considered a privilege rather than an absolute right.[27]

Advantages of Face to Face visitation

Face-to-face communications may be the best type of communications-creating stronger family relationships, improving prisoner behavior, reducing recidivism rates, and helping prisoners reintegrate into society after release.[28] Alternatives to in-person visitation lack the psychological advantages that arise from being in the same room with a family member.[29] Advocates of visitation stress the importance of contact visitation to help maintain relationships between parents and children and advance the emotional well-being of children.[30]

Disadvantages of Face to Face visitation

Travel concerns typically represent the primary reason for failure to visit.[31] Prisons are often located in remote, difficult-to-access places. For example, more than 60% of state prisoners and 80% of federal prisoners are in facilities located more than one hundred miles from the inmate's residence.[32]

Limited visitation times also exacerbate transportation concerns. Visitation hours vary significantly by state.[33] While some states establish a minimum number of hours for visitation, other states set a maximum number of hours for visitation. [34] For low-income families, visitation is often cost prohibitive. Costs include time off from work, transportation fees, and lodging expenses.[35]

Dharambir v. State of U.P (20210) 5 SCC 344

The court directed the State government to allow family members to visit the prisoners and for the prisoners at once in a year, to visit their families under guarded conditions.

Letter Writing

In Madhukar Bhagwan Jambhale v State of Maharashtra & Others (1987), the court observed:

We fail to see why the prisoner should not give vent to his grievances against the prison administration to the outside world through his letter...[when] the prisoner is not prevented from making these grievances in the interviews which are permitted under the rules…By reason of conviction and being lodged in jail, the prisoner does not lose his political right or rights to express the views on political matters.

Arun Ferreira, advocate and author of Colours of the Cage (2014) describes how his letters used to pass through "various layers of officialdom," and how his letters would be read and photocopied to be sent to investigating units. He had to stick to facts while communicating, as views on political matters, criticism of jail administration or even personal emotions regarding experiences in prison were insisted to be removed from those letters.

"We would be summoned and lectured on how such writing would incite prison disrespect and indiscipline. Disparaging remarks about the jailer could not even be contemplated."

– (Ferriera 2014, pp 35)

Prem Shankar Shukla, an undertrial prisoner in Tihar Jail, New Delhi, sent the following telegram to the Supreme Court in 1979:

"In spite of court order and directions of your Lordship in Sunil Batra v. Delhi Admn. handcuffs are forced on me and others"

– Admit writ of Habeas Corpus.

Communication through Telephone

As with access to visitation and correspondence, courts generally permit regulation of inmates' telephone communications and do not recognize an inmate's absolute right to telephone access.[36]

As with mail, telephone conversations help alleviate many of the physical and practical concerns that arise with in-person visitation. For example, telephone communications do not require

travel considerations. Additionally, telephone communications are not subject to restrictive visitation policies, including dress codes, invasive searches, and long waiting times. Furthermore, telephone communications prevent children from experiencing potentially unfriendly and traumatic incarceration environments.[37]

Additionally, inmates and their families face challenges with telephone communications. The most common complaints involve telephone charges. [38] Telephone charges can include excessive rates, fees, and commissions given back to correctional institutions.[39] The fees often nearly double the price of a call.[40] Another problem with telephone communications arises for prisoners with hearing disabilities.[41]

Technology Alternatives to Communication in Prison System in India

New technology offers potential solutions to some of the limitations of on-site visitation, mail correspondence, and telephone calls. For example, advances in technology now permit electronic messaging and video visitation.[42]

Email or Electronic Messaging

With 97% usage among smartphone owners, texting is the primary activity on smartphones. [43] Emailing is also popular, with 88% of smartphone owners using their phones to email.[44]

To help inmates access electronic messaging, several jurisdictions are providing or considering providing free laptops to inmates.[45] An additional benefit of such programs is that the laptops can be used for education and training to help inmates with reentry.[46]

Video Conferencing

Video Conferencing has the potential to resolve many of the concerns associated with traditional visitation. The potential advantages of off-site electronic visitation include eliminating transportation time and expenses for family members, avoiding restrictive visitation practices and policies, and reducing the potentially traumatic exposure of children to detention facilities.[47]

Video systems also offer children the ability to visit inmates in jurisdictions that for security concerns prohibit in-person child

visitation.[48] Additionally, video visitation allows people who have medical issues that restrict travel the ability to visit inmates.[49] Advocates also promote the security and cost savings for facilities that use video systems.[50]

Video visitation also avoids literacy problems associated with mail and electronic messaging. Unlike telephone communications, mail correspondence, or electronic messaging, video visitation allows inmates and their families to see each other. Incarcerated parents report that video visitation allows them to view and thereby experience their families in their home-life setting.[51] As one study reported, "Video visits provided loved ones with visual reassurance that they were physically and emotionally well-something phone calls and letters could not do."[52] As one inmate describes, video visitation allows her to see and keep track of her ailing husband.[53]

A Hybrid Visiting Approach

While in-person visitation may be the best communications method, other methods, including technology alternatives, can also be beneficial. Ideally, the alternatives should supplement and not replace in-person visitation. [54] "A hybrid visiting approach that offers both video and in-person visiting offers the most flexibility and ensures that the benefits of in-person visiting are preserved and possibly enhanced."[55]

Recognizing that the best options for communications may vary by facility, Prison System in India should develop plans to evaluate their potential options to supplement in-person visitation.

Conclusion

Communications between inmates and their families have the potential to help maintain family stability, reduce crime rates, and improve the reentry of inmates into society. While in-person visits may provide the best form of contact, often such in-person visits may not be practical or feasible. As a result, government and Prison system should consider alternative forms of communication to supplement in-person visits. Current technology has the potential to improve communications. Undoubtedly, future technological advances will create even more alternatives to help inmates.[56] For example, experimental video programs now offer virtual touch and "can render the shape and movement of objects across the web"

which could lead to technology that would allow people to "embrace" each other over video. [57]

REFERENCES

- DEVUONO-POWELL ET AL., supra note 3, at 31-34
- See id. at 31 (citing a study that found that incarcerated men were more likely to divorce than men who were convicted but not incarcerated).
- NANCY G. LAVIGNE ETAL., URBAN INST., BROKEN BONDS: UNDERSTANDING AND ADDRESSING THE NEEDS OF CHILDREN WITH INCARCERATED PARENTS 3-4 (2008), https://www.urban.org/sites/default/files/publication/31486/411616Broken- Bonds-Understanding- and-Addressing-the-Needs-of- Children-withIncarcerated-Parents.PDF.
- ANNIE E. CASEY FOUND., A SHARED SENTENCE: THE DEVASTATING TOLL OF PARENTAL INCARCERATION ON KIDS, FAMILIES AND COMMUNITIES 3 (2016), http://www.aecf.org/m/resourcedoc/aecf-asharedsentence-2016.pdf (describing how incarceration "push[es] families teetering on the edge into financial disaster").
- DEVUONO-POWELL ETAL., supra note 3, at 31-34.
- MATTHEW R. DUROSE ET AL., U.S. DEP'T OF JUSTICE, NCJ 244205, RECIDIVISM OF PRISONERS RELEASED IN 30 STATES IN 2005: PATTERNS FROM 2005 TO 2010, at 1 (2014), https://www.bjs.gov/content/pub/pdf/rprts05pO510.pdf.
- STEVE CHRISTIAN, NAfL CONFERENCE OF STATE LEGISLATURES, CHILDREN OF INCARCERATED PARENTS 4-5 (2009), https://www.ncsl.org/documents/cyf/childrenof incarceratedparents.pdf; Bernadette Rabuy & Daniel Kopf, Separation by Bars and Miles: Visitation in State Prisons, PRISON POL'Y INITIATIVE (Oct. 20, 2015), https://www.prisonpolicy.org/reports / prisonvisits.html.
- Grant Duwe & Valerie Clark, Blessed Be the Social Tie that Binds: The Effects of Prison Visitation on Offender Recidivism, 24 CRIM. JUST. POL'Y REV. 271, 276-77 (2013).
- STEVE CHRISTIAN, NAfL CONFERENCE OF STATE LEGISLATURES, CHILDREN OF INCARCERATED PARENTS 4-5 (2009), https://www.ncsl.org/documents/cyf /childrenof incarceratdparents.pdf; Bernadette Rabuy & Daniel Kopf, Separation by Bars and Miles: Visitation in State Prisons, PRISON

POL'Y INITIATIVE (Oct. 20, 2015), https://www.prisonpolicy.org/ reports /prisonvisits.html.

- BERNADETTE RABUY & PETER WAGNER, PRISON POLICY INITIATIVE, SCREENING OUT FAMILY TIME: THE FOR-PROFIT VIDEO VISITATION INDUSTRY IN PRISONS AND JAILS 6, 11 (2015), https://static.prisonpolicy.org/visitation / Screening Out Family Time January2015.pdf
- BERNADETTE RABUY & PETER WAGNER, PRISON POLICY INITIATIVE, SCREENING OUT FAMILY TIME: THE FOR-PROFIT VIDEO VISITATION INDUSTRY IN PRISONS AND JAILS 6, 11 (2015), https://static.prisonpolicy.org/visitation / Screening Out Family Time January2015.pdf
- Megan McMillen, Note, I Need to Feel Your Touch: Allowing Newborns and Infants Contact Visitation with Jailed Parents, 2012 U. ILL. L. REV. 1811, 1812 (2012).
- Megan McMillen, Note, I Need to Feel Your Touch: Allowing Newborns and Infants Contact Visitation with Jailed Parents, 2012 U. ILL. L. REV. 1811, 1812 (2012).
- Megan McMillen, Note, I Need to Feel Your Touch: Allowing Newborns and Infants Contact Visitation with Jailed Parents, 2012 U. ILL. L. REV. 1811, 1812 (2012).
- Fulcher, supra note 56, at 101.
- DEVUONO-POWELL ETAL., supra note 3, at 9.
- LA VIGNE ET AL., supra note 10, at 10 (citing studies and finding that "maintaining contact with one's incarcerated parent appears to be one of the most effective ways to improve a child's emotional response to the incarceration and reduce the incidence of problematic behavior").
- Id. at 11 (describing results reported from the Girl Scouts Beyond Bars and the Living Interactive Family Education programs); Kathleen J. Block & Margaret J. Potthast, Girl Scouts Beyond Bars: Facilitating Parent-Child Contact in Correctional Settings, 77 CHILD WELFARE 561, 573 (1998).
- DEVUONO-POWELL ET AL., supra note 3, at 29; FESTEN ET AL., supra note 73; Allyson Walker, Frequent Communication with Friends and Family Proven to Lower the Rate of Recidivism, LEGACY INMATE COMM.: BLOG (June 19, 2014), https:// www.legacyinmate.comblog/post/frequent-communication-with-friendsand-family-proven-to-lower-the-rate-of-recidivism.

- Id. at 547-48; see also Kerryn E. Bell & Dale M. Lindekugel, Correlates of Violence within Washington State Prisons, 16 CRIMINOLOGY, CRIM. JUST., L. & Soc'y 21, 24 (2015) (finding "ample support in the research that visitation and social support do have an impact on prison adjustment and the likelihood of misconduct[,] including violent misconduct"); Karen De Claire & Louise Dixon, The Effects of Prison Visits from Family Members on Prisoners' Well-Being, Prison Rule Breaking, and Recidivism: A Review of Research Since 1991, 18 TRAUMA, VIOLENCE, & ABUSE 185, 188-95 (2017) (analyzing the results and limitations of studies published from 2002 to 2012 regarding the impact of visitation on prisoners' mental health and rule violations in prison).
- See, e.g., Joshua C. Cochran, The Ties That Bind or the Ties That Break: Examining the Relationship Between Visitation and Prisoner Misconduct, 40 J. CRIM. JUST. 433, 434 (2012).
- Boudin et al., supra note 74, at 151-52; Cochran et al., supra note 99, at 548. But see De Claire & Dixon, supra note 101, at 196-97 (concluding that studies show that "visits had significant positive effects on well-being and recidivism," but also identifying the limitations in those studies and indicating that in one study visits from children significantly increased contraband-related violations, presumably because visits allowed "more opportunity to bring contraband into prisons").
- Friedmann, supra note 90, at 25.
- George L. Blum, Annotation, Right of Jailed or Imprisoned Parent to Visit from Minor Child, 6 A.L.R.6th 483 § 2 (2005). See generally Chesa Boudin, Children of Incarcerated Parents: The Child's Constitutional Right to the Family Relationship, 101 J. CRIM. L. & CRIMINOLOGY 77 (2011), for a discussion advocating the rights of children to visit their parents in jail or prison.
- Emily Widra, Seeing Eye to Eye.- Understanding the Limits of Video Visitation, PRISON POL'Y INITIATIVE: BLOG (Apr. 11, 2016), https://www.prisonpolicy.org/blog/2016/04/11/eye-contact.
- Emily Widra, Seeing Eye to Eye.- Understanding the Limits of Video Visitation, PRISON POL'Y INITIATIVE: BLOG (Apr. 11, 2016), https://www.prisonpolicy.org/blog/2016/04/11/eye-contact.
- Fulcher, supra note 56, at 103-04.
- See FESTEN ET AL., supra note 73, at 18; Friedmann, supra note 90

- See, e.g., SARAH SCHIRMER ET AL., THE SENTENCING PROJECT, INCARCERATED PARENTS & THEIR CHILDREN: TRENDS 1991-2007, at 8 (2009), http://www.sentencingproject.org /publications/incarcerated-parents-and-theirchildren-trends- 1991-2007/ (describing results from 2004).
- See Boudin et al., supra note 74, at 160-61.
- SCHIRMER ET AL., supra note 127, at 7 (reporting that 58.5% of state prisoners and 4 4.7 % of federal prisoners had not received any visits).
- SCHIRMER ET AL., supra note 127, at 7 (reporting that 58.5% of state prisoners and 4 4.7 % of federal prisoners had not received any visits).
- Legal Issues Pertaining to Inmate Telephone Use, 2008(2) AELE MONTHLY L.J. 301, 301-04, 306 (2008).
- Legal Issues Pertaining to Inmate Telephone Use, 2008(2) AELE MONTHLY L.J. 301, 301-04, 306 (2008).
- DEVUONO-POWELL ETAL., supra note 3, at 29.
- KuKOROWSKI ET AL., supra note 195, at 2-3.
- KuKOROWSKI ET AL., supra note 195, at 2-3.
- Christie Thompson, Why Many Deaf Prisoners Can't Phone Home, WIRED (Sept. 19, 2017, 7:00 AM), https://www.wired.com/ story/why-many-deafprisoners-cant-phone-home/.
- See Video Visitation, JPAY, https://www.jpay.com/PVideo Visit.aspx (last visited Aug. 9, 2018), for an example of a company offering video visitation.
- AARON SMITH, PEW RESEARCH CTR., U.S. SMARTPHONE USE IN 2015 2 (2015), http://assets.pewresearch.org/wp-content/ uploads/sites/14/2015/03/PI _Smartphones_0401151.pdf.
- AARON SMITH, PEW RESEARCH CTR., U.S. SMARTPHONE USE IN 2015 2 (2015), http://assets.pewresearch.org/wp-content/ uploads/sites/14/2015/03/PI _Smartphones_0401151.pdf.
- See, e.g., John Hult, Tablets Comingfor SD Inmates, ARGUS LEADER (May 9, 2017, 8:01 PM), http://www.argusleader.com/ story/news/2017/05/10/tabletscoming-sd-inmates/314747001/; Ellie Kaufman, In New York, All 51,000 State Prisoners Will Get Their Own Tablet Computers, CNN (Feb. 1, 2018, 4:18 PM), https:// www.cnn.com/2018/02/01/us/new-york-inmates-tablet-trnd/ index.html; Ryan Martin, Why Every Indiana Inmate Could Soon Have a Tablet, INDYSTAR (Mar. 20, 2017, 7:40 AM), http://

www.indystar.com/story/news/crime/2017/03/20 /why-every-indiana-inmate-could-soon-have-tablet/98972704/.

- Kimberly Railey, Some Prisons Let Inmates Connect with Tablets, USA TODAY (Aug. 17, 2013, 3:40 PM), https://www.usatoday.com/story/news/nation /2013/08/17/tabletsforinmates/2651727/.
- HoLLIHAN & PORTLOCK, supra note 24, at 20; Rabuy, supra note 243.
- See Cecilia Brown, Marquette County Jail Moves to Video Visitation System, MINING J. (Apr. 13, 2018), http://www.miningjournal.net/news/frontpage-news/2018/04/marquette-county-j ail-moves-to-video-visitation-system/.
- Josh O'Bryant, Walker County Jail Now Uses Video Visitation for Inmates, WALKER COUNTY MESSENGER: THE CATOOSA COUNTY NEWS (Feb. 2, 2015) http://www.northwestgeorgianews.com/catoosa walker-news/news/walkercounty-jail-now-uses-video-visitation-for-inmates/article_380bbb9a-a959-11e498d7-fba963249215.html.
- HOLLIHAN & PORTLOCK, supra note 24, at 20; Shannon Sims, The End of American Prison Visits: Jails End Face-to-Face Contact - and Families Suffer, GUARDIAN (Dec. 9, 2017, 8:17 AM), https://www.theguardian.com/us-news/2017 /dec/09/skype-for-jailed-video-calls-prisons-replace-in-person-visits.
- See Fulcher, supra note 56, at 102-03.
- DIGARD ETAL., supra note 129, at 13.
- Connie Farris, Caring for My Sick Husband from Prison, MARSHALL PROJECT (Mar. 8, 2018, 10:00 PM), https://www.themarshallproject.org/2018/03 /08/caring-for-my-sick-husband-from-prison.
- RABUY & WAGNER, supra note 69 (arguing that state regulators and legislatures should prohibit bans on in-person visitation). Similarly, electronic messaging should be used to supplement rather than replace traditional mail systems. RAHER, supra note 160, at 5 (discussing how counties have sought to use electronic messaging as part of plan of restricting mail). Massachusetts has recently enacted legislation requiring that video and other electronic devices supplement, rather than replace, in-person visitation. 2018 Mass. Legis. Serv. Ch. 69 § 92 (West).
- HOLLIHAN & PORTLOCK, supra note 24.
- For example, a growing use of video services is for telemedicine,

allowing doctors to treat inmates in prisons. Michael Ollove, State Prisons Thrn to Telemedicine to Improve Health and Save Money, PEW CHARITABLE TR. (Jan. 21, 2016), http://www.pewtrusts.org/en/research-and-analysis/blogs/stateline/ 2 016 /01/21/state-prisons-turn-to-telemedicine-to-improve. This reduces costs because prisons are often in remote areas where doctors, especially specialists, are not available. Id.

- See, e.g., Sophia D., Virtual Prison Visits Mean Some Prison Inmates Never See Family in the Flesh, VC DAILY (Sept. 20, 2017), https://www.videoconferencingdaily.comltrending/virtual-prison-visits-meanprison-inmates-never-see-family-flesh/.
- For example, the Arizona Prison Visitation Project offers "a new way to study visitation through the use of a mixed-method design." Melinda Tasca et al., Moving Visitation Research Forward: The Arizona Prison Visitation Project
- See, e.g., HOLLIHAN & PORTLOCK, supra note 24, at 73 (listing survey questions evaluating video visitation for inmates, visitors, and employees).
- See, e.g., Suzanne Loring, Books Behind Bars: Connecting Inmates to Their Children Through Reading, FED. RES. BANK BOSTON (May 30, 2012), https://www.bostonfed.org/publications/communities-and-banking/2012/summer /books-behind-bars-connecting-inmates-to-their-children-through-reading. aspx. 349. Christopher Zoukis, Literacy and Love: Programs Allow Parents in Prison to Read to Children, PRISONEDUCATION.COM (Apr. 20, 2017), http://www.prisoneducation.com/prison-education-news//literacy-and-loveprograms-allow-parents-in-prison-to-read-to-children.

Preetinder Kaur

Research Scholar, Department of Journalism and Mass Communication, Punjab Institute of Technology, IKGPTU, Kapurthala

•

Dr. Ekta Mahajan

Assistant Professor, Department of Journalism and Mass Communication, Punjab Institute of Technology, IKGPTU, Kapurthala

❑ ❑ ❑

Experiential Learning in Schools : A study in Guwahati City, Assam

● **Dr. Saru Joshi**

Introduction

Education system in India has been endlessly working to equip with new and effective strategies of teaching for appropriate learning and the development of competencies among the students. The National Education Policy (2020) is molded to promote right education through right strategies to address the growing developmental necessities of the students. To achieve the Policies targets teaching and learning have to be interactive, creative and more experiential. Experiential learning is an old approach of learning but due to some certain constraints in the approach, it was not implemented in the right spirit in our education system.It has been said that integrating experiential learning in curriculum can meet the present educational demands as per the students' need and interest. It has the advantage of promoting capacities of critical thinking, creativeness and development of innovative approach among the students. It further helps in discovering one's own knowledge withcuriosity facilitatingexploration, and assimilating the collected information. Through direct experiences, focusing on reflections, and operating on the concepts, the students retain more information and are in a position to develop a wider range of skills.

Literature Review

Studies conducted byKolb in (1984) stated that experimental learning is more discovery, active and cooperative process

involving investigation, construction and artistic creation. Experiential Learning in schools can provide an occasions to the learners the means of acquiring skills and knowledge directly and transform it purposefully in daily life. Creating situation for experiential learning in school can sublimate the traditional method of teaching. For education to be progressive provision has to made to use experiential learning in schools.

Cantor (1995) found that students who traditionally have not participated in internships and students aspiring to enter non-traditional professions and occupational areas are highly benefited by experiential learning. Carrol and Bell (2001) found that teaching learning process is more productive when learners are actively involved in the activities in order to find meaning and connect their concepts and skills to the next level of learning. Yet in another study, Bretz (2001) found that meaningful learning occurs when students are provided with enjoyable experiences that require students to connect their knowledge across the cognitive, affective and psycho- motor domains. The findings from the studies revealed that, experiential learning can create an atmosphere to boost the curiosity and work beyond the four corners of the classroom by exploring, doing or performing activities later help in generalization, applications, involvement and participation in various activities.FurtherDoring (2016) found that there was significant difference in the academic performance of students taught with game-based learning and those taught with the conventional method. Agsalog (2019), revealed that there was a significant effect of experiential learning in School achievement and the students taught with experiential learning approach had meaningful learning experiences.

4. Operational Meaning of the Key Terms Used

Experiential Learning: it refers to the pedagogical approach emphasis on holistic, integrated, enjoyable and engaging learning. The nine experimental learning methods used in the present study are as follows;

(i) **Narrative** – In school setting it refers to the method of learning include reading important lines from the paragraphs, books, chapters, etc

(ii) **Role Play** – it refers to the method of learning to a condition

or a problem by assuming some relevant characters and roles.

(iii) **Story telling**–it refers to the method of learning by telling stories and making verbal presentations.

(iv) **Debates**–it refers to the method of learning by interacting and augmenting in relevant theme or topic.

(v) **Quiz** –it refers to the method of learning in which one make an **attempt to answer asked questions appropriately.**

(vi) **Class discussion**–in school it refers to **students' who shares their views on a particular topic that was previously lectured on among their classmates.**

(vii) **Peer tutoring**–in school it refers to the strategy that involves students serving as academic tutors and tutees.

(viii) **Games**–In schools Games**refers to any activity that creates humour and joyous in students.**

Objectives of the Study

(i) To find out the perceptions of the teachers towards experiential learning.

(ii) To find out the perceptions of the students' towards the effectiveness of experiential learning.

Research Design

(i) **Method** -The present study is an exploratory study as it was designed to find out the various methods adopted by the teacher for experiential learning

(ii) **Samples**- The samples for the present study were were drawn from class IX students studying in three different schools located in Guwahati city of Assam.

(iii) **Sampling Method**- Students were selected for the study by using convenient sampling method.

(iv) **Data generation method** - The investigator visited three schools, and on the basis of availability of students, fifty

respondents willing to participate in the research were taken. Each student was given the questionnaire of one page containing nine questions. The respondents recorded the answers in the questionnaire andit was returned to the investigator on the spot.

To generate the data from the teachers' the investigator sent whats-up message to ten teachers in Google form. However, only six teachers responded to the questionnaire.

Discussion/ Results and Findings

To find out the methods used for experiential learning of students', responses were collected from the teachers. The respondents who shared their ideas on experiential learning are discussed below;

The First respondent stated that experiential learning can be created by using 'narratives' strategy in understanding the concepts of topics or units and conducting self-study before the teacher explains the concepts. The Second respondent stated that experiential learning like Observation, laboratory experiments conducting practicums, field visits and model building etc. could be used to help students in gathering first-hand information related to their subjects. The third respondent stated that the experiential learning can be created by conducting practicum in the classes, assigning the projects and fields study for the students should be attached with the real-life situation learning. The fourth respondent stated that study tours and field trips, students questioning and Self-learning are an effective platform for discoveries in the school. The fifth respondent stated that questioning for gaining insights on topics, encouraging the students to get off their chairs and get them to use interactive tools will help them use more senses making the experience more immersive. The sixth respondent stated that the experiential learning can be created by Including field trips, Role playing, science experiment, Interactive classroom and games**.**

The above findings reveals that experiential learning in school can be conducted using the following methods-Learning by doing, Self-study, observation, practicum, field trips, study tours and students questioning.

To find out the students' responses on the effectiveness of the experiential learning.

Table 1. Students' Response towards the methods of Experiential Learning in School

Sl. No.	Methods for experiential learning	Students Responses		
		Strongly Agree	Agree	Disagree
1.	Narratives	35 (70%)	10(20%)	5(10%)
2.	Role Playing	42(84%)	6(12%)	2(4%)
3.	Story Telling	40 (80%)	10(20%)	0(0%)
4.	Debate	33 (66%)	17(34%)	0(0%)
5.	Quiz	41 (82%)	07(14%)	2 (4%)
6.	Class Discussion	43 (86%)	06(12%)	1(2%)
7.	Peer Tutoring	30(60%)	19(38%)	1(2%)
8.	Games	44(88%)	15(30%)	1(2%)
9.	Field trip	32(64%)	17(34%)	1(2%)

In response to ***Narrative methods of experiential learning,***70% of students i.e. (majority) responded strongly agreed that it is effective method of learning, whereas, 20% i.e. (average) responded agreed and only 10% i.e. (low) disagreed. Since majority of the students responded to strongly agree, it means that Narrative Method of experiential learning should be used in the schools.

In response to the ***Role Play method of experiential learning,***84% of Students i.e. (majority) responded that they strongly agreed that it is very effective method for learning. Whereas, 12% i.e. (average) responded to agree with the method and only 4% i.e. (low) disagree with the method. Since majority of

the students responded to strongly agreed it means that Schools should use the Role play method for experiential learning.

In response to the ***story tellingmethod of experiential learning*** 80% Students i.e. (majority) responded that they strongly agreed that it is very effective method for learning. Whereas, 20% (average) responded that they agreed with the method and no one disagree with this method. Since majority of the students strongly agreed that story telling method is very effective, it means that Schools should use the story telling method in school wherever needed.

In response to the ***Debates method of experiential learning*** 66% students i.e. (majority) strongly agreed that it is effective method of learning. Whereas 34% agreed (average) with this method of learning. No students disagree about this method for learning. Since majority of the students strongly agreed that Debate method is very effective, it means that Schools should use the debate method in school.

In response to the ***Quizmethod of experiential learning*** 82% students i.e. (majority) strongly agreed that it is effective method of learning. Whereas 14% (average) agreed with this method of learning. Only 2% disagree that it is effective method for learning. Since majority of the students strongly that it is very effective method of learning therefore, it should be use in the schools for effective learning.

In response to the ***Class discussion method of experiential learning*** 86% Students i.e. (majority) students strongly agreed that it is very effective method for learning. Whereas, 12% students i.e. (average) agreed with the method and only 2% disagree with the method. Since majority of the students strongly agreed that it is very effective method of learning. The Schools should then use the class discussion experiential method for effective learning.

In response to the ***peer tutoring method*** 30% i.e(majority) Students strongly agreed that it is very effective method for learning. Only 19% agreed with the method that it is effective and 1% disagree with the method. It means that Schools should use the peer tutoring experiential method for effective learning.

In response to the ***Gamesexperiential method*** 88% i.e.

(majority) Students strongly agreed that it is very effective method for learning. Whereas, 34% i.e (average) agreed with the method and only 2% disagree with the method. Since the majority of the students strongly agreed that games is very effective for them therefore, the Schools should use games experiential method for effective learning.

In response to the ***field trip experiential learning*** 64% i.e (majority) Students strongly agreed that it is very effective method for learning. Whereas,17% agreed with the method and 1% disagree with the method. Since majority of the students strongly agreed that field trip is the mos effective method therefore, the Schools should use filed trip experiential method of learning in schools.

Recommendations for the School:

Based on the findings from the above study the following recommendations were made for the schools to implement for the effective teaching and learning. There were twelve recommendations discussed below:

i. **Narrative activities** - Schools should encourage for optimum participation in narratives activities for the students as it will enable them to learn more comprehensively. This will engage the students to have a rich experience, allow them to recall their learning and help them in learning actively & interestingly.

ii. **Organised Role Play-** Role play will develop in Personal interactions by allowing the students to interact more and more to express and exchange their ideas. Arranging forRole Playtime will allow the children to explore and celebrate their learning.

iii. **Story telling –**The schools should practice this method as it helps the students to involve themselves to initiates learning and practicing together and enhance communication skills.

iv. **Debates –** This willEncourage creativity, critical thinking and increase retention for longer period.

v. **Quiz –**This willimprovessocial reach, increases the curiosity, fosters creativity and thinking capacities of the students.

vi. **Class Discussion**-This will help students toopen up and express their ideas and later they can share this with the other students which will ultimately help them to learn and remember the concepts for a longer period

vii. **Peer tutoring** – The schools should encourage peer tutoring in classes as it helps the learners to gain maximum insight into the content as per their level of understanding with the same age group peers.

viii. **Games-** help to provides real-world experiences outside and inside through different activities also creates humour and joys. Therefore, schools are recommended to provide games whenever needed.

ix. **Field Trip-** it provides first-hand knowledge and information to the students.

Conclusion

Experiential Learning is a process of learning in the context of real life situation or learning that occurs through the events in one's life whether that is from class room study, gaining new skills at work , through training, from online programmes or through the mixture of all theses components. The present study reveals that Experiential learning can pave the way for the present and future generation to enhance their school achievement. In many cases the learning happens through the evaluation of one's everyday experiences. The conventional classroom focuses more through abstract, classroom based techniques whereas experiential learning gives exposure to a concrete experience, gained from self directed or informal learning. It provides free space and opportunities where the students can learn according to their interests. To foster creativity and identify the creativity among the students the teachers need to create an environment where the students can express and explore the real life paradigm for optimum benefits. The study also revealed that various methods of experiential learning as discussed above are found to be very effective for the students to enhance participation, involvement and self-creation. Therefore, the students in school premises should be provided with democratic learning

atmosphere. Wherever applicable the above experiential learning method may be used by the teachers

References

1. Agsalog (2019). "Effects of Experiential Learning Approach on the academic performance and motivation to learn physics of grade 10 students". Published at *International Journal of Scientific and Research Publications*, Volume 9, Issue 9, September 2019 844 ISSN 2250-3153.
2. Ambrose, S., Bridges, M., Lovett, M., DiPietro, M., & Norman, M. (2010). How learning works: 7 research-based principles for smart teaching. San Francisco, CA: Jossey Bass. ISBN: 978-0-470-48410. *Journal of the Scholarship of Teaching and Learning, Vol. 14, No. 1, February 2014, pp. 126-129. doi: 10.14434/josotl.v14i1.4219.*
3. Association for Experiential Education. (2007-2014). Retrieved from http://www.aee.org/.
4. Bass, R. (2012). Disrupting ourselves: The problem of learning in higher education. EDUCAUSE Review, 47(2).
5. Bhatia & Bhatia (2019) study on Assiduous Study On Experiential Learning In Entrepreneurship Education With Reference To Higher Education In India. Published at *International Journal of Scientific & Technology Research* volume 8, issue 11, November 2019 ISSN 2277-8616
6. Boud, D., Cohen, R., & Walker, D. (Eds.). (1993). Using experience for learning. Bristol, PA: Open University Press.
7. Bretz, S. L. (2001). "Novak's Theory of Education: Human Constructivism and Meaningful Learning", *Journal of Chemical Education*, Vol. 78, p 1107, August 2001. Copyright ©2001 by the Division of Chemical Education of the American Chemical.
8. Carlson *et. al.* (1998). *Pedagogy Applied to non-formal education.* The Center. St. Paul: Center for Youth Development, University of Minnesota Extension Service.
9. Chavan, M. (2011). Higher Education Students' Attitudes Towards Experiential Learning in International Business. *Journal of Teaching in International Business*, *22*(2), 126–143.
10. Danielson, C. (2014). Engaging Students in Learning. Training Lincoln Elementary Teachers on the Evaluation Model. Classroom with Materials for Instruction.

11. Doring (2016). The Effects of Game Based Learning Approach on the Academic Performance and Motivation to Learn Physics of Grade 10 Students, *Unpublished Master's Thesis,* Bukidnon State University, Malaybalay City
12. Enfield, R. P. (2001). Connections between 4-H and John Dewey's Philosophy of Education. FOCUS. Davis: 4-H Center for Youth Development, University of California.
13. **https://www.facultyfocus.com/articles/teaching-and-learning/experiential-learning-opportunities-in-any-course/**
14. **https://www.goodreads.com/quotes/21262-tell-me-and-i-forget-teach-me-and-i-may**
15. Indiana University. (2006). Experiential learning notations on Indiana University official transcripts. Retrieved from http://registrar.iupui.edu/experiential-learning.html.
16. James W. (1990). Guide to Business Gaming and Experiential Learning/Association for Business Simulation and Experiential Learning; New York: Nichols Pub.,
17. Kolb, D. A. (1984). *Experiential learning: Experience as the source of learning and development.* New Jersey: Prentice-Hall.
18. Lave, J., & Wenger, E. (1991). Situated learning: Legitimate peripheral participation. New York: Cambridge University.
19. Linn, P. L., Howard, A., and Miller, E. (Eds). (2004). The handbook for research in cooperative education and internships. Mahwah, NJ: Lawrence Erlbaum Associates.
20. Moore, D. T. (2010). Forms and issues in experiential learning. In D. M. Qualters (Ed.) New Directions for Teaching and Learning (pp. 3-13). New York City, NY: Wiley.
21. Newman, F. M. (1992). Student Engagement and Achievement in American Secondary Schools. New York: Teachers College Press, Columbia University.
22. Nutter. M (2020). **Why K-12 Schools Should Embrace Experiential Learning***vinsonedu.com/blog/why-k-12-schools-should-embrace-experiential-learning.*
23. Okoli, J. N., Abonji, O.S. (2014). "The Effects of the Experiential Learning Strategy on Secondary Schools Achievement in Biology", US-China Education Review A, ISSN 2161-623X February 2014, Vol.4, No.2, 96-101
24. Schon, D. (1983). The reflective practitioner: How professionals think in action. New York City, NY: Basic books.

25. Shivani (2020) Impact of Experimental Learning Program on Student's Science Self- Efficacy published in The Journal of Indian Education is a reviewed periodical Volume XLVI Number1 May 2020 pages 116 – 127 Issued May, by the National Council of Educational Research and Training, New Delhi. ISSN 0377-0435 (Print) 0972-5628 (Online)
26. Taludjog, A.A., (2016). The Effects of Experiential Learning Approach on the Academic Performance and Interest in Chemistry of Grade 9 Students, Unpublished Master's Thesis, Bukidnon State University, Malaybalay City.
27. The Significance of **Experiential Learning** in Early Childhood **Education**https://buzzingbubs.com/articles/the-significance-of-experiential.
28. The University of Texas at Austin College of Natural Sciences. (2013). Freshman Research Initiative Retrieved from http://cns.utexas.edu/fri.
29. Vandana Mehra and Jagdeep Kaur (2010) on Effect of Experiential Learning Strategy on Enhancement of Environmental Awareness among Primary School Published at Indian Educational Review, Vol. 47, No.2.
30. Wurdinger, D. D., & Carlson, J. A. (2010). Teaching for experiential learning: Five approaches that work. Lanham, MD: Rowman & Littlefield Education.
31. Young, M. R. (2018). Reflection Fosters Deep Learning: The "Reflection Page & Relevant to You" Intervention. *Journal of Instructional Pedagogies*, *20*. Retrieved from http://search.ebscohost.com/login.aspx?direct= true&db= eric&AN= EJ1178730&site=eds-live

Dr. Saru Joshi

Associate Professor,

Department of PQSE, University of Science and Technology Meghalaya

❑ ❑ ❑

Pragmatic Acumen To Sustainability

• **Siddharth Srivastava**

Introduction

The life supporting ecosystem of our planet has undergone a major investigation with the help of the technological advancements made in twenty-first century. The findings of such investigations are not at all comforting. Pollution is a by-product of our existence. The level of affluent existence to which our lives have reached has made us all mega polluters. The important point to realize is that pollution can be decreased but not completely annihilated, and accordingly, well examined steps have to be taken in shifting our existence from being a crude pollutant to a greener and sustained living. As for the pollution is concerned, we can only succeed in significantly reducing it to other forms and states. In order to achieve that, there has to be a proper usage of environmental economics and existing technology so as to be able to preserve the ecological morality[1] (Leopold, 1949).

Very often-cited definition of sustainable development finds it origin into 'Brundtland's Report of the World Commission on Environment and Development: Our Common Future', "Sustainable development is development that meets the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs."[2] (Brundtland, 1987) This definition contains two key concepts. First, 'the concept of needs, in particular the essential needs of the world's poor, to which overriding priority should be given.' Second, 'the idea of

limitations imposed by the state of technology and social organization on the environment's ability to meet present and future needs.'[3] Sustainability demands equal representation of usable resources among the whole population, distribution of which rests in the hands of the politicians, global leaders and economists. Doing so would guarantee a much less exploitation of resources together with meeting of the basic needs of all. We have adequate data about the reservoirs of non-renewable resources left on our spaceship which again is not for us alone to consume, but to figure out and maximize its utilization for as many future generations as possible. The second key concept of sustainable development is absolutely fundamental and has to be taken under serious exploration as it could help us in maximizing the complete consumption of the existing resources. The technological developments so far are only adequate to harness the energy out of the non-renewable resources so as to be able to meet the needs of the masses. An even more upsetting factor of this energy harnessing process is that the technology is not very efficient in converting the chemical energy stored in the non-renewable resources into mechanical energy for us to be able to use it. Nature took about 500-million years to store colossal amounts of energy in the form of oil and natural gas, and 1-billion years to produce coal deposits. We are nearly exhausting these non-renewable energy resources in a duration of only few hundred years[4] (Harper, 1966). World population has consumed a lot more of minerals and fuels in the last 100 years than they did in their entire history. Overall efficiency of energy conversion at present is about 6 to 10 per cent[5] (G. Tyler Miller, 1972). This accounts to major losses in terms wastage of energy. Henceforth, anearnest approach has to be cultivated in improving the efficiency of existing processes of energy conversion so as to minimize the wastage of energy. In these processes, not just the wastage of energy is happening but it is getting lost as heat to the environment. Not only we are unable to harness the complete energy out of the non-renewable resources but also failing to prevent our environment from the debasing impacts of our energy conversion. There exists certain technological solutions and substitutions to the lesser inefficient technology in use, but

again a failure is witnessed in the replacement of the first by the latter and penetrating it among the masses. For example, an automobile that uses internal combustion engine is about 12 per cent efficient and with the inclusion of the additional energy losses due to friction and other sources, it is only about 5 per cent efficient. This results in loss of 95 per cent of its energy as heat to the environment. Such figures are startling. Whereas a steam turbine engine has an efficiency of about 40 per cent and also, substantially reduces air pollution. A much better substitution to the existing market of such automobiles exists in the use of fuel cells, which potentially have an efficiency of about 80 per cent.[6] The twenty first century has witnessed a gradual shift from poorer technological usages to better and slightly more efficient technological developments and a better future of our spaceship lies in the constant improvement of the efficiency of technology, leading us all to effectively access the cleaner sources of energy like the geothermal energy, tidal energy, and a direct use of solar energy.

Economics and Sustainability

The role of economics is quite crucial and somewhat limited in the domain of environmental ethics. Economics not only helps us in understanding the past and present patterns of developmental expenditures spend on environment but also constitutes an improved pattern for the future expenditures on attaining an appropriate track of sustainable development. Economics as a science is an anthropocentric endeavour. From this facet, Environmental ethics is somewhat at war with the economist's philosophies. Present patterns of economic activity are judged to be untenable. Economic growth has to settle for a lesser progression of human condition and provide a better track for sustainable development. There exists a close relation between economic growth and technological advancements as economics has to push harder to uplift the quality of human condition, for the existing technology in use is quite inefficient. Both these sides of human development have their own respective dilapidation of the ecological integrity.

Human development borrows environmental capital from the

future generations. In a pragmatic sense, there can be no implementation of any extreme measures like zero growth or obliteration of technological civilization but economics has to find a near perfect rate of development for the human growth and also coincide it with the sustenance oflong term integrity of the natural world.

"The disparity between the goal of sustainability and the ecological integrity is understood as a condition of minimum human disturbance. A proper response to this would be based on the question that how much of ecological integrity we need. Economists play a major role in the understanding of the progress of the sustainability agenda in various countries."[7] (Jamieson, 2007)

The aspect of capital stands at the hub of the economic approach to sustainability. "Applied to nature generally, the proposed criterion states that if each generation bequeaths at least as much capital to the next generation as it receives, then this will constitute a sustained development path."[8]

Environmental objectives such as nature conservation, land health, and ecological integrity have to be taken under stern consideration while developing the sustainability goals. Nature conservation is a preventive measure that should not exploited more than the acceptable limit. Land health is a renewable facet, provided the degradation occurred on a particular land is well within the acceptable limits for it to be able to renew its quality. It is a slow and natural process that varies from one region to another. The third objective, ecological integrity, demands a minimum human contact for its sustenance.Apprehension of the environmental objectives depends upon the conscience awakening of mankind.

Pragmatism and Sustainability

The common question that comes to everybody's minds is that in what possible manner could philosophy provide a perspective for sustainable development. One answer could be to work as a critique. Again it could be argued that the environmental ethicists are taking care of that, but nobody could rule out the importance of havingphilosophy of environment as it

would work as a holistic critique of anything that is related to environment. This would be helpful in the inclusion of both, anthropocentricism and non-anthropocentricism in the understanding our environment.

The concept of pragmatism is quite overlapping with the definition of sustainability in the sense that both thrive for conformation with the transformation. For C.S. Pierce, "Truth is the last result to which the following out of the (experimental) method would ultimately carry us".[9] (Pierce, 1932) In general, this definition of truth presents a pleasing analogy to those trying to define sustainability because of its frontward temporal movement. Another important thought of Pierce was that the inquirers can struggle for the objectivity of truth and such a struggle would always exist within the realm of human experiences. Environmentalists could use similar methodology in their pursuit of understanding and outlining the sustainability as it would break down the subjectivity of the matter and probably arrive at its objective reality. It is also important to understand that it is the subjectivity of any experience that brings a great amount of significance to it, no matter that our struggle is to arrive at the objectivity of its truth. Pragmatism works as an efficient tool in our tussles of such nature. "Pierce's definition of truth, and arguments regarding objectivity as an intertemporal relation, led to a lively debate about alternative approaches to truth and objectivity. Attention to the debates provoked by Pierce's forward looking, normative, community-based drive toward the truth might therefore provide interesting parallels and suggestions for sustainability theorists."[10] (Norton, 2003)

Environmental ethicists believe that the environmental goals must correspond to the moral values existing outside of human perception. Such environmental goals must relate to things that have intrinsic value. Attention can be focussed on the development of methods to include the things having intrinsic value within the environmental goals. Pragmatism shares a similar kind of approach in pursuit of truth and also relishes a praxis-oriented tradition, that encourages learning and revision in the context of what has already been learnt.

John Dewey, an American Pragmatist of nineteenth century classified transformation as a fundamental category of inquiry. Dewey quotes, "The copula in a judgement…. expresses the actual transformation of the subject matter of an indeterminate situation into a determinate one"[11] (Dewey, 1938). This transform concept of Dewey is quite dynamic and together with its experimental and problem solving approach towards the attainment of truth in practical situations is kind of a methodology which could deeply benefit practical sciences like conservation ecology and adaptive ecosystem management. Another movement of a similar kind, adaptive management which was formally introduced by Crawford Stanley Holling, a twentieth century Canadian ecologist, is an effort towards more iterative and experimental management praxis. The philosophy of adaptive management is an astonishing approach towards the development of 'logicautens'[12] for the environmental issues and guidelines.Adaptive managers constantly work to improve the environmental policies and to rectify the environment related problems, and together with this, it is also a process of social learning which would help the whole community move towards an enhanced understanding of their environment. Adaptive environmental management would be a process in which the path of sustainability must not be charted upon some fixed goals or set-rules at its commencement and in which the managers would choose numerous actions as experiments with an approach towards reducing uncertainty and amending future aims.

The purpose of this paper is to identify the right kind of methodology that would be suitable for the environmental scientists to employ while substantiating upon the whole facet of inter-temporal sustainable development. The tradition of pragmatism formulates a pattern of enquiry that is compendious enough to encircle all the epistemological and value based problems that are bestowed upon the path of developing sustainability and also mitigating ecological goals to a larger population. "Theorists in the 'transform' tradition may be able to specify in more and more detail how we might progress toward sustainability, then there is an exciting future for this thing called 'Environmental Pragmatism'."[13]

Bibliography

Brundtland, G. H. (1987). *Report of the World Commision on Environment and Development - Our Common Future.*, (p. 43).

Dewey, J. (1938). *Logic - The Theory of Inquiry.* New York: Henry Holt and Company.

G. Tyler Miller, J. (1972). *Replenish the Earth: A Primer in Human Ecology.* Belmont, California: Wadsworth Publishing Company, Inc.

Harper, R. A. (1966). *The Geography of World Energy Consumption* (7 ed., Vol. 65). Journal of Geography.

Jamieson, D. (Ed.). (2007). *A Companion to Environmental Philosophy.* Blackwell Publishers Ltd.

Leopold, A. (1949). *A Sand County Almanac.* Oxford University Press.

Norton, B. G. (2003). *Searching for Sustainability - Interdisciplinary Essays in the Philosophy of Conservation Biology.* Cambridge University Press.

Pierce, C. S. (1932). *Collected Papers of Charles Sanders Pierce.* Belknap Publishers.

Footnotes

1. Aldo Leopold introduced the term 'Ecological Morality' in his book 'A Sand County Almanac'. In his book, he writes," [a] thing is right when it tends to preserve the integrity, stability and beauty of the biotic community", A Sand County Almanac, Aldo Leopold, Oxford University Press, 1949, Pg. 224.
2. World Commission on Environment and Development, 1987, Pg. 43.
3. Ibid, pg.43.
4. Robert A. Harper, The Geography of World Energy Consumption, Journal of Geography, Vol. 65, Issue no. 7, 1966, Pg. 307.
5. Miller, G. Tyler, Jr., Replenish the Earth: A Primer in Human Ecology, Wadsworth Publishing Co., Inc., Belmont, California, 1972, Pg. 130.

6. Ibid, Pg. 130.
7. A Companion to Environmental Philosophy, Ed. by Dale Jamieson, Blackwell Publishers Ltd., 13th December, 2007, Pg. 394.
8. A Companion to Environmental Philosophy, etc., pg. 395.
9. Pierce, Charles Sanders, Collected Papers of Charles Sanders Pierce, Belknap Publishers, 1932, 5.553.
10. Bryan G. Norton, Searching for Sustainability– Interdisciplinary Essays in the Philosophy of Conservation Biology, Cambridge University Press, 2003, Pg. 92.
11. Dewey, John, Logic-The Theory of Inquiry, New York, Henry Holt and Company, 1938, Pg. 135.
12. 'Logica Utens' is a terminology used by the medieval universities to define the common people in possession of their logic, which is naturally inherent in their rational capacity and has not been learned or developed with the help of study. 'Logica Docens', on the other hand, is the logical capacity that is learned through studying.
13. Bryan G. Norton, Searching for Sustainability, etc., Pg. 98.

Siddharth Srivastava
Research Scholar
Department of Philosophy
University of LUCKNOW

❑ ❑ ❑

मध्यकालीन शहर ओरछा पर्यावरण की दृष्टि से एक अध्ययन

• सफ़िया ख़ान

भारत के शासक सामान्यत: अपने राज्य के प्रमुख शहरों विशेषत: राज्य की राजधानी को सुसज्जित करने का पूरा प्रयास करते थे। भवनों, दुर्गों, महलों, देवालयों एवं जलाशयों का निर्माण करवाते समय वातावरण एवं पर्यावरण का पूर्णत: ध्यान रखते थे। इसके लिए भवन निर्माण करते समय स्थान चयन की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। स्थान चयन के लिए राज्य में शासक के साथ भूमि की प्रकृति का जानकार अर्थात् विशेषज्ञ, पर्यावरणविद्, मौसम का जानकार, ज्योतिषी के साथ-साथ भवन निर्माण का सूत्रधार अर्थात् इन्जीनियर आदि हुआ करते थे। आधुनिक मान्यता के अनुसार एक वास्तुविद भी उनके साथ होता था। मध्यकालीन भवनों के सर्वेक्षण के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि राजधानी-केन्द्रित शहरों/नगरों में भवन निर्माण के समय उपरोक्त सभी बिन्दुओं का ध्यान रखा जाता था। इस बात की पुष्टि के लिए भूमि पर असंख्य भवन उपलब्ध हैं।

इस आलेख में इस बात को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है कि बुन्देलखण्ड के तत्कालीन बुन्देला शासकों ने बुन्देलखण्ड की राजधानी ओरछा को न केवल सांस्कृतिक एवं आर्थिक रूप से समृद्धशाली शहर के रूप में स्थापित किया बल्कि पर्यावरणीय बिन्दुओं पर भी विशेष रूप से ध्यान दिया एवं शहर को स्वच्छ वातावरण प्रदान करने में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। इस आलेख में पर्यावरणीय अध्ययन के लिए केवल बाग़ या उपवन (garden) को ही रेखांकित किया गया है इसके अतिरिक्त भूजल के दोहन के उपायों को भी स्पर्श करने का प्रयास किया गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि गढ़कुंडार के शासक राजा रुद्रप्रताप ने नई राजधानी

की स्थापना के लिए स्थान चयन हेतु विषय विशेषज्ञों (पारिस्थितिकीविद, पर्यावरणविद, जलविज्ञानी आदि) के साथ-साथ विन्ध्य क्षेत्र की व्यापक यात्राओं के पश्चात् बेतवा परिक्षेत्र में स्थित एक नये स्थान का राजधानी हेतु चयन किया। राजधानी के रूप में इस स्थान के चयन की पृष्ठभूमि में कई तत्त्वों (factors) की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारणों में इस क्षेत्र की पारिस्थितिकी (ecology) थी। ऊँची-ऊँची पहाड़ियों द्वारा निर्मित परकोटे से घिरे एवं बेतवा के किनारे विस्तृत मैदानी क्षेत्र तथा नदी के दो पाटों के मध्य दुर्ग निर्माण हेतु आदर्श स्थान टापू ही था। इसके अतिरिक्त राजधानी की सुरक्षा की दृष्टि से इसका प्राकृतिक सुरक्षात्मक घेराव एक अतिरिक्त आकर्षण था जो इसे किलेबन्दी का स्वरूप प्रदान करता था। दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण बेतवा के दूसरी ओर विशाल एवं विस्तृत जंगल की उपस्थिति जिसे तुंगारण्य वन कहा जाता है जिसका विस्तार चालीस कोस अर्थात् लगभग सौ मील तक है। तीसरा मुख्य कारण बेतवा का होना जिसके कारण से पानी की उपलब्धता एवं इसके आस-पास के क्षेत्रों में भूमिगत जल के स्तर का ऊपर होना जिससे चारों ओर हरियाली का होना एवं भूजल का दोहन आसानी से हो सकता था। चौथा कारण विशाल जंगल की उपस्थिति एवं नदी क्षेत्र के कारण ऐसे जंगली जानवरों एवं पक्षियों का होना जिनका प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने के लिए होना आवश्यक होता है। ओरछा की स्थिति को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि राजा रुद्रप्रताप ने राजधानी हेतु इस स्थान के चयन के पीछे इन सभी उपरोक्त बिन्दुओं को निश्चित ही ध्यान में रखा होगा।

1531 ई. में राजधानी के रूप में ओरछा के चयन के समय भारतीय राजनीति में आए परिवर्तन के साथ-साथ बाग़ों एवं उन्हें सिंचित करने के उपायों का यदि हम अध्ययन करते हैं तो अध्ययन की प्रासंगिकता और अधिक मुखर हो जाती है। 1531 ई. तक भारत में मुग़ल साम्राज्य अपनी जड़ें जमा चुका था। इस समय मुग़ल राजधानी आगरा के सिंहासन पर हुमायूँ आसीन था। इसके पूर्व पानीपत एवं खानवा युद्धों में विजय के पश्चात् 1526 ई. में बाबर ने मुग़ल साम्राज्य की स्थापना की थी। साहित्यानुरागी होने के साथ-साथ बाबर पर्यावरणीय दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति था। वह वातावरण एवं पारिस्थितिकी का रुचिशील पर्यवेक्षक था। उसने मुग़ल राजधानी आगरा में व्यवस्थित उद्यानों की स्थापना की ओर विशेष ध्यान दिया। वह अपनी आत्मकथा 'बाबरनामा' में लिखता है कि हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा दोष यह है कि यहाँ जलधारायें नहीं है अत: मैंने यह निश्चय किया कि जहाँ कहीं भी मैं ठहरूं रहंट द्वारा बहते हुवे जल

की व्यवस्था कराऊँ ताकि वहाँ व्यवस्थित उद्यानों की व्यवस्था की जा सके। इस उद्देश्य से आगरा में प्रविष्ट होने के कुछ समय बाद हमने यमुना नदी पार करके उद्यान के लिये उपयुक्त स्थान ढूँढ़ना प्रारम्भ कर दिया। वे स्थान इतने खराब तथा अनाकर्षक थे कि वहाँ की यात्रा से हमें अत्यन्त घृणा तथा अप्रसन्नता हुई और मैंने वहाँ चारबाग़ के निर्माण का विचार त्याग दिया किन्तु आगरा के निकट इस भूमि के अतिरिक्त कोई अन्य भूमि थी ही नहीं, अत: कुछ दिन पश्चात् उसी भूमि को चुन लेना पड़ा।

सर्वप्रथम बड़ा कुआं जिससे हम्माम के लिये जल आता है बनवाया गया तथा भूमि का वह टुकड़ा जहाँ अब इमली का वृक्ष तथा अष्ट-भुजाकार हौज है, तैयार कराया गया। तदुपरान्त बड़ा हौज तथा उसकी चहारदीवारी तैयार की गई। तत्पश्चात् वह हौज तथा तालाब जो पत्थर के भवन के सामने है बनवाए गये; इसके बाद खिलवत खाने (स्त्रियों के लिए घर), उसके उद्यान तथा अन्य भवनों का निर्माण कराया गया। तदुपरान्त हम्माम तैयार कराया गया। इस प्रकार हिन्द में, जो आकर्षण से शून्य है–वहाँ पर इस प्रकार के सुव्यवस्थित सुडौल उद्यानों का निर्माण कराया गया, जिसके प्रत्येक कोने में उचित चमन (क्यारियां) और हर चमन में गुलाब तथा नस्तरन बड़े आकर्षक ढंग से लगाये गये।

खलीफा, शेख, जैन, यूसुफ अली तथा जिस किसी को भी नदी के उस पार भूमि मिली, उसने हौज सहित बड़े सुडौल तथा उत्तम उद्यानों का निर्माण करवा लिया। जिस प्रकार लाहौर तथा दीवालपुर में रहँट होते हैं वैसे ही यहाँ भी लगवा लिये। हिन्द वाले जिन्होंने ऐसे सुडौल स्थान तथा उत्तम उद्यान न देखें हो वे जून (जमुना) के उस ओर के स्थान को, जहाँ हमारे भवन थे, काबुल कहने लगे।[1]

यद्यपि उपवनों/वाटिकाओं को लगाने की परम्परा भारतीय इतिहास में काफी प्राचीन समय से रही है। बुन्देलखण्ड में भी यह परम्परा उतनी ही पुरानी है जिसकी पुष्टि उपलब्ध साक्ष्यों से होती है। बड़ी संख्या में शिलालेख, साहित्यिक रचनाएं एवं बागों के अवशेष उपलब्ध होते हैं। उपवनों को बनाने की पृष्ठभूमि में कई उद्देश्य रहे हैं जैसे कि भवनों के सौन्दर्य में अभिवृद्धि हेतु तथा आस-पास के वातावरण को शीतल, स्वच्छ एवं सुगन्धित बनाये रखना इत्यादि। इसके अतिरिक्त, यह भी काफी दिलचस्प है कि बागों का स्वतन्त्र इकाइयों या फिर किसी निवासगृह या धार्मिक स्थल के एक भाग के रूप में निर्माण हुवा हो लेकिन मूल निर्माण की डिजाईन एक समान होती थी।[2]

बुन्देला शासकों ने बाग़ या उपवन लगाने में अपने पूर्ववर्ती चन्देल शासकों

का अनुसरण किया। उन्होंने भी भवनों के सौन्दर्य में अभिवृद्धि एवं वातावरण को खुशनुमा या मनोरम बनाने के लिए कई स्थानों पर बाग़ लगवाए। विशेषत: 1531 ई. में ओरछा में राजधानी स्थापना से इसकी पुष्टि होती है।

यह बात सही है कि भारत एवं बुन्देलखण्ड में उपवनों को लगाने की परम्परा बहुत प्राचीन है लेकिन व्यवस्थित बाग़ लगाने, क्यारियों के निर्माण एवं इनमें नियमित जल आपूर्ति हेतु कुएँ एवं हौज़ आदि के निर्माण के द्वारा एक समन्वित इकाई का स्वरूप प्रदान निश्चित तौर पर बाबर के आगमन के पश्चात् सम्भव हो सका। भारत में बाग़ लगाने के अव्यवस्थित तरीके की पुष्टि अबुल फज़ल के कथन से होती है। 1595 ई. के लगभग वह लिखता है कि पूर्व में भारतीय फूलों के बाग़ में अव्यवस्थित तरीके से फूल लगाये जाते थे। अत: वह बाबर ही था जिसने फूलों को क्यारियों एवं व्यवस्थित तरीके से लगाने की परम्परा स्थापित की।[3]

ओरछा स्थित बाग़ों के साक्ष्य एवं अवशेषों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ निर्मित उपवन बाबर एवं अकबर द्वारा निर्मित बाग़ों से काफी प्रभावित लगते हैं। बुन्देला शासक मधुकर शाह का मुग़ल सेवा स्वीकार करने के पश्चात् मुग़ल राजधानी आना जाना प्राय: रहता था। बाग़ लगाने में उनकी रुचि उनके द्वारा ओरछा में लगाये गए उपवनों से होती है। राजा मधुकर शाह ने भांडेरी दरवाजे के समीप लगाया जो रामबाग के नाम से जाना जाता था। जहाँ संतों की आराम स्थली थी। इसके अतिरिक्त भी उन्होंने कई उपवन लगाए जिनमें चन्द्रबन, मधुबन एवं पांचबन है जो आज़ाद स्थल के उत्तर-पश्चिम में स्थित हैं। ओरछा की ऊबड़-खाबड़ भूमि को आकर्षण का केन्द्र बनाने के लिए यहाँ उपवन लगाए गए। इस बात की पुष्टि उन्नीसवीं सदी में ओरछा आए फ्रेंच यात्री लुइस रुसलेट के कथन से होती है।[4]

महाराजा मधुकरशाह के पश्चात् उनके पुत्र रामशाह ने राज्य की बागडोर सम्भाली। उनका अधिकांश समय मुग़ल दरबार में व्यतीत होता था इसलिए उनकी उपस्थिति में ही उनके अनुज इन्द्रजीतसिंह राज्य के कार्यवाहक शासक थे। उनके समय में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विकास चरम पर था। जिनके समय में हिन्दी के महान कवि केशवदास हुवे थे। राजा इन्द्रजीत ने सांस्कृतिक उन्नयन के लिए अखाड़े की स्थापना[5] एवं आनन्द बाग़ का निर्माण करवाया था जो बाद में 'राय प्रवीण महल या आनन्द मंडल' के नाम से विख्यात हुआ। कुछ इतिहासकारों एवं साहित्यकारों की मान्यता है कि इस महल एवं बाग़ का निर्माण उन्होंने अपनी प्रेयसी राय प्रवीण के लिए करवाया था।

केशव दास ने इन्द्रजीत द्वारा अखाड़े की स्थापना एवं उसमें सम्पन्न होने वाले कार्यकलापों एवं कलाओं के प्रदर्शन के बारे में विस्तार से वर्णन किया है। केशव दास द्वारा रचित छन्द निम्न है जिनसे सभी मन्तव्य स्पष्ट होते है[6]–

सुत सोदर नृप राम के जदपि बहुत परिवार।
तदपि सबै इन्द्रजीत-सिर राज लाज को भार।।

कल्पबृच्छ सो दानि दिन सागर सो गम्भीर।
'केसव' सूरो सूर सो अर्जुन सो रनधीर।।

ताहि कछोवा कमल सो गढ़ दीनो नृप राम।
बिधि ज्यों साजत बैठि तहँ 'केसव' बाम अबाम।।

करयो अखारो राज कै सासन सब संगीत।
ताको देखत इंद्र ज्यों इन्द्रजीत रनजीत।।

बालबहिक्रम बाल सब, रूप सील गुन वृद्ध।
जदपि भरयो अवरोध षट, पातुर परम प्रसिद्ध।।

रायप्रबीन प्रबीन अति, नवरंगराय सुबेस।
अति बिचित्रनयना निपुन, लोचन ललित सुदेस।।

सोहति सागर राग की, तानतरंग तरंग।
रंगराय रंगवलित गति रंगमूरति अंग अंग।।

तन्त्री तुंबुरु सारिका सुद्ध सुरन सों लीन।
देवसभा सी सोभिजै रायप्रबीन प्रबीन।।

सत्या रायप्रबीन जुत, सुरत'रु सुरतरु गेह।
इन्द्रजीत तासों बँधे, 'केसवदास' हि देह।।

नरी किनरी आसुरी, सुरी रहति सिर नाइ।
नवरस नवधा भगति स्यों जोजति नवरंगराइ।।

हाव भाव सम्भावना, दोला सम सुखदाय।
पियमन देति झुलाय गति, नव नव नवरंगराय।।

भैरो-जुत गौरी-संजुत, सुरतरंगिनी लेखि।
चंद्रकला सी सोभियै, नयनविचित्रा देखि।।

नयन बयन रतिसयन सम, नयनबिंचित्रा नाम।
जयनसील पति मगन मन, सदा करति बिंस्त्राम।।

नागरि सागर राग की, सागर तानतरंग।
पति पूरन ससि दरस दिन, बाढ़त तान तरंग।।

तानैं तानतरंग की, तनु तनु बेधति प्रान।
कला कुसुमसर-सरनि को अति अयान तनशान।।

रंगराय कर अंगुली सकल गुननि की मूरि।
लागत मूढ़ मृदंग मुख, सब्द रहत भरपूरि।।

रंगराय कर, सुरजमुख, रंगमूरति पद चारु।
मनो पढ़यो है साथ ही, सब संगीत बिचारु।।

अंग जिते संगीत के गावत गुनी अनंत।
रंगमूरति अंग अंग प्रति, राजत मूरतिवंत।।

नाचति गावति पढ़ति सब, सबै बजावति बीन।
तिनमें करति कवित इक, रायप्रबीन प्रबीन।।

रायप्रबीन प्रबीन सों, परबीनन मन सुख्ख।
अपरबीन 'केसव' कहा, पर-बीननि मन दुख्ख।।

रतनाकर लालित सदा, परमानंदहि लीन।
अमल कमल कमनीय कर, रमा कि रायप्रबीन।।

रायप्रबीन कि सारदा, सुचि रुचि रंचित अंग।
बीना-पुस्तक-धारिनी, राजहंस-सुत संग।।

बृषभवाहिनी अंग उर, बासुकि लसत प्रबीन।
सिव-सँग-सोहे सवैदा, सिवा कि रामप्रबीन।।

राय प्रवीण महल में स्थित उद्यान का वर्णन केशव ने कविप्रिया में किया है। उसने लिखा है कि इसमें कौन-कौन से वृक्ष हैं एवं पक्षियों के कलरव का वर्णन भी रोचक तरीके से किया गया है। उनके द्वारा लिखित दोहा एवं कवित्त निम्नलिखित है :

अथ बाग़ वर्णन–(दोहा)

ललित लता, तरुवर, कुसुम, कोकिल कलरव, मोर।
बरनि बाग अनुराग स्यों, भँवर भँवत चहुँ ओर।।

(कबित्त)

सहित सुदरसन करुनाकलित कम-
लासन विलास मधुबन मीत मानियै।
सोहिये अपनी रूपमंजरी पै नीलकंठ,
'केसोदास' प्रगट असोक उर आनियै।
रंभा स्यों सदंभ बोलै मंजुघोषा उरबसी,
हंस फूले सुमनसु सब सुखदानियै।
देव को दिवान सो प्रबीनरायजू को बाग,
इंद्र के समान तहाँ इंद्रजीत जानियै।[7]

यह बाग़ महल दुर्ग-परिसर में स्थित है जिसे इन्द्रजीत ने राय प्रवीण के लिए ही निर्मित करवाया था। यह दुमंजिला भवन है। इसके सामने चहारबाग़ पद्धति पर आधारित व्यवस्थित बाग़ है जो दीवार के माध्यम से दो भागों में विभक्त है। प्रत्येक भाग में सामने की ओर एक भवन है जो भ्रमण के पश्चात् आराम के लिए है। बाग़ के पश्चिम दिशा में अवस्थित भवन दुमंजिला है एवं इसके पृष्ठ भाग में बैठने का स्थान (बैठक) है जो सम्भवत: इन्द्रजीत एवं राय प्रवीण के लिए निर्मित किया प्रतीत होता है तथा इस बात की निश्चित सम्भावना है कि बैठक के सामने की ओर एक झील थी जिससे आस-पास के क्षेत्र में सिंचाई भी होती थी। साथ ही सम्पूर्ण क्षेत्र हरा भरा क्षेत्र (meadow) नज़र आता था। प्रमाण के तौर पर बावड़ी और कुँआ तो अभी भी है।

दोनों भागों में व्यवस्थित रूप से बराबर की दूरी पर वृक्ष लगाने हेतु क्यारियां बनी हैं। बाएं भाग में नक़्क़ाशीदार फव्वारा है। फूलों के लिए क्यारियां हैं। यह (पूर्वी) भाग भ्रमण पथ के द्वारा तीन भागों में विभाजित है। प्रत्येक भाग में अष्टकोणीय पत्थर का फूलदान पौधे लगाने हेतु है। शेष दो भागों में बहतर फूलों की क्यारियां हैं। इसी प्रकार विभाजन पश्चिमी दिशा में है। इनमें नियमित पानी की आपूर्ति के लिए कुआँ है एवं उसका पानी हौज़ से होते हुवे नालियों के द्वारा क्यारियों तक पहुँचाया जाता है। इस सम्पूर्ण बाग़ के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि बाबर द्वारा स्थापित एवं अकबर के युग में विकसित बाग़ लगाने की पद्धति का प्रभाव राय प्रवीण महल बाग़ में स्पष्ट रूप से झलकता है जो ओरछा राज्य की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति पर भी प्रकाश डालता है। (चित्र संलग्न)

महाराजा बीरसिंह जूदेव एवं मुग़ल बादशाह जहाँगीर के मध्य अंतरंग सम्बन्धों ने ओरछा को हर दृष्टि से विकसित करने का अवसर प्रदान किया। बुन्देला शासक का मुग़ल राजधानी प्रायः आना जाना रहता था। मुग़ल दरबार की शानो शौकत एवं आगरा शहर के सौन्दर्य में अभिवृद्धि करते हुए व्यवस्थित बाग़ों का चित्र वीरसिंह के मनमस्तिष्क पर गहराई से अंकित हो गया होगा। उसी का परिणाम है कि ओरछा आने पर आगरा का वह चित्र महाराजा के दिलो-दिमाग में बार-बार उभरता रहा होगा। साक्ष्यों से यह उभर कर हमारे सामने आता है कि महाराजा वीरसिंह जूदेव ने ओरछा के अतिरिक्त मथुरा एवं आगरा में भी बाग़ लगवाए। आगरा में बुन्देला बाग़, चतुरानन बाग़, फुटेला बाग़ एवं साथ ही व्यास बगीचा नामक उपवन बृन्दावन में आरोपित किए थे।[8]

ओरछा में फूल बाग़ सुनियोजित उपवन जिसमें पानी की नियमित आपूर्ति हेतु कुएँ खुदवाये गये। पानी हौज में एकत्रित किया जाता था जहाँ से नालियों के माध्यम से क्यारियों में पहुँचाया जाता था। अष्टकोणीय फूलदानों में अलग-अलग प्रकार के फूलों के पौधे लगाए जाते थे जिससे आस-पास का वातावरण सुरम्य हो जाता था। मध्य में फव्वारा था जो वातावरण में ठंडक पैदा करता था। कुछ चित्र दिए जा रहे हैं :

इस बाग़ के अतिरिक्त केशवदास ने एक और उपवन का वर्णन किया है जिसमें महाराजा बीरसिंह जूदेव रानियों के संग भ्रमण करते थे। कवि उपवन एवं बाग़ दोनों शब्दों का प्रयोग समानार्थी के रूप में करता है। उसके द्वारा रचित कुछ पद्यांश नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं :

उतर्‌यौ भूप भवन तें देखि। सुंदरीनि सों मधुरितु लेखि।
निसि नासी अरुनोदय भयौ। राजलोक सब उपबन गयौ।।

पासवान नृप आयौ जानि। घोरों ठाढ़ी कोनो आनि।
लसै रेनकन सुभ्रनि भनौ। सीखत चंचलता मन मनौ।।

तिहि चढ़ि चलत रूप गुन बढ्‌यौ। जनु मन ऊपर मनमथ चढ्‌यौ।
मारग कछूं बिलंब न कर्‌यौ। उपबन दीठि राय की पर्‌यौ।।

दान लोभ सों सोभा सने। नए बाग़ में तीनों जने।
सब तें अपनी देह दुराय। देखी जुवति मंडली जाय।।

कोऊ उर सींचत तरुमूल। कोऊ तोरति फूले फूल।
एकै चतुर चुगावति मोर। लीने सारो सुक चितचोर।।

अमल जलज कर कमलानि लीयैं। हंस चुनावति चुंचनि छियैं।
जब अंकुर कोमल कर धरैं। मृगनि चरावति पै नहिं चरैं।।

केशव वर्णन करता है कि महाराजा भवन की अट्टालिकाओं से नीचे उतरकर उपवन में प्रतिक्षारत रानियों के पास जाने का उपक्रम करता है। उसका घोड़े पर सवार होकर बाग़ की ओर प्रस्थान करना यह बतलाता है कि भवन से थोड़ा दूरी पर बाग़ स्थित है। अगली पंक्तियों में रानियों द्वारा वृक्षों को सींचना, फूल तोड़ना, मोरों को दाना चुगाना, हंसों की चोंचों को स्पर्श करना एवं हिरणों को घास चराने की क्रियाओं में लीन बताया गया है। इस वर्णन से यह तथ्य उजागर होता है कि यह बाग़ काफी विशाल रहा है जिसमें पशु-पक्षियों का बड़ा समूह हैं।[9] कवि के वर्णन के आधार पर सर्वेक्षण के द्वारा उस स्थान की पहिचान कर ली गयी है। जहाँ इस क्षेत्र में खेती होती है यह दुर्ग के पीछे थोड़ी दूरी पर बेतवा तट पर स्थित है।

बुन्देला शासकों के साथ-साथ राज्य के अमीरों में भी पर्यावरण के प्रति जागरूकता देखने को मिलती है। उन्होंने अपनी कोठियों/हवेलियों में लघु रूप से बाग़ लगवाए। दुर्ग-परिसर में स्थित बकसराय की कोठी है जो राय प्रवीण महल के बाएं भाग में स्थित है। बीरसिंह जूदेव के दरबार में बकसराय की काफी ऊँची हैसियत थी। उसके निवास स्थान के किनारे ही बेतवा की धारा बहती है, जिससे कोठी के सौन्दर्य में अभिवृद्धि होती है। कोठी के पार्श्व में एक छोटा बाग़ है जो बाईस चौकोर क्यारियों में विभक्त है। केन्द्रीय प्रांगण में एक कुआँ है जिसके जल का घरेलू कार्यों के साथ-साथ बाग़ की सिंचाई के लिए भी उपयोग होता था। कुएं से पानी निकाल कर कुंडी में एकत्रित किया जाता था एवं भूमिगत नाली के जरिए अत्यन्त व्यवस्थित तरीके से पानी क्यारियों तक पहुँचाया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न प्रकार के पौधे लगाए जाते थे जिससे वातावरण सुरम्य हो जाता था।

पर्यावरण के प्रति जागरूकता का ऐसा स्तर तत्कालीन समय के अधिकतर अमीरों में देखने को मिलता है। अत: यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार मुग़ल बादशाहों एवं अमीरों ने आगरा शहर को पर्यावरण की दृष्टि से सुन्दर एवं आकर्षक बनाने में बढ़-चढ़ कर योगदान किया था ठीक उसी तर्ज पर बुन्देला शासकों एवं सरदारों ने भी ओरछा को मध्य भारत का एक सुन्दर शहर बनाने में अपनी भूमिका निभाई।

इनके अतिरिक्त प्रकृति का योगदान सर्वाधिक था बेतवा जैसी लहराती

नदी, तुरांगव्य जैसा विशाल वन, उसमें स्वच्छन्द विचरण करने वाले वन्यजीव, वाटिकाओं, उपवनों के फूलों पर मंडरो एवं गुंजायमान करने भँवरे एवं तितलियां, वर्षा-जल को सहेज कर रखने हेतु विशाल सरोवरों एवं बांधों का निर्माण एवं उनकी अवस्थिति ने ओरछा के पर्यावरण को स्वच्छ बनाने में अहम् भूमिका रही थी।



बाग़ में विराजमान भगवान गणेश जी के साथ देवी रिद्धि-सिद्धि का चित्र



राय प्रवीण महल व आनन्द बाग का चित्र



फूल बाग़ या हरदौल वाटिका का चित्र

संदर्भ

1. **मुग़लकालीन भारत**, अनुवाद, सैय्यद अतहर अब्बास रिज़वी, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, 1960, पृ. 211-12
2. अहसन जान क़ैसर, **बिल्डिंग कन्सट्रक्शन इन मुग़ल इण्डिया**, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1988 पृ. 33
3. अबुल फज़ल, **आईन-ए-अकबरी,** स. एच. ब्लाकमेन, कलकता 1866-67, पृ. 100
4. लुइस रुसलेट, **इण्डिया एण्ड इट्स नेटिव प्रिन्सेज-ट्रेवल्स इन सेन्ट्रल एण्ड द प्रेसीडेन्सीज ऑफ बाम्बे एण्ड बंगाल**, नई दिल्ली पुन मुद्रण, 2005, के. के. चक्रवर्ती, **द आर्ट ऑफ इण्डिया-ओरछा**, पृ. 18
5. नर्मदा प्रसाद गुप्त, **बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति का इतिहास**, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1995, पृ. 427-30
6. कविप्रिया, **केशन-ग्रन्थावली**, खण्ड-1, सं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, 1990, पृ. 97-98
7. उपर्युक्त, पृ. 134
8. के. के. चक्रवर्ती, उपर्युक्त, पृ. 28
9. केशवदास, **वीरसिंह देव चरित**, अनुवाद, डॉ. किशोरीलाल, इलाहाबाद, 1997, पृ. 421-22

सफ़िया ख़ान

संस्थापक सचिव बुंदेलखण्ड विरासत अकादमी

एवं इंटेक कन्वीनर, ओरछा रामधाम कॉलोनी केशव वार्ड,

ओरछा मध्य प्रदेश

पिन कोड 472246

मुगल काल में मुस्लिम महिला शिक्षा

• डॉ. शोभा सिंह

मध्यकालीन भारत में मुस्लिम महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर कम मिलते थे। भारत में मुस्लिम लड़कियों के लिए मकतब बहुत कम थे। अत: घर पर ही विद्वान पारिवारिक सदस्य या निजी शिक्षक द्वारा शिक्षित किया जाता था। शाही हरम में उच्च शिक्षा प्राप्त करने में जो रुचि रखते थे उन्हें विद्वानों द्वारा निर्देशित किया जाता था। शिक्षा शुरू करने की रस्म को बिस्मिल्लाह खाने या मकतह समारोह कहा जाता था। माध्यमिक और उच्च शिक्षा के पाठयक्रम में अंकगणित, लेखा, कृषि, अर्थशास्त्र, प्रशासन की कला, भौतिकी, तर्क, प्राकृतिक दर्शनसार, गणित, देवत्व, इतिहास, चिकित्सा, नैतिकता, कानून, अनुष्ठान, बयानबाजी, घरेलू मामले, ज्योतिष, भूगोल, विद्वता, न्याय शास्त्र, तफसीर, हदीस और परम्पराएं, रहस्यवाद, व्याकरण, वाक्य रचना, जीवनी और सुलेख आदि शामिल थे। गुलबदन बेगम, हाजी बेगम, माहम अनगा, सलीमा सुल्तान, जहान बेगम, आदि उच्च शिक्षित महिलाएं थी।

संकेताक्षर : मुस्लिम महिलाएं, नैतिक शिक्षा, बिस्मिल्लाह खाने, मकतह, आर्या, ज्योतिष

मुगल वंश की महिलाएँ पुरुषों की तरह ही उल्लेखनीय थी और कुछ मामलों में पुरुषों से भी अधिक संस्कारी थी। इन सुन्दर शिक्षित और अत्यंत प्रतिभाशाली महिलाओं ने न केवल सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, कलात्मक और आर्थिक क्षेत्रों में योगदान दिया बल्कि समकालीन राजनीति में भी प्रमुख भूमिका निभाई। मुगल काल में लड़के की तुलना में लड़की के जन्म का कम स्वागत किया जाता था लेकिन मुगल बादशाह अपनी बेटियों से बहुत प्यार करते थे और उन्हें बेहतरीन शिक्षा प्रदान करने और उनकी प्रतिभा को निखारने के लिए विभिन्न व्यवस्थाएं करते थे। अबुल फजल अकबर के शासनकाल के दौरान एक बालिका के जन्मोत्सव के बारे में जानकारी देते हुए

लिखते हैं–राजकुमार सलीम के ढाई महीने बाद, नवंबर 1569 में, अकबर के हरम में एक बेटी का जन्म हुआ। लड़की का नाम रवानम रखा गया तथा अकबर ने इस अवसर पर खुशी मनाने का आदेश दिया।[1] अकबर ने शाही हरम की महिलाओं के लिए नियमित और व्यवस्थित शिक्षा प्रदान करने के लिए आवश्यक व्यवस्था की। 1850 ई. में मॉसरेट ने भारत का दौरा किया तथा अपने वृतांत में अकबर की स्त्री शिक्षा के प्रति रुचि का वर्णन किया।

पवित्र कुरान के अनुसार सैद्धांतिक रूप से मुस्लिम समाज में प्रत्येक पुरुष तथा महिला के लिए शिक्षा अनिवार्य थी। परंतु मध्यकालीन भारत में आमतौर पर मुस्लिम महिलाएँ उच्च शिक्षा प्राप्त करने में सक्षम नहीं थीं। विभिन्न संगठित और गैर संगठित धार्मिक संसाधनों से महिलाओं को न्यूनतम बौद्धिक और नैतिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। सामाजिक रीति रिवाज के रूप में स्थापित सख्त पर्दा प्रथा के कारण मुस्लिम महिलाओं का शिक्षा प्राप्ति के लिए बाहर निकलना वर्जित था। भारत में मुस्लिम लड़कियों के लिए बहुत कम विशेष मकतब थे, अत: लड़कियों को घर में ही विद्वान पारिवारिक सदस्य या निजी शिक्षक द्वारा शिक्षित किया जाता था। जफर शरीफ ने अपनी पुस्तक कानून-ए-इस्लाम में मध्यकालीन भारत में मुस्लिम महिला शिक्षा व्यवस्था के बारे में विस्तार से वर्णन किया है। उनके अनुसार मध्यम वर्ग की महिलाओं के लिए कई मकतब[2] थे, लेकिन उनमें से अधिकतर निजी थे और उच्च वर्ग के लोगों के घर में स्थापित थे। इन मकतब में बुजुर्ग महिलाओं को कुरान तथा नैतिक कहानियों पर आधारित पुस्तकें पढ़ाने के लिए नियुक्त किया गया था। समाज में कई मुस्लिम विद्वानों ने अध्यापन का पेशा अपनाया और गरीब लड़कियों के लिए एक धार्मिक और घरेलू प्रशिक्षक के रूप में काम किया। सामान्यत: समाज में महिलाओं ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा माता-पिता की देखरेख में घर पर शुरू की। लड़कियों के लिए मकतब सभी जगह विद्यमान नहीं थे इसलिए बचपन में उन्हें ज्यादातर लड़कों के साथ पढ़ाया जाता था। बड़े होने पर उन्हें अपने घरों में निजी शिक्षक द्वारा शिक्षित किया जाता था। घरों में उन्हें बुजुर्ग महिला की देखरेख में रखा जाता था जो खाना बनाने, कटाई, सिलाई, बुनाई और युवाओं की उचित देखभाल करना सिखाने में मदद करती थी। उन्हें मुख्य रूप से बहुत ही सामान्य और उपयोगी घरेलू विज्ञान तथा कर्तव्य में प्रशिक्षित किया जाता था।

मुगल काल के दौरान मुस्लिम महिलाओं की उच्च शिक्षा ज्यादातर समाज के कुछ वर्गों तक ही सीमित थी। सम्राट, कुलीन वर्ग और उच्च वर्ग महिलाओं

को उच्च शिक्षा प्रदान करने में गहरी रुचि रखते थे। इस विश्वास के साथ शिक्षा सत्य की बोध का मार्ग प्रशस्त करती है, उन्होंने महिलाओं को इस इल्म(ज्ञान) से अलंकृत किया। इन महिलाओं के पास बौद्धिक गतिविधियाँ के लिए पर्याप्त अवसर और समय था। लड़कियों की शिक्षा के लिए सक्षम लोग अनुभवी महिलाओं या बुजुर्गों[3] को अपने घर में नियुक्त करते थे, जबकि उच्च वेतन पाने वाले शिक्षित आर्या और अधीक्षकों[4] को शाही हरम में नियुक्त किया जाता था। शाही हरम में उच्च शिक्षा प्राप्त करने में जो रुचि रखते थे उन्हें विद्वानों द्वारा निर्देशित करने की व्यवस्था थी।

माध्यमिक और उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में अंकगणित, लेखा, कृषि, अर्थशास्त्र, प्रशासन की कला, भौतिकी, तर्क, प्राकृतिक दर्शन सार, गणित, देवत्व, इतिहास, चिकित्सा, नैतिकता, कानून, अनुष्ठान, बयानबाजी, घरेलू मामले, ज्योतिष, भूगोल, विद्वता, न्याय शास्त्र, तफसीर, हदीस और परंपराएं, रहस्यवाद, व्याकरण, वाक्य रचना, जीवनी और सुलेख[5] आदि शामिल थे। मुस्लिम महिलाओं को कविता का बहुत शौक था जो कि उन्हें फारसी महिला[6] शिक्षकों की कविताएं सुनने के कारण जागृत हुआ होगा। शेख सादी शिराजी की गुलिस्तान और बोस्तान[7] कविता के रूप में लिखी जाने के कारण उस समय के छात्रों में बहुत लोकप्रिय थी। पवित्र कुरान और हदीस के अध्ययन के अलावा महिलाओं को फारसी और अरबी साहित्य, प्राथमिक अंकगणित, धर्म शास्त्र, खगोल विज्ञान और गणित भी पढ़ाया जाता था। उनमें से कुछ ने सुलेख की कला[8] में दक्षता हासिल की थी। कानून भी उनके लिए रुचि का विषय था। कई मुस्लिम महिलाओं को दवा और उपचार[9] का गहरा ज्ञान था जो सम्भवत उन्होंने अनुभव, पारिवारिक पृष्ठभूमि या शिक्षा से प्राप्त किया होगा। शाही परिवार की महिलाओं के लिए प्रशासन की कला को बहुत महत्वपूर्ण माना जाता था इसलिए उन्हें यह विशेष रूप से सिखाया जाता था। जहाँ तक मुस्लिम महिलाओं की उच्चशिक्षा का सम्बन्ध है केवल अमीर और सम्पन्न लोगों के पास ही इसके लिए अक्सर था। आमतौर पर लड़कियों को प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद बुजुर्ग शिक्षित महिलाओं के शिक्षण के तहत रखा जाता था। मध्यम वर्ग की विधाएं आमतौर पर गरीब लड़कियों को अपने घरों में ही धार्मिक शिक्षा प्रदान करती थी और उसे एक पवित्र कर्तव्य मानती थी। जनता ज्यादातर निरक्षर थी। गरीबी के कारण उन्हें घरेलू कर्तव्यों का पालन करना पड़ता था इसलिए बौद्धिक गतिविधियों के लिए समय नहीं मिलता था। कृषि और श्रमिक वर्गों से सम्बन्धित महिलाओं ने अपने घरेलू उद्योगों कैसे पशु प्रजनन, बुनाई, रंगाई और अन्य में पुरुषों की मदद करती थी। इस प्रकार गरीब महिलाएँ घरेलू, खेत के कामों में और बच्चों के साथ बहुत अधिक व्यस्त

रहती थी और उन्हें बौद्धिक गतिविधियों के लिए शायद ही कभी फुर्सत मिलती थी। इनमें से कुछ को शिक्षा के लिए समय मिला तो उनकी शिक्षा केवल पवित्र कुरान के पाठ तक ही सीमित थी और इसे सीखने के क्षेत्र में उनकी महान उपलब्धि माना जाता था।

शिक्षा शुरू करने की रस्म को बिस्मिल्लाह खानी[10] या मकतह समारोह कहा जाता था। लड़का या लड़की के 4 साल 4 महीने और 4 दिन की उम्र प्राप्त कर लेने पर यह समारोह मनाया जाता था।[11] इसके लिए एक ज्योतिषी से परामर्श करके एक घंटा निश्चित किया जाता था। समारोह से 2 या 3 दिन पहले लड़की को मांझा (शादी की एक रस्म) की स्थिति में बैठना पड़ता था। उसे पीले कपड़े पहनाए जाते थे और सुहागन महिलाओं द्वारा शरीर पर सुगंधित उबटन लगाया जाता था। यह सिलसिला रोज सुबह और शाम मकतह समारोह के दिन तक चलता था। इस अवधि के दौरान पेशेवर महिला गायकों द्वारा सम्बन्धित लड़की के घर में संगीत बजाया जाता था। मकतह के दिन लड़की को नहलाया जाता था और लाल या सफेद रंग के नए महंगे वस्त्र पहनाकर सोने या चांदी के ताबीज लड़की के गले में लटकाए जाते थे। इसके पश्चात उसे फूल मालाओं से सुशोभित करने के उपरान्त मेहमानों के बीच लड़की को शिक्षक या माशेख के सम्मुख लाया जाता था।

सोने या चांदी की प्लेट में इंक-स्टैंड लगे पेन को लड़की के सामने रखा जाता था। इस अवसर के लिए तैयार किए गए मीठे व्यंजनों पर फातिहा का पाठ पढ़ा जाता था। फिर शिक्षक प्लेट पर चंदन की लकड़ी के साथ बिस्मिल्लाह-इर-रहमान-निर-रहीम[12] शब्द लिखते थे, इसके पश्चात् लड़की को इसे चाटने का आदेश दिया जाता था। अमीर परिवारों में सोने या चांदी की प्लेट पर लिखे गए अल्हमद, पवित्र कुरान का पहला अध्याय, खुद लड़की द्वारा दोहराया जाता था। गरीब आमतौर पर पवित्र कुरान के श्लोक लिखने के लिए लाल कागज काम लेते थे। शिक्षक द्वारा लड़की को पवित्र कुरान के पूरे 90 अध्याय सूरह-इकरा का उच्चारण करना सिखाया जाता था। मुगल काल के दौरान पवित्र कुरान को समाप्त करने का दिन धूमधाम के साथ मनाया जाता था। इस समारोह को खत्म कुरान या पवित्र कुरान को समाप्त करने का समारोह[13] कहा जाता था। जब औरंगजेब की सबसे कुशल बेटी जेब-उन-निसा ने पवित्र कुरान को याद कर लिया तो औरंगजेब ने इस दिन को बहुत खुशी के साथ मनाया तथा इस अवसर पर राज्य के सार्वजनिक कार्यालय दो दिन बंद रहे। शिक्षक को मूल्यवान उपहार दिए जाते थे।

गुलबदन बानो बेगम पहली साहित्यिक रत्न थी जो बाबर की बेटी, हुमायूँ की बहन और सम्राट अकबर की सबसे सम्मानित पैतृक चाची थी। उसने हुमायूनामा की रचना की, जो फारसी में लिखी गई थी। यह पुस्तक बहुत मूल्यवान थी और अकबर के अनुरोध पर लिखी गई थी। गुलबदन बानो बेगम की प्रारंभिक जीवन की विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है परन्तु यह स्पष्ट है कि वह 1523 ई. में दिलदार बेगम[14] पैदा हुई थी। 1525 ई. में जब गुलबदन लगभग दो साल की थी उसे बाबर की पत्नी माहम बेगम ने गोद लिया तथा शिक्षित किया। गुलबदन बेगम असाधारण प्रतिभा की धनी थी। वह विभिन्न भाषाओं में पारंगत थी लेकिन फारसी और तुर्की में अत्यधिक निपुण थी।

हुमायूँ की पत्नी, बेगा बेगम, जिसे हाजी बेगम के नाम से भी जाना जाता है शिक्षित महिला थी। उन्हें चिकित्सा और उपचार का भी गहरा ज्ञान था। बेगा बेगम की शिक्षा को संरक्षण देने में गहरी रुचि थी। इसलिए दिल्ली के पास जब पति के मकबरा का निर्माण किया तो उन्होंने इसके पास एक मदरसा की भी स्थापना की।[15] अकबर का उससे बहुत लगाव था और वह उसकी दूसरी मां की तरह थी। हमीदा बानो बेगम अपनी समझ, सहज स्वभाव के लिए प्रसिद्ध थी। वह बुद्धिमान थी तथा उसे इस्लामी सिद्धांतों का गहरा ज्ञान था। मासीर-उल-उमरा एक महत्वपूर्ण घटना को इंगित करता है कि जब अकबर के शिक्षक मुल्लाह अब्दुल नबी ने इस्लामी नियमों के उल्लंघन करने के कारण, अकबर की भगवा रंग की पोशाक को खुले दरबार में ही फाड़ दिया। इस पर अकबर क्रोधित हो गया और उसने इसकी शिकायत अपनी मां हमीदा बानो बेगम से की। उसने जवाब दिया कि, यह आपके लिए आखिरी दिन मौत का कारण होगा, कि कैसे एक बिचारे मुल्ला ने युग के राजा के साथ व्यवहार किया और राजा के क्रोध का शिकार हुआ। माहम अनगा, सम्राट अकबर की दायमाँ, एक उच्च शिक्षित और प्रतिष्ठित महिला थी। वह अपनी मृत्यु तक अकबर के हरम की प्रभारी[16] बनी रही। उसकी सीखने में गहरी दिलचस्पी थी। उसने दिल और आत्मा से शिक्षा को संरक्षण प्रदान कर उस पर अपना पैसा और ऊर्जा खर्च की। उसने दिल्ली में एक मदरसा की स्थापना की, जिसके साथ एक मस्जिद जुड़ी हुई थी और इसे खैर-उल-मंजिल नाम दिया। हुमायूँ की भतीजी सलीमा सुल्तान, भी एक उत्साही पढ़ने और सीखने वाली महिला थी, जिसे फ़ारसी भाषा और साहित्य का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने कई कविताओं को संग्रहित कर दीवान शीर्षक से संपादित किया, तथा यह उस समय बहुत प्रसिद्ध थी। इतिहासकारों की यह

मान्यता है कि वह अपने कलम नाम मॉक्फ़ी से लिखती थी और उसने इस नाम से कई फ़ारसी कविताओं की रचना और संपादन किया था।

जहान बेगम, अकबर के दरबारी की सबसे सुंदर और उच्च शिक्षित बेटी थी। 1598 ई. के अंत में उसका विवाह[17] राजकुमार डेनियल से हुआ। वह बहुत उदार और विद्वानों की संरक्षण प्रदान करती थीं। वह संतों और माशेख का भी बहुत सम्मान करती थी। उसने पवित्र कुरान में दक्षता हासिल कर, उस पर टिप्पणी लिखी थी। इसके लिए अकबर ने उन्हें 50000 दीनार से सम्मानित किया था। सम्राट जहाँगीर की दायमाँ लाडो, विद्या की महान संरक्षिका थी। उसने लाहौर में एक स्कूल की स्थापना की जिसकी अध्यक्षता मौलवी अस्मातुल्लाह नामक विद्वान ने की। नूरजहां ललित कला की विभिन्न शाखाओं जैसे कि संगीत, नृत्य, पेंटिंग, सिलाई, खाना बनाना, सजावट, घुड़सवारी, आदि में प्रवीणता प्राप्त की थी। वह एक शिक्षित महिला थी जिसका दिमाग विलक्षण रूप से प्रतिभाशाली और सक्षम था। वह राजनीतिक मामलों में जितनी कुशल थी, साहित्य में भी उतनी प्रतिभाशाली थी। वह एक उच्च सुसंस्कृत महिला जो फारसी और अरबी साहित्य[18] में पारंगत थी। नूरजहाँ ने कई प्रसिद्ध लोगों को संरक्षण दिया। उसे किताबों से बहुत प्यार था और उसने समृद्ध पुस्तकों को एकत्र एक अच्छा पुस्तकालय बनाया।

मुमताज महल विलक्षण रूप से प्रतिभाशाली और उच्च शिक्षित महिला थी, उसे संगीत और चित्रकला में भी प्रशिक्षित किया गया था। उसने फारसी और अरबी साहित्य में दक्षता हासिल की तथा फारसी में कविताओं की रचना की। मुमताज महल, राजनीतिक प्रतिभा और प्रशासनिक कौशल के साथ एक उच्च सुसंस्कृत महिला थी जो अक्सर साम्राज्य के प्रशासन के कठिन कार्य में अपनी पति की सहायता करती थी। वह 14 बच्चों की मां थी तथा उनकी उचित शिक्षा के लिए हमेशा उत्सुक रहती थी। मुमताज एक उदार और धर्म परायण महिला थी तथा अक्सर दोपहर का समय अपने पति के साथ धर्मार्थ कार्यों में बिताती थी। सती-उस-निशा एक विद्वान फारसी महिला थी, जो विद्वानों और चिकित्सकों के परिवार से थी तथा मुमताज महल की सेवा में शामिल हो गई थी। अपनी प्रतिभाओं शिष्टाचार और गृह-व्यवस्था के ज्ञान के कारण मुहरदार के पद तक पहुँच गई थी। अपने आकर्षक व्यवहार, बहुमुखी प्रतिभा, उच्च शिक्षा और साहित्य ज्ञान के कारण उसे राजकुमारी बेगम साहब की शिक्षिका नियुक्त किया गया। सती-उस-निशा को फारसी और अरबी का अच्छा ज्ञान था तथा वह कवियों की राजकुमारी के रूप में

प्रसिद्ध थी। उसने फारसी में दक्षता हासिल की और गद्य और कविताओं की फारसी कार्यों को अच्छे से समझ सकती थी। उसने चिकित्सा और उपचार में भी महारत हासिल की क्योंकि वह चिकित्सकों के परिवार से सम्बन्धित थी। मुमताज की मृत्यु के बाद उसकी योग्यता के कारण शाहजहाँ ने उसे सद्र उन-निसा के पद पर नियुक्त किया। जहांआरा, बादशाह शाहजहाँ की सबसे बड़ी बेटी थी, वह बहुत बुद्धिमान थी तथा सीखने में रुचि रखती थी। उसकी शिक्षा के लिए एक उच्च शिक्षित महिला सती-उस-निशा को नियुक्त किया। उसकी देखरेख में जहांआरा को पवित्र कुरान और फारसी सिखाई गई और बहुत जल्दी उसमें दक्षता हासिल कर ली। वह साहित्य में भी प्रतिभाशाली थी और फारसी में कई कविताओं की रचना की। जहाँनारा विद्या की संरक्षिका थी, उसने कई विद्वानों को प्रोत्साहित किया और उनके लिए निश्चित भत्ते और वजीफे दिए। वह इतिहास में भी गहरी रुचि रखती थी। वह अपने समय की पहली महिला थी जो बादशाह बेगम[19] के पद पर आसीन हुई। अपने समय की अन्य राजकुमारियों की तरह जबींदा, शाहजहाँ की चौथी बेटी, एक कुशल महिला थी जिसमें साहित्यिक प्रतिभा थी और उन्हें कई रहस्यमय कविताओं[20] रचना की। हाफिजा मरियम उच्च शिक्षित महिला थी जो पवित्र कुरान को दिल से जानती थी इसलिए उन्हें हाफिजा कहा गया था। वह पवित्र कुरान को आकर्षक तरीके से पढ़ने की कला के लिए प्रसिद्ध थी। उसके सद्गुणों से प्रभावित होकर औरंगजेब ने उसे अपनी बेटी जेबुन्निसा का शिक्षक नियुक्त किया। जेबुन्निसा ने उससे सिद्धियों के अभ्यास को याद रखना सीखा। जेबुन्निसा को अपने पिता से विरासत में तीक्ष्ण बुद्धि मिली और बचपन से ही उसमें साहित्यिक गुण दिखाई दिए। शिक्षा के क्षेत्र में औरंगजेब ने खुद उसका मार्गदर्शन किया। उसे कई शिक्षकों द्वारा पढ़ाया गया उनकी पहली शिक्षक रोशनारा थी। औरंगजेब ने उसके लिए एक उच्च प्रतिभाशाली और प्रशिक्षित शिक्षक हाफिज मरियम को नियुक्त किया।

मुस्लिम नियम के अनुसार हाफिजा मरियम ने सबसे पहले उसे पवित्र कुरान की शिक्षा दी जिसके परिणाम स्वरूप जेबुन्निसा ने पवित्र कुरान में महारत हासिल की तथा जब वह केवल 7 वर्ष की थी तो अपने पिता को इसका पाठ सुनाया। औरंगजेब ने इस पर बहुत प्रसन्नता व्यक्त की और उसकी मेहनत के प्रतिफल के रूप में उसे तीस हजार स्वर्ण मोहरे दी। आठ से बारह वर्ष की आयु के बीच उसने अरबी का अध्ययन किया और उसमें प्रवीणता प्राप्त की। बाद में शाहरूस्तम गाजी, एक प्रसिद्ध विद्वान को उसके शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया। औरंगजेब के पूर्व शिक्षक मुल्ला जीवन, ने भी कुछ समय उसका मार्गदर्शन

किया। उनके निर्देशन मे जेबुन्निसा को कई किताबें सिखाई गई और फारसी और अरबी गद्य तथा कविता में महारत हासिल की। जेबुन्निसा पत्र लेखन में काफी पारंगत थी और उनकी पत्रों का संग्रह जेब-उल-मंशत के नाम से जाना जाता था, जिसे तजकी-रत-उल-गरीब के लेखक[21] ने स्वयं देखा था। औरंगजेब ने उसके पत्रों की मधुर साहित्यिक शैली की सराहना की थी। उसे सुलेख का भी शौक था और उसकी उम्र के विशेषज्ञों की मदद से उसने इसमें दक्षता हासिल की। वह नस्तलिक, नस्ख और शिकस्ता को सही सही लिख सकती थी। जेबुन्निसा को मुशायरा में गहरी दिलचस्पी थी। खुद पर्दे के पीछे रहते हुए उसने अपने महल में कई मुशायरे आयोजित किए।

औरंगजेब की दूसरी बेटी ज़ीनत-निशा भी बचपन से ही एक उच्च संस्कारी महिला थी। बचपन से पिता ने उसे अपनी देखरेख में पढ़ाया, जिसके परिणामस्वरूप वह इस्लामी सिद्धांतों में प्रवीण हो गई थी। औरंगज़ेब और नवाब बाई की तीसरी बेटी बदरून्निसा, उसकी बहनों की तरह उच्च शिक्षित नहीं थीं, परन्तु बुनियादी रूप से शिक्षित थी। अपने पिता के मार्गदर्शन में उसने पवित्र कुरान को याद कर लिया था। उसके अच्छे चरित्र, शिष्टाचार और दयालु स्वभाव के कारण औरंगजेब उससे बहुत प्यार करता था।

सन्दर्भ

1. अबुल फजल, **अकबरनामा**, भाग 2, अनु. एच.बेवरीज, कोलकाता, 1948, पृष्ठ सं. 509
2. एम. एल. भागी, **मीडिवल इंडिया कल्चर एंड थॉट**, 1965, पृष्ठ सं.15
3. पी. एन. चोपड़ा, सम **एस्पेक्ट आफ सोसायटी एंड कल्चर ड्यूरिंग द मुगल एज**, द्वितीय संस्करण, 1963, पृष्ठ सं.61
4. मनुची निकोलो, स्टोरिया दो मोगोर, अंग्रेजी अनुवाद इर्विन भाग 2, पृष्ठ सं. 330-331
5. अबुल फजल, **आइन ए अकबरी**, भाग 1, पृष्ठ सं. 289
6. सरकार जी. एन., स्टडीज इन मुगल इंडिया, कोलकाता, 1919, पृष्ठ सं. 301
7. मनुची निकोलो, वही, भाग 2, पृष्ठ सं. 331
8. जफर एस. एम., एजुकेशन इन मुस्लिम इंडिया, दिल्ली, 1973, पृष्ठ सं. 191-192
9. जहाँगीर नूरुद्दीन मोहम्मद, तुजुक ए जहाँगीरी, अनु. अलेक्जेंडर रोजर्स एंड एच.बेवरीज, भाग 2, दिल्ली, 1968, पृष्ठ सं. 213-214

10. अशरफ के.एम., लाईफ एंड कंडीशन ऑफ द पीपल ऑफ हिंदुस्तान, जनरल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, कोलकाता, भाग 1, 1935, आर्टिकल सं. 4, पृष्ठ सं. 219
11. अबुल फजल, वही, भाग 1, पृष्ठ सं. 519
12. कौसर जीनत, मुस्लिम विमेन इन मीडिवल इंडिया, नई दिल्ली, 1992, पृष्ठ सं. 149
13. लॉ एन. एन., प्रमोशन ऑफ लर्निंग इन इंडिया ड्यूरिंग मोहम्मड्न रूल, दिल्ली, 1973, पृष्ठ सं. 200
14. बेगम गुलबदन, हुमायूँ नामा, अनु.ए.एस.बेवरीज, दिल्ली, 1983, पृष्ठ सं. 1-2
15. बॅनर्जी एस.के., हुमायूँ बादशाह, भाग 2, ऑक्सफोर्ड, लखनऊ, 1941, पृष्ठ सं. 317
16. खान शाहनवाज, द माथिर उल उमरा, भाग 1, अनु. एच. बेवरीज और बेनी प्रसाद, पृष्ठ सं. 146
17. अबुल फजल, वही, भाग 1, पृष्ठ सं. 322
18. प्रसाद बेनी, हिस्ट्री ऑफ़ जहाँगीर, लंदन, 1930, पृष्ठ सं. 158
19. मनुची निकोलो, सटोरिया दो मोगोर, अंग्रेजी अनुवाद इर्विन भाग 2, पृष्ठ सं. 218-219
20. जफर एस. एम., एजुकेशन इन मुस्लिम इंडिया, दिल्ली, 1973, पृष्ठ सं. 196
21. हाशमी अहमद अली, मुख़ज़न-उल-गरीब, एम. न. 239,240, खुदा बख्श ओरिएंटल लाइब्रेरी, पटना, पृष्ठ सं. 312

डॉ. शोभा सिंह

सहायक आचार्य इतिहास

एस आर के पी राजकीय महाविद्यालय

किशनगढ़

❑ ❑ ❑

मध्यकालीन सौहार्दपूर्ण संस्कृति और हिंदुस्तान

• डॉ. मनीष श्रीमाली

भारतीय उपमहाद्वीप विविधताओं का संसार है यहाँ धर्म, जाति, भाषा, लिंग तथा प्रकृति में विविधता देखने को मिलती है। इतनी अधिक विविधताओं की वजह से कई विचारक इसे अस्वाभाविक राष्ट्र की संज्ञा देते हैं। कई विचारक दीर्घकाल तक इन विविधताओं में एकता को बनाए रखने की भारतीयों की योग्यता पर संदेह व्यक्त करते हुए भविष्य में इसकी एकता अर्थात् इसके अस्तित्व पर प्रश्न-चिह्न लगाते हैं इनमें जॉन स्ट्रेची और रूपायर्ड किपलिंग प्रमुख हैं।[1] उपर्युक्त विचारकों का यह संदेह इतिहास के सबक पर आधारित था। प्रथम विश्व युद्ध का एक प्रमुख कारण यही 'एक राष्ट्रीयता एक राज्य' का सिद्धांत था जिसे ऑस्ट्रिया-हंगरी जैसे बहुप्रजाति वाले राष्ट्र और वहाँ चल रहे आन्दोलन चुनौती देते हैं। अंततः प्रथम विश्वयुद्ध के बाद यहाँ कई नवीन राज्यों का उदय हुआ।[2] किंतु भारतीयों ने इतिहास को यहाँ दोहराने का अवसर प्रदान नहीं किया। भारत के इतिहास पर प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि यहाँ के निवासियों में सहिष्णुता एक आधारभूत गुण रहा है। जिसने सामासिक संस्कृति के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और भारत को खण्डित होने से बचाए रखा। यही भाव हमें कवि इकबाल की कविता 'तरानए-हिंदी'[3] में मिलते हैं जब वे कहते हैं—

'युनान-ओ-मिस्त्र-ओ-रोम सब मिट गये जहाँ से
अब तक मगर है बाकी नामो-निशान हमारा।।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौर-ए-जहाँ हमारा।।'

भारतीय संस्कृति की दीर्घजीविता का सबसे महत्वपूर्ण कारण इसकी सहिष्णुता तथा अन्य बाह्य तत्त्वों को अपने में आत्मसात करने की विशेषता है।

सहिष्णुता का गुण भारतीयों में कितनी गहरी पैठ बनाए हुए है इसका आभास तो इस के राष्ट्र के नाम से ही हो जाता है। भारत एवं हिंदुस्तान नाम स्वयंमेव सहिष्णुता के महत्वपूर्ण उदाहरण है। जहाँ ब्रह्म पुराण के अनुसार दुष्यन्त-शकुन्तला के पुत्र भरत[4] के नाम पर इस देश का नाम भारत वर्ष पड़ा माना जाता वहीं जैन धर्म के अनुसार आदिनाथ ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम पर तो ऋग्वैदिक भरत जन के नाम पर भारत होना स्वीकार जाता है।[5] जैन व हिन्दू दोनों अपनी-अपनी परम्पराओं का उल्लेख करते है किंतु इनका दावा कहीं अतिवादी या उग्रवादी रूप धारण नहीं करता है। जहाँ पश्चिम अपनी भौतिकतावादी संस्कृति के लिए जाना जाता है वहीं पूर्व अपने ऊर्वर धार्मिक विचारों एवं अध्यात्म के प्रणेता के रूप में जाना जाता है। भारत जो विश्व के सबसे प्राचीन सनातन धर्म का प्रतिनिधित्व करता है उसके धर्म को हिन्दू नाम भी 'सिंधु नदी' के माध्यम से ईरानियों द्वारा मिला। ईरान में बहुत पहले से सिंधु (नदी) के लिए हिन्दू शब्द का उच्चारण होता था, क्योंकि प्रारंभिक ईरानी भाषा में 'स' का 'ह' हो जाता हैं।[6] ईरानी शासक दारा के बहिस्तून और पर्सीपोलीस स्तंभ लेख में भी सिंधु के लिए हिन्दू आया है।[7] इसी विकृति से आगे चलकर हिन्दू और हिन्दुस्तान, दोनों शब्द निकले। बाबर भी अपनी पुस्तक बाबरनामा में हिंदुओं का देश होने की वजह से इसे हिंदुस्तान कहता है।[8] तेरहवीं सदी के बाद से उक्त शब्द अपने संकीर्ण अर्थ में अधिक प्रमुखता के साथ व्यवहार में आने लगा और हिन्दू धर्म ने धार्मिक रंग का रूप ले लिया।[9] इस समय विजयनगर के शासक और मेवाड़ के शासकों की उपाधियों में उक्त शब्द दृष्टिगत होते हैं, जैसे कुंभा को मुस्लिम शासकों द्वारा हिन्दू सुरत्राण[10] का खिताब दिया गया तो राणा सांगा को 'हिन्दूपत' का खिताब मिला।[11] इसी प्रकार यूनानियों के मुख से 'ह' के बदले 'अ' निकलता था, अतएवं, हिन्दू को उन्होंने इन्दो (Indo) कहा। इसी दूसरी विकृति से 'इंडिया' नाम निकला। इटली के कवि वर्जिल ने इंडिया के बदले केवल 'इन्द' लिखा है वहीं मिलटन ने भी भारत का नाम 'इंद' ही लिखा है।[12]

भारत के नाम के अलावा यह धर्म भी विविधताओं से पूर्ण है। हिन्दू धर्म जिसे सनातन धर्म भी कहते हैं।[13] इसके किसी भी प्रवर्तक का उल्लेख नहीं मिलता है जैसे कि मुस्लिम के पैगम्बर मोहम्मद, बौद्ध धर्म के गौतम बुद्ध है।[14] हिन्दू धर्म या ब्राह्मण धर्म एक दीर्घकालीन विकास का परिणाम हैं। जहाँ यास्क के निरूक्त में देवताओं की संख्या मात्र तीन बताई गई है।[15] वहीं ऋग्वैदिक काल में तैतीस देवताओं का उल्लेख मिलता है[16] किंतु हिन्दू धर्म की उदारता, सहिष्णुता एवं व्यापक व सरलता से आत्मसात्त करने की प्रवृत्ति ने हिन्दू देवी-

देवताओं की संख्या को 33 करोड़ तक पहुँचा दिया। देवी-देवताओं के अनगिनत स्वरूप होने की वजह से आमजन को हर रूप में सुलभ है।[17] बहुदेववाद के साथ ही यहाँ एकेश्वराद के तत्व भी निहित हैं जिसकी अभिव्यक्ति ऋग्वेद में भी मिलती है[18] तो चरम अभिव्यक्ति शंकराचार्य के अद्वैतवाद में मिलती हैं।[19] यहाँ विभिन्न धर्मों के साथ उसके दर्शन में भी विभिन्नता देखने को मिलती है। यहाँ प्राचीन से लेकर मध्यकाल तक धर्म के दो अतिवादी विचारों, अर्थात् अति कठोर एवं विलासिता के दर्शन भी होते हैं तो संतुलित मार्ग का अनुसरण भी दिखाई देता हैं। जैन धर्म जहाँ अति काया क्लेश पर जोर देता है वहीं चार्वाक दर्शन विलासिता पूर्वक जीवन जीने का समर्थन करता हैं।[20] बौद्ध धर्म दोनों अतिवादी विचारों को नकारता है एक व्यवहारिक धर्म की भांति मध्यम मार्ग का अनुसरण करता है।[21] इसी प्रकार के विचार मध्यकाल के सूफी संतों के जीवन में भी दिखाई देता है। चिश्ती संत राजकीय सहायता को स्वीकार नहीं करते थे बल्कि सादा जीवन जीने में विश्वास करते थे वही सुहरावर्दी संतों का राजकीय सहायता प्राप्त कर, पद लेने तथा आरामदायक जीवन जीने में विश्वास था।[22] हिन्दू धर्म जहाँ प्रारभ में शैव, वैष्णव एवं शाक्त धर्मों के रूप में बंटा हुआ था। वहां भी अवतारवाद एवं भक्ति के माध्यम समाज में एकता स्थापित की गई थी। महाजनपद काल का प्रारंभ होते ही बदलती सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार ब्राह्मण धर्म के विरोध में कई धर्म अस्तित्व में आए। इस समय गंगा घाटी में 68 धर्म प्रचलित थे।[23] इतने बड़े स्तर पर ब्राह्मण धर्म के प्रति विरोध एवं असंतोष ने समाज के बिखराव एवं हिन्दूधर्म के अस्तित्व पर संकट खड़ा कर दिया। हिन्दूधर्म की सामाजिक प्रतिरोध की सुदृढ़ आंतरिक व्यवस्था ही थी जिसने भारत को टूटने से बचाया। ब्राह्मण विरोधी धर्म या तो समय के साथ अप्रासंगिक हो गया या हिन्दू धर्म का ही अंग बन गया। जैन एवं बौद्ध धर्म जो इस समय के मुख्य धर्म थे। बौद्ध जो ब्राह्मण धर्म के विरोध स्वरूप अस्तित्व में आया वही कालांतर में विष्णु के दस अवतारों में एक बन कर हिन्दू धर्म के निकट आ गया।[24] इसी प्रकार का प्रतिरोध एवं नवीन मत के उद्भव का उल्लेख मध्यकाल में भी मिलता है। इस समय क्रांतिकारी विचारों से प्रेरित वीरशैव लिंगायत मत अस्तित्व में आया। यह क्रांतिकारी विचारों पर आधारित सम्प्रदाय था। यह जाति प्रथा का विरोधी था।[25] इस सम्प्रदाय का उद्भव ऐसे समय हुआ जब हिन्दू एवं मुस्लिम समाज रूढ़िवादी एवं कट्टरवादी विचारों के प्रभाव में था। समाज में कई बुराईयां घर कर गई थी। जाति प्रथा अपने कठोर रूप में थी जिसने सामाजिक असंतोष को जन्म दिया। ऐसे समय में साम्प्रदायिक सौहार्द स्थापित करने के साथ-साथ हिन्दू एवं मुस्लिमों में भी समन्वय बनाये

रखने की आवश्यकता थी। भक्ति एवं सूफी संतों ने इस कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन संतों में कबीर एवं नानक महत्वपूर्ण थे। गुरु नानक हिन्दू एवं मुस्लिम के बीच अंतर नहीं मानते हैं। वे आत्मा के धर्म को प्रोत्साहन देते हैं जो सार्वलौकिक स्वभाव का तथ्य है।[26]

भक्ति आन्दोलन जो 15वीं-16वीं शताब्दी का यह लोकप्रिय एकेश्वरवादी आन्दोलन था। इसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता इसके संतो का निम्न वर्ग से होना था। कई ब्राह्मण संतो ने भी जाति व्यवस्था का विरोध किया। भक्ति आन्दोलन के नायक जो उन्हीं के बीच से आये थे और उन्होंने इन साधारण लोगों से उन्हीं की भाषा में बातें की और उन्हें सारत: उच्च नैतिक संदेश प्रदान किये। इस आन्दोलन का चरित्र गुरु अर्जुन देव (1606 ई.) की वाणी में दिखाई देता है जिसे उन्होंने धन्ना जाट के नाम से लिखा था—

> नामदेव का हृदय गाता रहता गोविन्द! गोविन्द! गोविन्द!
> आधी दमड़ी का वह कपड़ा छापने वाला बन गया लखपति
> ताना कातना और कपड़ा बुनना छोड़ कबीर हरिप्रेम में डूब गया।
> देखो तो जात का जुलाहा और बन गया दिव्य विभूति
> और रामदास उमर-भर में पशुओं को ठिकाने लगाता तर गया
> साध संगत से बन गया आप महान और पाथे हरिदर्शन

सेना, नाई था जो गाँव भर का टहलुआ (और अब) घर-घर पूजा होती उसकी और हृदय में प्रभुवास सन्तों में गिने जाते है महाराज अब, यह सब वृत्तांत सुन एक जाट ने प्रभु चरणों में लगा दिया है स्वयं को मैं अपने भगवान से मिला हूँ और धन्य हो गया जीवन मेरा।[27]

इस प्रकार भक्ति संतों में निम्न वर्ग को समाज में प्रतिष्ठापूर्ण स्थान मिला वहीं जाति बंधन भी कमजोर हुआ। सूफी संतों ने भी कबीर व नानक के समान हिन्दू-मुस्लिम धर्म का एक-दूसरे को समीप लाने का कार्य किया। सूफी दर्शन पर वैसे भी बौद्ध दर्शन व उपनिषदों का प्रभाव माना जाता है। भारत में आने पर यहाँ रहने पर दोनों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। सूफियों पर वेदान्त एवं नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव देखा जा सकता है। सूफी संत उस्मान पर वेदांत दर्शन का प्रभाव था। कासिमशाह ने अपनी रचना 'हंस जवाहिर' में अल्लाह का नामकरण नाथयोगियों तथा गोरक्षपंक्षियो के अनुरूप किया है—वह अलख है, वह अकेला है, प्रकट तथा गुप्त सभी रंगों में वही खेल खेल रहा हैं।[28]

जहाँ आधुनिक काल में भाषा धर्म से जुड़ गई और सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गई थी। वहीं भाषा मध्यकाल में सहिष्णुता एवं सामासिक संस्कृति की वाहक बनी। इसमें भक्ति एवं सूफी संतों की भूमिका महत्वपूर्ण रही क्योंकि उन्होंने अपने उपदेश की भाषा क्षेत्रीय भाषा को ही बनाया था।[29] यहाँ कई हिन्दी भाषी सूफी संत देख सकते हैं जिन्होंने उत्कृष्ट साहित्य की रचना की जैसे—मंझन (मधुमालती), कुतुबन (मृगावती), जायसी (पदमावत), उस्मान (चित्रावली), कासिमशाह (हंस जवाहिर) तथा शेख अब्दुल कद्दुसी गंगोही (रूश्दनामा) आदि प्रमुख है। जिन्होंने काव्य के माध्यम से सूफीमत का विवेचन किया।[30] सूफी संत शेख मोहिदी के शिष्य मलिक मुहम्मद जायसी ने विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ पदमावत की रचना कर दी जो हिन्दू हृदय के मर्म को स्पर्श करने वाला है। हिन्दू-मुस्लिम कट्टरता को दूर करने का जो प्रयास कबीर ने झाड़-फटकार के करने का प्रयास किया जायसी ने उसे हिन्दू हृदय की संवेदनाओं को छू कर किया। मुसलमान होकर हिन्दूओं की कहानियाँ हिन्दूओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जवीन की मर्मस्पर्शी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया।[31]

जहाँ मध्यकाल को धार्मिक कट्टरता का काल भी कहा जाता है। जैसा विश्व के इतिहास में दिखाई देता है। जेरूसलम को लेकर ईसाई एवं मुस्लिमों में कई वर्षों तक धर्म युद्ध चला जिसमें कई हजारों लोगों ने अपने प्राण गवाएँ।[32] पोप इतना शक्तिशाली था कि राजा भी उसके आदेशों की अवेहलना नहीं कर सकता था। पोप के आदेश या चर्च की अवेहलना नहीं करने पर जिन्दा जला दिया जाता था। धर्म की ऐसी कट्टरता भारत में नहीं दिखाई देती है। भारत में तो एक स्वस्थ समन्वित संस्कृति के दर्शन होते हैं। यहाँ कुछ अपवादों को छोड़ कर राजा धार्मिक कट्टर नहीं रहा। यहाँ धार्मिक समन्वय के अनूठे दर्शन तो भिन्न-भिन्न धर्म के किन्तु समर्पित गुरु एवं शिष्य की जोड़ियों में होते हैं। दादूदयाल के प्रसिद्ध शिष्य रज्जबजी थे जिन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता का संदेश दिया। राजस्थान के संत सुन्दरदास ने इस सम्बन्ध में कहा है कि मैंने न तो हिन्दू मार्ग को अपनाया न मुसलमान के मार्ग को ही। किन्तु मुझे सहजावस्था में राम और अल्लाह दोनों एक ही दृष्टिगोचर हुए है।

हिन्दू की हदि छाड़िकैं, तजी तुरक की राह।
सुन्दर सहजै चीन्हियां, एकै राम अल्लाह।।[33]

इस क्रम में दिल्ली के पठान सरदार 'रसखान' का नाम महत्वपूर्ण हैं ये बड़े 'कृष्ण भक्त' थे तथा गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य थे। इन्होंने कृष्ण भक्ति

पर 'प्रेमवाटिका' की रचना की थी। ब्रजभूमि के सच्चे प्रेम से परिपूर्ण रसखान के संदर्भ में प्रसिद्ध है—

मनुष्य हो तो वही रसखान बसैं संग गोकुल गाय के ग्वारन।[34]

हिन्दू-मुस्लिम गुरु परम्परा से बढ़कर घर-घर में राम की कथा को पहुँचाने वाले तुलसीदास और प्रसिद्ध मुगल सेनापति बैरम खाँ पुत्र अब्दुल रहीम खान खाना की मित्रता भी अद्‌भुत थी। ऐसी जनश्रुति है कि एक बार ब्राह्मण अपनी कन्या के विवाह के लिए धन न होने से घबराया हुआ गोस्वामी जी के पास गया गोस्वामीजी ने उसे रहीम के पास भेजा और दोहे कि यह पंक्ति लिखकर दे दी—

'सुरतिय नरतिय नागतिय यह चाहत सब कोय'

रहीम ने उस ब्राह्मण को बहुत-सा द्रव्य देकर विदा किया और दोहे की दूसरी पंक्ति इस प्रकार पूरी करके दी—

''गोद लिये हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय''।[35]

ये मध्यकाल की धार्मिक सहिष्णुता के जीवंत उदाहरण है जो किसी स्वार्थवश नहीं अपितु स्नेहवश सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाए हुए थे।

सामासिक संस्कृति के निर्माण में निश्चय ही भक्ति-सूफी संत तथा आम जन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। किंतु सामासिक संस्कृति के निर्माण में यहाँ के शासकों की भूमिका को कतई कमतर नहीं आंका जा सकता है। भारत राष्ट्र जो अध्यात्म की ऊर्वर भूमि रही है अत: यही वजह है कि यहाँ कई धर्म प्रचारक भी आए और कई विदेशी आक्रमणकारी भी आए। कई विदेशी शासक तो न केवल यहीं के होकर रह गए अपितु उन्होंने यहाँ के धर्म को भी स्वीकार कर लिया। इनमें मिनेण्डर, कनिष्क, भागभद्र आदि कई नाम प्रमुख है। इसी प्रकार की सामासिक संस्कृति के दर्शन मध्यकाल में भी होते हैं। जिसे विश्व इतिहास के संदर्भ के अंधकार के काल की संज्ञा दी है। ईसाई धर्म जिसके संदर्भ में माना जाता है कि पह्लव शासक गोण्डोफर्निस के समय ईसाई संत टामस भारत आए थे।[36] इसी प्रकार पूर्तगाली गर्वनर अल्फांसो डिसूजा के समय फ्रांसिस जेवीयर भारत आए। ईसाई धर्म का यद्यपि बहुत गहरा प्रभाव यहाँ नहीं पड़ पाया क्योंकि यह प्रत्यक्षत: शासक वर्ग से भी नहीं जुड़ा था और इसका आमजन से भी प्रत्यक्ष सम्पर्क वृहद् स्तर पर नहीं हो पाया था। यद्यपि अकबर के समय उल्लेख मिलता है कि नेपल्स का जेसुईट पादरी एकाबिवा ने बीजापुर की राजकुमारी को मुगल दरबार में जाने के एक माह पूर्व ही ईसाई धर्म में दीक्षित किया था। यद्यपि ये

राजनीतिक कारण से अधिक व धार्मिक कम था।[37] मुगल दरबार में ईसाई धर्मप्रचारकों को काफी स्वतन्त्रता प्रदान कर रखी थी। अकबर ने मिशनरियों को आगरा व लाहौर में गिरजाघर बनाने के लिए केवल आज्ञा ही प्रदान नहीं की थी अपितु सार्वजनिक रूप से पूजा-पाठ करने, त्यौहार मनाने तथा हिन्दू-मुसलमानों को ईसाई धर्म में दीक्षित करने की आज्ञा भी दी।[38] अकबर ने यहाँ तक कि अपने दस वर्षीय पुत्र मुराद को ईसाई धर्म की शिक्षा एवं पुर्तगीज भाषा सीखने के लिए मोंसेरात को नियुक्त किया।[39] यहाँ ईसाईयत के प्रति झुकाव का सबसे बड़ा उदाहरण जहाँगीर के समय मिलता है विलियम फिंच के अनुसार दानियाल के बेटों और जहाँगीर के पोते का सार्वजनिक बतिस्मा 1610 में हुआ (यद्यपि यहाँ भी उन्होंने 1611 में पुनः इस्लाम अपना लिया)। दानियाल एवं अब्दुर रहीम खानखाना की पुत्री जाना बेगम साहिब के तीनों पुत्रों के बपतिस्मा के बाद नाम भी बदल दिए गए। ताहमुरास, बाइसंघर और होशंग मिर्जा के पुत्रों के नाम क्रमशः डॉन फिलिप, डॉन कार्लोस और डॉन हैंरीक रखा गया। यह अपने आप में पराकाष्ठा थी। इसके अतिरिक्त जहाँगीर ईसाई पादरियों को प्रतिदिन के हिसाब से तीन रु. से लेकर सात रु. तक देता था। और धार्मिक अवसरों पर वह उन्हें अधिक धन भी देता था।[40] इस प्रकार ईसाई धर्म को उदार शासकों का प्रश्रय मिला।

जहाँ तक इस्लाम एवं हिन्दू धर्म का सम्बन्ध है। ये धर्म उस समय भारत में आ चुका था जब इस्लाम का भारत में उत्कर्ष हुआ था। किन्तु, तब उसका आगमन मित्रता के नाते हुआ था। अरब, फिलस्तीन और मिस्त्र से भारत का प्राचीनतम व्यापारिक सम्बन्ध था।[41] फरिश्ता लिखता है कि मुस्लिम व्यापारी मालाबर तट पर बस गए थे। मालाबार के हिन्दू राजाओं का मुसलमानों के साथ प्रतिष्ठा और दया का व्यवहार था।[42] उदार एवं सहिष्णु हिन्दू शासकों ने शासक के धर्म पालन करते हुए अपनी हर वर्ग और धर्म की प्रजा को संरक्षण दिया। 11वीं सदी में खंभात के कुछ हिन्दूओं ने मुसलमानों की एक मस्जिद पर हमला करके उसे गिरा दिया। तब राजा सिद्धराज ने तहकीकात करके अपराधियों को दंड दिया और मुसलमानों को अपने धन से नई मस्जिद बना के दी।[43] यहाँ के शासकों में स्वधर्म के प्रति पूर्वाग्रह दिखाई नहीं देता हैं। यही वजह है कि भारत में सामासिक संस्कृति की सुदृढ़ परंपरा दिखाई देती है। इसी प्रकार के कई और भी उदाहरण देखने को मिलते हैं।

मालाबार के राजा चेरामन पेरुमल ने मालाबार तट पर 11 मस्जिदें बनवाई थी।[44] गुजरात के वेरवल 1246 ई. के एक संस्कृत शिलालेख से पता

चलता है कि होर्मुज के नूरुद्दीन फीरोज ने चालुक्य राजा अर्जुनदेव के संरक्षण में एक मस्जिद की स्थापना की।[45] हिन्दू स्थापत्य में हिन्दू-मुस्लिम समन्वय का अद्भुत उदाहरण राणा कुम्भा के विजय स्तंभ में देखने को मिलता है। विजय स्तंभ जिसकी तीसरी मंजिल पर कुंभा ने अरबी में नौ बार और आठवीं मंजिल पर आठ बार सूक्ष्म कारीगरी के साथ 'अल्लाह' लिखवाया। विजय स्तंभ जिसे उपेन्द्र नाथ डे ने कुंभा के आराध्य को समर्पित माना है इसी वजह से इसे 'विष्णु ध्वज स्तंभ' कहा है[46] यहीं मत नीलिमा मित्तल ने भी रखे है।[47] कुंभा द्वारा अपने आराध्य को समर्पित इमारत पर मुस्लिमों के पवित्र शब्दों को उत्कीर्ण करना मध्यकालीन धार्मिक उदारता का ज्वलंत उदाहरण दिया है। इसे देखकर अंग्रेज पर्यवेक्षक एच.बी. डल्ब्यू. गरिक (1883-84) यह कहने के लिए विवश हो गया—

''यह खोज विशिष्ट समस्या पैदा करती है, जिसका एकमात्र निदान भी वह स्वयं ही प्रस्तुत करती है कि हिन्दू और मुसलमानों के बीच के विभाजन तीन सदियों पहले आज की तुलना में बेहद कम थे।''[48]

स्थापत्य कला में भी हमें सामासिक संस्कृति के दर्शन होते हैं। ये निर्जीव इमारते विभिन्न धर्मों के संनेगो और मनोभावों की प्रतिमूर्ति है जो सहिष्णुता को पोषित करती है। वैसे तो मध्यकाल की अधिकांश इमारते हिन्दू एवं मुस्लिम की त्राबियत एवं शहतीर शैली पर आधारित है। मुगलकालीन एवं कई हिंदु स्थापत्य पर हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य की समन्वित शैली का प्रभाव दिखाई देता है। मुस्लिम स्थापत्य कला की सर्वोत्कृष्ट इमारत की बात करे तो 'ताजमहल' का नाम आता हैं। ताजमहल पर भी विदेशी वास्तुकला की अपेक्षा भारतीय वास्तु का प्रभाव अधिक है यह उतना ही भारतीय है जितना की सारनाथ का स्तंभ और अजंता की गुफा।[49] जहाँ पं. जवाहर लाल नेहरू मिली जुली संस्कृति के विकास के रूप में ताजमहल का वर्णन करते हुए कहते हैं कि चोटी के मेमारों और कलावंतो ने मुहब्बत के हाथों से आगरा में ताजमहल खड़ा दिया।[50] वास्तव में प्रेम की इमारत ताजमहल यह आमजन अर्थात् उन हिन्दू और मुस्लिम कारीगरों[51] के संयुक्त कौशल की उत्कृष्ट परिणिति थी। यह सामासिक संस्कृति के व्यवहारिक पक्ष को इंगित करता है। जब हिन्दू एवं मुस्लिम कारीगर मिलकर इन इमारतों का निर्माण कर रहे थे और शाहजहाँ के आदर्श को व्यावहारिक रूप दे रहे थे।

साहित्य जिसे समाज का दर्पण कहा जाता है। अत: मध्यकाल के साहित्य पर दृष्टि डाल के भी उस समय के भावों को समझा जा सकता है।

चूंकि इस समय हिन्दू एवं मुस्लिम धर्म ही मुख्य धर्म थे अत: दोनों के मध्य अंतक्रिया स्वाभाविक थी। इसी का प्रभाव था कि मध्यकाल में कई हिन्दू ग्रंथों का फारसी में अनुवाद हुआ। फिरोजशाह तुगलक, सिकंदर लोदी आदि शासकों के समय अनुवाद हुआ किंतु इस दिशा में अकबर के समय महत्वपूर्ण कार्य हुआ था। अकबर ने फैजी के अधीन अनुवाद विभाग की स्थापना की थी। अकबर के काल में रामायण, महाभारत, अथर्ववेद, राजतंरगिनी, हरिवंशपुराण, पंचतन्त्र इत्यादि अनके ग्रंथों का फारसी में अनुवाद हुआ।[52] सामासिक संस्कृति के लिए अगर किसी मुगल राजकुमार ने कार्य किया है तो वो दारा शिकोह था। यह दारा का हिंदुत्व प्रेम ही था जिसने 50 उपनिषदों कि व्याख्या जैसा दुरूह कार्य सम्पन्न कर दिखाया। उसकी इस अद्भुत कृति का नाम 'मज्मउलबहरैन' था जिसका अर्थ होता है 'दो समुद्रो का मिलन' ये दो समुद्र हिन्दू एवं इस्लाम थे। इस ग्रंथ को देखने पर पता चलता है कि दारा का वेदान्त और तसव्वुफ दोनों पर कितना अधिकार था और उसे समन्वित कर एक नयी संश्लिष्ट भारतीय संस्कृति की स्थापना की। इसी प्रकार अकबर के समय फैजी ने फारसी में 'शारिकुल्मारिफत' (ब्रह्मज्ञान भास्कर) की रचना कर मुस्लिम संसार को वेदान्त का तत्त्वज्ञान देने का प्रयत्न किया था।[53] समन्वय में देशप्रेम का भी महत्वपूर्ण स्थान है। मध्यकाल के भारत को अगर वतनपरस्ती के दृष्टिकोण से देखना हो तो अमीर खूसरो एवं इसामी पढ़ना ज्यादा सही होगा। अमीर खुसरो गंगा-जमना संस्कृति की प्रतीक हिन्दवी भाषा का पहला कवि माना जाता है जो कहता था, ''मैं हिन्दुस्तान की तूती हूँ। अगर तुम वास्तव में मुझसे जानना चाहते हो तो हिंदी में पूछो! मैं तुम्हें अनुपम बातें बता सकूंगा।''[54] खुसरो नूहे सिपेहर में भारत देश की प्रशंसा करते हुए उसे 'धरती का स्वर्ग बताता है।' तथा इसके पक्ष में सात प्रमाण भी रखता है।[55] इसी प्रकार 1850 ई. में इसामी ने भी भारत की प्रशंसा में कहा—

समृद्धि है महान उसकी जिसे कहते हैं मुल्क हिन्दोस्तान यह है वह उद्यान जिससे करता है ईर्ष्या स्वर्ग भी धरा-वधु के रूपाभूषण सी इसकी सीमाएँ। जैसे किसी मनमोहिन के चेहरे पर संचित हो सौन्दर्य।

साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास की विकृत व्याख्या कर इसे दूषित करने का प्रयास किया। साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा ऐसा करने का कारण भारत की एकता को खण्डित करना था। 1830 के दशक से ही साम्प्रदायिक विचारधारा का प्रचार एक फैशन के रूप में इतिहास लेखन के माध्यम से आरंभ हो गया था। परन्तु एक वैचारिक संरचना के रूप में इसका

उदय 1870 तथा 1880 के दशक में हुआ।[57] जिसने आगे चलकर द्विराष्ट्र के सिद्धान्त को पल्लवित किया। उपर्युक्त शोध पत्र में मध्यकाल एवं उससे पूर्व भी भारत में समन्वयवादी संस्कृति मौजूद होने के कई उदाहरण देखने को मिलते हैं। यहाँ फिर भी यह अतिवादी दावा नहीं किया जा रहा है कि मध्यकालीन समाज एक आदर्श समाज था। मध्यकाल के इतिहास में जजिया कर से लेकर मंदिर तोड़ने व बलात धर्म परिवर्तन तथा गंगा स्नान पर 6 रु. 4 आने का कर[58] जैसे असहिष्णु के दृष्टांत दिखाई देते हैं। कुछ शासकों के क्षणिक लाभ के इन कार्यों से सहिष्णुता आधारित भारत की सामासिक संस्कृति को दूषित नहीं किया जा सकता। मध्यकाल में कबीर जैसे व्यक्ति भी थे जिनके मृत्यु पर हिन्दू और मुस्लिमों में विवाद हो गया कि वे हिन्दू है या मुस्लिम है। ये कबीर की प्रसिद्ध को बताते हैं तथा स्वस्थ सामासिक संस्कृति के मौजूद होने का परिचायक है।

संदर्भ

1. रामचंद्र गुहा, भारत गाँधी के बाद, अनु. सुझांत झा, पेंगुइन बुक्स, गुड़गाँव, 2011. पृ. 12
2. Howard, Michael, The First World War. Oxford University Press, 2002, P.No. 107
3. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014 पृ. 499
4. लल्लन सिंह, रामायण कालीन युद्धकला, प्रकाश बुक डिपो, 2001, पृ. 15
5. Dalal, Roshan, The Religion of India : A Consice Guide to Nine Major Faits, Penguin Books, 2010, P.No. 57
6. रामचन्द्र वर्मा, अरब और भारत, हिंदुस्तान एकेडमी, प्रयाग, 1930, पृ. 11, इतिहास और विचारधारा, इरफान हबीब अनु. रमेश रावत, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, 2012. पृ. 14 ए.एल. बाशम, अद्भुत भारत, अनु. वेंकटेशचंद्र पाण्डे, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा, पृ. 1
7. उदयनारायण राव, विश्व सभ्यता का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007, पृ. 326
8. अनु. युगजीत नवलपुरी, बाबरनामा, साहित्य अकादमी, दिल्ली, 2102, पृ. 333
9. इतिहास और विचारधारा, पृ. 15
10. राजेन्द्र शंकर भट्ट, महाराणा कुंभा, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 2011, पृ. 52

11. हरविलास शारदा, राणा सांगा, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2012. पृ. 15
12. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014 पृ. 82
13. महात्मा गाँधी, हिन्दू धर्म क्या है? नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 2013, पृ. 6
14. धर्मानन्द कोसांबी, भगवान बुद्ध, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015 पृ. 76
15. के.सी. श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2005. पृ. 92
16. संस्कृति के चार अध्याय. पृ. 94
17. देवदत्त पटनायक, मिथक, अनु. आलोक कुमार, पेंगुइन बुक्स, मुंबई, 2015 पृ. 5
18. एक सद्र विप्रा बहुधा वदन्ति
    दिजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, 2006, पृ. 130
19. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, 857
20. चार्वाक दर्शन
21. भगवान बुद्ध, 105
22. हरदेव सिंह, भारतीय इतिहास और साहित्य में सूफी दर्शन, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ 2005. पृ. 115
23. भगवान बुद्ध धर्मानन्द कोसांबी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015 पृ. 48
24. देवदत्त पटनायक, मिथक, अनु. आलोक कुमार, पेंगुइन बुक्स, मुंबई, 2015 पृ. 105
25. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, पृ. 810
26. गुरु नानक, सं. गुरुमुख निहाल सिंह, गुरु नानक देव : एक भूमिका, राधाकृष्णन नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1970. पृ. 1
27. भक्ति आन्दोलन : इतिहास एवं संस्कृति, सं. कुँवरपाल सिंह. मध्ययुगीन सभ्यता का उद्‌गम और विकास, एम. अतहर अली, वाणी प्रकाशन, दिल्ली. 2004. पृ. 51
28. भारतीय इतिहास और साहित्य में सूफी दर्शन, 126
29. भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, रतिभानु सिंह नाहर, किताब महल, इलाहाबाद, पृ.

225, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2009 पृ. 435

30. सूफी दर्शन, 120
31. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2011. पृ. 93
32. जवाहर लाल नेहरू, विश्व इतिहास की झलक। अनु. चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली, 2013, भा. 1, पृ. 253
33. राजस्थान एवं गुजरात के मध्यकालीन सन्त एवं भक्ति कवि. मदन कुमार जानी, पृ. 114, राजस्थान का इतिहास, गोपीनाथ शर्मा, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, पृ. 414
34. हिन्दी साहित्य का इतिहास, 160
35. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 182
36. के. सी. श्रीवास्तव, पृ. 332
37. विंसेण्ट स्मिथ, अनु. महान मुगल अकबर, राजेन्द्र नाथ नागर, हिंदी समिति, लखनऊ, पृ. 178
38. विंसेण्ट स्मिथ, पृ. 181
39. राहुल सांकृत्यायन अकबर, किताब महल, इलाहाबाद, 1967 पृ. 241
40. Early, Abraham, Emperors of the Peacock Throne. The saga of the Great Mughals. Penguin Books. P.No. 302
41. संस्कृति के चार अध्याय, 206
42. अरब और भारत के सम्बन्ध, रामचंद्र वर्मा, हिंदुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, 1960 पृ. 219
43. सुन्दरलाल, भारत में अंग्रेजी राज, 43
44. भारत में अंग्रेजी राज, संस्कृति के चार अध्याय पृ. 206
45. भक्ति आन्दोलन : इतिहास एवं संस्कृति, पृ. 45
46. कुम्भाकालीन कीर्तिस्तम्भ का प्रतिमा शास्त्रीय अध्ययन, नीलिमा मित्तल, परिमल प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृ. 29
47. महाराणा कुंभा, राजेन्द्र शंकर भट्ट, पृ. 301
48. भक्ति आन्दोलन : इतिहास और संस्कृति 45
49. The Immortal Taj Mahal. R. Nath. Taraporavala sons company. Bombay. 1972. P. 84

50. डिस्कवरी ऑफ इंडिया, जवाहरलाल नेहरू, अनु. रामचंद्र टण्डन, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली, 2013, पृ. 307
51. The Immortal Taj Mahal. R. Nath. P. 8
52. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव. मुगलकालीन भारत. शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा, पृ. 488
53. दारा शिकोह सिर्रे अकबर, अनु. हर्षनारायण, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ, 1975, पृ. 15
54. अमीर खुसरो, सं. राज नारायण राय, महाराष्ट्र राष्ट्र सभा, पुणे, 1975. पृ. 58
55. मध्यकालीन भारत, सं. इरफान हबीब, राजकमल प्रकाशन, पटना, 2015. पृ. 23
56. भक्ति आन्दोलन: इतिहास और संस्कृति, पृ. 48
57. विपिन चन्द्र, समकालीन भारत, पृ. 121
58. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ. 314

डॉ. मनीष श्रीमाली
सहायक आचार्य
इतिहास विभाग
मोहनलाल सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

❑ ❑ ❑

मध्यकाल में रंगाई छपाई उद्योग : मारवाड़ के सन्दर्भ में

• डॉ. मधु कुमावत

शोध सारांश

रंगाई छपाई का कार्य वस्त्र की सज्जा व उसे आरोपित करने के लिये किया जाता है। मारवाड़ रंगाई एवं छपाई के लिए प्रसिद्ध था। मारवाड़ के अंतर्गत जोधपुर की रंगाई छपाई अपने कार्य के लिये विश्व भर में प्रसिद्ध है। रंगाई छपाई की यह परम्परा सदियों से आज तक चली आ रही है। इस कार्य के लिये सदियों से ही अपने आस-पास उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों एवं सामग्री का उपयोग किया जाता रहा है। रंगाई छपाई के लिये विविध सामग्रियों का उपयोग किया जाता था जिसमें सबसे प्रमुख कच्चे पदार्थ प्रमुख थे। हमें अभिलेखागारिय स्त्रोतों से जानकारी मिलती है कि मारवाड़ में प्रारम्भ से ही रंगाई छपाई उद्योग उन्नत अवस्था में था। रंगाई के लिये मुख्यत: रेशम, मखमल, रेजा आदि कपड़े का प्रयोग किया जाता था। कपड़े की रंगाई के लिये मोटे और पतले दोनों प्रकार के वस्त्रों को उपयोग में लिया जाता था। रंगाई का कार्य करने के लिये विभिन्न प्रकार के उपकरण व सामग्री को काम में लेते थे। रंगरेज कपड़ों को रंगने का कार्य करते हैं। जो नील की रंगत करते हैं वे नीलगर कहलाते है।

संकेताक्षर—मारवाड़, रेजा, रंगरेज, नीलगर, अभिलेखागार।

मानव के जीवन में तीन मूलभूत आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें कपड़ा या वस्त्र भी एक अंग है जिससे उनकी आवश्यकता के साथ-साथ उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति की पहचान भी होती है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये वस्त्र निर्माण का कार्य या शिल्प कौशल जातिगत पेशे के रूप में विकसित हुआ है जैसे–बुनकर

कपड़े को बुनते हैं तो रंगरेज, नीलगर एवं छिपे वस्त्रों को रंगने व छापने का कार्य करते हैं।

रंगाई छपाई की तकनीक का इतिहास बहुत प्राचीन है। वैदिक युग से लेकर आधुनिक काल में भी यह परम्परा समय के परिवर्तन के अनुसार परिवर्तित होती हुई भी चलती चली आ रही है। मारवाड़ राज्य राजस्थान के पश्चिम भाग में स्थित था जिसे संस्कृत शिलालेखों एवं ग्रंथों में मरू, मरूदेश, मरूमंडल आदि नामों से सम्बोधित किया गया।[1] मारवाड़ में वस्त्र निर्माण तकनीक के कई तरीके दिखाई देते हैं जैसे—छपाई तकनीक में ब्लॉक की छपाई, दाबू प्रिंट, खड़ी की छपाई। इसी प्रकार रंगाई के विविध प्रकार जैसे—बंधेज, लहरिया आदि का कार्य वस्त्रों पर निर्माण तकनीक के लिये किया जाता था। मारवाड़ में खारा पानी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था। अत: खारे पानी की उपलब्धता के कारण पाली कस्बे में रंगाई-छपाई का उद्योग काफी विकसित हुआ क्योंकि खारा पानी रंगाई के लिये अधिक उपयुक्त माना जाता था।[2]

रंगाई छपाई के लिये साफ व ताजे पानी की आवश्यकता होती थी जिसे मटके में रखा जाता था। वस्त्रों के अनुसार मिट्टी के या ताम्बे के खुले मुँह के बर्तनों का प्रयोग होता था। रंगाई में पानी को गर्म करने के लिये भट्टी की आवश्यकता होती थी।

कुण्डी का प्रयोग मांडी को भरने के लिये किया जाता था जो मिट्टी का गोल ऊँचा बर्तन होता था जिसे कुंडा कहते थे। ताम्बे के अलावा पीतल और लोहे के बर्तनों का भी प्रयोग होता था। लोहे के बर्तन को कढ़ाव कहा जाता था। इन बर्तनों को उठाने के लिये दोनों तरफ कुंदे लगे होते थे। वस्त्र पर बांधनी की रंगाई करते समय धागे को बांधकर रंग को अवरोध करने के लिये प्रयोग में लाया जाता था। वस्त्र पर डिजाइन बनाने के लिये गेरू की मिट्टी, नील तथा लकड़ी के ठप्पों से छापते थे। लहरिया व मोठड़ा के लिये लकड़ी या लोहे का डंडा होता था जिस पर वस्त्र को लपेट-लपेट कर बांधा जाता था। मारवाड़ में नील की रंगाई का कार्य भी होता था। नील की रंगाई के लिये मिट्टी और चुने से बनी माट का प्रयोग होता था। इस रंग को बनाने के लिये ताम्बे व पीतल के बर्तन का प्रयोग किया जाता था, जिसे चरू कहते थे। रंगाई में भगोना और बर्तनों का प्रयोग भी होता था। लकड़ी की मोगरी का प्रयोग भी होता था। रंगाई में प्रयुक्त रंग हमें प्रकृति से प्राप्त वनस्पतियों, धातुओं उद्‌गम जैविकी से प्राप्त होता था। अनेक पश्चिमी लेखकों ने विभिन्न पेड़-पोधों और कीड़े-मकोड़ों से प्राप्त होने वाले रंगों के बारे में लिखा है जैसे नीले रंग के लिये नील इंडीगों। लाल के लिये

आल वृक्ष, बैंगनी रंग मेडीटिरेनियम (समुन्द्र तट पर पाये जाने वाले जन्तुओं) से पीला और नारंगी धावड़े के फूल व केसर से, काला रंग ओक वृक्ष छाल एवं लोहे से।

रंगों को बनाने के लिये रंगरेज दो प्रकार के रंगों को विशेषत: प्रयोग करते थे—

1. प्राकृतिक रंग

प्राकृतिक रंग फूल, पत्तियों, कैथून, हल्दी, अनार के छिलके आदि को उबालकर फिटकरी व गोंद मिलाकर रंगों को तैयार किये जाते थे।

2. रासायनिक रंग

यह रंग धातुओं से प्राप्त होता था जैसे लोहे के जंग से लाल रंग, पीतल से बैंगनी रंग, लोहे की खुरताल से काला रंग आदि प्राप्त किये जाते थे।

रंग इस उद्योग की महत्वपूर्ण कड़ी था इसका प्रभाव चिरकाल तक कपड़ों पर बना रहता था इसी से बंधाई व ठप्पा की श्रेष्ठता निर्भर थी।

मारवाड़ में रंगाई छपाई के लिये रंग निम्न माध्यम से प्राप्त करते थे—

- लाल रंग—हरसिंगार के केसरिया में केशु को मिलाने से लाल रंग बन जाता है। इसके साथ आल के वृक्ष एवं फिटकरी से भी लाल रंग की प्राप्ति होती है।
- केसरिया रंग—पलाश के फूलों से, हरसिंगार एवं फूलों से केसरिया रंग बनता था।
- पीला रंग—अनार के छिलकों को रातभर पानी में भिगोकर उबालकर उसमें हल्दी मिलाकर प्राप्त किया जाता है। पीला रंग आने के लिये पानी का खारा होना आवश्यक होता है।
- नीला रंग—नील के पोधों के पत्तों को गलाकर नीला रंग प्राप्त होता है।
- मैरून व लाल रंग—मजीठ की लकड़ी को उबालकर फिटकरी को उसमें मिलाने से लाल व मैरून रंग बनता है।
- हरा रंग—हल्दी और नील को मिलाकर हरा रंग तैयार किया जाता है।
- गुलाबी रंग—केशु के फूल से सिंगरफी या गुलाबी रंग बनता है।
- काला रंग—हरड को उबालकर ठंडा करके उसमें करतीम या लोहे के टुकड़े डालकर रखने पर काला रंग बनता है।

मारवाड़ राज्य में वस्त्रों की रंगाई-छपाई का उद्योग उन्नत अवस्था में था।[3] इस कार्य में संलग्न लोगों को छीपा कहा जाता था।[4] जोधपुर राज्य की स्थापना से पूर्व छीपा जाति के लोग मंडोर में रहा करते थे। छीपा राजा व गणमान्य व्यक्तियों के वस्त्र छापने का कार्य किया करते थे। छीपो को कपड़ा रंगने के लिये मुश्त धनराशि, मासिक वेतन दिया जाता था। उन्हें महीनेदार भी कहा जाता था। कुछ छीपे अपने जीवन निर्वाह हेतु आम लोगों के कपड़े रंगते थे।

जोधपुर में छीपे बम्बा मोहल्ला, नागोरी गेट व कुछ परिवार राई का बाग में भी रहते थे। ये लोगों के वस्त्रों पर विशेष प्रकार से बने लकड़ी के ठप्पों से कपड़ों को कलात्मक रूप दिया करते थे, जो विशेष त्योहारों, पर्वो, उत्सवों, मेलों, मांगलिक कार्यों में उन्नत किस्म के छपाई वाले कपड़ों और वस्त्रों की मांग पर निर्भर रहता था। छीपा लोग उस समय व्यक्ति विशेष के कलात्मक व रुचि अनुरूप वस्त्रों का निर्माण किया करते थे।

रंगरेज और नीलगर

रंगरेज कपड़ों को रंगने का कार्य करते हैं। ये मारवाड़ के सभी छोटे एवं बड़े कस्बों में रहते थे। जोधपुर रिकार्ड्स में हमें जालोर कस्बे के रंगरेज सवाई का वर्णन मिलता है।[5] इसी तरह सनद परवाना बही संख्या 15 में हमें वधु कमल नामक प्रसिद्ध रंगरेज का वर्णन मिलता है जो पाली का रहने वाला था।[6] मरदुमशुमारी राज मारवाड़ के अनुसार रंगरेज और नीलगर में नाम का ही अंतर है। इसके अनुसार जो कसुम का रंग रंगते हैं वे रंगरेज और जो नील की रंगत करते हैं वे नीलगर कहलाते है ये दिल्ली से मारवाड़ आये थे।[7] रंगरेज के नाम से इनके कार्य का पता चलता है, कपड़े पर रंग चढ़ाने वालों को 'रंगरेज' कहा जाता है। 'नीलगार' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है क्योंकि यह नील की रंगाई प्रधान रूप से करते हैं। रंगरेज का काम करने वालों में मुख्यत: सुन्नी मुसलमान है लेकिन मारवाड़ में हिन्दू धर्म के लोग भी रंगाई का कार्य कर रहे हैं। यहाँ रंगरेजों की कई उपजातियाँ भी है जैसे— रंगरेज में चौहान, खींची होकर, बेहयिम, बम्बर, सटतारा, झक्कल, मरोढ़ी, भट्टी, घटिला सम्पन्न आदि, जो कि दिल्ली से राजस्थान आये थे। रंगरेज वस्त्रों को अलग-अलग रंगों से रंगने के कार्य में माहिर होते हैं। इस जाति के लोग वस्त्रों को रंगने का कार्य ही करते हैं। जोधपुर में वस्त्र रंगने का कार्य चढ़वा जाति भी करती है। चढ़वा जाति में हिन्दू मुसलमान दोनों धर्म को मानने वाले होते हैं। चढ़वा जाति में भाटी व गहलोत (राजपूत) मुसलमान भी थे। चढ़ावा जाति के खांपों में मुख्यत: सोनारा, घडीला, वमड़, जन्ता, गुलत्तर, मुहत्ता आदि महत्वपूर्ण थी। जिनमें

'सोनारा' खांप के चढ़वे प्रसिद्ध थे। चढ़वा जाति का मुख्य कार्य बांधनी, रंगाई व छापना था।[8]

मारवाड़ रंगाई एवं छपाई के लिए प्रसिद्ध था। मारवाड़ में जोधपुर शहर के अतिरिक्त उसके संभाग के कई क्षेत्रों में ठप्पा की छपाई की जाती थी। कपड़ों की सतह का रंग गहरा लाल अथवा सोसनी होता था जिन पर विभिन्न रंग जैसे अमरसिया, नारजिया, बादामी, केसरिया, पिसताखी, कंसूबल, सफेद लहर में स्याही बूटी, सफेद बूटी में लाल पान, भस्म में छपयोड़ा वस्त्र, लाल लीकदार, तुसी, लाखी व हलारी रंगों का प्रयोग किया जाता था। मारवाड़ में घाघरे के लिए रेजा या खादी के वस्त्रों में बूटादार, छोटी व बड़ी बूटी की लताएं मोठड़दार व लहरदार छपाई की जाती थी। लोग बड़े चाव से पक्के रंग वाले लाल, केसरिया, नीला व काले रंग वाले कपड़े पहनते थे। केसरिया रंग की रंगाई कसूली नामक वृक्ष के फूल के रस से किया करते थे और लाल रंग को कसूंम नामक वृक्ष की लकड़ी के बुरादे से बनाया जाता था। नीला व काला रंग बैंगनी रंग को मिश्रित करके बनाया जाता था। महाराज विजैसिंघ जी रे वगत में नवा कपड़ों रा कोठार रो रोजनावों में उस समय के कपड़ो के रंगों का जैसे कसुबल रंग, सबज रंग, तोरुफुल रंग, सोसनी एवं गुलाबी रंग का वर्णन है। पचपदरा में ओढ़ने की रंगाई छपाई का कार्य अच्छा होता था—

सनद परवाना बही संख्या 25 में हमें वर्णन मिलता है कि गुलाम मुहम्मद नामक प्रसिद्ध रंगरेज जो कि मूलतरू मुल्तान का निवासी था, नागौर में आकर बस गया था।[9]

महाराजा विजयसिंह के नवा कपड़ों का कोठार तलाके जमा खरच की बही से हमें उस समय में प्रचलित रंगों की जानकारी मिलती है जैसे—

1. **सुआपंखी**—तोतई के रंग।
2. **मोरगर्दनी**—मोर के गर्दन जैसे रंग।
3. **तोरीफूला**—तोरी के फूल जैसे रंग।
4. **चंदणिया**—चंदन के रंग।
5. **काजलिया**—काले रंग।
6. **आभवरण**—हल्के आसमानी रंग।
7. **कबूतरिया**—कबूतर के पंख जैसे रंग।
8. **गंगा जमानी**—काले व सफेद रंग।
9. **रानी रंग**—लाल सुर्ख रंग।

10. **समंदर लहरिया**—समुद्र के पानी के जैसा रंग।
11. **मलयागिरी**—पहाड़ जैसे भूरे रंग।
12. **सिंदूरिया**—सिंदूर जैसे रंग।
13. **जवाई रंग**—हल्का भगवे रंग।
14. **बादलाई**—बादल जैसे रंग।

रंगाई-छपाई में ठप्पों का अत्यधिक महत्व था। इन ठप्पों पर ही डिजाईन बने होते थे, जो कि रंगों की सहायता से कपड़ों की शोभा बढ़ाते थे। ठप्पे चन्दन, शीशम, गुरजन, सागवान व रोयड़ा की लकड़ी से बनाये जाते थे। शीशम की लकड़ी ठोस होती है जिसके कारण खुदाई करने में ज्यादा परिश्रम की आवश्यकता होती है तथा उसका ठप्पा लम्बे समय तक कार्य कर सकता है। ज्यादा पानी में रहने के दौरान भी ये खराब नहीं होते थे। गुरजन की लकड़ी मुलायम होती थी जिसके कारण उसकी गहरी खुदाई की जा सकती थी। इस लकड़ी का ठप्पा विशेष रूप से रेख व घुमावदार डिजाईन की छपाई में काम आता था।

लकड़ी के ठप्पे बनाने के बाद उन्हें चार पाँच दिनों तक तिल्ली के तेल में डुबोकर रखा जाता था जिससे काम लेने के बाद अधिक टेढ़े मेढे नहीं होते थे। ठप्पे बनाने के लिये लकड़ी को आवश्यकतानुसार काट लिया जाता था फिर किसी खुरदरे पत्थर या रेजमाल से रगड़कर उसे साफ कर दिया जाता था फिर उस पर खड़िया मिट्टी का लेप चढ़ाकर सुखाया जाता था। सूखने के पश्चात् उसी आकार का कागज चिपकाकर नोकदार औजार की सहायता से भांत को उतार तैयार कर लिया जाता था।[10]

पीतल के ठप्पे भी बनाये जाते थे जो कि लम्बे समय तक चलते थे व पानी का उन पर कोई असर नहीं होता था। ठप्पों की खुदाई बेहद महत्वपूर्ण हुआ करती थी इसीलिये ठप्पों को सावधानी व धैर्यपूर्वक बनाया व तराशा जाता था क्योंकि जितनी सफाई व बारीकी से ठप्पा बना होता था उतनी ही अच्छी छपाई होती थी।

कपड़े को रंगने की विभिन्न पद्धति का प्रयोग तत्कालीन समय के रंगरेज किया करते थे इनमें बंधाई, ठप्पा विशेष प्रचलित थे। बंधाई अर्थात् बंधेज में सर्वप्रथम कपड़ों को धागे की सहायता से कसकर बाँध दिया जाता था जिसमें चने की आकार में लहरदार, गोल, सूर्याकार आकार की डिजाईन बनाई जाती थी। बंधेज बनाते समय कई रंगों का प्रयोग द्वारा सावधानीपूर्वक कार्य किया जाता था। ठप्पा पद्धति में सर्वप्रथम कपड़े को एक चोकोर, आयताकार लकड़ी के फ्रेम पर कस दिया जाता

था। आकृतियों व डिजाईन को सुनिश्चित कर लकड़ी के कलात्मक ठप्पों को रंग में लगाकर व्यवस्थित रूप से कपड़ों पर लगाया जाता था। कपड़ों की सतह का रंग गहरा लाल अथवा सोसनी होता था जिन पर विभिन्न रंग जैसे अमरसिया, नारजिया, बादामी, केसरिया, पिसताखी, कसुम्बल, सफेद आदि। कपड़ों की ठप्पा व बंधाई पद्धति में कपड़े पर रंगाई छपाई के उपरांत कपड़ों को पानी में भिगो दिया जाता था जिससे उसका अतिरिक्त रंग निकल जाता था। कपड़ों को पानी में डालकर रखना रंगाई-छपाई की महत्वपूर्ण व आवश्यक पद्धति है क्योंकि उन कपड़ों का स्थायित्व सबसे अधिक आवश्यक था। इसलिये इस पद्धति को रंगरेज बेहद ध्यानपूर्वक किया करते थे।

कपड़ों की रंगाई-छपाई में रंग का कार्य बेहद महत्वपूर्ण था। मारवाड़ में चटक चमकीले रंगों को बेहद चाव से पहना जाता था। रंगरेज उसी अनुसार कपड़ों को रंगते थे। लोग बड़े चाव से पक्के रंग वाले लाल केसरिया, नीला व काले रंग वाले कपड़े पहनते थे। केसरिया रंग की छपाई कसूली नामक वृक्ष के फूल के रस से किया जाता था। लाल रंग को कसूम नामक वृक्ष की लकड़ी के बुरादे से बनाया जाता था। नीला व काला रंग बैंगनी रंग को मिश्रित करके बनाया जाता था।[11] काला रंग घोड़े की खुरताल, गुड़ को मिलाकर बनाया जाता था।

राज्य द्वारा रंगाई छपाई में संलग्न दस्तकारों के संरक्षण किये जाने के अनेक उदाहरण में अभिलेखागारिय स्त्रोतों में मिलते हैं। सनद परवाना बही संख्या 15, वि.सं. 1832 में हमें नागौर के वाहिद कमाल नामक एक रंगरेज का वर्णन मिलता है जो कि नागौर से पाली की ओर पलायन कर गया था जहाँ पाली के रंगरेजों ने उससे दुकान बंद करवाने के लिए जोर जबरदस्ती की। तब जोधपुर दरबार ने पाली के हाकिम को आदेश दिया कि वहीद कमाल को सुरक्षा प्रदान करें ताकि वह अपना व्यवसाय सुरक्षित ढंग से चला सके।12 इसी तरह सनद परवाना बही संख्या 14 वि.सं. 1831 में हमें लादू नामक रंगरेज का वर्णन मिलता है जिसकी दुकान जोधपुर में थी, जिसको सरकार ने उसके सिंध पलायन के बाद अपने अधिकार में ले लिया था। उसके सिंध से लौटने के बाद उसने सरकार से दुकान लौटाने की प्रार्थना की। उसके निवेदन पर सरकार ने दुकान लौटाने के आदेश जारी किये।[13]

किन्तु राजकीय कारखानों में काम करने वाले दस्तकारों की स्थिति सामान्य दस्तकार वर्ग की तुलना में अच्छी होती थी क्योंकि प्रथम तो उनके पास स्थायी काम होता था और दूसरा उन्हें नियमित रूप से वेतन मिलता रहता था तथा उन्हें

राज्य का संरक्षण प्राप्त होता था। उन्हें अच्छे कार्य के लिए समय समय पर राजाओं द्वारा पुरस्कार भी दिए जाते थे। राज्य द्वारा अनेक कर रंगाई छपाई में संलग्न दस्तकारों से लिये जाते थे। रेजा रंगाई और कोठा नील नामक कर रंगरेजों द्वारा भुगतान किया जाता था। इसी प्रकार के करों एवं ब्याज से वे ऐसे कुचक्र में फंस जाते थे, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति और भी बदतर हो जाती थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 जी एच. ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 1-5 वैदिक मंत्रालय, अजमेर, 1938 ई.।

2 इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, भाग XXI पृ. 131-132।

3 इम्पीरियल गजेटियर्स ऑफ इण्डिया, प्रोविन्सियल सीरिज, राजपुताना, पृ. 252।

4 डॉ. बी.एल. गुप्ता, ट्रेड एण्ड कॉमर्स इन राजस्थान, पृ. 57।

5 कोतवाली चबूतरा जमाबन्दी बही नं. 753, परगना जालौर, वि.सं. 1833 (1776 ई.), जोधपुर जिला अभिलेखागार, जोधपुर।

6 सनद परवाना बही, सं. 15, वि.सं. 1832 (1775 ई.), फाईल, 250, जोधपुर रिकार्ड्स।

7 मरदुमशुमारी राज मारवाड़, दूसरा भाग, जोधपुर, 1816।

8 हरिदयाल सिंह, मारवाड़ (राजस्थान) में जातियों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. सं. 453-454

9 सनद परवाना बही नं. 25, वि.सं. 1838 (1781 ई.), फाईल 216, जोधपुर रिकार्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।

10 व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित।

11 डॉ. बी.एल. गुप्ता, रू ट्रेड एण्ड कॉमर्स इन राजस्थान, पृ. 56-57।

12 सनद परवाना बही नं. 15, वि.सं. 1832 (1775 ई.), फाईल 250, जोधपुर रिकार्ड्स।

13 सनद परवाना बही नं. 14, पोष सुदी 13, वि.सं. 1831 (1774 ई.), जोधपुर रिकार्ड्स।

डॉ. मधु कुमावत

सहायक आचार्य इतिहास

श्री रंकपा राजकीय स्नातकोत्तर

अजमेर (राजस्थान)

❑ ❑ ❑

गुरु जम्भेश्वर की सबदवाणी एवं भक्ति आन्दोलन

डॉ. अनिला पुरोहित • वंदना चौधरी

भक्ति आन्दोलन भारत की एक युगान्तकारी घटना थी। मध्यकालीन भारत का यह आन्दोलन मुख्यत: एक धार्मिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में सामने आता है। भगवान विष्णु एवं उनके अवतारों की भक्ति ही भक्ति आन्दोलन का मूल आधार था। वैष्णवों के सिद्धांत मूलत: इस समय सामाजिक, आर्थिक यथार्थ की आदर्शवादी अभिव्यक्ति थे। सांस्कृतिक क्षेत्र में उन्होंने राष्ट्रीय नवजागरण का रूप धारण कर लिया। भक्ति आन्दोलन ने भारत में विभिन्न राष्ट्रीय इकाइयों के उदय को नया बल प्रदान किया। भक्ति आन्दोलन ने राष्ट्रीय भावनाओं और उनके साहित्य की अभिवृद्धि का मार्ग भी प्रशस्त किया। जन सामान्य इस आन्दोलन के कारण ही मध्यकालीन सामंती शोषण का मुकाबला कर सके।

भक्ति आन्दोलन में ईश्वर के समक्ष समानता, ऊँच-नीच का विभेद आदि केन्द्र बिन्दु थे। मध्यकालीन इस महान आन्दोलन ने न केवल विभिन्न भाषा और विभिन्न धर्मों वाले जन समुदायों की एक सुसम्बद्ध भारतीय संस्कृति के विकास में मदद की बल्कि सामंती दमन और उत्पीड़न के विरुद्ध संयुक्त संघर्ष चलाने का मार्ग भी प्रशस्त किया।[1]

उपर्युक्त कथन में हमें भक्ति आन्दोलन की विषय वस्तु और आत्मा का पता चल जाता है। भक्ति आन्दोलन वह समय था जब कविता अभिजात्य वर्ग के हाथों से निकलकर युगों-युगों से पीड़ित और शोषित वर्ग के हाथों में चली गई।

भक्तिकाल के संतों का लक्ष्य कविता करना नहीं था यह तो धार्मिक आवरण में देश के साधारण जन की व्यथा का आन्दोलन था। इसीलिए भक्तिकालीन संतो ने सर्वप्रथम जनभाषा का ही सहारा लिया था। भक्तिकालीन संत ज्यादा पढ़े-लिखे तो नहीं थे और न ही उनमें काव्य शास्त्र आदि का ज्ञान

था फिर भी उनकी बहती हुई कविता में काव्य शास्त्रीय सामग्री पूरी तरह से समायी हुई थी। इस आन्दोलन ने अपना लक्ष्य भगवद्भक्ति को बनाया। भक्ति आन्दोलन के बारे में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा 'भक्ति आन्दोलन धूल में मिली वस्तु है।'[2]

विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार 'संत वाणी जो लोकमंगल वाले रामरस से प्रेरित अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित हुई है यह वाणी कथनी के कौशल का नहीं, वरन करनी और रहनी की स्थिति का पोषण करती है। अत: ऐसी वाणी काव्य का रस, रीति, गुण अलंकार, वक्रोक्ति आदि सभी जन सामान्य के कल्याण हेतु होती है।'[3]

भक्तिकाल के संत सूरदास, तुलसीदास, मीरा आदि की रचनाएं श्रृंगार के वियोग एवं संयोग के चित्रण से भरे पड़े है। वहीं भक्ति काल में निर्गुण शाखा के संत जांभोजी ने शांत रस का चित्रण किया है। जैसे–

'मिनखा रै तै सूतै सांभो, खुलै खोमो,
जड पाहन संसार बिगोयो।
निरफल खोड भरांति भूला, आस किसी जा मरणो।[4]
गोवलवास कमायले जिवड़ा, सो सुरगा पुर लहणो।'[5]

भक्ति आन्दोलन में प्रमुख संतों ने अपनी रचनाओं से जन मानस में आडम्बर, अंधविश्वास, टोना-टोटका आदि का परित्याग कर विशुद्ध भक्ति मार्ग के अनुसरण की सीख दी। जैसे–

धरम घटता धाम, हाहाकार हुवै घणी।
कमठाणै रै काम, विष्णु जोत जली बील्हजी।[6]

भक्ति आन्दोलन में रचनाएं अब राज दरबारियों के लिए नहीं वरन् जन सामान्य हेतु रचित होने लगी। जांभोजी ने अपने सबदवाणी में निराकार निर्गुण ईश्वर की आराधना पर बल दिया। वे लोगों को बताते थे कि ईश्वर भक्ति भाव से प्रसन्न होता है। जीव-दया, दयालुता, परोपकार इन सभी गुणों में ईश्वर का वास होता है। नर सेवा ही वास्तव में नारायण सेवा होती है।[7] जांभोजी ने सबदवाणी में फरमाया–

'सोदत सागर सो सुभ्यागत, भवन-भवन भिखियारी,
भीखी लो भिख्यिारी लो, ये आदि परम तत्व लाधो।'[8]
जड़िया बूंटी जे जग जीवै, तो बेदा क्यूं नर जाई।[9]

जिस प्रकार भक्ति आन्दोलन के प्रमुख संत कबीर, सूरदास, तुलसी, रैदास, दादू, सुंदरदास, मीरा आदि ने बाहर दिखावे पर न रहकर भीतर की पहचान पर जोर दिया। इसी प्रकार जांभोजी ने भी अपनी सबदवाणी में इन सभी दिखावे प्रपंच से जन सामान्य को दूर रहने की सीख दी।

जांभोजी ने गुरु की महत्ता पर भी बल दिया, इनका कहना था कि गुरु ही मनुष्य को भवसागर से पार करने का मार्ग बताता है। जैसे–

गुरु का सबद ज्यूं बोलो झीणी बाणि
जिहिंका दूरै हुँता दूर सणीजै।[10]

गुरु जांभोजी ने मनुष्य को सदैव कर्मशील बने रहने की सीख दी और दिन रात अपने जीवन को भगवद्भक्ति में लगाने का मार्ग बताया। कुछ विद्वान भक्ति आन्दोलन को इस्लाम की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न आन्दोलन बताया जो कि पूर्ण रूपेण सत्य नहीं है। यदि ऐसा होता तो इस आन्दोलन का उद्भव दक्षिण से न होकर भारत के उत्तर पश्चिम क्षेत्र से होता। अन्य अनेक विद्वानों ने भी भक्ति आन्दोलन के उद्भव एवं विकास में परोक्ष अपरोक्ष रूप से इस्लाम के प्रभाव या हस्तक्षेप को नकारा है। भक्ति आन्दोलन केवल एक धार्मिक आन्दोलन नहीं था, एक बहुत बड़ी सांस्कृतिक घटना थी। भक्ति आन्दोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस आन्दोलन ने भारत वर्ष को आधुनिक भाषाओं की प्राणवता (नव जीवन) प्रदान की। तमिल, मलयालम, कन्नड़, तेलगु, मराठी, गुजराती, उड़िया, बंगाली, असमी, सिंधी, हिन्दी आदि भाषाओं से सम्बन्धित बोलियो में भक्ति साहित्य मिलता है। सत्य तो यह है कि भारत वर्ष की प्रधान आधुनिक भाषाएं प्राय: अपने उद्भव काल में भक्ति आन्दोलन से सम्बद्ध रही है।[11]

मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के जन आन्दोलन बनने का एक कारण यह था कि इसके संवाहक संत-भक्त स्वतन्त्र चिन्तन के थे। किसी प्रकार के प्रलोभन या भय से ये मुक्त थे। इस आन्दोलन के प्रमुख संतो ने वैभव, अनुकम्पा आदि से दूर रहकर अपनी रचनाओं से सामान्य जनता का भला किया।

जांभाणी साहित्य का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होता है कि भक्ति आन्दोलन की आत्मा इसमें निवास करती है। भक्ति आन्दोलन का सम्पूर्ण चरित्र इसमें व्याप्त है। विभिन्न धर्मों, जातियों एवं वर्गों के लोग इसमें आकर एकमेव हो जाते हैं। जांभोजी की सबदवाणी का एक-एक शब्द ईश्वर, सदाचार एवं नैतिक उत्थान को समर्पित है। जांभोजी की शिक्षा में निर्गुण एवं सगुण का

अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। जांभोजी की शिक्षा भारतीय संस्कृति और सनातन मूल्यों का एक अद्भुत संयोग है।

आमजन की इच्छा, आकांक्षा, सुख और दुःख के साथ-साथ युगीन परिवेश की जीवंत झलक जांभोजी की सबदवाणी में दिखायी देती है। जांभोजी की सीख गुण एवं परिमाण दोनों ही दृष्टियों से अत्यन्त समृद्ध है। इनकी प्रमुख विशेषता यह है कि वह सीख हवा के साथ बहने वाली नहीं है। वरन् इसमें सत्यता, दृढ़ता परीलक्षित होती है। जांभोजी ने भगवान विष्णु की आराधना पर जोर दिया लेकिन साथ ही साथ किसी भी अन्य देवता का विरोध भी नहीं किया। ये उनकी समानता के भाव को प्रदर्शित करता है।

गुरु जांभोजी ने अपने महिमामयी व्यक्तित्व के द्वारा कल्याणकारी बिश्नोई पंथ से भक्ति आन्दोलन को एक आश्चर्यजनक स्फूर्ति प्रदान की थी। अपने देश विदेश के विस्तृत भ्रमण और बिना किसी जाति, धर्म के भेदभाव के अपने पंथ में इच्छुक लोगों को दीक्षित करके एक बहुत बड़े भू-भाग पर भक्ति आन्दोलन की मंद पड़ती गति को ऊर्जा प्रदान की थी। उनके द्वारा प्रवर्तित 'बिश्नोई पंथ' उत्तर भारत का प्रथम संत मंत है।[12]

संदर्भ ग्रन्थ

1. पं. शिव कुमार मिश्र, भक्ति आन्दोलन एवं भक्ति काव्य, लोक भारती प्रकाशन, 2012, पृ. 14
2. पं. शिव कुमार मिश्र, भक्ति आन्दोलन एवं भक्ति काव्य, लोक भारती प्रकाशन, 2012, पृ. 69
3. विजयेन्द्र स्नातकम–कबीर वचनामृत, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1986, पृ. 104
4. कृष्णानंद आचार्य–जम्भ सागर (शब्द 53), जांभाणी साहित्य अकादमी, 2016, पृ. 100
5. वही
6. डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई–बील्हो जी की वाणी, जांभाणी साहित्य अकादमी, 2016, पृ. 168
7. वीरेन्द्र सेठी–मीरा प्रेम दीवानी, राधा स्वामी सत्संग व्यास, 2001, पृ. 66
8. कृष्णानंद आचार्य, सबदवाणी (शब्द 17), जांभाणी साहित्य अकादमी, 2014, शब्द 48

9. कृष्णानंद आचार्य, सबदवाणी (शब्द 18), जांभाणी साहित्य अकादमी, 2014, शब्द 49
10. कृष्णानंद आचार्य, सबदवाणी (शब्द 21), जांभाणी साहित्य अकादमी, 2014, शब्द 53
11. डॉ. राजमल बोरा–भारतीय भक्ति साहित्य, वाणी प्रकाशन, 2014, पृ. 86
12. डॉ. हीरालाल महेश्वरी–जांभोजी, बिश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य, बी. आर पब्लिकेशंस, कलकता, 1970, पृ. 17

डॉ. अनिला पुरोहित
सह आचार्य
इतिहास विभाग,
राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

वंदना चौधरी
शोद्यार्थी
स्कूल व्याख्याता (इतिहास)
राजकीय बांठिया बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय
भीनासर, बीकानेर (राज.)

❑ ❑ ❑

जयपुर शैली के लघुचित्रों में नायिका-भेद अंकन

• डॉ. रीतिका गर्ग

राजस्थान की उत्कृष्ट कला-शैलियों में से एक अनुपम शैली ढूंढ़ाड़ क्षेत्र के अन्तर्गत जयपुर में विकसित हुई। अपने सौन्दर्यपूर्ण मनोरम चित्रों के कारण जयपुर शैली विशेष रूप से प्रसिद्ध है। गुलाबी नगर जयपुर के राजाओं ने कलाकारों को प्रोत्साहित कर उन्हें आश्रय प्रदान किया किन्तु फिर भी यहाँ की कला पर मुगल प्रभाव अधिक दृष्टिगोचर होता है जिसका मुख्य कारण यहाँ के राजाओं के मुगलों से घनिष्ट सम्बन्ध माने जाते हैं। आमेर (अम्बर) तथा जयपुर चित्रशैली कछवाहा राजवंशजों के संरक्षण में विकसित हुई। यही कारण है कि कुछ कला-समीक्षकों ने इस शैली को 'कछवाहा शैली' भी कहा है।

आमेर-जयपुर राजवंश व कला

दसवीं शताब्दी के आस-पास कछवाहा वंश (नरवर घराना) के राजाओं का शासन मध्यभारत में था। राज्य विस्तार के लिये सोढ़देव अपने पुत्र दूलहराय के साथ यहाँ आये और राज्य स्थापित कर ग्यारहवीं शती में आमेर को अपनी राजधानी बनाया जो लगभग सात सौ वर्षों तक बनी रही। अम्बर या अमरावती नगर के नाम से उल्लिखित आमेर कलात्मक राजप्रसादों एवं किले के कारण जगत विख्यात है।[1] आमेर के शासक भारमल के शासन के समय केवल कछवाहों के इतिहास का नहीं अपितु राजस्थान के इतिहास का एक नया अध्याय आरम्भ होता है। अम्बर के राजा भारमल उर्फ बिहारीमल ने मुगल-दासता स्वीकार की और अपनी ज्येष्ठ पुत्री का विवाह अकबर से कर दिया। इस प्रकार आमेर का मुगल दरबार से बहुत करीबी सम्बन्ध बना। राजा भारमल एक कलाप्रिय शासक था और उसके दरबार में कलाकारों को पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।[2] भारमल के पुत्र भगवानदास ने भी इस परम्परा का पालन किया तथा अपने कलाकारों को अकबर की चित्रशाला में भी कार्य करने के लिये भेजा। भगवान दास के पुत्र राजा मानसिंह अकबर के दरबार में सिपहसालार थे। आमेर के राजप्रसादों एवं महलों का निर्माण तो प्रारम्भिक

कछवाहा शासकों द्वारा किया गया किन्तु इनके कलात्मक पक्षों के विस्तार कार्य मानसिंह के शासनकाल में हुआ।

आमेर शैली का दूसरा महत्वपूर्ण चरण मिर्जा राजा जयसिंह के साथ प्रारम्भ होता हैं। इनके समय के चित्रों में लोक शैली मुगलिया प्रभाव से ओत-प्रोत होकर प्रगट होती है। इसके उदाहरण रसिकप्रिया व कृष्ण रूक्मिणी वेली सचित्र ग्रन्थ है, जो 1639 में अपनी एक रानी चन्द्रावती के लिये जयसिंह ने चित्रित कराया। इनके दरबार में बिहारी जैसे रीतिकालीन कवि दरबार की शोभा बढ़ाते थे।[3] वास्तव में मध्ययुगीन भारतीय इतिहास में 15वीं शती ई. का समय अनेक दृष्टियों से बड़ा महत्वपूर्ण रहा हैं हिन्दी साहित्य के प्रायः समस्त रीति-ग्रन्थ इसी युग में लिखे गये।[4] इसके पश्चात् महत्वपूर्ण युग महाराजा सवाई जयसिंह का आता है, जिन्होंने अपने समृद्ध राज्य के अनुरूप 1727 में जयपुर जैसा सुन्दर नगर आयोजित कराया। इनके समय में 1709 में चित्रित रागमाला विशेष रूप से उल्लेखनीय है, आमेर से प्राप्त तिथियुक्त यह पहली रागमाला है। जयपुर नगर में 1729 के आस-पास चन्द्रमहल के पूर्ण हो जाने पर पोथीखाना (पुस्तकालय) व सूरतखाना (चित्रों की रचना का कक्ष) विभाग आमेर से यही आ गये थे।[5] इसके बाद सवाई प्रतापसिंह के समय में जयपुर शैली अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। इनके कृष्ण-भक्त होने के कारण इस समय कृष्ण-लीला सम्बन्धी अनेक चित्रों का सृजन हुआ जिनमें भक्ति और श्रृंगार का समन्वय दिखाई देता है। इस समय लघुचित्रों का बहुत अधिक निर्माण हुआ। सवाई जयसिंह तृतीय के पश्चात् अंग्रेजी सभ्यता व संस्कृति का प्रभाव जयपुर शैली पर आया जो महाराजा रामसिंह के समय में पूर्णतः दृष्टिगोचर होने लगा था।

चित्र विषय—जयपुर के चित्रकारों की प्रिय विषयवस्तु कृष्ण-लीलाएं, राग-रागिनी, नृत्यगान, राजदरबार, पशुओं की लड़ाई, स्त्री-सौन्दर्य, नायिका-भेद, साधु-सन्तों का जीवन, रसिकप्रिया, शिकार चित्र, रामायण, महाभारत व व्यक्ति-चित्र आदि रही है। भक्ति व श्रृंगार का समन्वय, ऋतुओं का प्रभावपूर्ण चित्रण, रंगों का सुन्दर प्रयोग, प्रतीकात्मकता व भावपूर्ण मुद्राएँ आदि यहाँ के चित्रों की मुख्य विशेषताएँ हैं। 'नायिका भेद' जयपुर के चित्रकारों का प्रिय विषय रहा जिसके आधार पर उन्होंने असंख्य चित्रों का निर्माण किया। यहाँ पर चित्रित नायिका-भेद तथा कृष्ण-लीला विषयक चित्र केशव तथा बिहारी आदि के काव्य से प्रेरित होकर चित्रित हुए जिनमें श्रृंगार रस की प्रधानता है। इन चित्रों में परमात्मा का प्रतीक कृष्ण को माना गया है।[6]

नायिका भेद—सौन्दर्य दर्शन को ही कला का मुख्य उद्देश्य माना गया है। काव्य, नाटक और कामशास्त्र के रचयिताओं ने नारी के विविध रूपों,

अवस्थाओं, मनोदशाओं तथा स्वाभावों का बड़ा सहज वर्णन प्रस्तुत किया है। नारी के इसी अध्ययन को 'नायिका-भेद' कहा जाता है। नायिका-भेद पर संस्कृत के आचार्यों के बाद हिन्दी साहित्य में केशव, देव, बिहारी व मतिराम आदि कवियों एवं आचार्यों ने लेखनी चलाई है। इन्हीं के काव्यों ने राजस्थानी एवं पहाड़ी तूलिकाओं में एक नया यौवन भरा है।[7] नायिका वह है जो नायक की प्रेयसी है, जो नायक को वशीभूत करती है, उसे श्रृंगार का मार्ग दिखाती है। श्रृंगार मंजरी में, नायिका की निम्नानुसार परिभाषा की गयी है–

श्रृंगार रसालम्बन स्त्री नायिका

रस मंजरी की टीका करती हुई व्यंग्यार्थ कौमुदी निम्नानुसार परिभाषा प्रस्तुत करती है–

नयति वशीकरोति सा नायिका

मध्ययुगीन कामशास्त्र, नाट्यशास्त्र तथा साहित्यशास्त्र के आचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में नायिकाओं के अनेक वर्गों की कल्पना की है।[8] प्रारम्भ में अंग-प्रत्यंगों के आधार पर स्त्रियों के पद्मिनी, चित्रणी, शंखनी तथा हस्तिनी नामक चार भेद किये गये। कामसूत्र में वैवाहिक, कन्या, पारदारिक तथा वैश्विक प्रकरणों में नायिका-भेद का सविस्तार वर्णन किया है। काव्यशास्त्र ने इसी वर्गीकरण को अपनी स्वीकृति दी है। चित्र भी अधिकतर इसी भेद पर आधारित हैं। वात्स्यायन के कामसूत्र के अनुसार नायिका के तीन भेद किये गये हैं–1. स्वकीया, 2. परकीया तथा 3. साधारणी।[9]

साहित्यशास्त्र के अन्तर्गत नायिका-भेद की परम्परा 'नाट्यशास्त्र' से ही आरम्भ होती हैं। प्रसिद्ध अष्टनायिकाओं तथा नायिका उत्तमा, मध्यमा, अधमा भेदों का उल्लेख भरतमुनि ने किया है। किन्तु 'नाट्यशास्त्र में नायक-नायिका का वर्गीकरण एवं उनके भेदों-प्रभेदों का वर्गीकरण इसलिए हुआ था, जिससे नाटककार अपने पात्रों के शील, मर्यादा का आदि से अन्त तक उचित रीति से निर्वाह कर सकें। साहित्य-शास्त्रकारों ने नायिकाओं का वर्गीकरण तथा विश्लेषण उनके द्वारा श्रृंगार विकास के उद्देश्य से किया। श्रृंगार-रस को रसराजत्व प्राप्त होने के बाद श्रृंगार रस के आलम्बन के रूप में नायिका-भेद को विशेष महत्व दिया जाने लगा।[10] नायिका-भेद के विस्तार तथा विशदीकरण के लिए पर्याप्त उपयुक्त वातावरण में रीतिकालीन कवियों ने नायिकाओं के सौन्दर्य तथा प्रगाढ़ रागात्मकता की अनेक स्थितियों में उनके अनेक सूक्ष्म एवं कल्पनाप्रवण चित्रों की अवतारणा की है। उसी प्रकार चित्रकारों ने रंग और रेखाओं के माध्यम से उसे सजीव किया है। आलम्बन के अन्तर्गत आचार्यों ने

नायिका-भेद के विभिन्न आधार माने हैं जो इस प्रकार हैं –

1. जाति (प्राकृतिक वर्ग) – पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी।
2. कर्म (धर्म या लोकरीति) – स्वकीया, परकीया और सामान्या।
3. वय – मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा।
4. पति का प्रेम – ज्येष्ठा, कनिष्ठा।
5. मान – धीरा, अधीरा, धीराधीरा।
6. दशा – गर्विता, अन्य-सुरति-दु:खिता, मानवति।
7. अवस्था (काल) – स्वाधीन-पतिका, उत्का, वासक-सज्जा, अभिसंधिता, खंडिता, प्रोषितपतिका, विप्रलम्भ तथा अभिसारिका।
8. प्रकृति या गुण – उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा।[11]

हिन्दी रीतिकालीन साहित्य में जिस प्रकार नायिकाओं का विभिन्न आधारों पर विविध रूप से वर्णन किया गया है, उसी प्रकार मध्यकालीन चतुर चितेरों ने उन्हें अपने रंग और रेखाओं के द्वारा अभिनव हृदयग्राही चित्रों में साकार किया। कवि को काव्य-धर्म के निर्वाह में लगभग सभी नायिकाओं के रूप-गुण का वर्णन अनिवार्य-सा हो गया था। परन्तु तत्कालीन चित्रकारों के लिए ऐसा बन्धन न था। उन्होंने श्रेष्ठ, सुन्दर तथा मनमोहिनी नायिकाओं का ही चित्रण अधिक किया है। पद्मिनी नायिका के रूप-लावण्य को चित्रित करने में कलाकारों ने विशेष रुचि ली।

नायिका-भेद के चित्रों में जयपुर के चित्रकारों ने अपनी विशेष कुशलता का परिचय दिया है। नायिका के भय, लज्जा, संकोच तथा चिन्तन के भावों को भी यहाँ के चित्रकारों ने अपने चित्रों में स्वाभाविक रूप से उतारा है। नायिकाओं के प्रत्येक अवयव को उन्होंने इतना आकर्षक बना दिया है कि देखने वाला मोहित हो जाता है।[12] रीतिकालीन कवियों की कल्पनाओं को इन चित्रकारों ने इतना सजीव रूप प्रदान किया कि काव्य की सारी गीतिमय रचनाएं साकार रूप लेकर नृत्य करती प्रतीत होती हैं। इन चित्रों की नारी आकृतियों के मुँह गोल बने हैं तथा काली रेखाओं के प्रयोग द्वारा चेहरे की सीमा रेखा के किनारे हल्की गोलाई का प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है जो जयपुर शैली की अपनी निजी विशेषता है।

जयपुर शैली के इन चित्रों में बनी नारी आकृति न लम्बी, न छोटी, बीच के आकार की बनी है। आँखें मीनाकार व एक चश्म, तथा अधिकतर वे काजल की मोटी रेखाओं से आबद्ध हैं। चमकता हुआ मुखमण्डल, लाल मोटे अधर,

मांसलदेह, पीन पयोधर, क्षीण कटि उसके अंग-प्रत्यंग की शोभा को द्विगुणित कर देती हैं। हस्त व पाद मुद्राएं सुन्दर व भावपूर्ण हैं तथा सम्पूर्ण देहयष्टि के माध्यम से कलाकारों ने चित्र के भाव को पूर्णतः अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है। वेशभूषा में अधिकतर लहंगा, कंचुकी व चुनरी तथा मुगलिया पेशवाज़ दोनों का ही चित्रण हुआ। मुगल प्रभाव के कारण आभूषणों में झूमर, झुमके तथा बाजूबन्द विशेष रूप से चित्रित किये गये। ये नारी आकृतियाँ सोलह शृंगार–मांग टीका, मांग फूल, नथनी, कर्णफूल, झुमके, बाजूबन्द, कंगन, चूड़ी, हथफूल, अंगूठी, झूमर, करधनी पायल, बिछुवे, बिन्दी, मेहंदी आदि से सुसज्जित अंकित की गई है। इन चित्रों का रंग विधान सुन्दर और सुकोमल व रेखाएं लोचदार तथा लावण्य लिये हैं।

उपसंहार

जयपुर शैली के चित्रकारों ने नायिका भेद के चित्रण में कृष्ण को नायक व उनकी आह्लादिनी शक्ति राधा को नायिका माना और इस प्रकार कृष्ण परमात्मा का प्रतीक व नायिकाएं आत्मा का प्रतीक हैं। भक्ति व शृंगार का ऐसा अनूठा समन्वय हमें इन चित्रों में देखने के लिए मिलता है जो अनुपम है। साथ



चित्र सं.1 नायिका भेद, जयपुर



चित्र सं.2 नायिका भेद, जयपुर

ही जयपुर शैली की निजी विशेषताओं का भी ध्यान रखते हुए यहाँ के चित्रकारों ने नायिका-भेद के चित्रण में अपनी कला-कुशलता का परिचय प्रदान किया है। विभिन्न नायिकाओं के अन्तर को स्पष्ट करने में उनकी वेशभूषा, अलंकार, मुखमण्डल के भाव व विभिन्न मुद्राओं का कलाकारों ने विशेष ध्यान रखा है। इन चित्रों की रूप-माधुरी अपने आप में अद्वितीय है व दर्शक का ध्यान अपनी ओर स्वयं ही आकृष्ट कर लेती है।

संदर्भ

1. अग्रवाल, डॉ. श्यामबिहारी, भारतीय चित्रकला का इतिहास (मध्यकालीन), रूपशिल्प प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999, पृ. सं. 65.
2. अग्रवाल, डॉ. श्यामबिहारी, वही, पृ. सं. 66.
3. अग्रवाल, डॉ. आर.ए., कला विलास, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 2003, पृ. सं. 122.
4. गैरोला, वाचस्पति, भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009, पृ. सं. 61.
5. अग्रवाल, डॉ. आर.ए., कला विलास, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ, 2003, पृ. सं. 123.
6. वर्मा, डॉ. अविनाश बहादुर, वर्मा, अनिल व वर्मा, संगीता, भारतीय चित्रकला का इतिहास, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 2012, पृ. सं. 204.
7. अग्रवाल, डॉ. आर.ए., कला विलास, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 2003, पृ. सं. 230.
8. अग्रवाल, डॉ. श्यामबिहारी, भारतीय चित्रकला और काव्य, किताब महल, इलाहाबाद, 1996, पृ. सं. 57.
9. अग्रवाल, डॉ. आर.ए., कला विलास, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 2003, पृ. सं. 230.
10. अग्रवाल, डॉ. श्यामबिहारी, भारतीय चित्रकला और काव्य, किताब महल, इलाहाबाद, 1996, पृ. सं. 60.
11. अग्रवाल, डॉ. श्यामबिहारी, वही, पृ. सं. 60.
12. गैरोला, वाचस्पति, भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009, पृ. सं. 68.

डॉ. रीतिका गर्ग
असिस्टेंट प्रोफेसर
चित्रकला विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

❑ ❑ ❑

पुष्करणा ब्राह्मण समाज की सामाजिक व्यवस्था एवं बीकानेर राजवंश के साथ सम्बन्ध

• डॉ. मुकेश हर्ष

शहर बीकानेर की सफील के भीतरी भाग में बहुत-सी जातियां निवास करती है जिनमें मुख्य हैं ब्राह्मण, ओसवाल, माहेश्वरी, माली एवं अन्य मिश्रित जातियां। इनके अतिरिक्त मुस्लिम भी बड़ी संख्या में बसते हैं। ब्राह्मणों में भिन्न-भिन्न जातियां है जिनमें पुष्टिकर (पुष्करणा), सारस्वत, गौड़ एवं श्रीमाली आदि। संख्या की दृष्टि से पुष्करणा ब्राह्मणों का वर्चस्व है। पुष्करणा ब्राह्मणों का इस क्षेत्र में आगमन राव बीका के साथ आना प्रतीत होता है। जोधपुर के शासक राव जोधा के बड़े पुत्र बीका ने मारवाड़ की राजनीतिक परिस्थतियों एवं अपने पिताश्री की मंशा के संकेत को समझकर नवीन क्षेत्र में अपना राज्य स्थापित करने का निर्णय लिया। इसी प्रयास में सफलता प्राप्त करके बीका ने वि.सं. 1545 की अक्षय द्वितीया तदनुसार 1488 ई. में अपने नाम पर बीकानेर शहर की स्थापना की जिसकी पुष्टि निम्न दोहे से होती है–

''पनरै सौ पैतालवे, सुद वैशाख सुमेर।
थावर बीज थरपियो, बीके बीकानेर।।''

सामान्यत: यह मान्यता प्रचलित है कि पुष्करणा ब्राह्मणों का इस क्षेत्र में आगमन राव बीका के साथ हुवा था जिसकी पुष्टि दयालदास की ख्यात से होती है।[1]

पुष्करणा ब्राह्मणों की कुछ जातियों के लोग राव बीका के साथ आ गये व धीरे-धीरे कुछ जातियाँ बीकानेर शहर के बसने के बाद यहाँ आती गयी। 16-17वीं शताब्दी में इनकी संख्या 18 हजार के लगभग थी। पुष्करणा ब्राह्मण समाज के रीति-रिवाज श्रीमाली ब्राह्मणों से काफी मिलते-जुलते हैं। पुष्टिकर या पुष्करणा ब्राह्मण षट्कर्म कर्त्ता हैं। वे उदारचेता, ज्ञानी रहे हैं। वे मंदिर, कुएँ,

तालाब, कुण्ड, बावड़ियाँ, बगीचियों, शैक्षणिक संस्थाओं के निर्माणकर्त्ता रहे हैं।[2] राव बीका के साथ आने के अतिरिक्त इनके आने का सिलसिला निरन्तर जारी रहा इसलिए बीकानेर राजपरिवार के साथ इनका जुड़ाव स्वाभाविक था। उनके एवं राजपरिवार के साथ घनिष्ठ सम्बन्धों की पुष्टि तत्कालीन राजकीय आदेशों व राज परिवार द्वारा जारी रुक्कों (विशिष्ट आदेश) एवं परवानों से प्राप्त होती है।

धड़ व्यवस्था व राजकीय सम्बन्ध

जाति पंचायत व्यवस्था के क्रम में धड़ (समूह) व धड़पति की व्यवस्था थी जो जाति पंचायत का समग्र विकसित रूप था। बीकानेर राज्य के सामाजिक इतिहास में विक्रम की 18वीं शती में बीकानेर में समस्त प्रकार के ब्राह्मण ''तीन धड़ों'' (समूह,' जातीय संगठन) में विभक्त थे। इन धड़ों का गठन मुख्यत: राज्यकुल, वैश्य (माहेश्वरी आदि) व ब्राह्मण वर्ग के व्यक्तियों के निधन पर 'मृतक संस्कार' (16 संस्कारों में अंतिम संस्कार) के निमित्त 13वें दिन होने वाले ब्राह्मण भोज में भोजन व इसके उपरांत अधिकतम नकद दक्षिणा प्राप्ति के उद्देश्य को लेकर हुआ।[3] यह एक उन्नत सामाजिक व्यवस्था थी। इन तीन धड़ों में पुष्करणा ब्राह्मण, छ: न्याति ब्राह्मण, श्रीमाली ब्राह्मण व अन्य ब्राह्मणों आदि में से कुछ जातियों व उप जातियों के लोग सम्मिलित थे। जैसा कि हर संगठन में होता है अर्थात् मतभेद व विघटन। ठीक वैसे ही पुष्करणा ब्राह्मणों की धड़ में कुछ टूटन दिखाई देती रही। ऐसे समय में रत्ताणी व्यास, हर्ष, आचार्य व कुछ अन्य पुष्करणा ब्राह्मण जातियों ने समाज को एकता के सूत्र में बांधने वाली इस धड़ को संतुलित करने का प्रयास किया। उन्होंने नई धड़ के संगठन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।[4]

पुष्करणा ब्राह्मणों की प्रथम धड़ बीकानेर के जूठानी व्यासों के तत्वावधान में गठित हुई, किन्तु कहा जाता है कि आचार्य शिरोमणि श्री महानंद का किसी बात के लिए जूठानी व्यासों (जूठानी व्यास, पुष्करणा ब्राह्मण, व्यास जाति की एक शाखा) से विवाद हो गया। अत: उन्होंने पुष्करणा ब्राह्मणों की एक अन्य धड़ बनाने का विचार किया। नवीन धड़ राज्य अनुमति के बिना बननी सम्भव नहीं थी। उस समय बीकानेर के महाराज अनूपसिंह व महानंदजी आचार्य के मध्य विशेष सम्बन्ध था। फिर भी जूठानी व्यासों की सदस्य संख्या, धन व प्रतिष्ठा अधिक थी। राज्य कुल में उनका स्थान था। इस कारण प्रारम्भ में अलग धड़ नहीं बनायी जा सकी।[5]

महानंदजी का विवाह रत्ताणी व्यास परिवार (व्यास जाति की एक शाखा)

में हुआ। ऐसे समय में महाराजा अनूपसिंह ने (महाराज अनूपसिंह का रत्ताणी व्यासों से घनिष्ठ सम्बन्ध था) महानंदजी आचार्य से कहा कि रत्ताणी व्यासों का उन्हें सामाजिक स्तर पर व्यापक समर्थन मिल जाये तो उन्हें (महाराजा अनूपसिंह को) प्रस्तावित नवीन धड़ को स्वीकृति देने में कोई कठिनाई नहीं होगी। अंतत: महानंदजी को रत्ताणी व्यासों से नवीन धड़ बनाने में सहयोग मिला। फिर तत्कालीन महाराजा अनूपसिंह ने (1695-1728 वि.सं.) महानंदजी को नवीन धड़ गठित करने की स्वीकृति प्रदान कर दी। महानंदजी ने उस धड़ का नाम ''श्री लक्ष्मीनाथजी की धड़'' रखा था।[6] यद्यपि धड़ विभाजन लाभदायी नहीं था। फिर भी इन धड़ों का सामाजिक महत्व अब भी बना रहा। फिर एक विवाद[7] के कारण महानंदजी को धड़पति[8] व लक्ष्मीनाथजी की धड़ का अलग से निर्माण किया गया।[9]

इस प्रकार पुष्करणा ब्राह्मण समाज की न्यात का दो भागों में विभाजन होने पर भी वांछित सुधार नहीं हो पाया। जिसका आभास महाराजा अनूपसिंहजी द्वारा श्री महानंदजी व धरणीधरजी आचार्य को लिखे गये पत्र से मिलता है। मूल पत्र इस प्रकार है—स्वस्ति श्री महाराजधिराज महानंद धरणीधर जोग पंचमी सुप्रसाद बांचीजो। तथा कोई ब्राह्मण भूंडे मारग हाले, गोली घर में घाते थोरी धड़ रा तनू थो सजा दीवी ओर पांत माहेजी मायो तेरो आलंभो थानू छै। और कुमारग चाले गोली घर घाले तेने धड़ सूं बार काढो और बीजी धड़ री पांत मोहे बेने घातसी सो सजा पासे; संवत 1747 मिती जेठी सुदी 5 मुकाम राई चूरू सूं कोस चार परे।[10]

राजाओं व राज्यकुल विशिष्ट व्यक्तियों, वैश्यों व ब्राह्मण समुदाय में मृतक संस्कार पर ब्राह्मण भोज होता था। जिसमें बीकानेर के विभिन्न ब्राह्मण समुदाय 'तीन धड़े' भोजन करते थे। इस भोजन से पूर्व जातीय संगठन की पूर्वानुमति आवश्यक थी जिसे 'दुआ' देना कहते थे। भोजन के उपरांत ब्राह्मणों को नकद दक्षिणा दी जाती थी। ऐसी ही दक्षिणा वैश्य आदि समुदाय द्वारा भी ब्राह्मणों को दी जाती थी। इन धड़ों के धड़पति ब्राह्मणों की दक्षिणा के रुपये एक मुश्त प्राप्त कर उनका अपनी धड़ के ब्राह्मणों में विभाजन करते थे। यह तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पहलू था। फिर धड़ें विभाजित होती गयी। फिर एक-एक या दो-दो जातियों का 'संयुक्त भाईपा' बनना प्रारम्भ हो गया।[11]

जाति-पंचायत

निर्विवाद रूप से समाज शास्त्रियों व अर्थशास्त्रियों ने ऐतिहासिक दृष्टि से

इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है कि पंचायत संस्थायें प्राचीनकाल से भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का अभिन्न अंग रही है।[12] पूर्वोक्त धड़ विषयक वर्णन भी जाति पंचायत का मूलाधार है। यद्यपि पुष्करणा ब्राह्मणों में परिवार के मुखिया तक ही अधिकतर फैसलों का निपटारा हो जाता था। फिर भी कुछेक-मुकदमे जाति पंचायत के समक्ष पेश होते थे, इन पर राजकीय नियन्त्रण न के बराबर था।

रियासत काल में पुष्करणा ब्राह्मण समाज के लोग 'बी' क्लास में गिने जाते थे। उनकी शासकों से काफी नजदीकियाँ थीं। सामाजिक संगठन के अनुशासन का पालन करवाने का दायित्व सम्बन्धित जाति पंचायतों को था। जाति पंचायतें न केवल गाँवों वरन कस्बों व शहरी क्षेत्र में भी सक्रिय थी।[13] पुष्करणा ब्राह्मणों की कुल 36 जातीय पंचायतें रही हैं।

जाति व्यववसाय व राजकीय आदेश

परंपरागत सामाजिक ढाँचे में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोपरि था। अध्ययन, अध्यापन, धार्मिक कर्मकाण्डों का संपादन, पाठ-पूजा और पौरोहित्य उनके परंपरागत जातीय अध्यवसाय थे।[14] आजीविका हेतु ये राज्य व समाज के मंदिरों में कथा वाचन कर धर्म प्रचार-प्रसार करते रहे हैं। पुष्करणा ब्राह्मण राज्य मान्य तो रहे ही हैं, साथ ही राजाओं के राज्य गुरु, राज्य कथा वाचक, राजपुरोहित, राज्य ज्योतिष, राज्य वैद्य, राज्य मंदिरों के देराश्री, टंकशालाध्यक्ष, राज्य के उच्च तथा विश्वसनीय पदों पर भी आसीन रहे हैं। वे राज्यदूत व राज्य रक्षार्थ युद्धों में भी भाग लेते रहे हैं। राजतन्त्रात्मक व्यवस्था में पुष्करणा ब्राह्मणों में अधिकारी व व्यवसायी भी हुए है।[15] इनके (पुष्करणा ब्राह्मण समाज के) प्रमुख व्यवसाय व इनसे जुड़े राजकीय आदेश के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है—

1. कथा वाचन, पठन-पाठन

बीकानेर संस्थापक राव बीका ने श्री रत्न शर्मा को आदर पूर्वक बीकानेर में बसाकर उन्हें उनके राज्य क्षेत्र में श्रीमद्भागवत धर्म के प्रचार-प्रसार का कार्य सौंपा था। व्यास नाथू शर्मा ने बीकानेर राज्य के पौरोहित्य कर्म व सपिण्डी गरुड़ वाचन का कार्य व्यास कार्य मर्यादा के प्रतिकूल होने के कारण करवाने से इंकार कर दिया, तथापि राज्य कुल में श्रीमद्भागवत वाचन का कार्य तब भी रतनस्य कुल के जिम्मे रहा। चूंकि राव बीका ने भी श्री रत्न शर्मा को बीकानेर स्थायी रूप से बसाने के प्रस्ताव के साथ वचन दिया था कि उसके राज्य में उनकी व उनके वंशजों की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं सौंपा जायेगा। महाराजा

रायसिंह ने रत्नकुल के व्यासों को खास 'रूक्का' दिया, जिसकी पुष्टि निम्न रुक्के से होती हैं—

''.....वीस (व्यास) रते (रत्नशर्मा) का सदामद सु वेद भागोतजी रा बाचणा वाला छै ईयारों बड़ा रावजी मोण कियो छै ई यारों कारज में खेचल करसी.....राज रो गुनेगार हुसी.....मिगसर सुदी 1649।16

कथा वाचन की परंपरा रत्ताणी व्यासों की ही है। वि.सं. 1874 में महाजन क्षेत्र में वहाँ के ठाकुरों ने शेखावतों के ब्राह्मणों से कथा वाचन करवाया, जिस पर रत्ताणी व्यासों ने बीकानेर दरबार में शिकायत की। तब राज्य द्वारा एक आदेश जारी किया गया, जो यह पुष्ट करता है कि रत्ताणी व्यासों का कथा वाचन करने का सदामद (सदैव) अधिकार है तथा सरबाले (सर्वत्र) पूरे क्षेत्र में रत्ताणी व्यासों का ही कथा बांचने का अधिकार है।

''रा. वेरीसाल सिंघोत बगेरे माहजन रे पटे रो गाँव रो भोगतो चोधरियो जोग्यो-थोहोरे गाँव में कथा सदामद व्यास रत्ताणी वाचे छै तेरी मरजाद छै सु हणे थे शेषावतों रे गाँवो रे बीरोमणों केप बचायो छो सु कीस लेषे बचावो सदामद री मरजाद छै जु करे जदस सरबाले में व्यास रत्ताणीयों की मरजाद छे जु अे वाचे छे जु वाचसी द.प्रो. भीमषमचंद सीदवत।[17]

रत्ताणी व्यासों व लालाणी व्यासों में कथा वाचन के अधिकार को लेकर कई बार विवाद उठ खड़ा होता था, जिसे बीकानेर राज दरबार द्वारा निपटाया जाता था। ऐसे ही एक विवाद का निर्णय वि.सं. 1898 में बीकानेर महाराज रतनसिंह ने किया—

''वीयास लालाणियों रत्तोणीयों रे आपस में कथा रो असरचों थो सु श्री हुजुर सुनवायस कर सरचाप दीयो छै श्री लक्ष्मीनारायणजी रे मंदिर लारे छै सु सोनारों री कथा व्यास लालोणी बाचसी वीयास रत्तोणियो रे बाचण पावे नहीं। काती सुदी 4।[18]

उक्त आदेश के साथ एक अन्य आदेश भी निष्पादित हुआ जिसके अनुसार श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर से संबद्ध लोगों के वहाँ कथा-वाचन का कार्य लालाणी व्यास करेंगे तथा श्री मरुनायकजी से संबद्ध लोगों के वहाँ रत्ताणी व्यास कथा वाचन करेंगे। आदेश में इस नियम को तोड़ने वालों के लिए राज्य की ओर से 'ओलभो' उलाहना दिये जाने का निर्देश भी दिया गया—

''वीयास लालोणियों रत्ताणियों के आपस में कथा को असरचों छो सु श्री हुजुर सुनवायस कर सरचाप दियो छै श्री लक्ष्मीनारोईण जी मींदर वीहारों वा बंटे

जीयेरा दिवोगणो सदामद कर छै तेरो तो कथा व्यास लालाणी वाचसी श्री मुलनायकजी के मींदर वीहायोरा बटें जीयेरा दिवांगण सदामद करें छै तेरे कथा वीयास रत्तोणी वाचसी और कोई आगेसुं नवों चढायते आसी तीको दिवगणों करसी ती के पासला वीयास बाचसी इये में कोई कसर घातसी तो श्री दरबार सु ओलभो दीजसी, काती सुदी 7 का 9 वीयास रत्ताणीयों कने रहसी। का. 2 ई की रकल छै मीती काती सुदी 7।''[19]

इस तरह से सारे विवादों का निपटारा करके पुष्करणा ब्राह्मण जाति की कथावाचन की समस्या का निवारण करके उनके व्यवसाय व आय का स्पष्टीकरण कर दिया गया।

गरुड़ पुराण वाचन

राज्य मंदिर में कथा वाचन से राज कुल के कुछ विशेष कार्य जुड़े थे। जैसे गरुड़ पुराण वाचन व संपाड़े की चाकरी करवाना आदि जो श्री रत्नस्य कुल में रत्ताणी व्यासों (पुष्करणा ब्राह्मणों की व्यास जाति का एक उपभाग) की व्यास कार्य मर्यादा के प्रतिकूल थे। अत: उन्होंने श्री लक्ष्मीनारायणजी के मंदिर के कथा वाचन का कार्य स्वीकार नहीं किया। बाद में लालाणी व्यासों को राजकुल में गरुड़ पुराण वाचन का कार्य सौंपा गया। कालांतर में इन्हीं के वंशजों ने उक्त कार्य व्यवस्था के क्रम में अपनी स्वीकृति के साथ राज्य की ओर से 'सही' पूर्व के आदेश के साक्ष्य के रूप में निष्पादित करवा ली थी अर्थात् लालाणी व्यासों को गरुड़ पुराण वाचन का अधिकार प्राप्त हो गया जिसकी पुष्टि निम्न ''परवाने'' से होती है–

।। श्री रामजी।।

''श्री देवोनवचनावतु व्यास देवी दासोणी व्यास लालोणी सदामद सुं श्री राजलोक धाय बडारण री सपिण्डी गरुड़ पुराण अे वाचे छै करावे छै तेरो परवोणो महाराज श्री जी रो सं. 1797 फागण सुद 3 मुकाम गाँव राजलदेसर रो छै सो हणे आपस में गरुड़ पुराण वाचण वाले गेहणा री रकम राखी सु हमे सारो ई भाईयों भेला हुय ईये तरे ठेराई छै-गरुड़ पुराण संपूर्ण हुसी तिके दिन रोकड़ी रुपीया गेहणे री रकम आसी सु सर्व पोंती मुजब बेंट लेसी ओर वाचक रे मोती, कंठी, कड़ा, बींटी, गौदान सु वागो वाचक लेवे छैसु लेसी ओर राजलोक में गरुड़ पुराण वाचसी तिको वाचक गेहणों री रकम री आपरे लेवण री अरज करावै तिको वाचक गेहणों री रकम री आपरे लेवण री अरज करावै तिको वाचक गेहणों री रकम री आपरे लेवण री अरज करावे तिको वाचक गुनेंगार और सपिण्डी गरुड़ पुराण वाचसी तिको

वाचक हैं से माफक वेचे तो वारी सुं हैंसे सुं दूर दूजो ने हेंसो वारी दी जसी ईये में कसर घातसी तिके किना गुनेगारी लीजसी।

1. मतु व्यास वलभो उपर लिषीयों सु सही
2. मतु व्यास गोलालों उपर लिषीयों सु सही
3. मतु व्यास चेने अणते रा लिषीयों सु सही
4. मतु व्यास भतु उपर लिषीयों सु सही
5. मतु व्यास मिनु उपर लिषीयों सु सही
6. मतु व्यास भतु उपर लिषीयों सु सही
7. मतु व्यास सतीयों उपर लिषीयों सु सही
8. मतु व्यास जस गोपा-मुरली उपर लिषीयों सु सही[20]

राज्य कुलगुरु

आचार्य बेणीदासजी के तत्कालीन बीकानेर शासक सूरसिंहजी (1670 वि.सं.) के साथ काफी अच्छे सम्बन्ध थे। उन्होंने सूरसिंह की माता को कहा था कि तुम्हारा पुत्र (सूरसिंह) जो कि राज्य में मान्य नहीं है, शासक बनेगा। उनके कहने के तीन वर्ष बाद ही सूरसिंह शासक बने। राजमाता गंगारानी ने अपने पुत्र सूरसिंह के शासक बनने पर प्रण कर लिया था कि बेणीदासजी आचार्य को आधा राज्य दूँगी। बेणीदासजी ने आधा राज्य लेने से इंकार कर दिया। इनकी निःस्पृहता, आदर्श, त्याग व संतोषप्रियता से राजमाता गंगारानी एवं उनके पुत्र राजा सूरसिंह दोनों ही अत्यधिक प्रभावित हुए। अब प्रण की पूर्ति किसी भी प्रकार से हो इसलिए उन्हें राज्य के कुलगुरु के पद पर आसीन करके देवराज ऋषि (देरासरी) की पदवी से विभूषित किया गया।[21] प्रारम्भ में बेणीदासजी के वंशजों के निवास की व्यवस्था गढ़ में की गई। बाद में इनकी पसंद के अनुसार बीकानेर दुर्ग से बाहर बीकानेर शहर में बसाया गया।

बेणीदासजी आचार्य के आगमन से पूर्व बीकानेर राज्य कुलगुरु का पद व्यासों के पास था। 1545 ई. से 1670 ई. तक की अवधि में कीकोजी के वंशज व्यास बीकानेर राज्य घराने के कुलगुरु रहे। तत्पश्चात् 1670 ई. से बेणीदासजी आचार्य व इनके वंशज इस पद पर रहे। साथ ही शासकीय उच्च पदों पर भी कार्य करते रहे हैं।[22] बेणीदासजी के परिवार के सदस्यों के आवास की व्यवस्था ही नहीं अपितु दैनिक उपयोग की वस्तुओं के लिए राज्य के मोदीखाने से सभी आवश्यक सामान उपलब्ध करने की व्यवस्था की गई थी। अनूपसिंहजी के समय में भी इनके परिवार के खर्च के लिए ऐसा ही आदेश दिया गया।[23]

''महाराजाधिराज कुँवर श्री अनूपसिंह बचनात श्री.....जी री रसोई के सरने बद बागा तिवारा अचारज शिवराज, महानंद, धरणीधर को रोजगार वारा पेटियां जिकु ही थित छै सू सगली थित मंढी माहै मोदियो में छै। हजूर रे रसोई सूधा सरब रोकड़ी कर दिया छै। मास एक रा रुपया 81 महीनो सरब कियो छै से दसवाडेरा दसवाड़े रुपये 27 मंढी माहे कहा मोदिया माहै हजूर-जिंया देसी तियां लेसी।''

इसके अलावा अन्य खर्चों के लिए जागीर में गाँव भी मिले हुए थे। सम्पन्न एवं दानशील महानंदजी, धरणीधरजी के वंशज राज्य कुलगुरु पद पर थे ही बाद में 'लक्ष्मीनाथजी की धड़' (समूह) निर्मित करके धड़पति बने। देरासरी पदवी धारी आचार्यों को जागीरें मिलती थी जो उनकी आय के स्रोत थे। महाराजा कुमार श्री जोरावरसिंहजी जब नोहर प्रस्थान करने लगे तो उन्होंने जानना चाहा कि आचार्य परिवार में कौन देरासरी उनके साथ चलने को तैयार है। तब महाराज सुजानसिंह के डर से कोई तैयार नहीं हुआ। देवकीनंदन आचार्यजी (महानंदजी आचार्य के पड़पौत्र) तैयार हुए। उनके इस साहस से प्रसन्न व प्रभावित होकर जागीर में कुरजड़ी गाँव दिया जिसका उल्लेख निम्नांकित ताम्रपत्र[24] के वर्णन में हैं —

श्री माताजी सही श्री लक्ष्मीनारायणजी

स्वस्ति श्री महाराजाधिराज श्री जोरावरसिंहजी वचनात देरासरी देवकीनंन हरनाथ रो बेटो उदयनारायणजी रे पोते ने इतरो श्री कुवराय दे देणों कियो थो सु तांब्रापतर करदिया छै तेरी विगत—

1. **गाँव कुरजड़ी देवकीनंदन शंकरनाथ सिवेनु**
2. **घर कीठरी रतनसिंह वाली पिरोल धर नीवसी वसुधी, लखोटियों में सिवे ने श्री लक्ष्मीनारायण फते कर दिया छै**
3. **नोहर मंडी में ऊँट 1 पैसासी निराल दाम पासी**
4. **खेत बीछवाल रा पाँच भाईयो वाला**
5. **बस्ती रे लोकोरे जाये परणिये दापो सदा लेवे छै सू इतरो थोक सांसण कर दिया छै महारा पूता पीता।**

रघुनाथजी आचार्य (जिनके नाम से रघुनाथ सागर कुआँ है) के पौत्र पुरुषोत्तमजी को मंदिर (शिव मंदिर) की सेवा चाकरी सौंपी बदले में गाँव जागीर के रूप में दिया–

''महाराजा श्री सूरतसिंहजी के राज में फरसोतमदासजी के ऊपर पूरी मरजी रही जिणसूं हर मंदिर में बड़े सिंघासन री सेवा सौंपी, गाँव थावरियों सांसण दिया।''[25]

उपरोक्त वर्णन से बीकानेर के पुष्करणा ब्राह्मणों की समाज व्यवस्था, कथावाचन के अधिकार को लेकर व्यासों के मध्य विवाद एवं जाति व्यवस्था का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही बीकानेर राजवंश के साथ उनके सम्बन्धों एवं समाज में उभरते विवादों को सुलझाने में राज्य की भूमिका को भी रेखांकित किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. दयालदास री ख्यात, सं. दशरथ शर्मा एवं सहायक संपादक दीनानाथ खत्री एवं जसवंतसिंह, भाग द्वितीय, बीकानेर 1948, पृ. 2 ग्रंथ में प्रोहित विक्रमसी का नाम अंकित है।
2. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद व्यास, रत्ताणी व्यासों का इतिहास एवं वंशावली, परमानंद पब्लिकेशन्स, बीकानेर, 1993, पृ. 24-30
3. पुष्करणा ब्राह्मण समाज व अन्य ब्राह्मण समाजों में मृतक व्यक्ति की स्मृति व कर्मकाण्डीय क्रम में 12वें दिन होता है, जिसे बारहवां कहते है। मर्दुमशुमारी मारवाड़, 1891 ई. महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, शोध केन्द्र, जोधपुर, पृ. 180
4. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद व्यास, रत्ताणी व्यासों का इतिहास एवं वंशावली, परमानंद पब्लिकेशन्स, बीकानेर, 1993, पृ. 73
5. श्री रमण आचार्य, आचार्य श्री जीवराजजी का वंश परिचय
   (i) बीकानेर, 1968, पृ. 11-14
   (ii) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद व्यास, रत्ताणी व्यासों का इतिहास एवं वंशावली, परमानंद पब्लिकेशन्स, बीकानेर, 1993, पृ. 97
6. श्री रमण आचार्य, आचार्य श्री जीवराजजी का वंश परिचय, बीकानेर, 1968, पृ. 14
7. मृत्यु उपरांत, मृतक के पीछे किये जाने वाले भोज से पहले दुआ यानि अनुमति लेनी पड़ती थी इस मुद्दे को लेकर हर्ष व्यास जाति में विवाद हो गया।
8. धड़-जातिय समूह व धड़पति-समूह का प्रमुख होता है, यह संस्था अपने प्रभाव में जाति-पंचायत से ऊपर हुआ करती थी।
9. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद व्यास, रत्ताणी व्यासों का इतिहास एवं वंशावली, परमानंद पब्लिकेशन्स, बीकानेर, 1993, पृ. 98
10. यह धड़ या जाति पंचायत से जुड़ा प्रारंभ में दिया गया आदेश पत्र था। श्री रमण आचार्य, आचार्य श्री जीवराज का वंश परिचय, बीकानेर, 1968, पृ. 14
11. पूर्वोक्त, डॉ. राजेन्द्र व्यास, पृ. 99
12. दशरथ शर्मा, राजस्थान थ्रू दी एजेज, भाग-1, रा.रा.अ.बी., बीकानेर 1966, पृ. 352

13. कागदों री बही, रा.रा.अ.बी., वि.सं. 1857, नं. 11, पृ. 30
14. डॉ. पुष्पा चौहान, बीकानेर राज्य का राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक इतिहास (1818-1947), अप्रकाशित शोध ग्रंथ, बीकानेर, पृ. 139
15. पीपुल ऑफ इण्डिया-राजस्थान, भाग-2, वोल्यूम 38, जनरल एडीटर, के.एस. सिंह, पॉपुलर प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, मुम्बई, 1998, पृ. 70-74
16. रायसिंह रो कागद वि.सं. 1649, पृ. 1-2
17. कागदों री बही, 23 पृ. 103, सं. 1874 (रा.रा.अ.बी)
18. कागदों री बही, 48, पृ. 77, सं. 1898, (रा.रा.अ.बी.)
19. वही।
20. परवाना (आदेश) 1997-98 का मूल सार है। पृ. 2-5 (रा.रा.अ.बी.)। इन आठ परिवारों के सदस्यों को ही बारी-बारी से आज भी गरुड़ पुराण वाचन व उसमें प्राप्त होने वाली धन सामग्री रखने का अधिकार है (राजकीय आदेशानुसार)
21. तभी से बेणीदासजी के वंशजों के लोग इस पद पर सुशोभित है व इनके बड़े पुत्र को देरासरी की उपाधि से ही विभूषित किया जाता है।
22. रमणलाल आचार्य, आचार्य श्री जीवराजजी का वंश परिचय, 1968, बीकानेर। पृ. 8-4
23. परवाना, अनूपसिंह संवत् 1725 ई. 1688,..... पुरानी घरेलू बहियों के अनुसार घी 4 रु./मन, चावल एक रु. का साठ सेर, गेहूँ प्रति रु. दो किलो का भाव तो 81 रु. परिवार के खर्च के लिए देना बड़ी राशि थी। यह परवाना बेणीदासजी आचार्य के पोते महानंदजी के समय का है।
24. संवत् 1803, 1746 ई. वैशाख सुदी 15, मुकाम हिसार का है। यह ताम्रपत्र जोरावरसिंहजी की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी गजसिंह द्वारा प्रदान किया गया।
25. दयालदास की ख्यात-पृ. 15

डॉ. मुकेश हर्ष
व्याख्याता
(गेस्ट फेकल्टी, इतिहास विभाग)
महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय
बीकानेर एवं बेसिक पी.जी. महाविद्यालय, बीकानेर
निवास-हर्षों का चौक, बीकानेर

❑ ❑ ❑

मारवाड़ में दशनाम सम्प्रदाय की भूमिका तथा रियासत द्वारा मठों को आवंटित पट्टे : एक आर्थिक विश्लेषण

डॉ. दिनेश राठी • हुमा गोस्वामी

राजस्थान की विभिन्न रियासतों का इतिहास, त्याग, बलिदान, उदारता, स्वामी भक्ति, गुरु पूजा, जैसे मानवीय मूल्यों के कारण गौरवमय रहा है। यहां के शासकों द्वारा अलग-अलग कालखण्ड में कई सम्प्रदायों को विशिष्ठ पहचान दी गई है। साहित्य व संस्कृति के पोषक के रूप में मारवाड़ के शासकों का नाम बड़े ही आदर से लिया जाता है। जोधपुर के शासक कला प्रेमी होने के साथ ही मठ, मंदिरों एवं आध्यात्मिक संस्कृति के संवर्द्धक रहे है।

दशनाम सम्प्रदाय

आदि गुरु शंकराचार्य द्वारा व्यवस्थित एक संगठनात्मक संस्थान बनने से पूर्व दशनाम समाज अलग-अलग नामों से जाना जाता रहा है। जैसे वैदिक काल में रूद्रज, संन्यासी, शिरोरन्ध्रा, यति, दीक्षा आदि[1] तथा शास्त्रोपनिषद् काल में गृहमेधिन, गृहभवनि के आदि नामों से जाने गये।[2] तांत्रिक युग में बिन्दु, कर्मयोगी कहलाये।

दशनाम के सभी दस पदों का उजागर करता श्लोक : —

तीर्थाश्रम वनारण्य गिरि पर्वत सागराः।
सरस्वती भारती च पुरी नामानि वै दशः।।

दस प्रमुख शैव सन्यासियों के द्वारा तात्कालीन सनातन धर्म की रक्षार्थ बीड़ा उठाया गया जो थे—गौतम तीर्थ, अनन्त आश्रम, वशिष्ठ वन, शम्भू अरण्य, नारायण गिरि, पूर्ण पवर्त, राम सागर, परमानन्द सरस्वती, हस्तामलक भारती, नित्यानन्दपुरी। धीरे-धीरे समय के साथ आगे बढ़ते हुये इनके उपनाम अत्यन्त लोकप्रिय हो गये। इन दस उपनाम धारण करने वालों को ही 'दशनाम गोस्वामी' कहा जाता है।[3]

जोधपुर राज्य के छोटे-बड़े 21 परगनों में कहीं न कहीं इन मठों का विस्तार देखा गया है।[4] राव की बहियों के आधार पर प्राप्त मठों की जानकारी से इनके आर्विभाव की जानकारी मिलती है।[5] इनका जोधपुर राज्य के साथ राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक सम्बन्ध भी रहे है।[6]

मारवाड़ के परगनों में जो भी दशनाम मठ थे, जिनके जोधपुर दरबार के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध थे। ये दशनामी सामी प्रशासनिक, सैनिक व धार्मिक सभी क्षेत्रों मे अपनी श्रेष्ठ सेवाओं के साथ इतिहास में महत्व रखते थे।[7] जो जोधपुर महाराजाओं की पट्टा बहियों ही इनको प्रदान किये गये पट्टों द्वारा स्पष्ट होता है।[8]

जोधपुर राज्य के द्वारा दशनामियों को आंवटित पट्टे

जोधपुर राज्य की पट्टा बहियों जो अलग-अलग शासकों के शासन काल भी उपलब्ध से ही हैं जिनका गहराई से अध्ययन करने पर पता चलता है कि मारवाड़ महाराजाओं के द्वारा बड़े पैमाने पर दशनामियों को पट्टे आवंटित किये गये है। इन पट्टा बहियों में विभिन्न कस्बों एवं परगनों में स्थित गाँवो की पट्टों के उल्लेख के साथ ही खालसा व सासण[9] गाँवों का विवरण भी दिया है। जिनमें मुख्य रूप से पट्टे में दिये गाँवो की रेख, हुकमनामा[10], एवं सुकराणा शुल्क विभिन्न जाति अनुसार पट्टेदारों का नामोल्लेख और पट्टा जब्त की महत्वपूर्ण सूचनाएं है।

महाराजा जसवंत सिंह (प्रथम) के काल के पूर्व पट्टे ताम्रपत्रों पर दिये जाते थे। उनके काल के बाद चौकीनवेस विभाग अस्तित्व में आया। चोकीनवेस विभाग में विभिन्न पट्टो की नकलों के साथ ही राज्य में आने जाने वाली विभिन्न वस्तुओं का ब्यौरा भी रखा गया था। इसके साथ ही चौकीनवेस एक प्रकार से चौकसी के कार्य निर्वाह करता था।[11]

संवत 1767 में पांच सो एक बीघा जमीन का पट्टा गुसाई सुमेरबन को दिया गया।[12] जो उस समय दशनामी गुसाईयों की अच्छी आर्थिक दशा का बोध कराती है। यह पट्टा नागौर परगने से सम्बधित है जिसका मूल अविकल रूप से निम्न प्रकार है।

501 पांच सौ एक बीघा

पटो 1 गुसाई सुमेरबन नु मयां करने दीयो सांा 1767 रा माहा सुद 11 मुकाम नागौर 1 750) प्राा मेड़ता रो गाँव सांा 1767 रा सावणु साख था पटे

750) गाँव कीडोखारी बासणी त्फै हवेळी ताा खाळसा री पटो 1 जती ग्यान बीजे

500) गाँव रतनपुरो

1 500) प्राा जेतारण रो गांस सांा

महाराजा मानसिंह के काल में पट्टेदारों को पट्टा वितरण का कार्य अधिक कुशलता के साथ किया। उन्होने प्रत्येक गाँव की रेख निर्धारित कर हुकमनामा व खालसा भूमि का नियमवार बंटवारा किया। उनके समय मारवाड़ के पट्टेदारों की विगत पट्टा बही से तैयार की गई है।

राज परिवार में श्रीमाजी साहेबा, श्री महाराणी साहेबा और श्री बाईजीलाल साहेबा को दिये पट्टों का भी उल्लेख हुआ है।13 वहीं मंदिर एवं मठ तालके पट्टों एवं ताम्रपंत्रों के अलावा सांसण के रूप में सामी, चारण, पुरोहित और जोगियो को पट्टे में मिले गाँव का ब्यौरा भी मिलता है। दशनामी गुसाइयों को मिले पट्टों को निम्न सारणी से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

दशनामियों को मिले पट्टों का वर्णन गाँव व रेख के साथ :

क्र.सं.	पट्टेदार का नाम	गाँव का नाम	रेख
1.	महंत सुखदेव पुरी मोती पुरी	तनावड़ा बड़ा	625)
2.	महंत खेम भारती	चौपडा	3500)
3.	स्वामी मालपुरी फतेहपुरी आईदान पुरी सदापुरी	जोड़ री वसणी	500)
4.	सामी दयाल भारती लखा भारती	साजी (साली)	500)
5.	महंत दोलतपुरी	मंढली	750)
6.	मंहत दोलतपुरी	मढीयो	625)
7.	महंत सुखदेव पुरी मोतीपुरी	सावलतो खुर्द	1250)
8.	गुसाई वसदेव गिरि	खारडा	500)
9.	सामी कानपुरी, भगवानपुरी, अनोपपुरी, चतुरपुरी	खाखरलाई	500)
10.	भारथी	सीहाठ	5000)
11.	महंत संतोष पुरी	आलावास	2000)

रेख—गाँव की वार्षिक अनुमानित आय।

पट्टे का अविकल रूप—

। समत 1865 री सा।। बैकुंटीया रा तल रा म्हैंत सुखदेवपुरी मोतीपुरी रै फोज सुं सि. ईंदराज मु. सुरजमल लख दीयो रेख 1000)1

2. 1 गाँव चौपड़ो रेख 3500)1

। समत 1864 री सा।। था भारतीयां री जमात रा म्हैंत खेम भारथी रै चीठी काती वद 7 री

3. 1 गाँव जोड़ री वासणी रेख 500)1

। पटै बीदा गुर गुमानीराम वीरदत रा रै समय 1860 री ऊ।। था

। समत 1869 री सा।। था पटै स्यामी मालपुरीजी फतेपुरी जी नै आईदानपुरी जी सदापुरीजी रै ची।। काती वद 4

4. 1 गाँव साली रेख 500)1

। पटै सामी दयाल भारथी नै हमै लखा भारथी रै

। समत 1864 री ऊ ।। सु महंत दोलतपुरी रै अमल री ची।। वैसाख सुद 6 री रेख 1500)

। समत 1869 री ऊ।। थ महंत दोलपुरी रै

। समत 1864 री ऊ।। था महंत दोलतपुरी रै अमन री ची।। वैसाख सुद 6 री रेख 1500)

। समत 1869 री ऊ ।। था महंत दोलपुरी रै रेख 625)

। समत 1865 री सा।। था बैकुंटीया रा तल रा महंत सुखदेवपुरी नै मोतीपुरी रै ची।। आसाढ़ सुद 12

। समत 1870 री सा।। था म्हैंत सुखदेवपुरी मोतीपुरी रै

8. 1 गाँव खारडा रेख 500)1

। भेट गुसाईजी श्री वसदेवगीरजी रै

। समत 1866 री सा।। था सामी कानपुरी जी रै सनद जैठ सुद 2 री श्री देवनाथ जी रे ससुरा रै।

। तांबा पत्र सासण समत 1866 री सा।। था पोस वद8 रो सामी कानपुरी जी भगवानपुरी जी ने अनोपपुरी जी चुतरपुरी जी रा बेटा पोता रै रेख 500)

। सं.1864 री ऊ।। था भारथीयां रा तल ता।। नै भंडार ता।। ची।। फाग वद 14 री

। समत 1864 री ऊ।। था म्हैंत संतोखपुरी रा नीसांण तां।। ची।। जेठ वद 1 री

महाराजा मानसिंह के समय सामी गुसाइयों को दी गई पट्टों की उपरोक्त सूची के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इनका मारवाड़ के आर्थिक क्षेत्र में बहुत योगदान रहा है। पट्टे में दिये गये प्रत्येक गाँव की अनुमानित वार्षिक आय रेख के रूप में दी गई है। इस रेख की राशि के अनुसार ही पट्टेदार को जोधपुर दरबार को अपनी सेवायें देनी होती थी जिसे चाकरी या पेशकशी कहा जाता था। जितनी अधिक रेख उतना ही सेवा करने का बड़ा अवसर मिलता था।

यह व्यवस्था एक प्रकार से अधिकार और कर्तव्यों को स्पष्ट करती है। कई गाँव सांसण रूप में भेट भी दिये गये थे। यह बही मारवाड़ के राजनीतिक, सामाजिक, और आर्थिक इतिहास का उजागर करने की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है।

राजस्थान के इतिहास लेखन का प्रमुख स्त्रोत अभिलेखीय सामग्री रही है। इस प्रकार की सामग्री में न सिर्फ शासक वर्ग बल्कि प्रजा के विभिन्न क्रियाकलापों और उनकी शासन में रही भूमिका का विस्तृत लेखा जोखा सप्रमाण दिया गया है। शोध यात्रा में मठों से प्राप्त ताम्रपत्र एवं स्तम्भ अभिलेखों द्वारा दरबार से मिले जागीर गावों की सूची तथा सांमियों को मिलने वाली सासण भूमि आदि सूत्रों को जोड़कर दशनाम मठों की आर्थिक भूमिका पर प्रकाश डाला गया है।[14] महाराजा मानसिंह के काल की पट्टेदारां री विगत, महाराजा जसवंत सिंह प्रथम के काल की जोधपुर हुकुमत री बही तथा महाराजा अजीत सिंह व महाराजा अभयसिंह के समय की पट्टा बही का अवलोकन करने पर सांमियों[15] द्वारा जोधपुर की आर्थिक स्थिति में गहरी भूमिका का पता चलता है।

मारवाड़ में दशनाम सम्प्रदाय की एक विशेष भूमिका रही है। आदि गुरु शंकराचार्य से अस्तित्व में आया ये सम्प्रदाय, विधिवत संस्थागत विकास कर, मठ-मंदिर के रूप में स्थापित हुआ। मारवाड़ के सभी क्षेत्रों में इनका बहुमूल्य योगदान दृष्टिगोचर होता हैं। दशनामी महंतो को जोधपुर दरबार से गाँव के पट्टे इनायत किये गए। उनकी रेख (गाँव की वार्षिक अनुमानित आय) का निर्धारण किया गया। इसके द्वारा दशनाम मठों का सशक्त आर्थिक पक्ष सामने आता है, जो मारवाड़ के विकास में अपना विशिष्ठ योगदान दे रहे थे।

संदर्भ :

1. गोस्वामी गिरिवरगिरि, गोस्वामीनामा, निर्मोही प्रकाशन, दिल्ली 2017, पृ. 7
2. भारती श्याम सुंदर, श्री दशनाम गोस्वामी दर्शन, प्रकाशक श्री दशनाम गोस्वामी समाज संस्थान, जोधपुर 2011, पृ. 467
3. सिंह मुंशी हरदयाल राय बहादुर, रिर्पोट मरदुमशुमारी राज मारवाड़ 1891 ई., प्रकाशक महाराजा मानिसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, जोधपुर 1894, पृ. 262

4. मारवाड़ सेन्सस रिपोर्ट, 1931
5. शोध यात्रा में सोनाईलांखा में निवास करने वाले दशनाम मठां के राव नेहरू लाल से प्राप्त जानकारी के आधार पर
6. राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर जोधपुर रियासत की हकीकत खाता बही संख्या 12 व 10 से
7. 'जोधपुर राज्य के घेरे की बही' परम्परा सम्पादक डॉ. हुकुमसिंह भाटी, भाग-128, प्रकाशक राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर 2002, पृ. 38
8. महाराजा मानसिंह मारवाड़ रा पट्टेदारा री विगत सम्पा. डॉ. विक्रमसिंह भाटी, प्रकाशक राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर 2020, पृ. 62
9. सासण—ब्राह्मणों, चारणों, सामियों आदि को दान में दी हुई भूमि जिस पर उन लोगों का अधिकार पीढ़ी दर पीढ़ी होता है।
10. हुकमनामा—हुकमनामाठिकानेदार की मृत्यु होने पर जागीर खालसा कर दी जाती थी तत्पश्चात उसके उत्तराधिकारी द्वारा पेशकश देने पर जागीर पुन: प्रदान की जाती थी। इस प्रकार पेशकश का चलन मोटा राजा उदयसिंह के समय प्रारम्भ हुआ। वही महाराजा अजीतसिंह ने इसका नाम बदलकर हुकमनामा कर दिया। हुकमनामा गाँव के जागीर की रेख कभी कम तो कभी ज्यादा लिया जाता था। इसे उत्तराधिकारी शुल्क भी कहते हैं। संदर्भ—*महाराजा मानसिंह: मारवाड़ रा पट्टेदार री विगत सम्पादक* डॉ. विक्रमसिंह भाटी, प्रकाशक राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर 2020, पृ. 263
11. *महाराजा मानसिंह मारवाड़ रा पट्टेदारा री विगत,* उपर्युक्त।
12. सक्सेना आर. के. *मारवाड़ अण्डर अजीतसिंह एण्ड अभयसिंह* (वि.सं. 1764-1806) प्रकाशक बुक ट्रेजर, जोधपुर, पृ.187
13. महाराजा मानसिंह मारवाड़ रा पट्टेदारा री विगत, उपर्युक्त।
14. शोधयात्रा में कंवला मठ एवं सर मठ से मिले ताम्रपत्र व अभिलेखों की जानकारी।
15. सांमी-दशनामी का देशज नाम जो मारवाड़ रूप में हामी भी कहलाते हैं।

डॉ. दिनेश राठी
सहायक आचार्य, इतिहास विभाग,
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

हुमा गोस्वामी
शोधार्थी, इतिहास विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

❑ ❑ ❑

महिला उत्थान में गाँधी चिन्तन के निहितार्थ

• डॉ. मृदुला शर्मा

गाँधीजी का दर्शन एवं चिन्तन न केवल भारत बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिए एक विलक्षण प्रयोग है। उन्होंने अपने चिन्तन में इस तथ्य को अच्छी तरह स्वीकार किया है कि एक राष्ट्र और समाज के निर्माण में महिलाओं की भूमिका सदैव आवश्यक है। सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों की प्राप्ति के लिए महिला समानता और गरिमा को स्वीकार किया जाना बेहद जरूरी है। तत्कालीन समय में समाज में प्रचलित अनेक ऐसी मान्यताओं का उन्होंने पुरजोर खंडन और विरोध किया जो महिलाओं की दुविधापूर्णता में वृद्धि करती थी। गाँधी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका को सदैव प्रासांगिक बनाने का प्रयास किया। आश्रम व्यवस्था के दौरान और कई अन्य अवसरों पर उन्होंने अपनी धर्मपत्नी कस्तूरबा के लिए विचारों को पूर्ण सहमति प्रदान की।[1] उन्होंने 19वीं सदी की प्रचलित विचार धाराओं के प्रवर्तन का दावा नहीं किया तथापि सभी प्रकार के चिन्तन में विचार और कर्म का अद्भुद समन्वय किया। गाँधीजी ने अपने विचारों को कर्म के स्तर पर उतारने का प्रयत्न किया और इसमें व्यापक स्तर पर सफलता भी प्राप्त की है। इसलिए गाँधी एक व्यवहारिक आदर्शवादी आध्यात्मिक जननेता कहलाये। तत्कालीन और वर्तमान समाज में ऐसा माना जाता है कि महिलाएं पुरुषों की बराबरी नहीं कर सकती और न ही पुरुष के अनुपात में सहयोगी बन सकती है। गाँधी ने सदैव इस बात के उल्ट अपनी विचारधारा को निर्मित किया। गाँधीजी अपनी संवेदनशीलता एवं तर्कशील अनुभव के कारण अन्य राजनीतिक आध्यात्मिक चिन्तकों से अलग नजर आते हैं।[2]

गाँधी कहते थे कि महिला को भी अपनी किस्मत आजमाने का उतना ही हक है जितना कि एक पुरुष का है। गाँधी ने बहुत पहले यह मान लिया था कि ''एक तटस्थ विदेशी सत्ता के शासन में महिला की कानूनी और पारम्परिक

स्थिति हमेशा खराब ही रही है और इसमें क्रांतिकारी सुधार किये जाने की आवश्यकता है।''

गाँधीजी ने महिलाओं को सम्मान प्रदान करते हुए उन्हें पूर्ण व्यक्तित्व माना। इसी सोच को विस्तार देते हुए कहा कि मूलभूत रूप से महिला और पुरुष एक ही हैं और लाक्षणिक तौर पर दोनों में आत्मा भी समान है। गाँधी ने कहा, ''महिला और पुरुष एक ही जिन्दगी जीते हैं और उनकी भावनाएं भी एक जैसी होती हैं।''[3] हालांकि वह महिला और पुरुष को मूलत: एक मानते थे, फिर भी इन दोनों के व्यवसाय और भूमिकाओं में भिन्नता को वह अपेक्षित और स्वीकृत भी मानते हैं। लेकिन उन्होंने हमेशा इस बात पर बल दिया कि ''महिला को भी ईश्वर से समान मानसिक क्षमता मिली हुई है। महिला को पुरुष की गतिविधियों से जुड़ी बेहद छोटी जानकारी का भागीदार बनने का अधिकार है और उसे पुरुष के ही समान स्वतन्त्रता और मुक्ति का अधिकार मिला हुआ है।''[4]

गाँधी ने हमेशा ही महिला को पुरुषों के समान अधिकार रखने वाले नैसर्गिक हकदार के तौर पर देखा अपनी गहन दृष्टि से वे समझ गये थे कि कई अयोग्य पुरुषों को महज ''निर्मम परम्परा की ताकत'' की वजह से महिलाओं पर श्रेष्ठता हासिल हो जाती है, जबकि वे इसके हकदार नहीं होते हैं और समाज को इसकी इजाजत भी नहीं देनी चाहिए।[5]

गाँधी समाज में महिलाओं की स्थिति, जीवन शैली, व्यवहार, शिक्षा व्यवस्था आदि के सन्दर्भ में कहते हैं कि उनकी भूमिका पुरुषों के ही समान है फिर भी दोनों एक जैसे नहीं हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान अनेक समयों पर गाँधी के सम्मुख यह प्रश्न दृष्टि गोचर हुआ पुरुष और महिला समानता के अनुपात में किस स्तर तक समान है। वर्तमान समय में नारीवादी लेखकों एवं चिन्तकों का मानना है कि महिलाओं को समानता एवं न्याय हासिल करने के लिए एक जैसा होने की आवश्यकता नहीं। संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में महासभा ने जो महिला-पुरुषों की समानता का उल्लेख किया उसे गाँधी जी द्वारा 40 वर्ष पूर्व ही राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान दोहरा दिया गया। गाँधी के शब्दों में, ''महिला और पुरुष एक-दूसरे का पूरक होने के नाते अपनी तरह की नायाब जोड़ी बनाते हैं। जोड़ी में हरेक एक-दूसरे की इस कदर मदद करता है कि एक के बगैर दूसरे के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं किया जा सकता। इन तथ्यों का आवश्यक परिणाम यह निकलता है कि दोनों में से किसी की भी स्थिति को कमजोर वाली कोई भी चीज आखिरकार दोनों को ही समान रूप से नष्ट करेगी।''[6] मानवता की एक जैसी अवधारणा होने के नाते महिला और पुरुष की

समस्याएं भी मूलभूत रूप से एक जैसी ही होनी चाहिए। गाँधी का विश्वास था कि महिलाएं पुरुषों के साथ दौड़ लगाकर समाज और समुदाय के प्रति अपना योगदान व्यक्त नहीं कर पाएंगी। महिलाएं पुरुषों के साथ दौड़ लगाने की बात 'चुन' सकती हैं लेकिन इस तरह वे उस ऊँचाई को नहीं हासिल कर पाएंगी, जहाँ तक पहुँचने में गाँधी सक्षम मानते थे। वह महिला और पुरुष के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों में एक-दूसरे का पूरक होने की बात पर दृढ़ विश्वास रखते थे। हालांकि उन्होंने कार्य के क्षेत्र में विभाजन को स्वीकार किया। उन्होंने कहा, ''जैसा मैंने लाखों किसानों को उनके प्राकृतिक परिवेश में देखा है और उनके कार्यक्षेत्र का स्वाभाविक विभाजन खुद-ब-खुद मेरा ध्यान आकृष्ट करता है।''[7] साथ ही वह यह भी जोड़ते हैं कि ''इन कार्यों के लिए व्यावहारिक तौर पर दोनों ही लिंग के इंसान को एक समान सामान्य विशेषताओं की आवश्यकता है।''[8] गाँधी ने सभी-पुरुष समानता की अवधारणा को उनके कार्यक्षेत्र के विभाजन से भी जोड़ा लेकिन उसमें पूरी तरह एकाधिकार के खिलाफ रहे क्योंकि जीवनयापन के लिए दोनों के समन्वय की आवश्यकता होती है।

गाँधीजी पारिवारिक जीवन का एक यर्थात और सुन्दर वर्णन महिला अधिकारों को ध्यान में रखकर करते हैं। उन्होंने घर के रख-रखाव और उसे सशक्त बनाने में पति और पत्नी दोनों की ही साझी जिम्मेदारी होने की बात कही। हालांकि वह घर को सशक्त बनाने के लिए महिलाओं पर अधिक निर्भर दिखायी देते हैं। इसके अलावा व महिलाओं से दूसरी बड़ी चीजों की भी उम्मीद रखते हैं, क्योंकि ''एक महिला मूलत: अपने घर की मालकिन होती है।... वह रोटी की रखवाली और उसे बांटने वाली होती है।... इंसानी नस्ल के नवजात बच्चों के पालन-पोषण की कला उसका खास और इकलौता विशेषाधिकार है। उसकी देखभाल के बगैर, इंसानीनस्ल विलुप्त ही हो जाएगी।''[9] गाँधीजी मातृत्व को लेकर भावनात्मक नहीं थे और न ही उन्होंने इसके बारे में कोई घिसी-पिटी बात ही कही। इसके उलट उन्होंने मां बनने की जिम्मेदारी को बेहद मुश्किल कार्य बताते हुए कहा, ''बच्चों के जन्म को पूरी गंभीरता के साथ लिया जाना चाहिए। महिला ही देश को बुद्धिमान, स्वस्थ और अच्छी तरह से पाले-पोषे गये बच्चे देती है और निश्चित रूप से यह एक महती सेवा है।'' विशेष बात यहाँ ये भी है कि गाँधी महिला के घर के बाहर जाकर कार्य करने के खिलाफ नहीं थे, बशर्ते कि इस बारे में फैसला खुद महिला ही करे और वह कार्य उसकी क्षमता के भीतर हो। उन्होंने कहा, ''मेरी कल्पना के नयी व्यवस्था में सभी व्यक्ति अपनी क्षमता के मुताबिक काम करेंगे और उन्हें उनकी मेहनत के मुताबिक पारिश्रमिक भी मिलेगा।''[11] हालांकि अपनी समझ के आधार पर वह

व्यावहारिक अर्थ में यह मानते थे कि नयी व्यवस्था में महिलाएं अंशकालिक कामगार ही होंगी ओर उनकी प्राथमिक जिम्मेदारी घर की देखभाल होगी।[12] दूसरे शब्दों में, गाँधी घर के बाहर किये जाने वाले उन कार्यों की श्रेष्ठता में यकीन नहीं करते थे जिनसे धन के रूप में एक वेतन मिलता है। उसी भाव में गाँधीजी यह भी नहीं मानते थे कि नौकरियों, सम्पत्ति अधिकार और विवाह सम्बन्धी अधिकारों में कानून के द्वारा महिला के साथ किसी भी तरह का भेदभाव नहीं किया जाए। देखा जाए तो वर्तमान में अधिकांश लोग गाँधी जी की इस अवधारणा से सहमत नहीं हो सकते है। गाँधी महिलाओं की घरेलू भूमिका पर बल देते हैं क्योंकि बच्चों की परवरिश और उनकी शिक्षा में महिलाएं बड़ी भूमिका निभाती हैं। दरअसल मौजूदा प्रवृत्ति यह है कि बच्चों की परवरिश, उनकी शिक्षा और उनकी जरूरतें पूरी करने जैसे सभी घरेलू मामलों में माता-पिता दोनों की ही समान जिम्मेदारी है और उन्हें मिल-जुलकर इसे निभाना चाहिए। लेकिन यह बात भी अपने आप में सही है कि एक सफल पुरुष के पीछे महिला मूक नेतृत्वकर्त्ता भी है।[13] इसलिए प्रत्येक महिला को पारिवारिक दायित्वों के निवर्हन की पूरी जानकारी होनी चाहिए। इसके अलावा उसे इस महत्वपूर्ण पारिवारिक दायित्व में निहित मूलभूत मूल्यों का विवेकपूर्ण बोध भी होना चाहिए।

गाँधीजी लिंग के सम्बन्ध में महिलाओं को दूसरी स्थिति में रखना बेहद खतरनाक मानते हैं। पर्दाप्रथा, दहेज प्रथा, बाल विवाह तथा अन्य ऐसे प्रावधान जो महिलाओं की गरिमा को कमजोर बनाये महिलाओं की उन्नति के सम्बन्ध में सार्थक नहीं है। यंग इंडिया के एक लेख में गाँधीजी ने लिखा कि ''हमारी महिलाओं को वह स्वतन्त्रता क्यों नहीं मिलती है जो पुरुषों को हासिल है? उन्हें घर से बाहर निकलने और खुली हवा में सांस लेने की आजादी क्यों नहीं होनी चाहिए?''[14] उन्होंने पर्दा-प्रथा को भारतीय रिवाज के तौर पर स्वीकार नहीं किया। उन्होंने तार्किक ढंग से अपना पक्ष रखते हुए कहा, ''प्राचीन भारत की महिलाएं अगर सार्वजनिक बहस करती थी और उनमें खुलकर हिस्सा लेती थीं तो निश्चित रूप से वे पर्दे में रहते हुए ऐसा नहीं कर सकती थी। कृषक समाज में आज भी पर्दा-प्रथा नहीं दिखायी देती है।''[15] हालांकि हमारे समाज में बहुत लोग तब और आज भी एक प्राचीन रिवाज के तौर पर पर्दा का समर्थन करते हैं। गाँधी ने जोर देते हुए कहा, ''हमें हरेक चीज को तर्क की कसौटी पर परखना चाहिए। हम तर्क से ही यह जान सकते हैं कि कौनसी चीज हित में है और कौनसी अहित में पुराने जमाने की अजीबोगरीब पोशाक अगर तर्क की

कसौटी पर खरी नहीं उतरती है तो हमें उसे खारिज कर देना चाहिए।''[16] उन्होंने वर्ष 1927 में ही कह दिया था कि 'जब तक महिलाओं को उनके घरों और छोटे आंगन में कैद करके रोके रखा जाता है, मानवता का कद कम होता रहेगा'।[17]

गाँधीजी ने समाज में स्त्रियों और पुरुषों की समानता पर बल दिया। वे एक ऐसे आदर्श समाज की कल्पना करते हैं जिसमें स्त्रियां बिना किसी प्रतिबंध के सक्रिय भागीदारी निभाये और उन्हें भी पुरुषों के समान अपनी शैक्षणिक, बौद्धिक और नैतिक उन्नति के अवसर प्राप्त हों।

गाँधीजी ने दहेज जैसी कुप्रथा के लिए बेहद अपमानजनक शब्दों का इस्तेमाल करते हुए इसे घृणित व्यवस्था, खरीदी हुई शादी और अपमानजनक परम्परा का नाम दिया।[18] उन्होंने दहेज के लेन-देन को सामाजिक अन्तर्निहित बुराई की संज्ञा दी, क्योंकि यह शादी परस्पर मेल नहीं होकर खरीद फरोख्त और समझौते की प्रक्रिया है जिसमें इन्सानों को बेचा-खरीदा जाने वाली एक वस्तु समझा जाता है। गाँधीजी महिलाओं को अबला कहने पर आपत्ति उठाते हैं क्योंकि उनका मानना है कि महिलाएं किसी भी स्थिति में पुरुषों से कमजोर नहीं है। अपितु अहिंसा, धैर्य, त्याग, सहिष्णुता तथा हृदय की पवित्रता आदि गुणों को धारण करने में तो निश्चित रूप से पुरुषों की अपेक्षा अधिक सक्षम हैं।[19] दूसरी तरफ जिन्दगी-भर के सम्बन्ध को तय किये जाते समय महिलाएं महज मूकदर्शक बनकर रह जाती हैं जिससे उनका भी अपमान होता है। जिन्दगी-भर के रिश्ते शादी का लक्ष्य तो पुरुष और महिला दोनों के जीवन में बेहतरी और सम्मान की प्राप्ति होना चाहिए। वे मानते थे कि इस अपमानजनक परम्परा को दुरुस्त करने में देश के युवा महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। उन्होंने कहा, ''आज देश में युवाओं की सहभागिता वाले कई आन्दोलन चल रहे हैं। मेरी इच्छा है कि ये आन्दोलन दहेज-प्रथा जैसे सवालों के जवाब भी खोजें।''[20] उन्होंने सभी लोगों की भागीदारी से एक सशक्त जनमत के निर्माण का आह्वान् किया था ताकि भविष्य में कोई भी व्यक्तिदहेज लेने अथवा देने में शामिल होकर अपने हाथ गंदे न करे। उन्होंने दहेज लेने वाले युवकों का बहिष्कार तक किये जाने की वकालत करते हुए कहा कि लड़कियों के मां-बाप को जाति और प्रान्त की सीमाओं को नजरअंदाज करके इस सामाजिक बुराई को समाप्त करने में सहयोग देना चाहिए। उन्होंने 1929 में यह कहकर तो सबको अचम्भे में डाल दिया था कि, ''अगर मुझे किसी लड़की की शादी की जिम्मेदारी निभानी होती तो मैं एक भी पैसे की मांग करने वाले लड़के को अपनी लड़की देने के

बजाय उसे आजीवन कुंवारी ही रहने देता।''[21] उन्होंने दहेज-प्रथा से जुड़े सभी लोगों, लड़का, लड़की, उनके मां-बाप और रिश्तेदारों से इसके बंधनों को तोड़कर आजाद होने का आह्वान् करते हुए कहा कि नितांत नयी सोच के सृजन के लिए ऐसा किया जाना अनिवार्य है। उन्होंने हमेशा ही इस बात पर बल दिया कि निर्भीक लोगों के आगे आकर पुरानी परम्पराओं को तोड़े बगैर कभी भी कोई सामाजिक सुधार नहीं हुआ।

गाँधीजी का मत था कि स्त्रियों को पुरुषों के समान ही समस्त सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अधिकार प्राप्त होने चाहिये। किन्तु वे महिलाओं पर अनावश्यक व्यावसायिक दायित्व लादना अनुचित मानते थे। उनकी मान्यता थी कि महिलाओं पर गृहस्थी को चलाने का दायित्व ही अपने आप में इतना महत्वपूर्ण और श्रम-साध्य है कि उन पर अन्य कोई बाहरी दायित्व नहीं थोपा जाना चाहिये। वस्तुतः वे स्त्रियों की स्वतन्त्रता का समर्थन करते हुए भी उन्हें उस परम्परागत गरिमा से वंचित नहीं करना चाहते थे, जो उन्हें पारिवारिक दायित्वों के निष्ठापूर्वक पालन द्वारा प्राप्त होती है। उनके अनुसार उचित यह होगा कि घर के संचालन के स्त्री के दायित्व को उतना ही महत्वपूर्ण समझा जाये, जितना कि किसी सामाजिक या सार्वजनिक कार्य को। उन्होंने स्पष्ट किया कि यद्यपि स्वाभाविक रूप से महिलाओं में परिवार के संचालन की कुशलता पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती है, किन्तु घर-गृहस्थी के कार्य स्त्री पर पुरुषों द्वारा थोपे नहीं जा सकते। यह निर्णय कि कोई स्त्री अपने लिये किस दायित्व अथवा व्यवसाय का चयन करें, पुरुषों द्वारा नहीं, अपितु स्वयं महिलाओं द्वारा ही लिया जाना चाहिये। उन्होंने ऐसे अनेक व्यवसायों और वृत्तियों का, उल्लेख किया जिनमें स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक कुशलता और दक्षता का प्रदर्शन कर सकती हैं।[22]

गाँधीजी ने बाल विवाह को भी भारतीय समाज में व्याप्त एक गम्भीर कुरीति की संज्ञा दी और इसके उन्मूलन पर बल दिया। उन्होंने कहा : ''यदि मेरे पास सत्ता होती अथवा मेरी कलम में पर्याप्त शक्ति है तो मैं उसका उपयोग प्रत्येक बाल विवाह को रोकने के लिए करता। अल्प आयु में अपने बच्चों का विवाह करने वाले माता-पिता वास्तव में उनके शत्रु हैं और वे उन्हें कमजोर और निर्भर बना देने के लिए उत्तरदायी हैं।''[23]

गाँधीजी केवल सतीप्रथा बाल विवाह के ही विरोधी नहीं थे, वे उन समस्त कुरीतियों और रूढ़ियों के विरुद्ध थे, जो स्त्रियों के नैतिक और आध्यात्मिक विकास के मार्ग में बाधक हों। इसी कारण उन्होंने पर्दा प्रथा का भी

घोर विरोध किया उनका मत था कि पर्दा प्रथा अनुचित व गरिमाहीन तो है ही; वह वस्तुतः पुरुष की संकीर्ण वृत्ति और महिलाओं के प्रति उसकी दमनकारी प्रवृत्ति का प्रतीक है।

गाँधीजी की स्पष्ट मान्यता थी कि स्त्रियों की स्वतन्त्रता का नारा लगाने मात्र से, स्त्रियों की दशा में कोई सुधार नहीं होगा वास्तव में इसके लिए उन्हें स्वयं अपने अधिकारों और दायित्वों के प्रति जागरूक होना होगा। अपने दायित्वों के पालन के द्वारा, वे समाज में पुरुषों के समान अधिकारों और स्वतन्त्रताओं की मां करने का नैतिक अधिकार स्वयं अर्जित कर लेंगी। उन्होंने कहा, ''शिक्षा, बलिदान की भावना और स्वयं अपनी गरिमा में आस्था स्त्रियों की स्वतन्त्रता के सुनिश्चित सूत्र हैं।''[24] उन्होंने स्त्रियों को परामर्श दिया कि वे अनुचित और गरिमाहीन प्रतिबन्धों के विरुद्ध सविनय विरोध करें। गाँधीजी ने स्पष्ट किया कि वे महिलाओं की स्वतन्त्रता के नाम पर उनकी स्वच्छन्दता के समर्थक नहीं थे और यह विधवा-पुनर्विवाह के बारे में गाँधी ने लगातार इस बात पर बल दिया कि महिलाओं और पुरुषों के लिए एक ही नियम होना चाहिए। इस संदर्भ में दो मानदंड नहीं अपनाये जाये क्योंकि यहाँ पर बचपन से ही महिलाओं के भीतर गुलामी की मानसिकता पैदा कर दी जाती है। अर्थात् जब तक उन्हें मुक्त रूप से सोचने का अवसर नहीं दिया जायेगा तब तक उनकी उन्नति सम्भव नहीं। गाँधी ने 1927 में ही यह लिख दिया था कि ''शुचिता बड़ी तेजी से विकसित होने वाली भावना नहीं है। इसे दूसरों पर थोपा नहीं जा सकता है।'' उनके अनुसार इस तरह की प्रवृत्ति व्यक्ति के स्वतन्त्र विकास में हस्तक्षेप करती है, भले ही वह महिलाओं अथवा हरिजनों से क्यों नहीं सम्बन्धित हो। इससे अंततः देश कमजोर ही होता है।[25]

गाँधीजी ने अपने वैचारिक निष्कर्ष से यह माना कि परम्परागत भारतीय समाज का महिलाओं के प्रति रवैया उचित नहीं है इसलिए विभिन्न यातनाओं को सहते हुए वे वैश्यावृति जैसे अपमानजनक कार्य को भी अपनाने के लिए मजबूर हो जाती है। वे इस धारणा में यकीन नहीं करते थे कि इन महिलाओं के लिए महज सम्मानजनक आजीविका उपलब्ध करा देने से इस समस्या का समाधान निकल आएगा। मानवीय चरित्र के बारे में अपनी गहरी दृष्टि के आधार पर गाँधीजी वेश्यावृत्ति उन्मूलन के लिए स्वयं महिलाओं को आगे आना होगा। उन्होंने इस अपमानजनक पेशे को समाप्त करने के लिए एक महिलाओं में सामूहिक चेतना उत्पन्न करने की मांग कि केवल कानून बना देने से वे असरकारक नहीं हो जाते हैं। उन्होंने देवदासी प्रथा को 'ईश्वर का अपमान'

बताते हुए कहा था, ''धर्म के नाम पर हम महिलाओं को अपमानित करने के साथ ही अपने आराध्य भगवान को भी इसमें शामिल करके दोहरा अपराध करते हैं।''[26] वैज्ञानिक और आधुनिक समय में इस तरह की अवधारणा देश के लिए गंभीर मसला है। जहाँ एक और संसार में विचारों की उन्मुक्तता हो रही है वही भारत में महिला उत्थान के प्रति उदासीनता दिखाई देती है।

गाँधीजी ने युवतियों की आधुनिकता के सन्दर्भ में आगाह करते हुए कहा कि उनकी नजर में 'आधुनिक लड़की' होने के मायने ही अलग हैं।[27] उन्होंने 4 फरवरी 1939 के हरिजन के अंक में लिखा था कि कुछ छात्रों ने अपने साथ पढ़ने वाली लड़कियों कि प्रति कुछ अन्य छात्रों द्वारा किये जा रहे दुर्व्यवहार की शिकायत की थी। गाँधी ने इसके जवाब में कहा था, ''छात्रों के बुरे बर्ताव के खिलाफ आवाज उठाने का मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ। ईश्वर उन्हीं लोगों की मदद करते हैं जो अपनी मदद स्वयं करते हैं।[28] गाँधी का 'तीव्र प्रतिरोध करने' और 'अपनी मदद स्वयं करने वाले लोगों की ही ईश्वर सहायता करता है।' जैसा वक्तव्य बड़ा ही सारगर्भित है। एकनिष्ठता, स्वयं के प्रति विश्वास, आध्यात्मिक शक्ति ओर किसी लक्ष्य के साथ जुड़ जाना गाँधीवादी शैली के मूलभूत अवयव उस समय भी थे और आज भी हैं।

पति और पत्नी दोनों पर ही एक जिम्मेदार मां-बाप बनने की समान जिम्मेदारी है और दोनों में से कोई भी इसके लायक नहीं है तो दूसरे को उसका दंड भोगना होगा। गाँधीजी ने महिला उन्नति की अवधारणा में कहा कि केवल राजनीतिक अधिकार ही महिला समानता का आधार प्रस्तुत नहीं कर सकते। सम्पत्ति में महिलाओं का समान अधिकार, सामाजिक प्रतिष्ठता और अन्यायपूर्ण भेदभाव पर उसे पति से अलग होने का पूरा अधिकार है। गाँधीजी जी द्वारा इस तरह के अपने वक्तव्यों से एक मानवीय दृष्टिकोण और बुराइयों को चिह्नित करने वाले मूल्यों की महत्त को भी स्थापित किया। उन्होंने सामाजिक वास्तविकता को उसके यथार्थ स्वरूप में देखा और उसे पूरे साहस तथा मानसिक तैयारी के साथ स्वीकार करने के बाद उसके उन्मूलन का प्रतिबद्ध प्रयास भी किया। अगर समाज ने महिला को पुरुष के हाथ में एक औजार के ही रूप में देखा है तो दूसरी तरफ महिला को भी ऐसा होना सरल लगने लगा है और उसने कभी भी अकेली होने के कारण इसका प्रतिवाद नहीं किया।

गाँधीजी द्वारा अपने चिन्तन विचारधारा में सत्याग्रह की नीति के आधार पर अनुचित बाध्यताओं के प्रतिरोध का समर्थन करते है। इसी सन्दर्भ में जैसा कि गाँधी के कुछ बयानों पर दृष्टिपात करने से पता चलता है, ''महिलाएं ईश्वर की

सबसे सुंदर रचना हैं'', 'आत्म-बलिदान का जीवंत रूप', 'धार्मिक आस्था के मामले में महिलाएं किसी भी तरह से पुरुषों से श्रेष्ठ हैं', और 'महिलाएं अहिंसा का पुनर्जन्म हैं।'[29] गाँधी की विचारधारा के विश्लेषण से यह भी महसूस होता है कि पूरब और पश्चिम की महिलाएं तो इन विचारों को अवैज्ञानिक और उनसे कुछ अपेक्षा करने वाला साधन मानकर खारिज कर सकती है। उनकी नजर में गाँधी के इन बयानों से प्रेरणा लेने जैसी कोई बात नहीं है। अर्थात गाँधी के ये आदर्शवादी विचार उनकी अपनी जिन्दगी से जुड़ी रही महिलाओं-उनकी मां और पत्नी, के साथ प्राप्त अनुभवों पर आधारित हैं। इसके अलावा स्वतन्त्रता संघर्ष के दौरान अपने संपर्क में आयी महिलाओं से मिला स्नेह और सम्मान भी गाँधी के इन विचारों के लिए उत्तरदायी है। मणिबेन, मीराबेन, अमृतकौर और अपने आश्रम की अन्य महिला सहकर्मियों को लिखे गये पत्रों से उनकी निष्ठा और समर्पण के साथ ही 'बापू' के प्रति उनके लगाव का भी पता चलता है। लेकिन वर्तमान में महिलाएं इन बातों को सुनकर या तो आत्मतुष्ट हो जाएंगी अथवा उन्हें अपने विकास और आत्म-निरीक्षण की कोई आवश्यकता ही महसूस नहीं होगी। आज दुनिया नारी स्वतन्त्रता का मुद्दा दोनों लिंगों के बीच संघर्ष का स्वरूप ले चुका है। कहीं ऐसा न हो कि नारी स्वतन्त्रता के इस संघर्ष में नारी और पुरुष किसी की भी श्रेष्ठता स्थापित शायद ही हो।[30]

गाँधीजी की स्पष्ट मान्यता थी कि स्त्रियों की स्वतन्त्रता प्रकृति जन्य नियमों के अनुसार सम्भव नहीं हो पायेगी। इसलिए उन्हें विभेदों के साथ संरक्षण अनिवार्य रूप से प्रदान करना ही होगा। गाँधी की इस मान्यता को देखने पर यह लगता है। कि वे अपने समय की सोच से काफी आगे प्रतीत होते है। उन्होंने नारी शिक्षा, आत्मनिर्भरता स्वावलम्बन, मर्यादित आचरण, संरक्षण के नियम के साथ-साथ संवेदनशील वातावरण पर बल दिया। विवाह की संस्था की पवित्रता के साथ उसमें व्याप्त अनैतिकता तथा कुरुतियों को समाप्त करने पर बल दिया। गाँधी के नेतृत्व में चलाये गये राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की व्यापक भागीदारी से इस तथ्य को तो स्वीकार करना ही होगा समानता की अवधारणा संघर्ष की परिणीति है। 1931 में कांग्रेस के कराची अधिवेशन में महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकारों की प्रस्थापना पर गाँधी ने बल दिया।[31]

निष्कर्ष :

महिला उत्थान की गाँधीवादी विचारधारा एवं चिन्तन का मूल्यांकन करे तो आज संवैधानिक दौर में हम उन्हें कितना सशक्त कर पाये है। आर्थिक और राजनीतिक स्वरूप को किस स्तर तक क्रियान्वित कर पाये है? क्या हम गाँधी

के समय की स्थिति से दूर हुए है या अधिक उन्नत। हमारा वर्तमान ही गाँधीजी का भविष्य था। इतिहास हमारा मूल्यांकन भूतकालिक सिद्धान्तों की उपेक्षा वर्तमान के कर्मशील प्रदर्शन से करेगा। हम जो कर पाये है वो महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि हम आज जो कर रहे है वो अधिक महत्वपूर्ण है। आज जब विश्व 21वीं शताब्दी के तीसरे दशक में गतिशील है तो भी महिला अधिकारों का प्रश्न हमारे समक्ष मुँह बाँये खड़ा है। संवैधानिक और कानूनी आधारों पर महिला सशक्तीकरण के लिए एक लंबा सफर तय करना होगा। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में भी महिला समानता एवं उन्नति की बात की गई है उसी के स्वरूप को भारत ने अपने संवैधानिक कानूनों का आधार बनाया है। वक्त की जरूरत को देखते हुए आज महिला कल्याण की ही नहीं उनके संरचनात्मक समायोजन की महती आवश्यकता है। यदि ऐसा कर पाये तो यह गाँधीवादी चिन्तन और नीतियों के लिए हमारी सकारात्मक भूमिका होगी।

संदर्भ

1. महात्मा गाँधी आत्मकथा सत्य के साथ मेरे प्रयोग, पृ. 11
2. मोहनदास कर्मचंद गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्, भाग-21, 1967, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ. 266
3. वर्मा, वी.पी., दी पॉलिटिकल फिलोस्फी ऑफ महात्मा गाँधी एण्ड सर्वोदय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, चतुर्थ संस्करण, 1980, पृ. 162
4. मिश्रा, अनिल दत्त, फंडा मेन्टल्स ऑफ गाँधी, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 312
5. वर्मा, सुरेन्द्र, आधुनिक समाज में गाँधीवादी मूल्यों की प्रासांगिकता, गाँधी और गाँधी-मार्ग, शोध पत्रिका इलाहाबाद, पृ. 16
6. गोविन्ददास सेठ, गाँधी टुडे, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1978, पृ. 14
7. पूर्वोक्त, वर्मा, वी.पी. पृ. 164
8. पूर्वोक्त, वर्मा, वी.पी. पृ. 161
9. कलैक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी खण्ड 74, पृ. 156
10. पूर्वोक्त, खण्ड 74, पृ. 204
11. पूर्वोक्त, महात्मा गाँधी आत्मकथा, पृ. 4
12. यंग इडिया, 6 अगस्त, 1931
13. हिन्दू, 23 मार्च, 1925
14. यंग इण्डिया, 21 अक्टूबर, 1926

15. अमृत बाजार पत्रिका, 2 जनवरी, 1918
16. कलैक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, खण्ड 72, पृ. 60
17. जाजू कृष्णदास के साथ विचार-विमर्श अक्टूबर, 1944 उद्धत, शीला राय, पूर्वोक्त, पृ. 90
18. नवजीवन, 25 मार्च, 1928
19. पूर्वोक्त, 21 अप्रैल, 1921
20. प्रेमा बेन कण्टक को लिखा पत्र, 23 जून 1932
21. कलैक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, खण्ड-4, पृ. 223
22. चतुर्वेदी मधुकर श्याम, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर, 2006, पृ. 312
23. पूर्वोक्त, पृ. 313
24. पूर्वोक्त, पृ. 314
25. नागर पुरुषोत्तम, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान हिन्दी साहित्य अकादमी, जयपुर, 2013, पृ. 421
26. पूर्वोक्त, पृ. 431
27. मेहता, वी.आर., भारतीय राजनीतिक चिन्तन के आधार एक व्याख्या (मनु से आज तक) मनोहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 263
28. गाबा, ओ.पी., भारतीय राजनीतिक-विचारक, नेशनल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 2021, पृ. 268
29. www.https://hi.unionpedia.org
30. मिश्रा, अनिल दत्त, पृ. 314
31. पूर्वोक्त नागर, पुरुषोत्तम, पृ. 424

डॉ. मृदुला शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर सुबोध महिला शिक्षण
प्रशिक्षण महाविद्यालय
सांगानेर, जयपुर

❑ ❑ ❑

गाँधी चिन्तन में अस्पृश्यता की अवधारणा का विश्लेषणात्मक अध्ययन

• डॉ. दीपक कुमार अवस्थी

प्रस्तुत शोध पत्र में सर्वप्रथम यह स्पष्ट करना अति आवश्यक है कि अस्पृश्यता निषेध और समानता के सिद्धान्तों की स्थापना संयुक्त राष्ट्र के घोषणा पत्र में 24 अक्टूबर 1945 को स्वीकृत की गई घोषणाओं के अनुरूप है लेकिन गाँधी ने 1920 में ही भारतीय सामाजिक और राष्ट्रीय आन्दोलन के माध्यम से सम्पूर्ण जीवन में पग-पग पर अस्पृश्यता निषेध और सामाजिक न्याय की अवधारणा का प्रतिपादन किया।

गाँधीजी का जीवन ही उनका संदेश है। उन्होंने न केवल भारत को वरन् विश्व को सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, सर्वोदय तथा सामाजिक कुरूतियों के समापन के लिए सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया बल्कि उनका व्यवहारिक जीवन में क्रियान्वयन भी करके दिखाया। उन्होंने कहा कि जो बदलाव तुम दुनिया में देखना चाहते हो, वह खुद में लेकर आओं, महात्मा गाँधी के इन विचारों ने दुनियाभर के लोगों को न सिर्फ प्रेरित किया बल्कि करूणा, सहिष्णुता सत्य-अहिंसा और शांतिवादी दृष्टिकोण से भारत और दुनिया को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

आज जब सम्पूर्ण राष्ट्र और दुनिया बापू की 152वीं जयंती मना रही है तो यह देखना लाजमी है कि हम 21वीं सदी के भारत का निर्माण बापू के सपनों के अनुसार कितना कर पाये हैं। भारत में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं का समाधान जिस स्तर पर होना चाहिए था क्या वहाँ तक कर पाये है? गाँधीवादी नीति, विचार और दर्शन को राष्ट्रीय जीवन में कितना समाहित कर पाये है? वर्तमान में युवा पीढ़ी और नीति निर्माताओं के लिए यह विचारणीय प्रश्न हैं।

2 अक्टूबर का दिन विश्व अहिंसा दिवस के रूप में मनाया जा रहा है। 15 जून 2007 को संयुक्त राष्ट्रसंघ महासभा द्वारा गाँधीजी के जन्म दिवस के महत्व को रेखांकित करने के पीछे मुख्य उद्देश्य यही है कि उनके दर्शन एवं शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार सम्पूर्ण विश्व में हो जिससे हम अधिक लाभान्वित हो कर एक समग्र विश्व का निर्माण कर पायें।

गाँधीजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन मानव जाति के कल्याण, गरीबों की भलाई तथा सामाजिक न्याय के प्रतिमानों की प्राप्ति में लगाया। तत्कालीन समय से वर्तमान तक भारतीय समाज में अस्पृश्यता मानव जाति के लिए एक अभिशाप से कम नहीं है। इसलिए ये समाज और राष्ट्र के विकास के सम्बन्ध में अत्यन्त घातक सिद्ध हुई। गाँधी अस्पृश्यता की समाप्ति धार्मिक और नैतिकता के भारतीय परिवेश के आधार पर करना चाहते थे जिससे सवर्ण-अवर्ण के भेदभाव को समाप्त करके इन जातियों को राष्ट्रीय एकता एवं साम्प्रदायिक सौहार्द के सूत्र में पिरोया जा सके।

गाँधी जी का अस्पृश्यता निषेध और वंचितों के उत्थान का दर्शन हिन्दु सभ्यता संस्कृति का एक घटक है। गाँधीजी अस्पृश्यता की समाप्ति हिन्दू धर्म एवं जाति के ढांचे के अन्तर्गत करना चाहते थे। क्योंकि वे एक तरफ दलितों के उत्थान को आवश्यक मानते हैं, तो दूसरी तरफ सवर्ण वर्ग के लिए आध्यात्मिक उत्थान की महती आवश्यकता पर बल देते हैं। इस सन्दर्भ गाँधीजी का यह भी मानना तार्किक ही है कि अस्पृश्यता की समाप्ति भारतीय सामाजिक नियमों के अन्तर्गत ही सम्भव है क्योंकि इसकी उत्पत्ति के लिए ये नियम ही उत्तरदायी रहे हैं। गाँधीजी ने आदर्श सामाजिक व्यवस्था को अहिंसक समाज अर्थात सत्य और अहिंसा पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का नाम दिया। गाँधीजी के सम्पूर्ण जीवन दर्शन को देखे तो उनके द्वारा 21 वर्षों तक अफ्रीका में रहकर रंगभेद की नीति का पूरी तरह विरोध किया गया। उन्होंने रंगभेद और छूआ-छूत की नीति को बहुत नजदीक से न केवल देखा बल्कि वे इसका शिकार भी बने। इसलिए उन्होंने इसकी समाप्ति का बीड़ा उठाया। गाँधी के जीवन का आरम्भ ही रंगभेद, जातिवाद और अस्पृश्यता के बीच स्वतन्त्रता, न्याय और बंधुत्व की भावना की स्थापना से रहा है।

आधुनिक सामाजिक एवं राजनीतिक सुधारकों में गाँधीजी ही ऐसे प्रथम व्यक्ति थे, जो हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता को सामाजिक कलंक की संज्ञा देते हैं। सामाजिक न्याय की उनकी संकल्पना में अस्पृश्ता उन्मूलन का सर्वाधिक महत्व था। उन्होंने इसे राजनीतिक स्वतन्त्रता से अधिक महत्वपूर्ण माना। उनकी यह दृढ़

मान्यता थी कि अस्पृश्यता का उन्मूलन किये बिना, स्वराज की प्राप्ति असम्भव भी है और निरर्थक थी। स्वराज की सार्थकता सामाजिक न्याय के साथ ही टिकाऊ और सतत् हो सकती है।

राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान गाँधी ने यह शुरूआत में ही महसूस कर लिया था कि भारत से यदि ऊँच-नीच के भेदभाव को नहीं मिटाया गया तो यह परतन्त्रता से भी अधिक खतरनाक होगा अर्थात् अस्पृश्यता एक सौ सिर वाले दैत्य की विकरालता धारण कर लेगी। उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग को अपने पास नहीं आने देने का मुख्य कारण भी यही है क्योंकि ऐसा माना जाता है कि दलितों की छूने मात्र से छूत की बीमारी लग जाती है। इतना ही नहीं इनको देखने मात्र से व्यक्ति को नरक का भागीदार बनना पड़ता है। यह विश्लेषण सामाजिक सन्दर्भ में कितना भयानक होगा जिसकी कल्पना करना ही बेहद कठिन है।

अस्पृश्यता के सन्दर्भ को विश्लेषित करने पर एक निष्कर्ष तो पूर्णत सच साबित हुआ कि यह एक ऐसा कलंक है, जो जन्म के साथ ही लग जाता है, और लाख बार धोओं छूटता नहीं है। यह बुद्धि और सदाचार का पूर्णतः विरोधी है इसे हम सरल भाव में व्यक्त करें तो यह सामाजिक आधार पर एक मनुष्य को केवल स्पर्श मात्र से भ्रष्ट और अपवित्र कर देने का विचार है। गाँधी की दृष्टि में अस्पृश्यता हिन्दू धर्म के सुन्दर उपवन में उग आये अवांछित घास-पात की तरह है, जो इस तरह फैलती जा रही है जिससे उपवन के सुन्दर फूलों के मुरझाने का खतरा पैदा हो गया हैं इसी कारण गाँधी अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म पर एक कलंक मानते थे, परन्तु इसे हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग नहीं मानते थे गाँधीजी के मतानुसार अस्पृश्यता के कारण ही अन्त्यजों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। इन्हें पेट के बल चलने, गाँव से बाहर रहने, जूठा भोजन देने, भूमिहीन रखने और मंदिर में प्रवेश जैसे कार्यों से वंचित रखा गया इन सभी कारणों से गाँधीजी ने यह माना कि ऐसा धर्म हिन्दू धर्म कदापि नहीं हो सकता है। गाँधी इस व्यवस्था के लिए उत्तरदायी हिन्दू धर्म को नहीं बल्कि सवर्ण वर्ग की सोच को मानते हैं। हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता का कोई स्थान है ही नहीं क्योंकि यह हमारे धार्मिक नियमों के पूर्णतः खिलाफ है। वास्तव में देखा जाए तो गाँधी ने इसके लिए सवर्ण हिन्दुओं को दोषी माना। उन्होंने समय-समय पर इसका अपने वक्तव्यों, लेखों के माध्यम से इसका विरोध भी किया। यंग इंडिया समाचार पत्र के माध्यम से इस स्थिति की भयावहता को समय-समय पर उजागर भी किया। 30 जून 1944 अमृत बाजार पत्रिका में बापू ने लिखा कि आज जरूरत इस

बात की है कि ऊपर के लोग नीचे दबने वाले लोगों की पीठ से उतर जाये। ऊँचे कहे जाने वाले लोगों का बोझ नीचे के लोगों को कुचल रहा है। अर्थात् सामाजिक एवं आर्थिक रूप से कमजोर और अस्पृश्य समझे जाने वाले लोगों को समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए उन्हें समानता और न्याय की व्यवस्था में भी लाना होगा। 29 अगस्त 1935 को 'हरिजन' में प्रकाशित एक आलेख में उन्होंने लिखा अगर भारत को नष्ट होने से बचाना है तो अस्पृश्यता का निवारण अनिवार्य है। स्वतन्त्रता के उपरान्त भारत के राजनीतिक नेतृत्व ने यद्यपि अस्पृश्यता निवारण के संवैधानिक और कानूनी प्रावधानों का निर्माण तो कर दिया लेकिन उसे व्यवहारिक तौर पर पूरी तरह सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने की अभी भी महती आवश्यकता है। भारत का एक बड़ा वर्ग जो आज भी संसाधनों के अभाव में स्वतन्त्रता के वास्तविक उद्देश्यों से काफी दूर है। 26 दिसम्बर 1929 को यंग इंडिया में छपे लेख में बापू ने स्पष्ट किया किया भारत का सच्चा विकास ग्रामीण उत्थान, सामाजिक न्याय एवं अछूतोंद्वार से ही सम्भव है। सच्चे स्वराज की स्थापना इसी से सम्भव है अन्य सब प्रयास निरर्थक साबित होंगे। इन सब के विपरीत हमारी स्वातंत्र्योत्तर प्रतिबद्धता में ग्रामीण विकास एवं सामाजिक न्याय पीछे चला गया।

गाँधीजी समस्त धर्मों निष्कार्षित स्वरूप को देखने के उपरान्त कहते हैं कि एक स्वस्थ्य प्रकार की अस्पृश्यता सभी धर्मों में पायी जाती है, वह स्वच्छता एवं सफाई का नियम है लेकिन भारत में जैसी अस्पृश्यता प्रचलन में है उसका प्रमाण किसी भी हिन्दू धर्म शास्त्र में नहीं है। गाँधी इसी कारण कहते हैं कि मैं इसलिए अस्पृश्यों का समर्थन करता हूँ क्योंकि उनके साथ बड़ा अन्याय किया गया है। लेकिन अब जरूरत है उन्हें हमारे पास बुलाने की, उनके साथ मिलने की, उन्हें समाज के साथ जोड़ने की।

सवर्ण हिन्दुओं द्वारा समाज में निम्न समझे जाने वाले वर्ण शूद्रों के खिलाफ शताब्दियों से किये जा रहे अन्याय के प्रतिकार स्वरूप गाँधी ने शूद्रो को हरिजन की संज्ञा दी, हरिजन शब्दिक तात्पर्य होता है, ईश्वर का व्यक्ति। शूद्रो के लिए हरिजन शब्द का प्रयोग उन्होंने अस्पृश्यता में विश्वास रखने वाले उन सवर्ण हिन्दुओं को यह इंगित करने के लिए किया था कि ये सभी व्यक्ति ईश्वर की संतान हैं और इसका सीधा-सा अर्थ यह है कि सवर्ण हिन्दुओं ने वास्तव में ईश्वर की सत्ता को सीधे सीधे चुनौति दी है। उन्होंने ऐसे सवर्णों को अस्पृश्यता का अंग माना और दुर्जन की संज्ञा दी। गाँधी ने तार्किक रूप से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि हिन्दू धर्म में गाय की रक्षा करने के समय से

अस्पृश्यता का उदय हुआ। क्योंकि उस समय कुछ ऐसे लोग थे, जो अधिक सभ्य नहीं थे और गौ-मांस खाते रहे, उन्हें समाज ने तिरस्कृत कर दिया और वे तब से अस्पृश्य माने गये और यह कार्य समाज में पीढ़ी-दर-पीढ़ी होता चला गया। वास्तविक रूप से गाँधी ने अस्पृश्यता के सम्बन्ध में गहन शोध नहीं किया। वे कहते हैं कि मैं केवल अनुमान ही लगा सकता हूँ कि अस्पृश्यता की उत्पत्ति कब हुई इसके बारे में निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता, यह सच या झूठ भी हो सकता है, लेकिन एक अंधा भी यह देख सकता है कि यह अधर्म है। फिर भी वे यह स्वीकार करते थे कि इस प्रथा की उत्पत्ति समाज की अवनति के कुछ दिनों के उपरान्त अपाद् धर्म के रूप में हुई गाँधी के अनुसार यह प्रथा हमारे धर्म में ऊँच-नीच की भावना के रूप में आयी और एक घृणित वातावरण के साथ स्थायी हो गयी।

भारतीय परम्परागत समाज में गाँधी के विचारों के अनुसार अस्पृश्य लोग हिन्दू धर्म के एक अंग के रूप में रहे हैं और आज भी हैं। यही कारण था कि गाँधी ने गोलमेज सम्मेलन में यह स्पष्ट कह दिया था कि, मैं अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन के विरोध में संघर्ष करते हुए मिट जाऊँगा क्योंकि उनके मत में अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंग नहीं थी वह इसे समूल नष्ट करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने कहा कि, इस शैतान रूपी बुराई को जड़-मूल से उखाड़कर फेंक दिया जाए, तो जो लोग आज धर्म को देश की तरक्की में सबसे बड़ी बाधा मानते हैं, वे फौरन अपनी राय बदल देंगे।

गाँधी हिन्दू समाज के नियमों के सामान्य निष्कर्ष के आधार पर यह कहते है कि अस्पृश्यता भारतीय समाज के पतन का कारण है यदि किसी दिन मुझे यह पता चले कि वेद, उपनिषद्, भगवद्गीता, स्मृतियों और अन्य शास्त्रों में अस्पृश्यता का समर्थन करते हैं, तो दुनिया की ऐसी कोई ताकत नहीं होगी जो मुझे हिन्दू धर्म से बांधकर रखे। तब मैं हिन्दू धर्म को उसी तरह फेंक दूंगा जिस तरह सड़े हुए सेव को फेंक देते हैं। वे लिखते हैं, यदि एक क्षण के लिए भी मुझे यह विश्वास हो जाए कि हिन्दू धर्म मुझसे किसी भी प्राणी को छूने में पाप समझने की आशा करता है, तो हिन्दू कहलाने का हक नहीं रहेगा। बल्कि गाँधी का तो यह विश्वास था कि हिन्दू समाज एक दरिया है, उसके गर्भ में समाकर सब कचरा साफ हो जाता है। इसलिए उन्होंने कहा, ग्रीस, इटली आदि देशों के लोग भारत में आकर समा गए, उन्हें किसी ने हिन्दू नहीं बनाया। वे कहते हैं, मैं सनातनी हिन्दू होने के साथ यह दावा करता हूँ कि मुझे शास्त्रों का काफी ज्ञान है और यह सुझाव भी देने का साहस करता हूँ कि अस्पृश्यतापूर्ण जो व्यवहार

आज किया जाता है उसका हिन्दू शास्त्रों में न तो कोई विधान है और न ही हिन्दू धर्म के अनुकूल है। हिन्दू धर्म का यह मूल नियम है कि सत्य और अहिंसा के अतिरिक्त सब कछ क्षणभंगुर है, माया है। इसलिए मेरे विचार में छुआछूत मानवता पर एक कलंक है। जो बुद्धि की कसौटी पर खरा न उतरे उसे अस्वीकार करने में, गाँधी पीछे नहीं रहते थे।

समय पर गाँधीजी ने ये भी कहा कि धर्म-ग्रंथों में छिपी गूढ़ बातों को ब्रह्मा वाक्य नहीं कहा जा सकता। उनका मत था कि हर व्यक्ति शास्त्रों के बारे में यह तय नहीं कर सकता कि शास्त्रों का कौन-सा वाक्य प्रमाणिक है और कौन-सा वाक्य अप्रमाणिक है। गाँधीजी, अम्बेडकर की तरह यह मानते थे कि कोई ऐसी आधिकारिक संस्था होनी चाहिए जो धर्मग्रंथों के नाम से समस्त साहित्य का पुनर्निरक्षण करें तथा नैतिक मूल्यों से रहित धर्म तथा आचार नीति के विरुद्ध पड़ने वाले सभी बंधनों को निकाल फेंके और उसके बाद जो शेष रहे, उसका एक संस्करण हिन्दुओं के मार्गदर्शन के लिए प्रस्तुत करें। साथ ही उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया, कि यदि यह कार्य सेवा भाव से किया जाए तो यह निश्चित है कि इससे उन लोगों को बड़ा सहारा मिलेगा, जिन्हें ऐसे सहारे की नितांत जरूरत है। इसी कारण उन्होंने स्वीकार किया, जो शास्त्र अथवा ग्रंथ सत्य, अहिंसा के प्रतिकूल लगे, उसे शास्त्र न माना जाए।

गाँधीजी अहिंसक प्रविधि से अस्पृश्यता का भारतीय समाज से उन्मूलन चाहते थे। गाँधीजी भारतीय समाज से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विषमता को समाप्त कर समानता की स्थापना का यत्न करते हैं। गाँधीजी की दृष्टि में अस्पृश्यता जातियों के उत्पीड़न का प्रमुख कारण धार्मिक और मनोवैज्ञानिक था। इसलिए वे चाहते थे कि सबसे पहले धार्मिक और मनोवैज्ञानिक बाधाओं को दूर कर अस्पृश्यता का अंत किया जाये। अस्पृश्यता-निवारण कैसे किया जाए, इसके लिए जहाँ एक ओर वे अस्पृश्यों के मंदिर-प्रवेश के अधिकार से सवर्णों के हृदय-परिवर्तन की बात करते थे, वहीं दूसरी ओर अनुसूचित जातियों के साथ रहकर स्वच्छता, स्वास्थ्य की जानकारी तथा उनके लिए शिक्षा, शुद्ध जल की व्यवस्था से उनके उत्थान की बात करते हैं। उनका यह दृढ़ विश्वास रहा कि दलितों को जब तक सामाजिक समानता नहीं मिल जाती, तब तक उनका आर्थिक और राजनीतिक उत्थान सम्भव नहीं हो सकता।

गाँधीजी दूर-दृष्टि रखने वाले व्यावहारिक जननेता थे। इसलिए वे यह कहते थे कि जो राष्ट्र या वंश अपने घर से अन्त्योदय से उत्थान प्रारम्भ करके सर्वोदय सिद्ध करेगा, उसके हाथ में दुनिया का नेतृत्व आयेगा। उनका दृढ़ मत

था कि भिन्न-भिन्न राष्ट्रों और वंशों के बीच जो सबसे पिछड़े हैं, दबे हुए हैं, अनाथ, असहाय और हताश हैं, उन्हीं से उत्थान के कार्य का प्रारम्भ करके, सब राष्ट्रों का, सब वंशों का उत्थान करना ही धर्म, राजनीति और समाज की नीति होनी चाहिए।

गाँधी की दृष्टि में अस्पृश्य जातियों का उत्थान तब तक सम्भव नहीं था, जब तक अस्पृश्यता निवारण के कार्य को प्रधानता न दी जाए। उनके अस्पृश्यता-निवारण का अर्थ था सवर्णों की आत्मा से इस कलंक को हटाना। इसलिए वे एक हरिजन व्यक्ति को लिखते हैं कि, मैं अस्पृश्यता के कलंक से अपनो को मुक्त करने और पाप का प्रायश्चित करने के लिए ही हरिजन-उत्थान में रुचि लेता हूँ। हरिजनों की उन्नति में बाधा रखने वाले इस कृत्रिम अवरोध के हटने से उनकी नैतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में तेजी से सुधार आएगा। अस्पृश्यता-निवारण से हम सभी एक-दूसरे के करीब आएंगे और इस भारत के विभिन्न समुदायों के बीच हार्दिक एकता पैदा करेंगे। गाँधी दलितोत्थान में सवर्णों को कर्तव्य बोध कराना आवश्यक समझते हैं। बिना कर्तव्यों के बोध के दबाव से यदि कार्य करवा भी लिया तो यह समाज के लिए हितकर नहीं होगा।

गाँधी सवर्णों के इस तर्क को भी स्वीकार नहीं करते थे कि अवर्णों का शुद्धि संस्कार करके उन्हें सवर्णों में मिलाया जाए। गाँधी के मत में, हरिजन भी हिन्दू समाज का एक महत्वपूर्ण अंग हैं, इसलिए शुद्धि क्यों और कौन करेगा? शुद्धि तो अन्तरात्मा की होनी चाहिए। गाँधी मूल रूप से अस्पृश्यता की प्रथा को बनाए रखने और इन जातियों की मौजूदा स्थिति के लिए सवर्णों को दोषी मानते थे। इसलिए वे सवर्णों से कहते थे कि, सवर्ण अन्त्यजों की सेवा करके कोई उपकार नहीं कर रहे हैं, क्योंकि अन्त्यज भाइयों को अन्त्यज बनाने के लिए सवर्ण हिन्दू ही जिम्मेदार हैं।

अस्पृश्य जातियों का मंदिर-प्रवेश, गाँधीजी के दृष्टिकोण में सवर्णों का आत्मपरिवर्तन और दलितों का सामाजिक, सांस्कृतिक उत्थान का कारगर उपाय था। गाँधीजी के मत में मंदिर-प्रवेश एक आध्यात्मिक वस्तु थी, जिससे सम्पूर्ण उत्थान सम्भव हो सकता है। वह कहते हैं, मंदिर-प्रवेश के बिना सुधार के सारे उपाय रोग से साथ खिलवाड़ करने जैसे हैं। मंदिरों की आवश्यकता को अस्वीकार करने का मतलब स्वयं ईश्वर, धर्म और भौतिक अस्तित्व की आवश्यकता को अस्वीकार करने जैसा होगा। उनकी दृष्टि में, मंदिर-प्रवेश उन्हें यह विश्वास दिलवाएगा कि ईश्वर के समक्ष वे अछूत नहीं हैं।

वास्तव में गाँधीजी उदारवादियों की तरह मानवीय दुर्बलताओं को स्वीकार करते थे। वे मार्क्स की तरह दो विपरीत दिशाओं वाले संघर्षपूर्ण वर्गों को स्वीकार नहीं करते थे। गाँधीजी की दृष्टि में मानवीय प्रकृति सुधारवादी थी और इसलिए गाँधी को भी आशावादी माना जाता है।

क्योंकि गाँधीजी भी कांट, मिल, ग्रीन और हाबहाउस के उस मत को भी स्वीकार करते हैं कि व्यक्ति के सुधार का विषय अन्दरूनी होना चाहिए और आत्म-सिद्धि इच्छा के स्वतन्त्र प्रयोग पर निर्भर होती है। व्यक्ति को सद्इच्छा का बोध आत्म-संयम से कराया जा सकता है, बाह्य प्रतिबंधों से नहीं। इसलिए इसे जोर-जबरदस्ती से नहीं कराया जा सकता। इसके लिए समन्वित प्रयासों की महती आवश्यकता है।

निष्कर्ष :

यदि 21वीं सदी को परिभाषित करने में वैश्वीकरण, मुक्त बाजार, निजीकरण और उदारीकरण जैसे शब्दों का प्रयोग आवश्यक है, तो यह भी अनिवार्य है कि सामाजिक न्याय की प्रतिस्थापना को अनदेखा न किया जाए। गाँधीवादी चिन्तन समाज के कमजोर, पिछड़े, दलित और अस्पृश्य माने जाने वाले वर्ग की न केवल आर्थिक एवं राजनीतिक उत्थान की बात करता है बल्कि सामाजिक समस्याओं के तार्किक पहलूओं के सामंजस्यपूर्ण निराकरण पर विशेष ध्यान देने पर बल देता है। समाज और राष्ट्र का यदि हमें वास्तविक सच्चे अर्थों में विकास करना है तो जातिगत अस्पृश्यता एवं दलितों का उत्थान अतिआवश्यक है। गाँधीजी ने इस बात को सदैव अपने चिन्तन में मुख्य माना कि केवल भौतिक उन्नति से ही सर्व सामाजिक एवं व्यैक्तिक कल्याण सम्भव नहीं है। बल्कि सामाजिक परिवर्तन सामूहिक सहमति से किया जाना आवश्यक है। सामाजिक परिवर्तन के लिए हमें अपनी मानसिक सोच में अहिंसात्मक परिवर्तन लाना आवश्यक है जो गाँधी दर्शन और चिन्तन का सार है। आज एक बार पुन: हमें गाँधीजी के सामाजिक विचार को अपनाने की महती आवश्यकता है क्योंकि यर्थाथ और स्थायी रूप से कल्याणकारी समाज का निर्माण गाँधीवादी पद्धति से ही सम्भव है। गाँधीजी का मानना था कि जब तक व्यक्ति के विचार एवं सोचने के तरीके में परिवर्तन नहीं लाया जायेगा, तब तक विधान निर्माण, संवैधानिक कानून बना देने मात्र से समाज को नहीं बदला जा सकता। विषमता गरीबी, असमानता आदि की उपस्थिति को समाप्त करने के लिए गाँधी चिन्तन एवं दर्शन की प्रासंगिकता का प्रश्न नि:सन्देह सदैव अनिवार्य ही है। यह भारत का दुर्भाग्य है कि आजादी के सात दशक उपरान्त भी अवसरों की समानता की

बात पूर्णतः सार्थक रूप से लागू नहीं हो सकी है। यदि हम एक सार्थक समाज का निर्माण करना चाहते हैं तो हमें युवावर्ग को एक बार पुनः गाँधीवादी चिन्तन से जोड़ना ही होगा।

संदर्भ :

1. कलैक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, खण्ड-45, पृ. 74
2. अमृत बाजार पत्रिका, 2 मई, 1915
3. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-35, 1970, पृ. 149
4. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-58, 1947, पृ. 048
5. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-64, 1976, पृ. 273
6. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-19, 1966, पृ. 201
7. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-24, 1968, पृ. 230
8. अमृत बाजार पत्रिका, 2 मई, 1915
9. हरिजन 14-5-1938, पृ. 111
10. डॉ. संजीव मिश्र, जनसत्ता, जाति धर्म से लेकर गरीबी एवं अस्पृश्यता की समाप्ति तक आज भी खरे है महात्मा गाँधी के विचार, जनसत्ता समाचार पत्र, 29 जनवरी 2021
11. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-53, 1993, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ. 281
12. पूर्वोक्त, पृ. 93
13. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-30, 1969, पृ. 183
14. चतुर्वेदी, मधुकर श्याम, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक कॉलेज बुक डिपो, जयपुर 2006, पृ. 311
15. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-21, 1967 सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ. 261
16. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-19, 1966, पृ. 88
17. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-35, 1970, पृ. 269
18. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-53, 1973 पृ. 431
19. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-55, 1973, पृ. 276
20. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-58, 1970, पृ. 101
21. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-58, 1947, पृ. 61
22. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-19, 1966, पृ. 554

23. पूर्वोक्त, पृ. 335
24. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-26, 1968, पृ. 259
25. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-64, 1976, पृ. 405
26. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-58, (नई दिल्ली: सूचना-प्रसारण मंत्रालय, 1974), पृ. 451
27. मो.क. गाँधी, सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग-35, 1970, पृ. 451
28. वी.पी. वर्मा, दी पॉलिटिक्ल फिलोस्फी ऑफ महात्मा गाँधी एण्ड सर्वोदय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, चतुर्थ संस्करण, 1980, पृ. 162
29. यंग इंडिया, 26.02.1925, पृ. 73
30. अनिल दत्त मिश्रा, फंडामेनटल्स ऑफ गाँधीजी, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 22
31. पूर्वोक्त, वर्मा, वी.पी., पृ. 168

डॉ. दीपक कुमार अवस्थी
आई सी एस एस आर फैलो., नई दिल्ली
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

❑ ❑ ❑

सौरभ पत्रिका और राजपूताना में गाँधीवादी राष्ट्रीयता की अनुगूँज

• डॉ. (श्रीमती) सज्जन पोसवाल

ब्रिटिश भारत की तुलना में राजपूताना के राज्यों में नागरिक अधिकारों एवं प्रेस की स्वतन्त्रता का अभाव होने के कारण यहाँ पत्र-पत्रिकाओं का विकास बहुत धीमी गति से हुआ। हाड़ौती क्षेत्र में सर्व प्रथम सन् 1890 में बूँदी में सर्वहित नामक पाक्षिक पत्र का प्रकाशन राज्याश्रय में शुरू हुआ था जो आगामी लगभग 15 वर्षों तक प्रकाशित हुआ। राज्याश्रित पत्र होते हुये भी देशानुराग की भावनायें जाग्रत करने में वह सचेष्ट था[1] तथा कुछ समय तक उसका सम्पादन करने वाले लज्जाराम मेहता उस दौर के भारत के तीन सर्वाधिक प्रमुख पत्रकारों (लज्जाराम, बालमुकुन्द गुप्त एवं गंगा प्रसाद गुप्त) में से एक थे।[2] इसके बाद झालावाड़ जैसी सबसे छोटी रियासत में पं. गिरधर शर्मा नवरत्न ने सन् 1907 से 'विद्या भास्कर' नामक मासिक पत्र का सम्पादन किया जिसका कलेवर वैज्ञानिक एवं सामाजिक चेतना के साथ-साथ देश भक्ति से भरा हुआ था। इस पत्र का जीवन भी सम्पादक के निजी कारणों से अल्पकालीन रहा। इसके एक दशक से भी ज्यादा समय बीतने के बाद झालावाड़ राज्य के ही मूर्धन्य साहित्यकार एवं आलोचक पंडित रामनिवास शर्मा के सम्पादन में 'सौरभ' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन आरम्भ हुआ। सितम्बर 1920 से मार्च 1922 तक प्रकाशित हुई इस मासिक पत्रिका के संरक्षक राज्य के नरेश महाराज राणा भवानीसिंह स्वयं थे अर्थात् यह पत्रिका राज्याश्रय में प्रकाशित होती थी। इसके प्रकाशन की प्रेरणा के लिये सम्पादक ने पत्रिका के पहले ही अंक में नरेश के विद्या प्रेम तथा राज्य में उनके द्वारा बनाये गये विद्या के वातावरण को प्रमुख बताते हुये उनके राजमहल को विद्यामन्दिर की संज्ञा दी थी।[3] शायद यही कारण था कि सौरभ के हर अंक के मुख पृष्ठ पर राज्य के ख्यातिनाम चित्रकार

घासीराम द्वारा बनाया गया राजमहल का रंगीन एवं आकर्षित चित्र अंकित होता था।

झालावाड़ राज्य में 'सौरभ' पत्रिका के प्रकाशन के साथ एक संयोग यह था कि यह उस माह में शुरू हुई (सितम्बर 1920) जब मोहनदास करमचन्द गाँधी ने कलकत्ता कांग्रेस में सरकार के खिलाफ़ असहयोग करने का प्रस्ताव रखा था और इसका अंतिम अंक असहयोग आन्दोलन के स्थगन (फरवरी 1922) के बाद मार्च 1922 में आया। इस दृष्टि से भारतीय परिप्रेक्ष्य में इसे हम 'असहयोग आन्दोलन कालीन पत्रिका' कह सकते हैं, यद्यपि यह राजपूताना के जिस छोटे से राज्य से निकल रही थी, वहाँ के राजा एवं प्रजा का इस आन्दोलन से सीधे तौर पर कोई सरोकार नहीं था। दर असल इस पत्र में शोध का विषय यही है कि ब्रिटिश सर्वोच्चता के अधीन स्थित राजपूताना के झालावाड़ राज्य में यहीं के शासक के संरक्षण में सम्पादित सौरभ जैसी गैर राजनीतिक पत्रिका के लेखों, कहानियों, एकांकी, चित्रों एवं सम्पादकीय टिप्पणियों में गाँधी एवं उनके आन्दोलन की अलग अलग रूपों में उभरी छवियों को उजागर किया जाये।

उल्लेखनीय है कि प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीयों ने अंग्रेजी साम्राज्य की तन मन धन से मदद की थी अत: युद्ध के बाद यहाँ के राष्ट्रवादियों को बड़े राजनीतिक लाभ मिलने की उम्मीद थी लेकिन युद्ध के बाद बेरोजगारी, महँगाई और आर्थिक मंदी मिली। सुधारों के नाम पर सन् 1919 का एक्ट लाया गया जो भारतीयों की आशाओं के अनुरूप नहीं था। उसके बाद राष्ट्रवादियों के दमन के लिये पारित रॉलट कानून एवं जलियाँ वाला बाग नरसंहार ने राष्ट्रवादियों के सब्र का बाँध तोड़ दिया। सत्याग्रह के नायाब अस्त्र से दक्षिण अफ्रीका में साम्राज्यवाद से प्रवासी भारतीयों की जंग जीत कर आये गुजरात के मोहनदास करमचन्द गाँधी का नाम भारत में अपरिचित न था। चम्पारण और खेड़ा के किसानों के हकों की लड़ाई में वे भारत में भी अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह का सफल प्रयोग कर चुके थे। अगस्त 1920 में तिलक की मृत्यु हो चुकी थी। सरकारी उपाधियों के परित्याग, सरकारी समारोह में भाग न लेने, सरकारी स्कूलों, कॉलेजों से बच्चों को निकालने, राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना, अंग्रेजी न्यायालयों के बहिष्कार एवं देशी पंचायतों की स्थापना, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार आदि की योजना के साथ गाँधी द्वारा लाये गये सरकार से असहयोग का प्रस्ताव दिसम्बर 1920 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में पारित हो गया। विश्वयुद्ध में तुर्की की हार से मुस्लिम खलीफ़ा के पद को बचाने के

सवाल पर भारतीय मुसलमानों ने असहयोग आन्दोलन में शामिल होने का निर्णय लिया जिससे भारत में हिन्दू मुस्लिम एकता की मिसाल कायम होने लगी। सारे देश में आन्दोलन फैल गया, बड़ी संख्या में आमजन ने इसमें भाग लिया लेकिन सरकार ने अली बंधुओं सहित धीरे-धीरे प्रमुख कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। गाँधी की घोषणा के अनुरूप आन्दोलन का एक वर्ष बीत जाने पर भी स्वराज्य नहीं मिला[4] और अन्त में चोरा चोरी (गोरखपुर) में भीड़ की हिंसा में 22 पुलिस कर्मियों के मारे जाने पर गाँधी ने आन्दोलन को स्थगित कर दिया।

स्वराज्य भले ही ना मिला हो लेकिन इस आन्दोलन ने भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष की दशा एवं दिशा को बदल दिया। इसने विश्व की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी ताकत से लड़ने के लिये सत्य एवं अहिंसा पर आधारित जो अनोखी तकनीक देश को दी थी उसने देशवासियों में नवीन उत्साह एवं उम्मीदों का संचार किया। यद्यपि यह आन्दोलन ब्रिटिश भारत में चलाया जा रहा था लेकिन इसने देश भर को अपनी ओर आकर्षित किया। देश के अन्य हिन्दी पत्र पत्रिकाओं के समान ही सौरभ को भी इसने प्रभावित किया। उसके शुरू के एक दो अंकों को छोड़कर शेष सभी अंको में कहानी, कविता, एकांकी, लेख, चित्र अथवा सम्पादकीय, किसी न किसी रूप में गाँधी और उनका आन्दोलन विद्यमान है। सौरभ के इस कलेवर ने झालावाड़ एवं राजपूताना ही नहीं अपितु समस्त हिन्दी जगत में गाँधीवादी चेतना का जो अलख जगाया उसने राष्ट्रीय जीवन में नवीन चेतना, उत्साह और आशाओं का संचार हुआ। सौरभ के उम्दा किस्म के कलेवर का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उसके सम्पादक ने न केवल समय की नब्ज को थाम लिया था बल्कि एक दूरदृष्टा के रूप में यह भी जान लिया था कि भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का आगामी युग गाँधी युग ही होगा। सम्पादक द्वारा चयनित सामग्री और सम्पादकीय टिप्पणियों के कारण सौरभ अल्पकाल में ही देश के हिन्दी जगत को अपनी मेधा का लोहा मनाने में सफल रही।

सर्वप्रथम सौरभ के नवम्बर 1921 एवं दिसम्बर 1921 के अंकों में गाँधी का 'सर्वोदय' नामक लेख दो खण्डों में प्रकाशित हुआ[5] जिसमें उन्होंने मुख्य रूप से मालिक-मजदूर एवं व्यापारी-उपभोक्ताओं के आपसी सम्बन्धों में निजी स्वार्थ के स्थान पर नैतिकता एवं परस्पर हितों पर जोर दिया। उन्होंने माल देते समय कम से कम दाम देने वाली एवं बेचते समय ज्यादा से ज्यादा दाम लेने वाली पद्धति को व्यापार के बजाय चोरी की संज्ञा दी। इसी में उन्होंने मिलावट

कर धन कमाने को जहर देकर धनवान होना बताया। इस प्रकार सौरभ ने अपने शैशव काल में ही गाँधी के लेख प्रकाशित कर यह स्पष्ट कर दिया कि वह गाँधी की नैतिकतावदी नीतियों की समर्थक है और उसे गाँधीयुग की आहटें सुनाई दे रही हैं। आन्दोलन की शुरूआत के कुछ ही महीनों में देश गाँधी के रंग में रंग गया। देश के कोने-कोने से सभी जाति, धर्म, वर्ग एवं स्त्री पुरुषों का समर्थन उसे मिलने लगा। तब देशी रियासत के एक कोने में बैठे सौरभ के सम्पादक ने भाँप लिया कि देश में यह 'गाँधीकाल' की शुरूआत है और अगर प्रजा दृढ़ता पूर्वक गाँधी के आदेशों पर चलती रही तो भारतवासी आजादी हासिल कर लेंगे। इसके असफल रहने से भी देश की सदियों से सुशुप्त जनता में प्राण फूँकने में सफल होगा। सम्पादकीय लम्बा किन्तु इतना अर्थपूर्ण है कि उसे यथावत प्रस्तुत करना उपयोगी जान पड़ता है—

गाँधीकाल और उसका महत्त्व

आजकल प्रत्येक समाचार पत्र के प्रत्येक कॉलम में, प्रत्येक हिन्दू मुसलमान आदि, आबाल वृद्ध नर नारी के हृदयपटल में, स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटी, न्यायालय, घर, ग्राम, नगर और प्रान्त में जगत सोते उठते बैठते हम महात्मा गाँधी की चर्चा और उनके जयकार के शब्द सुनते हैं। ऐसी दशा में इस काल को हम गाँधीकाल कह सकते हैं।

अब देखना यह है कि ''गाँधीकाल'' भारत के लिये कोई नव्यफल उत्पन्न करेगा या केवल बर्बादी का ही कारण सिद्ध होगा। इस विषय में लोगों के भिन्न भिन्न मत हैं तथापि अधिकांश लोग अब तक इस बात में विश्वास रखते हैं कि 'यदि प्रजा दृढ़ता के साथ महात्मा गाँधी के प्रस्तावित कांग्रेस सम्मत आदेशों पर बराबर चलती रही तो वह समय दूर नहीं जबकि भारतवासी चिरकाल से खोये हुये स्वातन्त्र्य रत्न को फिर से प्राप्त कर सकेंगे। परन्तु कुछ लोग ऐसे भी हैं जो केवल सम्मति भेद के कारण अधिकांश लोकमत के विरुद्ध हैं। ऐसे लोगों का हम हृदय से अभिनन्दन करते हैं और वह इसलिये कि प्रत्येक सामाजिकवाद में प्रतिवाद की आवश्यकता है और वह इसलिये कि प्रतिवाद असद्वाद का नाशक और सद्वाद का पूर्ण प्रकाशक होता है। अब यह इन दोनों के संघर्षजनित परिणाम पर निर्भर है कि यह प्रतिवाद इस वाद का नाशक सिद्ध होगा या प्रकाशक। सिद्ध कुछ भी हो परन्तु हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि यह प्रतिवाद इस वाद का प्रकाशक सिद्ध हुआ तो इसके निम्नलिखित व्यापक सुफल अवश्य होंगे –

1. जगत में आध्यात्मिकवाद का श्रीगणेश होगा।
2. पाश्चात्य सभ्यता पूर्वी सभ्यता के चरणों में आ लेटेगी।
3. जगत् के प्रत्येक काम और विचार का स्वरूप बदल जायेगा।
4. 'गाँधीकाल' स्वर्णकाल सिद्ध होगा।
5. भारतवर्ष एक जीवित देश प्रमाणित होगा।
6. अंग्रेज जाति के यश सौरभ से दसों दिशायें सुरभित हो जायेंगी।

इसके विरुद्ध यदि यह प्रतिवाद इस वाद का नाशक सिद्ध हुआ तो—

1. भारतीय जनता की निर्बलता सिद्ध होगी न कि इस वाद का मिथ्यात्व क्योंकि इस वाद को स्वरूपत: सबने आदर्शवाद स्वीकार कर लिया है।
2. भारतीय जनता इस वाद से चाहे पूर्णत कृतकार्य न हो परन्तु इसके दब जाने से उसकी कोई हानि नहीं होगी।
3. यह वाद क्रिया में अकृतकार्य होकर भी 'अकृतकार्यता' में कृतकार्यता इस शीर्षक को प्रमाणित करेगा (गाँधीवाद असफल होकर भी सफल सिद्ध होगा) अर्थात् यह मरता हुआ भी प्रजा में एक ऐसी दृढ़ता और पवित्रता फूँक जावेगा जो कि भारतीय प्रजा की शताब्दियों की निर्बलता के लिये एक औषधि सिद्ध होगी।'[6]

सौरभ ने राजपूताना ए.जी.जी. हॉलैण्ड द्वारा 15 मार्च, 1921 को मेयो कॉलेज में दिये गये भाषण का भाषान्तर छापा था जिससे ज्ञात होता है कि देश में गाँधी की बढ़ती लोकप्रियता से खिन्न अंग्रेज अधिकारी अपने बचाव के लिये यही कह सकते थे कि एक महात्मा या शायर का पोलिटीकल लीडर होना आसान बात नहीं।[7] देश में गाँधी के आन्दोलन की बढ़ती गति को देखते हुये सौरभ ने अपने सम्पादकीय 'आशा की झलक' में लिखा 'यह सुनिश्चित बात है कि अब भारत वर्ष चिरकाल तक दास्ता के बंधन में नहीं रह सकता।..... हमारे खयाल में तो भारत अब ऐसी स्थिति में है कि यदि संसार भर की रजोप्रधान शक्तियाँ, इसकी परम्परागत निर्बल और अनेक दैवीय विघ्न बाधायें भी इसकी उन्नति में रुकावट डालें तो भी वे इसे वर्तमान अवस्था में नहीं रख सकतीं।'[8]

असहयोग आन्दोलन के दौरान गाँधी के बढ़ते प्रभाव के बीच देश में बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले एवं दादा भाई जैसे राष्ट्रीय नायकों से उन की तुलना की जाने लगी। 'कौन छोटा, कौन बड़ा' की बहस छिड़ी तो सौरभ ने अपने सम्पादकीय में लिखा कि यह बहस अनुचित है क्योंकि एक, सौहार्द्र,

योग्यता, जीवन की सरलता, सत्यता प्रभाव, शक्ति, त्याग आदि की कसौटियों में उच्चता एवं नीचता का निर्धारण नहीं किया जा सकता, दूसरा जो मर चुके उनके काम की उससे (गाँधी) तुलना करना जिसके जीवन का पूरा चित्र अभी सामने नहीं आया, अन्याय है। इस तुलना को भावी पीढ़ी पर छोड़कर हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि जो उत्तम बातें हमारे सामने आयें, हम उनका आदर करें।[9] जैसे-जैसे आन्दोलन आगे बढ़ रहा था, सौरभ में उसका वैसा ही स्वरूप प्रतिबिम्बित होने लगा। इसी अंक में एक और सम्पादकीय 'अवसर की बात' में लिखा था—इस आन्दोलन में गाँधी ने अपने प्रताप से वह कर दिखाया जो शताब्दियों से नहीं हो सका था।..... वर्तमान घटनाओं से अंग्रेजी शासन के मूल में आग लगाई जा चुकी है, बस उसके धधक कर जलने की देर है।..... क्योंकि किसी भी साम्राज्य के आधार दण्ड, कोष एवं जनता होती है। असहयोग के कार्यकर्ताओं ने जेलखानों को तीर्थ स्थान बनाकर एवं अंग्रेजी अदालतों की जगह प्राचीन पंचायत प्रथा अपनाकर 'दण्ड' को उद्देश्यहीन एवं निरर्थक कर दिया, विदेशी वस्त्र बहिष्कार एवं भविष्य में कर न देने की प्रतिज्ञा से उसकी 'कोष' शक्ति शीघ्र ही नष्ट की जा सकेगी और रही जन की बात तो वे भारत के पास पहले से ही इनसे बहुत अधिक है। सौरभ सम्पादक आन्दोलन को लेकर इतने उत्साहित थे कि उन्होंने कांग्रेस द्वारा आगामी अधिवेशन में अपने आप को भारतीय रिपब्लिक की पहली पार्लमेन्ट के रूप में निर्वाचित होने की घोषणा की आशा व्यक्त कर दी, यद्यपि राज्य संरक्षित पत्रिका के नाते उन्होंने इसी सम्पादकीय की पाद टिप्पणी में स्पष्टीकरण दिया ताकि साम्राज्यवादी दबाव से पत्रिका को बचाया जा सके यथा—'यद्यपि राजपूताना निवासी होने की हैसियत में हमें स्वराज्य प्राप्त ही है। इस विषय में किसी से कुछ भी कहने सुनने की आवश्यकता नहीं तथापि हमारा दृढ़ विश्वास है कि भारत को अंग्रेजों के सम्बन्ध से अनेक अपूर्व लाभ भी हुये, इसलिये हम नहीं चाहते कि इन्हें इस तरह भारतीय प्रजा द्वारा निराहत होना पड़े। इसी उद्देश्य से हमने यह लिखा है।'[10] इसे पढ़कर आजकल सिगरेट के विक्रय की छूट देने वाली सरकारों का वह विज्ञापन याद आ गया है जिसमें पैकेट पर बिल्कुल छोटे-छोटे अक्षरों में लिखा होता है—'यह स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।'

भारत में असहयोग आन्दोलन से पहले वैश्विक परिदृश्य में एक और अभूतपूर्व घटना हुई थी। सन् 1917 में रूस में लेनिन के नेतृत्व में हुई क्रान्ति के परिणाम स्वरूप विश्व की पहली साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई थी। इससे लेनिन समाजवादी दुनिया के नायक बन गये थे। इधर भारत में गाँधी ने

पहला देश व्यापी अहिंसक आन्दोलन किया था जिसके कारण भारतीय मेघा और लोक मानस में वे दुनिया के सर्वश्रेष्ठ पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित होकर उसकी निगाह में नोबल पुरस्कार के हकदार हो गये थे। इसी पृष्ठभूमि में सत्यव्रत द्वारा लिखित रोचक एकांकी 'आपस की बहस'[12] में दो पात्रों रवि एवं हरि में इस मुद्दे को लेकर बहस होती है कि नोबल पुरस्कार का उपयुक्त पात्र नवीन राष्ट्र का निर्माता लेनिन है या परीक्षाधीन गाँधी? आखिर 'आजकल का सर्वश्रेष्ठ मनुष्य कौन' विषय पर आयोजित व्याख्यान में पं. वक्ता निम्न बातों, तर्कों के आधार पर गाँधी की सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति के रूप में व्याख्या करता है–

1. लेनिन ने अपना कार्य पूरा किया लेकिन उसे पूरा नहीं माना जा सकता क्योंकि उसकी सरकार के कारण संसार में कोई विश्व व्यापी विप्लव खड़ा हो सकता है।
2. गाँधी कृतकार्य हैं क्योंकि जीवन में उन्हें जो काम करना था, वे कर चुके। उनके ये काम हैं–

1. देशवासियों की बुद्धि में किसी आवश्यक बात को स्पष्ट बिठाना
2. बात को कार्य में परिणित करने के लिये उन्हें उत्साहित करना
3. न्यायतः सच्चरित्रता पूर्वक इन दोनों के विरोधी एवं पोषक कारणों के लिये विष एवं अमृत तैयार करना
4. तटस्थ लोगों द्वारा उसकी प्रामाणिकता को सिद्ध करना
5. सर्वश्रेष्ठ सात्विक आदर्श नियमों का पालन करते हुये प्रत्येक कार्य को हिंसामुक्त रखना।

एकांकी में उपर्युक्त मानदण्डों पर लेनिन को अस्वीकार करते हुये गाँधी को तत्कालीन ही नहीं अपितु विश्व के अब तक के इतिहास का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति घोषित किया गया था। इस प्रकार गाँधी के जिस योगदान को भारतीय मनीषा ने आरम्भ में ही स्वीकार कर लिया था, उसे विश्व ने उनकी मृत्यु के 60 साल बाद माना, जब 2007 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने उनके जन्मदिवस 2 अक्टूबर को विश्व अहिंसा दिवस घोषित किया।

सौरभ के अक्टूबर 1921 के अंक में पुनः सत्यव्रत मिश्र के लेख 'वर्तमान राजनीतिक आन्दोलन की वास्तविकता' में गाँधी के आन्दोलन की विशेषताओं को समझाया गया था। इसी अंक में राष्ट्रीय कवि माखनलाल चतुर्वेदी (एक भारतीय आत्मा) की कहानी 'प्रायश्चित्ती हरि' के माध्यम से गाँधी के 'सत्य' जैसे जीवन मूल्य को रेखांकित किया गया था जबकि 'आज का

विशेष अनुशीलनीय समय' शीर्षक के अन्तर्गत सम्पादकीय में लिखा था—यह वह समय होगा जिसके इतिहास को लोग गहरे ध्यान से अनुशीलन करते हुये यह कहेंगे—अहो! हम उस समय क्यों न हुये। यह समय..... विश्व की प्रधानतम इंग्लिश शक्ति और भारत महाद्वीप के निवासियों के परस्पर संघर्ष की वास्तविकता का निपटारा करेगा।[12]

तत्कालीन हिन्दी जगत की एक प्रमुख पत्रिका 'संसार' के सम्पादक श्री भगवतीप्रसाद वायपेयी की लेख शृंखला 'राज्यक्रान्ति के मूल कारण' शीर्षक से सौरभ के विभिन्न अंको में प्रकाशित हुयी। इन लेखों में उन्होंने फ्रांस, आयरलैण्ड एवं रूस जैसे देशों में हुई राज्यक्रान्तियों के कारणों का विवेचन करते हुये अंतिम निष्कर्ष में लिखा था कि 'राज्यक्रान्ति के जिन कारणों का उल्लेख किया गया है वे सब इस समय भारत में विद्यमान हैं। यदि भारत के साथ ब्रिटेन का व्यवहार यही रहा तो भारत में राज्यक्रान्ति हुये बिना न रहेगी। अभी तक हुई प्राय: सभी क्रान्तियाँ रक्ताभ और हिंसक रही हैं लेकिन राजनीति के इतिहास में यह नई बात है और सौभाग्य की कि भारत जिस राज्यक्रान्ति की तैयारी में है वह रक्ताभ न होगी।'[13] इस प्रकार देशी राज्य की छत्रछाया में सौरभ खुलकर गाँधी और उनके आन्दोलन के समर्थन में आवाज बुलन्द कर रही थी। गाँधी द्वारा सम्पादित हिन्दी नवजीवन, अहमदाबाद की समालोचना कर सौरभ ने गाँधी साहित्य के प्रचार प्रसार का भी काम किया।[14]

असहयोग आन्दोलन के साथ खिलाफ़त का प्रश्न जोड़ने से इस दौरान देश में हिन्दू मुस्लिम एकता की जो तत्कालीन मिसाल कायम की गई थी, उसे सौरभ के लेखों में ऐतिहासिक दृष्टि से आँकते हुये सराहा गया था तथा 'हिन्दू मुसलमानों की एकता' शीर्षक से सम्पादकीय लिखकर इस एकता का अभिनन्दन किया गया था।[15] दर असल, सौरभ ने असहयोग आन्दोलन तथा उसके नायक को केन्द्र में रखा। यही कारण है कि अक्सर इसके एक ही अंक में उक्त विषय पर दो-दो सम्पादकीय होते थे जो उसके अलग-अलग आयामों को छूते थे। आन्दोलन को चलते हुये वर्ष भर हो गया था, तब 'समाजशास्त्र में नवीन विशेषता' नामक सम्पादकीय में एक बार फिर यह स्पष्ट किया गया कि शताब्दियों से अपनाये जा रहे अहिंसा एवं उपकार को मिलाकर गाँधी ने पहली बार असहयोगात्मक आन्दोलन को अहिंसात्मक बनाया। दूसरे सम्पादकीय 'क्या वर्तमान आन्दोलन नष्ट होगा?' में उस समय जताई जा रही आन्दोलन के असफल होने की शंकाओं के बीच सौरभ ने आन्दोलन के नेतृत्व एवं भारतीय जनता पर विश्वास जताया। इसी अंक में सम्पादक ने चित्रशाला प्रेस, पूना से

भेजे गये महात्मा गाँधी के रंगीन चित्र की खबर के साथ इच्छा व्यक्त की थी कि भारत में अपूर्व जीवन शक्ति फूँकने वाले महात्मा का यह चित्र प्रत्येक घर में स्थान पावे।'[16]

गाँधी के भारतीय राजनीतिक परिदृश्य पर आने से पहले भी प्राचीन भारतीय सभ्यता के गौरव को हिन्दी साहित्य में प्रमुखता से उभारा जा रहा था। अब गाँधी की सत्य अहिंसा के सिद्धान्तों को प्राचीन भारतीय संस्कृति से जोड़कर उन्हें भारतीय हीं नहीं बल्कि पूर्वी सभ्यता के आदर्श के जीवन्त प्रतीक पुरुष के रूप में चित्रित किया जाने लगा।[17] वर्ष भर से चल रहे आन्दोलन की गति एवं प्रवृत्ति पर देश-विदेश की सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में छप रही विवेचनाओं से सौरभ पत्रिका कहीं भी पीछे नहीं थी। अब तक वह हिन्दी जगत में अपना प्रतिष्ठित स्थान बना चुकी थी अत: उसके सम्पादक एवं लेखकों ने गाँधी तथा उनके आन्दोलन की विशेषताओं को समाजशास्त्रीय दृष्टि से रेखांकित किया। रामनिवास शर्मा जैसे गंभीर चिन्तक, आलोचक एवं सम्पादक का यह निष्कर्ष किसी वैश्विक समाजशास्त्री से कम नहीं था कि—'गाँधी ने विश्व में पहली बार बताया कि राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र और आचार शास्त्र अलग-अलग न होकर एक ही अंगी के ऐसे अंग हैं जो एक दूसरे के बिना जीवित नहीं रह सकते। उन्होंने समाजशास्त्र के सर से उच्छृंखलता, राजनीतिशास्त्र के सर से हिंसा और आचार शास्त्र के सर से दम्भ का कलंक दूर का समाज, राजनीति एवं आचार शास्त्र सम्मत एक नवीन आदर्श सिद्धान्त रखा और उसके अपने जीवन में चरितार्थ कर साबित भी किया। उनके काम के दो भाग थे—देश को स्वतन्त्रता के लिये तैयार करना और स्वतन्त्रता दिलाना। पहले काम के अन्तर्गत उन्होंने शताब्दियों से अपनी दुर्बलताओं का दास बने हुये तथा जाति धर्म के कई टुकड़ों में बँटे हुये देश को कुछ ही महीनों में जगाया, उठाया और स्वतन्त्रता के लिये तैयार कर दिया। उनकी कार्य प्रणाली जिसमें अहिंसा, प्रजा की दृढ़ता, दुख सहनशीलता आदि शामिल है आशा दिलाती है कि भारतीय प्रजा को पूर्ण स्वतन्त्र देखने में भी कृतकार्य हों।'[18] आन्दोलन पर एक अन्य लेख में आन्दोलन की माँगों को न्याय संगत ठहराते हुये उसका संगठन एवं प्रबन्धन का पक्ष कमजोर बताया गया था।[19]

गाँधी ने कहा था कि यदि आन्दोलन उनकी योजनानुसार चला तो एक वर्ष के अन्दर स्वराज्य प्राप्त किया जा सकता है। आन्दोलन को एक वर्ष से अधिक हो गया था, प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी से उसमें शिथिलता आने लगी थी। लोग पूछते थे कि स्वराज्य मिलने से क्या हो जायेगा? गाँधी के चिन्तन

और आन्दोलन से उभरी तस्वीर के आधार पर सौरभ के सम्पादक ने उत्तर दिया कि स्वराज्य से[20] —

1. उनको भरपेट रोटी और वस्त्रादि मिलने लगेंगे।
2. लाखों दीन हीन भारतीयों के दुख दर्द को सुनने वाला कोई होगा।
3. बाहरी लोग किसी प्रकार से उन्हें नहीं सता सकेंगे।
4. मनुष्योचित जीवन निर्वाह करने को मिलेगा।
5. भारत वर्ष को पहले की तरह संसार में अपना गुरूत्व हासिल करने का अवसर मिलेगा।
6. स्वतन्त्रता का सुख मिलेगा, परतन्त्रता का दुख सदा के लिये मिट जायेगा।'

गाँधी युग का पहला आन्दोलन 5 फरवरी 1922 को समाप्त हो गया। इससे स्वराज्य नहीं मिला लेकिन स्वराज्य के लिये देशवासियों को तैयार कर स्वराज्य मार्ग प्रशस्त कर दिया था। इधर सौरभ भी अपने अंतिम पड़ाव की ओर अग्रसर थी। गाँधी के व्यक्तित्व एवं चरित्र के प्रति सौरभ का आकर्षण भारतीय जन की तरह यथावत था। उसके अंतिम अंक में हिन्दी के विद्वान् रमेशचन्द्र त्रिपाठी का लेख 'महात्मा गाँधी' छपा था जिसमें गाँधी को ज्ञान, कर्म एवं भक्ति का संयुक्त स्वरूप बताते हुये विश्व मानव की संज्ञा दी गई थी।[21] राजपूताना ही नहीं, हिन्दी जगत में प्रतिमानों के आसमान को छूती सौरभ का असामयिक अवसान हो गया। इससे व्यथित रामनिवास शर्मा ने अपने सम्पादकीय 'अंतिम आलाप' में कहा था कि पत्र की अल्पायु के कारण जो कार्य पूरे नहीं हो सके उनमें से एक आन्दोलन से सम्बन्धित था। उनकी इच्छा थी कि सामयिक प्रचलित आन्दोलन में इस तरह का साहित्य उत्पन्न किया जाये कि जिसे पढ़ कर लोग इस आन्दोलन के स्वतन्त्र आदर्शवाद को इस दर्जे तक समझ सकें कि जिससे वे दूसरों के मार्गदर्शक भी बन सकें।[22] इस प्रकार सौरभ के विभिन्न अंको की सामग्री तथा सम्पादक के अंतिम आलाप से स्पष्ट है कि सौरभ ने गाँधी, उनके आन्दोलन, उनके चिन्तन, चरित्र एवं उनकी योजना में सम्मिलित स्वराज्य एवं स्वतन्त्रता के विचारों का अनवरत समर्थन करते हुये हिन्दी जगत में उनका यथा सम्मत प्रचार-प्रसार किया।

सौरभ द्वारा गाँधी पर अपने विभिन्न अंकों में सृजित सामग्री से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह पत्र की नीति का अंग रहा होगा। यदि हाड़ौती के संदर्भ में देखा जाये तो मालूम होता है कि इस दौर में बूँदी में

स्वतन्त्रता एवं आन्दोलन की पक्षधर पत्रिका का प्रकाशन तो दूर, बाहर से आने वाले समाचार पत्रों पर भी प्रतिबंध लगाये जा रहे थे। कोटा में तीस के दशक में भी सुधीन्द्र की 'शंखनाद' जैसी रचनायें छपने से रोकी जा रही थीं लेकिन झालावाड़ की अपेक्षाकृत छोटी रियासत में शासक के संरक्षण एवं विद्वान पं. रामनिवास शर्मा के सम्पादन में प्रकाशित हुई सौरभ ने हाड़ौती एवं राजपूताना ही नहीं, समस्त हिन्दी जगत में गाँधी तथा उनके आन्दोलन की पताका फहरा कर राष्ट्रीय जीवन में अपना अनन्य योगदान दिया जो अभी तक ज्ञान की मुख्यधारा में शामिल होने से वंचित रहा है।

संदर्भः

1. मनोहर प्रभाकर, राजस्थान में हिन्दी पत्रकारिता, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1981, पृ. 59
2. रामरतन भटनागर, द राइज़ एंड ग्रोथ ऑफ़ हिन्दी जर्नलिज्म (1826-1945), किताब महल, अलाहाबाद, 1947, पृ. 220
3. सम्पादक का निवेदन, सौरभ मासिक पत्रिका, सितम्बर 1920, भाग 1, खण्ड 1, संख्या 1, पृ. 2-3
4. रामचन्द्र गुहा, गाँधी द इयर्स दैट चेन्जड् द वर्ल्ड, पैंगुइन, इंडिया, 1918, पृ. 152
5. मोहनदास करमचन्द गाँधी, सर्वोदय अथवा अर्वाचीन अर्थशास्त्र पर दृष्टि, सौरभ, नवम्बर 1920, भाग 1, खण्ड 1, संख्या 3, पृ. 114-122, उपर्युक्त, दिसम्बर 1920, भाग 1, खण्ड 1, संख्या 4, पृ. 180-183
6. सम्पादकीय, ''गाँधीकाल'' और उसका महत्त्व, सौरभ, जनवरी 1921, भाग 1, खण्ड 1, संख्या 5, पृ. 257-258
7. बलभद्रसिंह (अनुवादक), श्रीमान् ए.जी.जी. महोदय का मेयो कॉलेज में भाषण, सौरभ, अप्रैल 1921, भाग 1, खण्ड 2, पूर्ण संख्या 8, संख्या 2, पृ. 77
8. सम्पादकीय, आशा की झलक, उपर्युक्त, पृ. 109-110
9. सम्पादकीय, महापुरुषों की तुलना का प्रश्न और हमारा कर्त्तव्य, सौरभ, मई से अगस्त, 1921, भाग 1, खण्ड 2, पूर्ण संख्या 9-12, संख्या 3-6, पृ. 160
10. उपर्युक्त, पृ. 167
11. सत्यव्रत मिश्र, आपस की बहस, सौरभ, सितम्बर 1921, भाग 2, खण्ड 1, पूर्ण संख्या 13, संख्या 1, पृ. 44-46
12. सत्यव्रत मिश्र, वर्तमान राजनीतिक आन्दोलन की वास्तविकता, पृ. 96-98, एक

भारतीय आत्मा, प्रायश्चिती हरि, पृ. 99-102, सम्पादकीय, आज का विशेष अनुशीलनीय समय, पृ. 107, सौरभ, अक्टूबर, 1921, भाग 2, खण्ड 1, पूर्ण संख्या 14, संख्या 2

13. भगवती प्रसाद वाजपेयी, राज्यक्रान्ति के कारण और उन पर कुछ स्वतन्त्र विचार, सौरभ, नवम्बर 1921, भाग 2, खण्ड 1, पूर्ण संख्या 15, संख्या 3, पृ. 153
14. समालोचना, हिन्दी नवजीवन, सौरभ, उपर्युक्त, पृ. 168
15. सम्पादकीय, हिन्दू-मुसलमानों की एकता, सौरभ, जनवरी 1922, भाग 2, खण्ड 1, पूर्ण संख्या 17, संख्या 5, पृ. 279
16. सम्पादकीय, समाजशास्त्र में नवीन विशेषता तथा क्या वर्तमान आन्दोलन नष्ट होगा? चित्र प्राप्ति स्वीकार, सौरभ, दिस. 1921, भाग 2, खण्ड 1, पूर्ण संख्या 16, संख्या 4, पृ. 220-222, 224
17. कमलकान्त त्रिवेदी, प्राचीन आदर्श सभ्यता, सौरभ, जनवरी 1922, भाग 2, खण्ड 1, पूर्ण संख्या 17, संख्या 5, पृ. 243
18. सम्पादकीय, महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व, उपर्युक्त, पृ. 277
19. भुवनेश्वरसिंह वर्मा, भारतीय वर्तमान आन्दोलन, सौरभ, फरवरी, 1922, भाग 2, खण्ड 1, पूर्ण संख्या, 18, संख्या 6, पृ. 322-326
20. सम्पादकीय, स्वराज्य मिलने से क्या होगा, उपर्युक्त, पृ. 332-333
21. रमेशचन्द्र त्रिपाठी, महात्मा गाँधी, सौरभ, मार्च, 1922, भाग 2, खण्ड 2, पूर्ण संख्या 19, संख्या 1, पृ. 48-50
22. सम्पादक, अंतिम आलाप, उपर्युक्त, पृ. 2, पृष्ठ भाग में।

डॉ. (श्रीमती) सज्जन पोसवाल
सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग
राजकीय पी.जी. महाविद्यालय, झालावाड़ (राज.)

❑ ❑ ❑

काशी के मेले, तमाशा एवं त्यौहार : समाजशास्त्रीय पाठ

• डॉ. विमल कुमार लहरी

सारांश

प्रस्तुत शोध-आलेख में काशी के मेले, तमाशा एवं त्यौहारों के माहात्म्य माहात्म्य को दृष्टिगत किया गया है। वस्तुत: इस आलेख के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया है कि आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी काशी के मेले, तमाशा एवं त्यौहार लोकजन के बीच ग्राह्य बने हुए हैं। ये त्यौहार लोकजन की जीवन संस्कृति के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। सूचना क्रांति के दौर में भी इनका महत्व कम नहीं हुआ है। काशी के अधिकांश उत्सव वैज्ञानिक कसौटी पर खरे हैं, तो वहीं दूसरी तरफ लोकजन समाज में इन उत्सवों के माध्यम से प्रेम-बन्धुत्व एवं समन्वय के बीज बोते हैं। काशीवासी इन उत्सवों एवं त्यौहारों के माध्यम से स्वस्थ मनोरंजन से भी लाभान्वित होते हैं। अतएव काशी के मेले, तमाशा एवं त्यौहार अपने परम्परागत वैशिष्ट्य के साथ अद्यतन गतिमान हैं।

प्रमुख शब्दावली : उत्सव, वैशिष्ट्य, जनश्रुतियाँ, मान्यता, संतति, परम्परा, आधुनिकता, पर्व, सांस्कृतिक पूँजी, विसंगति।

परिचय एवं शोध-पत्र

मानव सभ्यता की विकासयात्रा के साथ-साथ मेले, तमाशा और उत्सवों की यात्रा को भी देखा जा सकता है। काशी में यह यात्रा आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी जारी है। इतिहास के आईने में हम झांके तो काल, स्थान, भाषा एवं वातावरण के सापेक्ष ढेर सारे त्यौहारों और उत्सवों को देखा जा सकता है, जो अपनी यात्रा में जीवन के एक विशेष अंग के रूप में जुड़ती गई। कालान्तर में ये मेले, तमाशा एवं त्यौहार, लोकजन की अस्मिता एवं पहचान के

साथ स्थापित हुए। ये लोक त्यौहार मनोरंजन के साथ-साथ समाजीकरण की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण अभिकरण के रूप में भी उत्तरदायी साबित हुए। मानव सभ्यता की यात्रा में प्राचीन लोक त्यौहारों एवं उत्सवों के साथ काल और परिस्थिति के सापेक्ष नये उत्सव एवं त्यौहार भी जुड़ते गये। त्यौहारों की यात्रा का मूल्यांकन करें, तो इस धरा का प्रत्येक मानव, त्यौहारों एवं उत्सवों की वैचारिकी से अछूता नहीं है। वैसे दुनियां में हम जितने भी त्यौहारों और उत्सवों को देखते हैं, उसके पीछे कोई न कोई कारक जरूर उत्तरदायी दृष्टिगोचर होते हैं।

यदि बात करें तो हम काशी के उत्सव, त्यौहार एवं मेला-तमाशा की तो ये वैश्विक पटल पर काशी की विशेष पहचान के रूप में स्थापित रहे हैं। वैसे काशी स्वयं अपने आप में एक त्यौहार है, जहाँ सप्ताह के प्रत्येक दिन से अधिक त्यौहार और उत्सव मनाये जाते हैं। इस संदर्भ में मोतीचन्द्र कहते हैं कि—

''बनारस में कहावत है—'सात बार नव त्यौहार' यानि सप्ताह में दिन तो सात होते पर बनारस में उनमें नौ त्यौहार पड़ते है। मौज-मजे के लिए बनारस सदा प्रसिद्ध रहा है और अपनी यही प्रवृत्ति चरितार्थ करने के लिए बनारसियों ने अनेक त्यौहारों की कल्पनाएं की।''[1]

जिस रूप में काशी में त्यौहार मनाये जाते हैं, उस रूप में दुनियां में किसी भी कोने में नहीं मनाये जाते हैं। इस संदर्भ में मोतीचन्द्र आगे फिर कहते हैं कि—

''बनारस के भिन्न-भिन्न त्यौहारों को विभिन्न देवी-देवताओं के साथ जोड़ दिया गया है। इन मेले-तमाशों का सम्बन्ध 'हम पक्ष पूजा', 'वृक्ष पूजा', 'देवी पूजा', 'कूप और नदी पूजा' तथा 'पौराणिक देवी-देवताओं की पूजा' में पाते हैं।''[2]

आज बनारस में ऐसे ढेर सारे मेले, तमाशा, उत्सव एवं त्यौहारों को देखा जा सकता है, जिनका इतिहास काफी पुरातन है। इसके साथ-साथ अधिकांश मेले, तमाशा एवं उत्सव जिनके एक तरफ जहाँ सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक माहात्म्य है, तो वहीं दूसरी तरफ वैज्ञानिक कसौटी पर खड़े दृष्टिगोचर होते हैं। बहुतायत मेले-तमाशे, उत्सवों को आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी लोकजन गतिमान किये हैं। वैसे इन मेले-तमाशों एवं उत्सवों की तथ्यगत जानकारी, प्रमाणिकता एवं माहात्म्य के संदर्भ में अद्यतन लिखित साक्ष्यों के साथ-साथ जनश्रुतियों को भी आधार बनाया गया है। इन स्रोतों से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि हमारे प्राचीन लोक त्यौहार जहाँ अपने माहात्म्य, स्वीकार्यता तथा वैज्ञानिक तथ्यों के साथ गतिमान है, तो 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं 21वीं शताब्दी के बीच ढेर सारे लोक-त्यौहारों, उत्सवों एवं मेला-तमाशों के नये स्वरूपों

को भी देखा जा सकता है, जिसे लोकजन आधुनिक मूल्यों के साथ धारण किये जीवन को गतिमान किये हुए हैं। इसलिए भारत को त्यौहार और मेलों का देश भी कहा जाता है। काशी में हम देखें तो यहाँ के अधिकांश मेले, उत्सव, त्यौहार विभिन्न अवसर से सम्बन्धित होते हैं।

यहाँ के मेले, तमाशों, उत्सव एवं त्यौहारों की सूची इतनी लम्बी है कि इसको एक शोध-आलेख के अन्दर समेटना न्यायसंगत नहीं होगा। अस्तु, इसी परिप्रेक्ष्य में अधोलिखित बिंदुओं पर काशी के कुछ प्रमुख मेले, तमाशा, उत्सव एवं त्यौहारों के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक विरासत के साथ-साथ इसके माहात्म्य को संक्षिप्त रूप में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है :

लोलार्क कुण्ड का मेला

लोलार्क कुण्ड बनारस का एक प्रसिद्ध धार्मिक उत्सव है। भादो महीने में इस स्थान पर लख्खा मेला लगता है और तभी काशी के इस लोलार्क कुण्ड में धार्मिक मान्यताओं पर आधारित आस्था की डुबकी लगाने के लिए लाखों की संख्या में लोग आते हैं। इस मेले के संदर्भ में यह भी मान्यता है कि इस उत्सव पर लोलार्क कुण्ड में स्नान करने पर संतान की प्राप्ति होती है। इसी कारण सपत्नीक लोग इस कुण्ड में स्नान करने के लिए बड़ी संख्या में आते हैं। साथ ही साथ यह भी मान्यता हैं कि इस कुण्ड में स्नान करने से त्वचा रोगों से निजात भी मिलती है। इस कुण्ड को सूर्य कुण्ड के नाम से भी जाना जाता है। यह कुण्ड अस्सी नदी के किनारे है। इस कुंड के संदर्भ में एक मान्यता और भी है कि इसमें स्नान करने के बाद लोग अपने वस्त्रों को यहीं त्याग देते हैं और कुछ फल-फूल भी छोड़ जाते हैं।

काशी की पंचकोशी यात्रा का मेला

काशी की पंचकोशी यात्रा बनारस की एक पवित्र यात्रा है। जिसका इतिहास काफी पुरातन है। यह यात्रा एक लम्बे समय प्रेम बन्धुत्व एवं सामाजिक सम्बन्धों की मजबूती की साथ आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी जारी है। यह यात्रा वैज्ञानिक कसौटी पर भी सत्य सिद्ध होती है। इस संदर्भ में मोतीचन्द कहते हैं कि–

'पंचकोशी का प्रदेश बनारस की तरह पवित्र माना जाता है और यह ध्यान देने योग्य है कि पंचकोशी के सब मंदिर बनारस की सीमा में बने हैं। पंचकोशी की 50 मील लम्बी सड़क पर पाँच मंजिले हैं। पंचकोशी की सड़क मर्णिकर्णिका घाट से आरम्भ होकर दक्षिण-पश्चिम कंदवा को जाती हैं। वहाँ से

राजातालाब के दक्षिण भीमचण्डी के मंदिर को, फिर वहाँ से उत्तर चौखण्डी होती हुई वरना पर स्थित रामेश्वर को, वहाँ से पुल पारकर पाँचों पंडवा तालाब होते हुए शिवपुर को, वहाँ से संगम के पास कपिलधारा और कोटवां के मंदिर होते हुए फिर मणिकर्णिका घाट पर सड़क समाप्त हो जाती है।'[3]

पंचकोशी-यात्रा से जुड़े निषेध के संदर्भ में पंडित कुबेरनाथ सुकुल कहते हैं कि—

'इस यात्रा में इस बात का ध्यान सदैव रखना चाहिए कि पंचकोशी मार्ग को जिस स्थान पर छोड़ें, वहीं से पुनः यात्रा प्रारंभ करें।'[4]

पंचकोशी-यात्रा की प्राचीनता के संदर्भ में पंडित कुबेरनाथ सुकुल कहते हैं कि—

'दैवयोग से पंचकोशी मार्ग पर ही एक ऐसा देवालय 10वीं शताब्दी का बच गया है। यह है कर्मदेश्वर का शिवालय, जहाँ पंचकोशी-यात्रा का पहला आवास होता है।'[5]

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि काशी की पंचकोशी यात्रा कल भी लोकजन के बीच प्राथमिक सम्बन्धों को स्थापित कर रही थी, और आज भी प्राथमिक सम्बन्धों को स्थापित कर रही है।

नवरात्र का मेला

बनारस का नवरात्र मेला भी काफी प्राचीन है। यह मेला चैत कृष्ण पक्ष में नौ दिनों तक दुर्गाकुण्ड में लगता है। यहाँ इस समय दुर्गा जी का भव्य मंदिर है। मान्यतानुसार इसमें पशु बलि भी दी जाती थी, परन्तु आज इसके संदर्भ नहीं मिलते हैं। नौ दिनों में एक-एक दिन लोकजन नौ दुर्गा देवियों के दर्शन करने जाते हैं। वैसे आज नवरात्र उत्सव के अन्तर्गत माँ दुर्गा की मूर्तियों की स्थापना कर गाँवों, कस्बों तक भी लोग इसमें सहभागी हो रहे हैं।

रथयात्रा का मेला

रामनगर की रामलीला के साथ-साथ काशी का रथयात्रा मेला भी विश्व प्रसिद्ध मेला है, जिसे लख्खा मेला के नाम से भी जाना जाता है। जनश्रुतियों के अनुसार रथयात्रा में रथ खींचने से भगवान का आशीर्वाद मिलता है। मान्यतानुसार रथयात्रा मेले की यात्रा 237 साल पुरानी है। काशी में इस यात्रा की शुरुआत 1700 ई. से मानी जाती है, तो कहीं-कहीं इसका उल्लेख 1802 ई. भी मिलता है। वास्तव में काशी की रथयात्रा भगवान एवं भक्त के

बीच अटूट प्रेममय सम्बन्ध की यात्रा है। कोराना काल में पहली बार यह यात्रा स्थगित की गयी है।

लोटा भण्टा का मेला

बनारस में लोटा भण्टा मेले का आयोजन वाराणसी के रामेश्वर स्थित तीर्थधाम पर आयोजित लोक आस्था का महत्वपूर्ण पर्व है। बड़ी संख्या में लोग यहाँ आस्था डुबकी लगाने के बाद मंदिर में दर्शन-पूजन करते हैं और साथ में गोबर के उपलों पर बाटी-चोखा बनाकर भगवान शिव को भोग के रूप में चढ़ाते हैं तथा उसके बाद इस बाटी-चोखा को प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं। यह आस्था का पर्व आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी जारी है। वास्तव में इस पर्व को देखने के बाद ऐसा महसूस होता है कि यह बाटी-चोखा और स्नान तो एक माध्यम है। वास्तव में काशी स्थित रामेश्वर का लोटा भण्टा मेला धर्म, कर्म और मोक्ष का संगम है। इस मेले के माध्यम से पवित्र एवं स्वस्थ मनोरंजन को गति दी जाती है।

रामनवमी

बनारस में रामनवमी उत्सव का इतिहास लगभग 400 वर्षों से अधिक का है। रामनवमी का मेला चैत्र शुक्ल मास की शुक्ल पक्ष के दिन रामघाट पर लगता है। लोग गंगा में स्नान कर राममंदिर का दर्शन करते हैं। इस उत्सव के संदर्भ में यह भी मान्यता है कि इसी दिन भगवान श्रीराम का जन्म हुआ। वैसे आज रामनवमी की यात्रा एक वृहत वृतांत के रूप में भारत ही नहीं, वरन् दुनियां के अधिकाशं देशों में रहने वाले भारतीयों के बीच जारी है। आज यह उत्सव वृहद परम्परा का स्वरूप धारण कर चुका है।

गाँजी मिया का मेला

गाँजी मिया का मेला का इतिहास काफी पुरातन है। जेठ माह के प्रथम इतवार को यह मेला बकरियां कुण्ड पर आयोजित होता है। यह मेला सलार मसूद की शहादत मनाने के लिए आयोजित किया जाता है। यह मुसलमानों का एक प्रमुख मेला है, जिसमें अब अन्य धर्मावलम्बी के लोकजन भी शामिल होते देखे जा सकते हैं। विशेषतया डफली बजाकर गाँजी मिया के शहादत के गीत गाये जाते हैं। यह मेला उत्तर प्रदेश के अन्य स्थानों पर भी मनाया जाता है।

निर्जला एकादशी

निर्जला एकादशी हिन्दुओं का एक प्रमुख त्यौहार है। इस व्रत में पानी को

ग्रहण करना वर्जित माना जाता है। इसलिए इसे निर्जला एकादशी भी कहते हैं। निर्जला एकादशी के बारे में कई जनश्रुतियां भी प्रचलित हैं, जिसमें एक जनश्रुती यह भी है कि भीम ने एक दिन व्रत धारण किया, किन्तु प्यास के कारण वह बेहोश हो गये, जिसके कारण उन्हें पानी में ढकेल दिया गया। तदुपरान्त उनको होश आया। इस लोक कहानी को आधार पर बनाकर लोग निर्जला एकादशी का व्रत धारण करते हैं। शाम को लोग स्नान कर शरीर में चन्दन लगाते हैं। गंगा में तैरकर दूसरे पार भी जाते हैं। इसमें नकली लड़ाई भी होती है। आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी यह उत्सव बनारस में जारी है। इस अवसर पर भगवान विष्णु की आराधना का विशेष महत्व भी है। इस पर्व के सामाजिक माहात्म्य को हम देखें तो तो यह पर्व लोकजन को एक-दूसरे के साथ समन्वय कराता है, जोड़ता है। इसके अलावा निर्जला एकादशी व्रत के अन्य वैज्ञानिक और धार्मिक महत्व भी हैं। माहात्म्य होना चाहिए।

सोरहिया मेला

सोरहिया मेला बनारस का एक प्रसिद्ध मेला है, जिसके अन्तर्गत महिलाएँ 10 दिनों तक संतान की सुख-समृद्धि प्राप्ति के लिए माँ लक्ष्मी के लिए पूजा-आराधना करती हैं। यह मेला भादों की शुक्ल पक्ष की अष्टमी को प्रारम्भ होकर, आश्विन मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी तक चलता है। 16 दिनों तक चलने के कारण ही मेले का नाम सोरहिया मेला पड़ा। जिसमें लोग मेले में प्रथम दिन माता लक्ष्मी की प्रतिमा खरीद कर घर ले जाते हैं और 16 दिनों तक कमल के फूलों से इनकी पूजा करते हैं और लक्ष्मीकुण्ड में स्नान करके लक्सा स्थित महालक्ष्मी मंदिर में पूजा-आराधना भी करते हैं। ज्युतपुत्रिका के दिन यह मेला समाप्त होता है। मेले की यात्रा आज भी जारी है। यदि इसके हम सामाजिक महत्व को हम देखें तो यह मेला जहाँ पुत्र प्राप्ति की कामना के लिए आयोजित किया जाता है तो वहीं दूसरी तरफ मानव के बीच सुख-समृद्धि, प्रेम-बन्धुत्व एवं भाईचारे की वैचारिकी को मजबूत करने के लिए भी किया जाता है।

ढेला चौथ

ढेला चौथ बनारस में एक प्रमुख पर्व है। इस पर्व के दिन हिन्दू धर्मावलम्बी भगवान गणेश की पूजा करते हैं। इस पर्व के अन्तर्गत यह मान्यता है कि पर्व के दिन चन्द्र दर्शन करने वाले लोगों की भविष्य में विविध दोषों की सम्भावना नहीं होती है। पर्व के सन्दर्भ में यह भी मान्यता है कि ढेला चौथ का चाँद दोषपूर्ण होता है। यदि किसी ने चाँद देख लिया है तो उसके ऊपर ढेला

फेंकने से यह दोष दूर हो जाता है। इनके अलावा लोग यह दोष दूर करने के लिए गालियाँ भी देते हैं। बनारस में अब यह पर्व थोड़ा कमजोर पड़ा है, क्योंकि ढेला फेंकने के दौरान लोग चोटिल भी हो जाते हैं, जिससे झगड़े-फसाद तक की नौबत भी आ जाती है और रास्ते में ईंट-पत्थर भी एकत्रित हो जाते हैं, फिर भी थोड़े बहुत अंतर के साथ ढेला चौथ पर्व की यात्रा जारी है।

गंगा सप्तमी

गंगा सप्तमी मेले का आयोजन गंगा नदी के जन्म के उपलक्ष्य में आयोजित किया जाता है। इस अवसर पर गंगा के किनारे लोग एकत्रित होकर बड़े स्तर पर नाच-गाना, बजाना करते हैं। इसी दिन पंचगंगा घाट पर शहनाई का दंगल भी होता है। इस आयोजन में समस्त ईर्ष्या, द्वेष एवं अलगाव को लोग भुलाकर सम्मिलित होते हैं।

नरक चौदस (चतुर्दश)

नरक चौदस का मेला धनतेरस के दूसरे दिन मीरघाट पर आयोजित होता है। नरक चर्तुदशी, नर्क पूजा के नाम से भी जानी जाती है। इसके अन्तर्गत लोग अपनपे शरीर पर तेल मालिश करके गर्म पानी से स्नान करते हैं। मान्यता है कि इस तरह के कृत्य से व्यक्ति सभी पापों से मुक्ति के साथ-साथ स्वर्ग को भी प्राप्त कर सकता है। पौराणिक कथाओं के अनुसार इसी दिन भगवान कृष्ण ने नरकासुर दैत्य का नरसंहार किया था। इस त्यौहार का मुख्य उद्देश्य घर को साफ, स्वच्छ एवं उज्ज्वल बनाना है। वैसे इस पर्व के संदर्भ में ढेर सारी अन्य कथायें भी प्रचलित हैं। इसे छोटी दीवाली भी कहते हैं।

कार्तिक पूर्णिमा

कार्तिक पूर्णिमा बनारस का एक महत्वपूर्ण पर्व है। इस पर्व के अन्तर्गत स्त्री-पुरुष भोर से ही गंगा स्नान के लिए जाते हैं। यह पर्व हिन्दू धर्मावलम्बियों का प्रमुख पर्व अथवा व्रत है। मान्यतानुसार इसी दिन भगवान शिव ने त्रिपुरासुर नामक असुर का वध किया था। इसलिए इसे त्रिपुरी पूर्णिमा भी कहते हैं। साथ ही साथ इस दिन स्नान करके लोग विद्यावान और धनवान भी होते हैं, ऐसी मान्यता है। इस दिन सिक्ख सम्प्रदाय के लोग गुरुनानक देव का प्राकट्योत्सव मनाते हैं। जनश्रुतियों के आधार पर इसके माहात्म्य के संदर्भ में जो तथ्य उभरकर आये, उसमें कार्तिक पूर्णिमा के दिन लोकजन अन्न एवं वस्त्र का दान भी करते हैं। इस दिन दान करने के संदर्भ में यह भी मान्यता है कि लोकजन हेतु स्वर्ग में दरवाजे खुलते हैं।

शिवरात्रि का मेला

बनारस में शिवरात्रि भी एक उत्सव और त्यौहार के रूप में मनाया जाती है। शिवरात्रि का आयोजन कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को मनाया जाता है। इस तिथि को शिव और शक्ति के मिलन की रात के रूप में भी देखा जा सकता है और यह भी माना जाता है कि इसी दिन से सृष्टि का प्रारम्भ हुआ। इस दिन सभी शिवालयों को फूल-माला से सजाया जाता है एवं जल एवं दुग्ध से शिवलिंग का अभिषेक किया जाता है। काशी में महाशिवरात्रि का बड़े स्तर पर आयोजन होता है। शिवरात्रि के संदर्भ में ढेर सारी कथाएँ भी प्रचलित हैं।

बनारस में शिव बारात उत्सव

काशी में शिव बारात उत्सव बड़े धूमधाम से मनायी जाती है। यह उत्सव महाशिवरात्रि अर्थात् शिव और पार्वती के विवाह के दिन आयोजित होता है। इस दिन पूरा बनारस शिवमय हो जाता है। भूत-प्रेत, देवी-देवता आदि का स्वरूप धारण किये हुए लोग डमरू और बाजों की आवाज पर आगे बढ़ते हैं। बनारस की गलियों में यह बारात घूमती है और अन्त में भगवान् शिव और माँ पार्वती का विवाह सम्पन्न होता है, जिसमें वैदिक मंत्रों के साथ समस्त रश्में अदा की जाती हैं। इस उत्सव का एक खास पक्ष यह भी है कि इसमें जाति, धर्म और अन्य विषयों से परे लोग पूरी श्रद्धा से सम्मिलित होते हैं।

काशी की गंगा आरती

काशी की गंगा आरती को देखने के लिए पूरी दुनियां से लोग आते हैं। खास बात तो यह है कि इसका आयोजन प्रतिदिन सायंकाल दशाश्वमेध घाट पर होता है जिसका धार्मिक माहात्म्य के साथ-साथ बड़े स्तर पर सामाजिक माहात्म्य भी है। काशी की गंगा आरती का स्वरूप काफी पुरातन है। वैसे इसको हरिद्वार की परम्परा से जोड़कर देखा जा सकता है। यह काशी नगरी की संस्कृति के प्रमुख अंग के रूप दृष्टिगोचर है। इसकी शुरुआत 1991 से मानी जाती है। धर्म एवं आध्यात्म को काशी की गंगा आरती एक मजबूत आधार प्रदान करती है। काशी की गंगा आरती भारतीय ज्ञान परम्परा को वैश्विक पटल पर स्थापित करती है। पूरी दुनियाँ से लोग काशी की गंगा आरती देखने आते हैं, जो इसके सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक माहात्म्य को बखूबी स्पष्ट करता है।

रामलीला

बनारस में रामलीला को एक नाटक के रूप में, नहीं, बल्कि उत्तर भारत

के लोग इसे एक उत्सव के रूप में स्वीकार करते हैं। इसका आयोजन काशी के अधिकांश गाँवों, कस्बों एवं नगरों में होता है, लेकिन काशी के रामनगर की रामलीला का विशेष महत्व है। यह रामलीला आज भी काशी नगरी में परम्परागत रोशनी में आयोजित भी की जाती है। काफी दूर-दूर से लोग रामनगर की लीला को देखने आते हैं और जमीन पर बैठकर इस लीला को देखते हैं। वास्तव में काशी की रामलीला राम के जीवन पर आधारित मंचन नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक विरासत है। हिन्दुओं की अस्मिता एवं पहचान का प्रतीक है, जहाँ लोग जाति, धर्म से परे मानवतावादी वैचारिकी को स्थापित करते हैं।

बुढ़वा मंगल

बुढ़वा मंगल पर्व का आयोजन बनारस के महाराजा चेतसिंह ने प्रारम्भ किया था। काशी का यह अनोखा पर्व है, जो लगभग 300 साल पुराना है। इस आयोजन में ढेर सारी नावों को सजायी जाती हैं, जिस पर कुर्ता पायजामा एवं सिर पर गुलाबी टोपी लगाये लोग शास्त्रीय संगीत को सुनते हैं। बनारस में स्थापित शास्त्रीय गायक, वादक इसे और मजबूत आधार प्रदान करते हैं। यह यात्रा आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी जारी है, जिसे आम लोकजन के साथ-साथ दुनियां से लोग भाग लेने आते हैं। वास्तव में बुढ़वा मंगल उत्सव भारत की एक प्रमुख सांस्कृतिक विरासत है।

महामूर्ख सम्मेलन

वाराणसी का महामूर्ख सम्मेलन का आयोजन काफी लम्बे समय से हो रहा है। यह आयोजन एक अप्रैल अर्थात् मूर्ख दिवस के दिन आयोजित किया जाता है। जहाँ लोकजन खुद मूर्ख बनने के लिए आते हैं और एक-दूसरे को मूर्ख बनाते हैं। इस सम्मेलन में बनारस के जाने-माने लोगों के साथ-साथ आम लोकजन भी सम्मिलित होते हैं। सम्मेलन की शुरुआत महामुर्खाभिराम की बारात से होती है, जिसमें दुल्हन भी गधे की आवाज और चीख-पुकार के साथ दूल्हे की विदाई के लिए दूल्हे के घर पहुँच जाती है और वहीं उन दोनों के बीच विवाद होता है एवं उसी रात दोनों के बीच तलाक भी हो जाता है। इस आयोजन की एक प्रमुख बात यह है कि इसमें पुरुष दुल्हन के भेष में होती है और महिला दूल्हे के भेष में होती है। इस आयोजन में कवि, डॉक्टर, इंजीनियर, लेखक विशेष भूमिकाओं में होते हैं। वास्तव में यह आयोजन स्वस्थ मनोरंजन का महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो लोकजन को तोड़ने की बजाय जोड़ने की वैचारिकी पर बल देता है।

देव-दीपावली

काशी में देव-दीपावली कार्तिक पूर्णिमा के दिन आयोजित की जाती है। यह काशी की प्राचीन सांस्कृतिक विरासत और परम्परा है। गंगा नदी के किनारे रविदास घाट से लेकर राजघाट तक लाखों की संख्या में दीप जला कर गंगा नदी की पूजा और आराधना की जाती है। इस परम्परा की शुरुआत 1915 में पंचगंगा घाट से हजारों दिये जलाकर शुरू की गई। इसे आयोजन के संदर्भ में एक कथा प्रचलित है, जिसमें 'त्रिपुरासुर' नामक राक्षस का देवताओं ने अन्त किया और विजय दिवस के रूप में देव-दीपावली का आयोजन किया गया। काशी की देव-दीपावली में पूरी दुनियां से लोग सहभागी होते हैं। इस आयोजन में सम्मिलित होकर लोग स्वयं अपने अंदर के राक्षस को मार गिराते हैं और पुण्य को प्राप्त करते हैं।

नगरवधुओं का नृत्य

काशी में नगरवधूओं के नृत्य की परम्परा काफी प्राचीन है। काशी के मणिकर्णिकाघाट स्थित श्मशान घाट पर जलती चिताओं के बीच बाबा मशाननाथ को प्रसन्न करने के लिए इस नृत्य का आयोजन होता है। प्रत्येक वर्ष चैत्र नवरात्र में यह परम्परा आयोजित की जाती है। इस संदर्भ में एक मान्यता यह भी है कि आगामी जन्म में नगरवधुओं का जीवन इज्जत भरा होगा। अचरज की बात तो यह है कि यहाँ देश के अलग-अलग हिस्से से नगरवधूएँ आती हैं, जो मेहताने के नाम पर एक रुपये भी नहीं लेती हैं, बल्कि ये स्वयं अपना चढ़ावा चढ़ाती हैं।

चिता भस्म की होली

काशी में चिता भस्म की होली रंगों के साथ-साथ एक ऐसा त्यौहार है, जिसमें चिता की भस्म से होली खेली जाती है। इस तरह की होली काशी का जीता-जागता सत्य है। काशी की मर्णिकर्णिका घाट पर बाबा मशान नाथ को लोग रंग गुलाल लगाते हैं, और उसके बाद लोग श्मशान से चिताओं के बीच एक-दूसरे को चिता भस्म लगाते हैं। मान्यता है कि भगवान शिव स्वयं श्मशान में होली खेलते हैं और लोक कल्याण के लिए लोगों को आशीर्वाद देते हैं। यह ऐसा त्यौहार है, जो सिर्फ काशी में ही आयोजित होता है। वैसे इस तरह के आयोजन के संदर्भ में ढेर सारी गाथाएँ प्रचलित हैं। वैसे अब चिता भस्म का आयोजन हरिश्चन्द्र घाट पर भी कर दिया गया है।

गंगा दशहरा

गंगा दशहरा हिन्दू धर्मावलम्बियों का प्रमुख त्यौहार है, जिसे वे अपने जीवन संस्कृति के रूप में देखते हैं। पौराणिक कथाओं के अनुसार पृथ्वी पर गंगा का अवतरण इसी दिन हुआ था। इसके धार्मिक माहात्म्य के संदर्भ में उल्लेख मिलता है कि गंगा दशहरा के दिन जो व्यक्ति गंगा में खड़ा होकर साधना करता है तो उसे अच्छे पुण्य की प्राप्ति होती है। यदि इसके सामाजिक माहात्म्य को देखें तो बड़े स्तर पर लोकजन जाति, धर्म एवं सम्प्रदाय से परे गंगा दशहरा जैसे उत्सव में शामिल होते हैं।

जीवित्पुत्रिका

वैसे तो जीवित्पुत्रिका भारत में हिन्दू धर्मावलम्बियों का प्रमुख त्यौहार है। लेकिन बनारस में इसका आयोजन बड़े धूमधाम से किया जाता है। निर्जला व्रत रखते हुए माताएँ अपनी संतानों की सुख-समृद्धि के लिए इस आयोजन में सम्मिलित होती हैं। जीवित्पुत्रिका त्यौहार काफी कठिन त्यौहार होता है, जिसमें 24 घण्टे बिना भोजन और पानी ग्रहण करना वर्जित होता है। इस त्यौहार में घर के बच्चे, महिलाएँ, पुरुष सभी शामिल होते हैं। जीवित्पुत्रिका के संदर्भ में ढेर सारी कथाएँ भी प्रचलित है। परन्तु शोध-आलेख की शब्द सीमा को देखते हुए उनका वर्णन करना तर्कसंगत नहीं है।

फातमान का मेला

बनारस में फातमान का मेला भी काफी प्रसिद्ध है, जो सावन के हर वृहस्पतिवार को लगता है। आज भी इस मेले का आयोजन बड़े स्तर पर होता है। यह मेला मुस्लिमों का प्रमुख मेला है। इधर कुछ समय से अन्य धर्मावलम्बी भी इसमें शामिल होते हैं। यह भी मेला सामाजिक सम्बन्धों को मजबूती प्रदान करते हुए अनवरत गतिमान है।

सावन का मेला

बनारस में सावन महीने में एक 'सावन मेला' एक माह तक चलता है, जिसमें विभिन्न धार्मिक स्थलों पर मेले आयोजित किये जाते हैं। हिन्दू धर्मावलम्बियों का यह एक प्रमुख त्यौहार है, जो सावन माह में प्रत्येक सोमवार को आयोजित होता है। इसी माह में भगवान शिव को प्रसन्न करने के लिए शिवभक्त काँवड़ यात्रा भी निकालते हैं। दुर्गाकुण्ड और सारनाथ के मेले प्रसिद्ध है।

काँवड़ उत्सव

काँवड़ यात्रा प्रत्येक वर्ष श्रावण मास में आयोजित होती है, जिसमें पदयात्रा करते हुए लोग अपने गाँवों से चलते हैं और गंगा से जल भरकर पुन: अपने घर को लौटते हैं। काँवड़ यात्रा इस सृष्टि के निर्माणकर्ता भगवान शिव को प्रसन्न करने के लिए की जाती है। यह हिन्दू धर्मावलम्बियों के बीच अनवरत चलने वाली एक परम्परा है। इसके धार्मिक महत्व के साथ-साथ, सामाजिक महत्व भी हैं। काँवड़ यात्रा एक तरफ जहाँ जल का संचय करती है। तो वहीं दूसरी तरफ विभिन्न खेमों में बँटे हुए लोगों को एक खेमे में लाने का प्रयास भी करती है। उत्तर भारत के अधिकांश राज्यों में यह यात्रा अनादिकाल से लेकर उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी जारी है।

सुबह-ए-बनारस

सुबह-ए-बनारस अस्सी घाट पर विगत कुछ वर्षों से आयोजित किया जा रहा है। कुछ ही समय में सुबह-ए-बनारस को वैश्विक पटल पर पहचान बड़ी मिली है। इसके अन्तर्गत सुबह अस्सी घाट पर गंगा आरती की जाती है एवं भारतीय संस्कृति से जुड़े विविध परम्परागत सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी होता है।

नरसिंह चौदस

इस मेले का आयोजन बनारस में वैशाख माघ में होता है। इसके अन्तर्गत नरसिंह द्वारा हिरण्यकश्यप के वध का मंचन होता है, जिसे देखने के लिए दूर-दूर क्षेत्रों से लोग आते हैं। आज भी इस मंचन की यात्रा जारी है। यह मंचन वास्तव में न्याय की अवधारणा को स्थापित करने की एक यात्रा है।

स्नान यात्रा

स्नान यात्रा काफी प्राचीन पर्व है। इस त्यौहार में बड़ी संख्या में लोग सहभागी होते हैं। इस पर्व के संदर्भ में मोतीचन्द अपनी पुस्तक 'काशी के इतिहास' में कहते हैं कि–

''अस्सी पर जेठ पन्द्रह को भगवान जगन्नाथ की प्रतिमा का स्नान होता है।''[6]

पट् परीक्षा

पट् परीक्षा मेले के संदर्भ में मोतीचन्द कहते हैं कि ''आषाढ़ मास में गुरु

पूर्णिमा के दिन चौकाघाट में पट् परीक्षा का मेला लगता था। पहले शहर के ज्योतिषी इस दिन संध्या को घाट के किनारे इकट्ठा होकर हवा के रूप की परीक्षा करके फसल, बरसात इत्यादि के बारे में भविष्यवाणी किया करते थे।''[7] आज भी इस मेले का प्रचलन जारी है।

शंकुलधारा का मेला

शंकुलधारा मेले की शुरुआत 19वीं सदी से मानी जाती है, जिसमें बड़ी संख्या में लोग भाग लेते हैं और इस तालाब में स्नान करके पुण्य को प्राप्त करते हैं।

वृद्धकाल मेला

वृद्धकाल मेला के संदर्भ में मोतीचन्द अपनी पुस्तक 'काशी के इतिहास' में कहते हैं कि, ''श्रवण के हर रविवार को यह मेला आयोजित होता है, जिसमें वृद्धकाल के लोग स्वास्थ्य लाभ के लिए स्नान करते हैं।''[8]

गुरु पूर्णिमा उत्सव

गुरु पूर्णिमा उत्सव काशी में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। आषाढ़ मास की पूर्णिमा पर गुरुओं, महात्माओं, आध्यात्मिक गुरुजनों को सम्मानित करने की एक परम्परा है। हिन्दू धर्मावलम्बी इस पर्व को धूमधाम से मनाते हैं। इस अवसर पर लोकजन अपने गुरु के चरणों में उपस्थित होकर ज्ञान, भक्ति, योग, कर्म और साधना जैसी वैचारिकी को अपने जीवन में आत्मसात करते हैं। गुरुपूर्णिमा का पर्व महर्षि वेद व्यास के जन्म दिवस के रूप में मनाया जाता है। गुरु पूर्णिमा उत्सव के संदर्भ में ढेर सारी कथायें भी प्रचलित हैं।

कुश्ती का दंगल

बनारस कुश्ती और अखाड़े के लिए भी प्रसिद्ध है, जहाँ कुश्ती के लिए दंगल उत्सव का आयोजन किया जाता है। यह बनारस के विविध क्षेत्रों में आयोजित किया जाता है, जिसमें दूर-दूर से पहलवान भाग लेते हैं। इस दंगल को देखने के लिए बड़ी संख्या में लोकजन उपस्थित होते हैं। यह दंगल जहाँ स्वास्थ्य के प्रतीक के रूप में देखा जाता है, वहीं दूसरी तरफ लोग इस आयोजन में सम्मिलित होकर स्वस्थ मनोरंजन भी किया जाता है।

गणेश चतुर्थी

गणेश चतुर्थी हिन्दू धर्मावलम्बियों का प्रमुख त्यौहार है। यह पूरे देश में

मनाया जाता है। विविध स्थानों पर विशाल मेला लगता है। इस मेले के माहात्म्य के संदर्भ में मोतीचन्द कहते हैं कि, ''विद्यार्थी मन्दिर में सवेरे से संध्या तक इस विश्वास से खड़े रहते थे कि इस तपस्या के फलस्वरूप उन्हें विद्या की प्राप्ति होगी।''[9] इस त्यौहार के अन्तर्गत गणेश की बड़ी प्रतिमा स्थापित होती है एवं नौ दिनों तक उसकी पूजा होती है। नौ दिनों के बाद गणेश प्रतिमा का विसर्जन गाजे-बाजे के साथ तालाब या गंगा में करते हैं।

यम द्वितीया

यम द्वितीया मेला के संदर्भ में जो साक्ष्य उपलब्ध हैं, उसके अन्तर्गत इस दिन बहनें अपने भाईयों को टीका लगाती हैं और भाई अपने बहनों के यहाँ भोजन करते हैं। इस दिन भाई बहनों की रक्षा का वचन भी देते हैं।

वेद व्यास मेला

वेद व्यास मेला भी बनारस का प्रसिद्ध मेला है। इस मेले के संदर्भ में मोतीचन्द कहते हैं कि–

''महर्षि वेद व्यास मेला, वाराणसी स्थित रामनगर किले में लगता है। माघ के प्रत्येक सोमवार को इस मेले में शहर से बड़ी संख्या में लोग आते हैं और वेद व्यासों की पूजा-आराधना करते हैं।''[10]

धनतेरस मेला

काशी में धनतेरस का मेला चौखम्बा और ठठेरी बाजार के क्षेत्रों में आयोजित किया जाता है, जहाँ मिट्टी के खिलौनों की अच्छी-अच्छी दुकानें लगती हैं। इस दिन लोकजन लक्ष्मी की पूजा करते हैं। साथ ही नये बर्तनों की खरीद-बिक्री भी होती है। वैसे इस तरह के आयोजन आज दिवाली से पूर्व लगभग भारत के सभी बाजारों में देखा जा सकता है।

दीवाली

दीवाली का उत्सव भी काशी में बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। दीपों की रोशनी से पूरा शहर और गाँव जगमगा उठता है। इस अवसर पर लोग एक-दूसरे को मिठाईयाँ और लावा उपहार में देते हैं। वैसे लावा देने का प्रचलन अब कम ही दिखता है। दीवाली के दिन विद्यार्थी अपनी पुस्तकों की पूजा करते हैं। ज्ञान एवं बुद्धि की प्राप्ति के लिए आराधना भी करते हैं।

होली

होली का त्यौहार भी काशी में बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। काशी में लोकजन होली के दूसरे दिन टोलियाँ बनाकर एक-दूसरे को रंग-गुलाल लगाते हैं। वास्तव में होली का त्योहार, त्यौहार ही नहीं है, वरन, प्राथमिक सम्बन्धों की यात्रा है जहाँ रंग-गुलाल के माध्यम से प्रेम, बंधुत्व एवं समन्वय के मर्म गढ़े जाते हैं।

छठ पूजा

बनारस में छठ-पूजा जैसे पूजन का आयोजन भी बड़े धूमधाम के साथ मनाया जाता है। वैसे इसका प्रारम्भ बिहार से जाना जाता है। लेकिन अब उत्तर भारत के प्रत्येक क्षेत्र में इसका आयोजन किया जाता है। आज छठ पर्व लघु परम्परा से वृहत् परम्परा की तरफ अग्रसर है। छठ पर्व के माध्यम से लोकजन एक दूसरे के साथ प्रेम, बंधुत्व एवं समरसता का पाठ पढ़ते और पढ़ाते हैं।

बनारस की तीज-कजरी

बनारस में तीज के मेले का आयोजन शंकुलधारा एवं ईश्वरगंगी में बड़े हर्षोल्लास के साथ किया जाता है। इस मेले के दिन महिलाएँ व्रत के साथ गंगा स्नान करती हैं और उस स्थान पर गीत गाती हैं। कजरी-तीज का प्रचलन भारत के शहरी एवं ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में देखा जा सकता है, जहाँ महिलाएँ इस उत्सव में भागीदार होती हैं। इस त्यौहार के माध्यम से पवित्र मनोरंजन को गति जाती है।

नाग पंचमी

नाग पंचमी का आयोजन भी वाराणसी में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इस मेले का आयोजन वाराणसी के नागकुँआ पर लगता है। वैसे यह पर्व जहाँ एक तरफ धार्मिक महत्व रखता है, तो वहीं दूसरी तरफ पशु-पक्षी, वृक्ष एवं वनस्पति आदि से आत्मीय सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास भी करता है। इस दिन जीवित नाग के दर्शन करने की भी परम्परा है। इस दिन बनारस में कुश्ती का आयोजन भी किया जाता है। बनारस में नागपंचमी का मेला अद्यतन प्राचीन है, जो तक्षक और गरुड़ की कथा पर आधारित है।

समापन-अवलोकन

प्रस्तुत शोध-आलेख में काशी के जिन मेले, तमाशे एवं त्यौहारों की यात्रा का समाजशास्त्रीय पाठ प्रस्तुत किया गया है, वे सभी जीवंतता को प्रदर्शित करते हैं। ये त्यौहार और उत्सव जहाँ एक तरफ अपनी प्राचीनता दृष्टिगोचर करते हैं, तो वहीं दूसरी तरफ उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी इनकी यात्रा जारी है।

ये सभी काशी की सांस्कृतिक पूँजी के रूप में दृष्टिगत हैं। इनकी पहचान वैश्विक पटल पर बखूबी देखा जा सकती है। इन मेलों और उत्सवों के माध्यम से काशी के लोकजन स्वस्थ मनोरंजन को गतिमान किये हुये हैं। ये मेले और त्यौहार काशी के लोकजन की जीवनशैली को भी स्पष्ट करते हैं। साथ ही साथ लोकजन के सामाजिक सम्बन्धों को मजबूत करने में भी सहायक हैं। आज मानव सभ्यता सूचना क्रांति के दौर से गुजर रही है, जहाँ मनोरंजन के ढेर सारे संसाधन हैं, उसके बावजूद काशी के मेले और त्यौहार लोकजन को एक साथ लेकर चलने में सहायक हैं। इन मेले एवं त्यौहारों के माध्यम से मानव के व्यवहार एवं क्रियाओं का भी निर्धारण होता है, जो उन्हें विसंगति के बजाय सद्गति के पथ पर लेकर आगे बढ़ते हैं। काशी के मेले, तमाशे उत्सव एवं त्यौहार अपने सामाजिक, सांस्कृतिक माहात्म्य के साथ उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी गतिमान हैं।

संदर्भ

1. मोतीचंद, (1962) : काशी का इतिहास, हिंदी ग्रंथ-रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, मुंबई, पृ. 403
2. वही, पृ. 403
3. वही, पृ. 396
4. पं. कुबेरनाथ सुकुल (2008) : वाराणसी-वैभव, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पृ. 217
5. वही, पृ. 212
6. मोतीचंद, (1962) : काशी का इतिहास, हिंदी ग्रंथ-रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, मुंबई, पृ. 405
7. वही, पृ. 405
8. वही, पृ. 405
9. वही, पृ. 407
10. वही, पृ. 407

डॉ. विमल कुमार लहरी
असि. प्रोफेसर
समाजशास्त्र विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

❑ ❑ ❑

मिथिला कला एवं पुनरुद्धार

• शोभिका मुकुल

भारत एक ऐसा राष्ट्र है जहाँ अलग-अलग धर्मों, जातियों, वर्गों एवं समुदायों से जुड़े लोग रहते हैं। इसी प्रकार इन लोगों के अपने-अपने सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं कलात्मक विश्वास भी हैं जो इन्हें अन्य सांस्कृतिक समुदायों से पृथक करते हैं। लेकिन इतनी विविधताओं के होते हुए भी भारत अनेकता में एकता वाला राष्ट्र है। अगर हम भारतीय इतिहास के झरोखे से देखें तो हमें भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न कालखण्डों में बहुक्षेत्रीय सांस्कृतिक एवं कलात्मक अभिरुचियों के प्रमाण दृष्टिगोचर होते होंगे। जैसा कि हम जानते हैं, भारतीय समाज प्राचीन काल से ही विभिन्न देशी तथा विदेशी समुदायों के संग पुष्पित एवं पल्लवित होता रहा है। इसके साथ ही भांति-भांति की क्षेत्रीय लोक कलाओं का अभ्युदय हुआ और इनके माध्यम से उन क्षेत्रीय समुदायों की लोक प्रथाओं का अंकन किया गया, जहाँ वे पुष्पित एवं पल्लवित हुई। यहाँ लोक-कलाओं से तात्पर्य उन कलाओं से है जो भारत की अनेक जातियों व जनजातियों में पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है। वर्तमान भारत में तकरीबन 600 से अधिक विशिष्ट जन-जातियाँ मौजूद हैं, जिनकी विशिष्टता उनकी लोक कलाओं में झलकती है। जब भी हम किसी विशिष्ट क्षेत्र की लोक-कला के विषय में बात करते हैं तो यह केवल उस क्षेत्र विशेष की कलात्मक विशिष्टता को नहीं दर्शाता, बल्कि यह हमें उस क्षेत्र के समुदायों एवं जनजातियों से सम्बन्धित उनके दैनिक जीवन, खान-पान, धार्मिक विश्वासों तथा मान्यताओं जैसे रीति-रिवाजों से अवगत कराता है। इन लोक कलाओं में मुख्यतः गोंड, तंजावुर, पिथोरा, मधुबनी तथा वारली जैसी चित्रकलाओं को नामजद किया जा सकता है। वस्तुतः हमारे इस लेख द्वारा की जाने वाली चर्चा का मुख्य बिंदु मिथिला क्षेत्र की मधुबनी चित्रकला होगी जिसमें हम मधुबनी चित्रकला से सम्बन्धित किये, जा रहे पुनरुद्धार कार्य पर अधिक ध्यान देंगे। इसके अतिरिक्त

हम मिथिला क्षेत्र, मधुबनी चित्रकला, उसकी उत्पत्ति विशेषता एवं विभिन्न प्रकारों पर भी चर्चा करेंगे जो कुछ हद तक हमारे लिए मधुबनी चित्रकला सम्बन्धित ज्ञानवर्धन करेगा।

आगे बढ़ने से पूर्व हमारे लिए यह जान लेना आवश्यक है कि जिन क्षेत्रों में मधुबनी चित्रकला प्रचलित है उस क्षेत्र की भौगोलिक दशा कैसी है। जैसा कि हम जानते हैं, मधुबनी चित्रकला बिहार प्रान्त के उत्तरी एवं उत्तर पश्चिम में अवस्थित मिथिला क्षेत्र में प्रचलित एक लोक कला है। इसीलिए मधुबनी चित्रकला को मिथिला कला के नाम से भी जानते हैं। मिथिला जिसे तिरहुत ओर तीरभुक्ति के नाम से भी जाना जाता है, भारतीय उपमहाद्वीप का एक भौगोलिक और सांस्कृतिक क्षेत्र है जो पूर्व में महानंदा नदी, दक्षिण में गंगा नदी, पश्चिम में गंडकी नदी एवं तलहटी से घिरा है। मिथिला क्षेत्र में बिहार के दरभंगा, मधुबनी, तिरहुत, कोसी, मुंगेर, पूणिया और भागलपुर प्रमंडल और झारखंड के संथाल परगना के साथ-साथ नेपाल के तराई क्षेत्र के कुछ भाग भी शामिल हैं। मिथिला क्षेत्र में मुख्यतः मैथिली भाषा बोली जाती है और शायद इसी वजह से यहाँ के रहने वाले लोगों को मैथिल कहा जाता है।

पेंटिंग और कला उस स्थान की संस्कृति और परंपरा का प्रतिबिंब है जहाँ उनका जन्म हुआ था। जैसे कि ज्ञात है, भारत अपनी प्राचीन संस्कृति और कला के लिए जाना जाता है। इसी प्रकार मधुबनी पेंटिंग भी भारत में सबसे पुराने कला रूपों में से एक है। यह मिथिला क्षेत्र की लोक कला है। मधुबनी नाम का अर्थ है 'शहद का जंगल'। यह बिहार के मधुबनी जिले की स्थानीय लोक कला मानी जाती है। वैसे तो यह कला सम्पूर्ण विश्व में प्रचलित है, लेकिन अगर हम मधुबनी जिले के रांटी और जितवारपुर गाँव का भ्रमण करते हैं तो हमें यहाँ मिथिला कला की भव्यता एवं कार्यशैली सम्बन्धित उत्कृष्ट अनुभव प्राप्त होंगे। ऐसा इसलिये क्योंकि इन क्षेत्रों को मिथिला कला का एपीसेंटर माना जाता है।

मधुबनी पेंटिंग की उत्पत्ति काफी अज्ञात मानी जाती है। फिर भी इस विषय पर वर्तमान समय में कई शोध कार्य किये जा रहे हैं। हालांकि ऐसा माना जाता है कि 8वीं या 7वीं शताब्दी ईसा पूर्व में मिथिला साम्राज्य के शासक राजा जनक ने अपनी बेटी सीता की राजकुमार राम (रामायण के नायक) से शादी के क्षणों को दर्शाने हेतु इन चित्रों को विकसित करने के लिए कहा था। (सिटीस्पीडी, 19 जुलाई 2021)

मधुबनी पेंटिंग सर्वप्रथम दुनिया की नजरों में तब आई जब 1934 के

दौरान बिहार में बड़े पैमाने पर भूकंप आया था। मधुबनी जिले के ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारी विलियम जी. आरचचर ने भूकंप से हुए नुकसान की जांच के दौरान घरों की आंतरिक दीवारों में इन चित्रों को देखा। लेकिन इस बहुमूल्य चित्रकला को उस वक़्त आधिकारिक मान्यता नहीं मिल सकी। बल्कि इसे आधिकारिक मान्यता तब मिली जब 1969 में सर्वप्रथम एक मिथिला कलाकार सीता देवी को बिहार सरकार से राज्य पुरस्कार मिला, और 1975 में जगदम्बा देवी को पद्मश्री और सीता देवी को राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया (नाईर)। वर्ष 2007 में जाकर भारत सरकार ने मिथिला कला को भौगोलिक संकेतक का दर्जा दिया जिसने मिथिला कला और सम्बन्धित चित्रकारों की आजीविका में सुधार लाने का कार्य किया।

प्रारंभिक दौर में मिथिला कला केवल महापात्र माने जाने वाले ब्राह्मण परिवार की महिलाओं के मध्य ही प्रचलित थी। इस क्षेत्र की लड़कियां बचपन से ही ब्रश और रंगों से खेलना सीखती हैं। और इनके लिए इस कला का अंतिम क्षण कोहबर की सजावट है—घर का वह कमरा जहाँ शादी के बाद नया जोड़ा रहता है। (सिंघ, 2020) लेकिन जैसे-जैसे इस कला का व्यवसायीकरण हुआ, पुरुषों ने भी इसमें अपना रुचि दिखाना शुरू किया। पूर्व में इस कला का चित्रण विभिन्न समारोहों तथा त्योहारों के दौरान ही केवल घरों की दीवारों और फर्श पर किया जाता था। अब इसे दीवारों के साथ-साथ कैनवस, पेपर और विभिन्न प्रयोगात्मक वस्तुओं पर चित्रित किया जाता है। दिलचस्प बात यह है कि मिथिला या मधुबनी पेंटिंग आधुनिक समय में उंगलियों और टहनियों के साथ-साथ माचिस और पेन के निब का उपयोग करके बनाई जाती हैं। आमतौर पर इन चित्रों में चावल के पेस्ट का प्रयोग रूपरेखा तैयार करने में किया जाता है। हम अगर अधिक ध्यान से देखें तो विरले ही इन चित्रों में हमें रिक्त स्थान दिखेगा। इन चित्रों में बॉडर को ज्यामितीय और पुष्प पैटर्न से सजाया जाता है। चित्रों में केवल प्राकृतिक रंगों का ही प्रयोग मित्रता है। जैसे—काले रंग के लिए कोयला और कालिख, पीले के लिए हल्दी का अर्क, लाल के लिए चंदन का प्रयोग और नीले रंग के लिए नील आदि का प्रयोग होता है। (नाईर)

मधुबनी चित्रों में मुख्यतः उभरी हुई मछली जैसी आँखें और नुकीली नाक देखने को मिलती है। इन चित्रों के विषयों में आमतौर पर मछली, तोता, हाथी, कछुआ, सूर्य, चंद्रमा, बांस के पेड़ और कमल जैसे प्राकृतिक तत्व मौजूद होते हैं। इन चित्रों में ज्यामितीय पैटर्न भी देखे जा सकते हैं जो अक्सर प्रेम, वीरता, भक्ति, उरवरता और समृद्धि का प्रतीक होते हैं। यह प्राचीन कला-रूप रामायण

जैसी पौराणिक कथाओं से विवाह सम्बन्धित रस्मों, धार्मिक अनुष्ठानों और त्योहारों जैसे विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों के दृश्यों को चित्रित करने के लिए भी जाना जाता है। इसके अतिरिक्त कई देवी-देवताओं जैसे राधा-कृष्ण, राम और सीता, देवी दुर्गा, काली, लक्ष्मी, तुलसी, शिव, गणेश आदि को चित्रित किया जाता है। (नाईर)

माना जाता है कि मधुबनी पेंटिंग प्राचीन भारत की तांत्रिक संस्कृति से जुड़ी थी। हालांकि कला इतिहासकारों के बीच इस धारणा पर अभी बहस जारी है। मिथिला क्षेत्र शैव और शक्ति दोनों समुदायों के लिए तांत्रिक प्रथाओं का केंद्र रहा है। मधुबनी पेंटिंग के तान्त्रिक सम्बन्ध के ऐतिहासिक सन्दर्भ कवि विद्यापति के साहित्यिक कार्यों में पाए जाते हैं, जो 12वीं शताब्दी के थे। (सिंघ, 2020)

मिथिला के इस असाधारण लोक कला-रूप में विशिष्ट विशेषताओं के साथ पांच अलग-अलग शैलियां हैं। मधुबनी पेंटिंग की इन विशिष्ट शैलियों में शामिल है–

भरनी–भरनी एक हिंदी शब्द है, जिसका अर्थ है 'भरना'। कला रूप का नाम रंग और डिजाइन से भरी पेंटिंग की शैली को व्यक्त करता है। यह अपने जीवंत और चमकीले रंगों के लिए जाना जाता है। इस कलारूप का उपयोग पारंपरिक रूप से हिंदू देवताओं और भारत की पौराणिक कथाओं में उनके ऐतिहासिक योगदान को चित्रित करने हेतु किया जाता है।

कचनी-यह एक अनूठी कला शैली है। इसे मुख्य रूप से केवल दो रंगों का उपयोग करके बनाया जाता है। ये पेंटिंग मुख्य रूप से जानवरों, फूलों और अन्य प्राकृतिक पहलुओं को दर्शाती है। सीमित रंगों के प्रयोग के कारण यह शैली दर्शकों को आकर्षित करती है।

तांत्रिक-यह शैली पारंपरिक और धार्मिक ग्रंथों का बहुत सटीक तरीके से प्रतिनिधित्व करती है। तांत्रिक शैली के चित्रों में अधिकांशतः तन्त्र का प्रभाव देखा जा सकता है। यह पेंटिंग पारंपरिक रूप से हिन्दू पौराणिक पात्रों को दर्शाती है।

गोदना-मिथिला कला शैली की दौड़ में गोदना चित्रकला शैली को सबसे सरल विधियों में से एक माना जाता है। माना जाता है कि गोदना मधुबनी पेंटिंग की खोज चानू देवी ने की थी, जिसमें उन्होंने डिजाइन बनाने के लिए बांस और कागज से बनी कलम का इस्तेमाल किया था। यह कला जानवरों, पक्षियों,

पौधों, वृक्षों और फूलों जैसे प्राकृतिक जीवों को सटीक रूप से दर्शाती है। यह पेंटिंग मुख्य रूप से कैनवस पर की जाती है, लेकिन इसे टैटू के रूप में भी इस्तेमाल करते हैं।

कोहबर-यह मिथिला कला शैली के सबसे लोकप्रिय रूपों में से एक है। कोहबर को हिन्दू विवाह समारोह से जोड़ा जाता है। इसे तन्त्रराज, योग योगिनी और शिव शक्ति के नाम से भी जाना जाता है। यह विशेष रूप से हिंदू विवाह समारोहों को दर्शाती है। इसे मुख्यतः नव विवाहित जोड़ों के कमरों की दीवारों पर चित्रित किया जाता है। (ऑथ इंडिया, 2020)

वर्तमान समय में मिथिला क्षेत्र की महिलाओं ने जो इस कला रूप में असाधारण रूप से प्रतिभाशाली हैं, अपनी कला को भौगोलिक सीमाओं के पार कलात्मक आकर्षण का विषय बना दिया है। इसके अतिरिक्त स्थानीय सरकारों, गैर सरकारी संगठनों और सांस्कृतिक संगठनों द्वारा किए गए हालिया प्रयासों ने भी मधुबनी कला को लोकप्रियता और मान्यता के और भी ऊँचे स्तर पर ला खड़ा किया है। आज मधुबनी कला संयुक्त राज्य अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, रूस और जापान जैसे विभिन्न विकसित राष्ट्रों के कला प्रेमियों में रुचि रखती है। हालिया उदाहरणों से यह ज्ञात होता है कि इस कला रूप के पैटर्न ने बैग, कुशन कवर, पेन-केस, डायरी, कोस्टर, मग क्रॉकरी और माउस पेड जैसी विभिन्न वस्तुओं पर अपना मार्ग खोज लिया है। फैशन के क्षेत्र में भी, कई डिजाइनरों ने मधुबनी डिजाइन संग्रह जैसे पारंपरिक पोशाकों (स्टोल, साड़ी, सलवार कमीज, लंबी स्कर्ट आदि) को लोगों के लिए प्रस्तुत किया (सिंघ, 2020)

ऊपर वर्णित तथ्यों पर विचार करने के पश्चात अक्सर हमारे मन मस्तिष्क में यह प्रश्न उठता है कि एक लोक कला, जो प्रारंभ में केवल भित्ति चित्र के रूप में मूलतः ग्रामीण क्षेत्र में ही प्रचलित रही, कैसे विश्व स्तर पर प्रशंसनीय हो गई? इसके लिए मधुबनी कला को एक लंबा सफर तय करना पड़ा। 1960 के दशक में जब बिहार राज्य बाढ़ जैसी गंभीर आपदा से जूझ रहा था और लोगों के मध्य आय तथा रोजगार की परेशानी भी नदी की लहरों के समान उफान भरती प्रतीत हो रही थी, उस वक्त अखिल भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड ने मधुबनी शहर के आस-पास के ग्रामीण क्षेत्र की उच्च जाति की महिलाओं को आय उत्पन्न करने के लिए कागज पर कर्मकांडीय पेंटिंग बनाने के लिए प्रोत्साहित किया। और धीरे-धीरे पेंटिंग की विभिन्न शैली ने ग्रीटिंग कार्ड से लेकर सलवार कमीज की सामग्री जैसी कई वस्तुओं पर अपनी जगह बना ली। (नाईर)

मधुबनी कला के पुनरुद्धार के सन्दर्भ में हम यह देख सकते हैं कि कैसे इस

लोक कला का प्रयोग विभिन्न चलायमान और अचलायमान वस्तुओं पर भी किया जा रहा है। इसके लिए हम भारतीय रेल विभाग द्वारा किये गए जीवंत प्रयासों पर भी चर्चा कर सकते हैं। भारतीय रेलवे ने मधुबनी चित्र कला के पुनरुद्धार के लिए इसका चित्रण विभिन्न रेल के डिब्बों और रेलवे स्टेशनों पर प्रारंभ करवाया है। रेलवे ने इस प्रयोजन के अंतर्गत वर्ष 2018 में संपर्क क्रांति एक्सप्रेस पर इस अनूठी कलाकारी को बखूबी दर्शाने का प्रयास किया। खास बात तो यह है कि दिल्ली से दरभंगा के बीच चलने वाली यह ट्रेन लोगों के आकर्षण का केंद्र बनी हुई है। रेलवे की इस अनूठी पहल ने मिथिला निवासियों को गौरवान्वित होने का अवसर प्रदान किया। संपर्क क्रांति के बाद भारतीय रेलवे द्वारा महानंदा एक्सप्रेस, जनसाधारण एक्सप्रेस, और पटना राजधानी एक्सप्रेस जैसी ट्रेनों को भी मिथिला पेंटिंग्स से अंदर और बाहर सुसज्जित करवाया गया। पटना राजधानी एक्सप्रेस के तो 22 डिब्बे इस खूबसूरत प्राचीन कला से रंगे हुए हैं। विश्वविख्यात क्षेत्रीय कला को नई ऊंचाई देने के उद्देश्य से रेलवे की ओर से शुरू की गयी यह पहल अब पश्चिम बंगाल के उत्तर में स्थित अलीपुरद्वार के लोगों तक पहुँचेगी। भारतीय रेलवे द्वारा किए गए इस सुंदर प्रयास का प्रभाव न केवल देश के अंदर बल्कि देश के बाहर भी तब देखा गया जब जापान और कनाडा की सरकार मिथिला कला की सुंदरता से प्रभावित होकर भारतीय रेलवे से प्राथना की कि वह उन्हें उनकी ट्रेनों का सौंदर्यीकरण करने के लिए मिथिला कला के कलाकार मुहैया कराए। इससे यहाँ के लोग भी बिहार की संस्कृति को देख व समझ पाएंगे।

इसी तरह का एक ओर प्रयास भारतीय रेलवे द्वारा स्टेशनों के सौंदर्यकरण में देखा जा सकता है। इस प्रयास के अंतर्गत मिथिला संस्कृति की विरासत को मधुबनी रेलवे स्टेशन पर देखा जा सकता है, जो बिहार में पूर्व मध्य रैलवे के समस्तीपुर डिवीजन के अंतर्गत आता है। यह स्टेशन अपनी मंत्रमुग्ध कर देने वाली पेंटिंग के लिए देश के दूसरे सर्वश्रेष्ठ स्टेशन का भी हकदार है। वर्ष 2017 में भारतीय रेलवे द्वारा इस रेलवे स्टेशन पर एक पहल शुरू की गई थी। इस पहल का उद्देश्य स्वच्छता और सौंदर्यीकरण परियोजना के एक भाग के रूप में स्टेशन को मधुबनी या मिथिला पेंटिंग से सजाना था। इस पहल ने रेलवे स्टेशन को सजाने के साथ-साथ स्थानीय मिथिला कलाकारों के हुनर को भी उजागर किया। वर्ष 2017 के अक्टूबर माह में बिना कोई मेहनताना लिए 10 दिनों में 100 से अधिक कलाकारों ने मधुबनी स्टेशन को प्रसिद्ध मधुबनी चित्रों से सजाया (इंडिया टुडे, 23 अगस्त 2018)। इन कारीगरों द्वारा की गयी मेहनत के

फलस्वरूप रेल भवन में आयोजित स्टेशन सौंदर्यीकरण प्रतियोगिता के लिए मधुबनी स्टेशन ने दूसरा पुरस्कार (मदुरै के साथ साझा) जीता। यह घटना एक प्रवृत्ति की ओर ले जाती है, जहाँ कई अन्य रेलवे स्टेशनों को भी उसी शैली से चित्रित और सजाया गया। उदाहरण के लिए, पटना जंक्शन, राजेन्द्र नगर टर्मिनल, और दानापुर रेलवे स्टेशन आदि। (पटना बीट्स, 9 फरवरी 2019)

वर्तमान समय में मिथिला या मधुबनी पेंटिंग अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर प्रशंसित है। मिथिला क्षेत्र की महिलाओं ने अपने प्रयासों से इस कला रूप को भौगोलिक सीमाओं के पार पहुँचाने का कार्य किया है। दुनिया भर में कला-प्रेमी पर्यटकों ने ग्रामीण पर्यटन और भारत की विरासत में गहरी रुचि ली है। और मधुबनी पेंटिंग ने मिथिला की सीमाओं से परे नई ऊंचाइयों को छुआ है। आज मधुबनी कला को अंतरराष्ट्रीय लोकप्रियता हासिल है, खासकर जापान, जर्मनी, फ्रांस और अमेरिका जैसे देशों में। इसी के परिणामस्वरूप जापान के एक प्रसिद्ध मधुबनी कला प्रेमी हशेगावा द्वारा वर्ष 1979 में टोकागाची संग्रहालय की स्थापना की गई। इस संग्रहालय में विभिन्न विषयों और शैलियों के लगभग 1500 मधुबनी चित्रों को प्रदर्शित किया गया है। और इसके अलावा हर वर्ष मिथिला कलाकारों के एक दल को इस संग्रहालय में बुलाया जाता है तथा वे अपनी कलाओं का नमूना विभिन्न मिथिला कला प्रेमियों के लिए प्रदशित करते हैं। इसी तरह का एक और प्रयास वर्ष 1977 में एक अमेरिकी द्वारा किया गया, जिसमें उन्होंने मास्टर क्राफ्टसममैन एसोसिएशन ऑफ मिथिला नामक गैर सरकारी संस्था की स्थापना की। यह संस्था मधुबनी के कलाकारों को प्रदर्शनियों के माध्यम से उनके कार्यों की बिक्री में मदद करता है। इस तरह के प्रयासों से मधुबनी कला एक बार फिर आधुनिक दुनिया के कलात्मक कैनवस पर एक प्रमुख कला के रूप में उभर रही है। (सिंघ, 2020)

भारत के विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थानों आदि में भी मिथिला कला के पुनरुद्धार कार्य एवं सभी वर्गों के मध्य विस्तार हेतु कई प्रयास किए जा रहे हैं। जिनमें सबसे प्रमुख दिल्ली के इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केंद्र और हस्त शिल्प संग्रहालय (आई जी एन सी ए) को माना जाता है। आईजीएनसीए में समय-समय पर विभिन्न कला सम्बन्धित प्रदर्शनी का आयोजन किया जाता है। इसी तरह मिथिला पेंटिंग्स की एक प्रदर्शनी (लिखिया) वर्तमान के ट्विन आर्ट गैलरी, आईजीएनसीए, नई दिल्ली में आयोजित की गई थी। यह आयोजन वर्ष 2019 के सितंबर माह में किया गया था। प्रदर्शनी का उद्घाटन सुश्री जया जेटली, डॉ. भूषण पटवर्द्धन (यूजीसी उपाध्यक्ष) और डॉ. सच्चिदानंद जोशी

(सदस्य सचिव, आईजीएनसीए) की उपस्थिति में किया गया था। इस लिखिया प्रदर्शनी का संचालन प्रो. मोली कौशल और मधुबनी कलाकार सुश्री मनीषा झा ने संयुक्त रूप से किया था।

इस दौरान यहाँ मिथिला कला की महत्वपूर्ण शैलियों, जैसे–भरनी, कचनी और गोदना के विभिन्न स्वरूपों को प्रदर्शित किया गया। (आईजीएनसीए में लिखिया प्रदर्शनी का आयोजन, 2019) इसके अतिरिक्त भारत की राजधानी में अवस्थित शिल्प कला संग्रहालय में भी हम मिथिला कला के सुंदर एवं रमणीय चित्रों का अवलोकन कर सकते हैं। पूर्व में इस संग्रहालय में मधुबनी कला से सम्बन्धित एक पृथक कक्ष का प्रबंध किया गया था, जहाँ की दीवारों पर मिथित्रा कला का चित्रण गंगा देवी ने स्वयं अपने हाथों से किया था। गंगा देवी मधुबनी चित्रकला की सबसे प्रसिद्ध चित्रकारों में से एक है। एक कलाकार के रूप में, वह महिला चित्रकारों की कायस्थ परंपरा से ताल्लुक रखती हैं। फिलहाल वर्तमान समय में इस शिल्प संग्रहालय के मधुबनी कला सम्बन्धित कक्ष को नष्ट कर दिया गया है, लेकिन फिर भी हम यहाँ मिथिला कला के कुछ उत्कृष्ट नमूने देख और समझ सकते हैं। (शिल्प संग्रहालय, नई दिल्ली) इन सब के अतिरिक्त दिल्ली हाट में भी हम मधुबनी कला से चित्रित वस्तुओं को देख सकते हैं। यह एक ऐसा स्थल है जहाँ हम मिथिला कला-प्रेमी के रूप में मधुबनी पेंटिंग से चित्रित वस्तुओं को खरीद भी सकते हैं।

अब तक तो हमनें जाना कि कैसे किसी वस्तु के सौंदर्यीकरण तथा विभिन्न स्थानों व संस्थानों में प्रदशनियों के आयोजन द्वारा मिथिला कला का जनता के मध्य पुनरुद्धार एवं जीवंत किया जा रहा है। लेकिन ऐसा कहना कि मिथिला कला के पुनरुद्धार कार्य से प्रकृति की रक्षा की जा सकती है, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। जी हाँ वर्ष 2012 में ऐसा ही कुछ हो चुका है। 2012 के दौरान मधुबनी पेंटिंग का उपयोग करके 100 से अधिक पेड़ों को सजाया गया था। षष्ठी नाथ झा, जो एक गैर सरकारी संस्था 'ग्राम विकास परिषद' चलाते हैं, ने सड़कों के विस्तार और विकास के नाम पर काटे जा रहे पेड़ों की रक्षा के प्रयास के रूप में पहल की। यह जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग जैसे इसके परिणामों के बारे में ग्रामीणों को जागरूक करने का एक प्रभावी तरीका साबित हुआ। ग्रामीणों ने कलाकृति को लंबे समय तक चलने के लिए सिर्थेटिक पेंट का इस्तेमाल किया। फलस्वरूप एक भी पेड़ नहीं काटा गया। इसके पीछे मुख्य कारण पेड़ों को देवताओं के रूपों और राधा कृष्ण, राम, सीता, रामायण तथा महाभारत के दृश्यों एवं अन्य पौराणिक

कथाओं जैसे अन्य धार्मिक और आध्यात्मिक प्रतीकों से सजाया जाना था। इसने श्रद्धा पैदा की और पेड़ों को काटने से रोका। इस तरह हम समझ सकते हैं कि कैसे इस पहल ने एक तरफ तो वृक्षों का रक्षण और सौंदर्यीकरण किया तथा दूसरी तरफ मधुबनी कला के प्रयोग से उसका पुनरुद्धार कार्य भी हुआ। (नाईर)

वस्तुतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद मधुबनी या मिथिला कला के पुनरुद्धार एवं विकास कार्य पर काफी ध्यान दिया जा रहा है। जहाँ पूर्व में यह कला ब्राह्मण महिलाओं तक ही सीमित थी, वहीं अब यह कार्य पुरुषों एवं विभिन्न तबके के लोगों के द्वारा किया जा रहा है। वर्तमान में तो हमें सरकारी एवं गैर सरकारी स्कूलों/ संस्थाओं के साथ-साथ व्यक्तिगत प्रयासों के प्रमाण भी प्राप्त होने लगे हैं। आज हम किसी से भी मिथिला क्षेत्र की चर्चा करते हैं तो सर्वप्रथम हमारे ज़ेहन में मधुबनी पेंटिंग का ही स्वरूप प्रकट होता है। इस चित्रकला का प्रयोग दीवारों की सजावट के साथ-साथ घरों में प्रयोग होने वाली विभिन्न वस्तुओं के सौंदर्यीकरण हेतु भी किया जाता है। फिर भी मधुबनी कला के पुनरुद्धार हेतु किए जा रहे इन प्रयासों के अतिरिक्त अभी और प्रयासों की जरूरत है। फिर भी उन लोक कलाओं की व्यावहारिकता बनाए रखने हेतु हमें उन्हें आय के मुख्य साधन के रूप में स्थापित करना होगा।

सन्दर्भ :

* सुमित्रा नाइर, दिस इंटरेस्टिंग स्टोरी ऑफ मधुबनी पेंटिंग्स विल लीव यू इन ऑ, दा एथनिक सोल।
* चन्द्र शमशेर बहादुर सिंघ, मधुबनी पेंटिंग्स:पिपल्स लिविंग कल्चरल हेरिटेज, *वर्ल्ड हिस्ट्री इनसाइक्लोपीडिया*, 2020।
* टाइप्स ऑफ मधुबनी पेंटिंग्स, ऑफ इंडिया, 2020।
* मधुबनी पेंटिंग्स दा फोक आर्ट ऑफ मिथिला, *सिटीस्पीडी*, 19 जुलाई 2021।
* लिखिया प्रदर्शनी, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केंद्र, 2019।
* राष्ट्रीय शिल्प संग्रहालय एवं हस्तकला अकादमी, नई दिल्ली।
* *इंडिया टुडे*, 23 अगस्त 2018।
* *पटना बीट्स*, 9 फरवरी 2019।

शोभिका मुकुल
सी-149, सेक्टर 15
नोएडा यूपी 201301

❑ ❑ ❑

छत्तीसगढ़ के आदिवासी समाज एवं संस्कृति पर वैश्वीकरण का प्रभाव

• डॉ. किशोर कुमार अग्रवाल

भारत को प्रजातियों एवं जनजातियों के मेल्टिंग पॉट के रूप में वर्णित किया जाता है।[1] जनजाति की परिभाषा और संकल्पना एक बहुत बड़ी समस्या मानवशास्त्रियों के सामने रही है। इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मतों को देखते हुये डी.एन. मजूमदार ने लिखा है कि, नातेदारी व्यवस्था, समान भूखंड, समभाषा, संयुक्त स्वामित्व एक राजनीतिक संगठन, आंतरिक संघर्ष की अनुपस्थिति आदि सभी का वर्णन एक जनजाति की मुख्य विशेषताओं के रूप में स्वीकार किया गया है।[2] भारत की जनजातियों के वर्गीकरण के अंतर्गत छत्तीसगढ़ की जनजातियां केंद्रीय अथवा मध्यमंडल अंतर्गत आती हैं। भाषाई क्षेत्र के आधार पर यहाँ तीन भाषा परिवार जाति इतिहास के आरंभ से विद्यमान है। आर्य, द्रविण और मुण्डा।[3] जनजाति अध्ययन 19वीं शताब्दी से प्रारंभ हुआ था किंतु एक विषय के रूप में बीसवीं शताब्दी में प्रारंभ हुआ इसे अध्ययन का मानवशास्त्र कहा जाता था, इस समय मानवशास्त्र का क्षेत्र आरंभ आदिम जाति के रहन सहन व तौर तरीकों के अध्ययन तक सीमित था परंतु धीरे-धीरे इसका क्षितिज विस्तृत होता चला गया।[4]

आदिवासी अध्ययन का क्षेत्र विस्तृत होने के साथ ही उनकी परिभाषाओं में भिन्नता दिखाई पड़ने लगी। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने किसी भी देश के मूल निवासियों का आदिवासी शब्द से संबोधित किया है। अनेक नृतत्व शास्त्रियों ने जिनमें प्रमुख रिज़ले लेके, ग्रिगसन, मार्टिन, ए.वी. ठक्कर ने आदिवासी कहा है।[5] हट्टन ने इन्हें आदिम जातियां (प्रीमिटिव ट्राइब्स) नाम से संबोधित किया है।[6] वेरियर एल्विन ने इन्हें देश का मूल स्वामी कहा है।[7] तथापि इन्हें आदिवासी कहने का विरोध होने लगा, प्रसिद्ध समाजशास्त्री डॉ. जी.एस. धुरिये ने इन्हें तथाकथित आदिवासी कहा (सोकाल्ड एवओरिजन्स)[8] इस तरह

वैश्वीकरण का प्रभाव जनजाति अध्येताओं पर पड़ने लगा और उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा। उत्तर आधुनिकतावादी इतिहासकारों ने जाति और जनजाति जैसे वर्गीकरणों की वास्तविकता पर प्रश्नचिन्ह लगाया है। उनका मानना है कि औपनिवेशिक प्रशासकों ने इस प्रकार का वर्गीकरण किया था। एरिक हाब्सबाम और टेरेन्स रैंजर द्वारा संपादित, 'द इन्वेंशन ऑफ ट्रेडिशन' (कैम्ब्रिज 1983) में यह तर्क दिया है कि जनजाति औपनिवेशिक कल्पना है।[9] जनजातियों से सम्बन्धित इस अध्ययन ने औपनिवेशिक कालीन अध्ययन पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। औपनिवेशिक काल में 19वीं शताब्दी के मध्य से मानव विज्ञान ने ज्ञान और शासन की प्रमुख औपनिवेशिक प्रकारता का रूप ले लिया था। 1869 में भारत सरकार के सांख्यिकी विभाग के महानिदेशक के पद पर नियुक्त डब्ल्यू. डब्ल्यू. हंटर ने गजेटियर की एक शृंखला प्रस्तुत की। जिसमें भारत के बारे में अधिकारिक औपनिवेशिक ज्ञान को व्यवस्थित रूप देने का प्रयास किया गया था।[10] आज भी हम देश के साथ ही छत्तीसगढ़ के जनजाति अध्ययनों में उसी औपनिवेशिक अध्ययन को बड़ा प्रमाण मानते हैं। किंतु औपनिवेशिक दृष्टिकोण के अनुसार कबीले को भी जाति का एक हिस्सा माना है। छत्तीसगढ़ की जाति एवं जनजाति पर अध्ययन करने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण स्रोत रसल एवं रायबहादुर हीरलाल की पुस्तक ट्राइब एण्ड कास्ट ऑफ इंडिया मानी जाती है। इसके साथ ही 1869 के चिज़म की बिलासपुर सेटलमेंट रिपोर्ट एवं ब्रिटिश कालीन छत्तीसगढ़ के जिला गजेटियर में भी की जनजाति सम्बन्धित जानकारियां हैं। इन सबका लेखन औपनिवेशिक उपागम पर आधारित है। इनमें प्रत्येक जिले में निवासरत आदिवासियों के जीवन का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इनमें प्राप्त जानकारी अत्यंत महत्वपूर्ण है तथापि उनका इस सम्बन्ध में की गयी व्याख्याओं से आज के विद्वान सहमत नहीं हैं।

छत्तीसगढ़ मध्य भारत का एक अत्यधिक महत्वपूर्ण जनजाति क्षेत्र है यहाँ पर सन् 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य की कुल जनसंख्या का 30.60 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति है। संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत भारत सरकार द्वारा जारी छत्तीसगढ़ की अनुसूचित जनजातियों की संख्या 42 है।[11] देश में जनजातियों की संख्या 2001 की जनगणना के अनुसार 8.14 प्रतिशत है। छत्तीसगढ़ की जनजातियों में वैश्वीकरण का प्रभाव छत्तीसगढ़ के साथ ही देश के समस्त जनजातियों के लिए महत्वपूर्ण विषय हैं।

आजादी के पश्चात् पंचवर्षीय योजनाएँ एवं बीस सूत्री कार्यक्रमों में जनजातियों के उत्थान के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने अनेक योजनाएँ बनायी थी जिसका उद्देश्य जनजाति समुदायों को राष्ट्रीय धारा से जोड़ना था।

संविधान के अनुच्छेद 338 के अंतर्गत 1950 से कमीश्नर फॉर शेड्यूल कास्ट की नियुक्ति की गई। जिससे अनुसूचित जनजातियोंकी सुरक्षा एवं कल्याणकारी योजनाओं की प्रगति की सूचना मिलती रहती थी।[12] द्वितीय पंचवर्षीय योजना 1961-66 में जनजाति विकास खंडों का प्रादुर्भाव हुआ। इसका उद्देश्य जनजातियों के सामाजिक व आर्थिक स्तर में गतिशील सुधार बना था।[13] इसके पश्चात् जनजातियों की आवश्यकताओं के अनुसार उनमें शिक्षा का विकास, कृषि, पशुपालन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, जनजातीय बाजारों का सांस्कृतिक गतिविधियों के केंद्र के रूप में विकास करने के लिए 1974 से परियोजनायें ली गयी। इससे जनजातियों को बाहरी दुनियां के संपर्क में लाने का प्रयास किया गया। छत्तीसगढ़ में इसी समय से बस्तर के जनजाति, शिल्प एवं संस्कृति पर केंद्रित 'जागार' नाम से मेला, रायपुर में प्रारंभ हुआ जिसमें जनजाति संस्कृति, हस्तशिल्प, नृत्य आदि की प्रदर्शनी लगायी जाती थी।[14] जागार उत्सवों ने छत्तीसगढ़ की जनजातियों और शहरी समाज को एक दूसरे को समझने का अवसर दिया, शहरी समाज ने उनके नृत्य, गीत और शिल्प को बहुत शौक से अपनाया। यहाँ उत्सव का निरंतर विकास होने लगा इससे छत्तीसगढ़ के आदिवासी समुदायों की आर्थिक दशा में सुधार होने के साथ ही उनके अंदर बाहरी समाज के प्रति संकोच भी कम होने लगा। तथापि इस समय भी शासकीय स्तर पर उनकी समस्या के समाधान के लिए किये गये कार्य संतोषजनक नहीं थे। छठी पंचवर्षीय योजना में यह दावा किया गया था कि 1981 तक जनजातियों की समस्त समस्याओं का समाधान हो सकता है। इस कथन को अध्येताओं ने दुर्भाग्य जनक एवं गैर जिम्मेदारना कहा है। एस के शर्मा (1981) ने जनजाति विकास के कार्यक्रमों की असफलता पर शोध कार्य किया जिसके अनुसार भारत सरकार जनजातीय विकास कार्यक्रमों को बढ़ावा देने में असफल रही इसके साथ-साथ जनजातियों के अविकसित स्तर को बनाये रखने में सहायक रहा।[15] इस अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि वैश्वीकरण के पूर्व जनजातियों की स्थिति कितनी खराब थी। सरकारों के विकास कार्यक्रम भी उनके लिए अत्यन्त घातक थे इससे शासन और सभ्य संसार का जनजातियों के प्रति असंवेदनशीलता दिखाई पड़ती है। शासन की योजनाएँ जैसे बड़े-बड़े बांध, फाइरिंग रेंज, राष्ट्रीय प्राणी अभ्यारण्य एवं उद्यान, आरक्षित वन, खनिज उत्खनन आदि ऐसे विकासशील कार्य हैं जिनके कारण लाखों की संख्या में इनके प्राकृतिक निवासों को नष्ट करके उन्हें विस्थापित कर दिया और ये बंधुआ मजदूर[16] अथवा अपराधिक जीवन जीने के लिये मजबूर हो गये। क्योंकि विस्थापित जनजाति ब्रिटिश कालीन भू-बंदोबस्त नियम के कारण उनके पास जमीन पर मालिकाना

हक नहीं था, अत: उन्हें विस्थापित होने पर कोई मुआवजा भी प्राप्त नहीं होता है। छत्तीसगढ़ में इस प्रकार का विस्थापन बहुत कम हुआ है तथापि वनों की अंधाधुंध कटाई से वनवासियों को परेशानी का सामना करना पड़ा और उनका प्राकृतिक निवास नष्ट हुआ।

प्रारंभ से ही सरकारों के द्वारा जनजाति समुदाय की समस्या और अनुसूचित जाति की समस्या को एक मानते हुए, उनके विकास के लिए संयुक्त नाम से ही विभाग एवं प्रकोष्ठ एवं कानून बनाये गये जबकि दोनों की समस्या बिल्कुल ही अलग है। वैश्वीकरण के काल में नवीन अध्ययनों के सरकारों के ज्ञान में वृद्धि हुई।[17] मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के आदिवासियों के लिए संघर्ष करने वाले लोगों में एक नाम बहुत ही महत्वपूर्ण है, डॉ.बी.डी. शर्मा ये मध्यप्रदेश सरकार में आई ए. एस. अधिकारी के रूप में आयुक्त अनुसूचित जाति एवं जनजाति पद पर कार्य किया था और उन्होंने महसूस किया कि सरकार जनजातियों की समस्या को उचित रूप से हल नहीं कर रही है अत: उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र देकर उनके अधिकार एवं विकास के लिए संघर्ष करना प्रारंभ कर दिया, उनके द्वारा राष्ट्रपति को पत्र[18] लिखकर जनजाति की समस्याओं से अवगत कराया। उनके साथ ही पर्यावरणवादी संघर्षों ने भी जनजाति की समस्या को उठाकर देश के प्रबुद्धजनों में जागृति उत्पन्न की। इस तरह वैश्वीकरण ने सरकारों को जनजाति की समस्या को सही रूप में समझने का दृष्टिकोण प्रदान किया।

छत्तीसगढ़ राज्य बनने के पश्चात् राज्य सरकार ने जनजातियों के विकास के लिए छत्तीसगढ़ राज्य के लिए संविधान का पांचवीं अनुसूची के अंतर्गत घोषित अनुसूचित क्षेत्र भारत सरकार के असाधारण राजपत्र के भाग दो अनुभाग तीन, उप अनुभाग (1) दिनांक 20 फरवरी वर्ष 2003 छत्तीसगढ़ राज्य में स्थित अनुसूचित क्षेत्र परिभाषित किये गये हैं। इसके तहत 9 जिले संपूर्ण रूप से आदिवासी विकासखंड एवं एक राजस्व निरीक्षक खंड के साथ ही बड़ी संख्या में आदिवासी उपयोजना क्षेत्र घोषित किया गया है।[19] सरकार की बदलती हुई नीतियां यह बतलाती है कि वैश्वीकरण का प्रभाव उन पर भी दिखाई पड़ रहा है।

विश्व में तनाव कम करने के लिए विश्व के सभी देशों में सांस्कृतिक आदान-प्रदान एवं सांस्कृतिक महोत्सव का आयोजन पूरे विश्व में प्रारंभ हो गया है। इसके अंतर्गत एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की संस्कृति एवं शिल्पकलाओं को जानने के लिए सांस्कृतिक मेलों का आयोजन कर रहे हैं। इन मेलों में प्रत्येक देश के उत्कृष्ट हस्तशिल्प, नृत्य-गान एवं अन्य वस्तुओं जो उस देश की गौरवशाली

परंपरा एवं विकास को दर्शाती हो, उसका प्रदर्शन किया जाता है। ऐसे महोत्सव का आयोजन समय-समय पर कई देशों के एक साथ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रहे हैं। इन मेले और प्रदर्शनी में छत्तीसगढ़ के जनजाति शिल्पकला एवं संस्कृति की भी प्रदर्शनी प्रस्तुत कि जाती है जिसने छत्तीसगढ़ की जनजाति संस्कृति और हस्तशिल्प को विश्वव्यापी बना दिया छत्तीसगढ़ का हस्तशिल्प देश ही नहीं विश्व में विख्यात है। छत्तीसगढ़ की शिल्प की मांग सदैव ही राष्ट्रीय बाजारों के साथ अंतरराष्ट्रीय बाजार में बनी रहती है।[20]

छत्तीसगढ़ जनजाति बहुल प्रदेश होने के कारण पाश्चात्य देशों के नृतत्व शास्त्री विद्वानों के आकर्षण का केंद्र पहले से ही था अत: छत्तीसगढ़ के जनजातियों की विशेषतायें वैश्वीक स्तर पर पहले से ही प्रसिद्धि थी। अनेक नतृत्व शास्त्री, भाषा शास्त्री एवं मानव शास्त्रियों के द्वारा बस्तर एवं अन्य क्षेत्रों के जनजाति समुदायों का अध्ययन किया जा रहा था। पादरी हिस्लाप ने 'ट्राइबल ऑफ द सेन्ट्रल प्राव्हींस' के नाम से 1866 में अपनी पुस्तक प्रकाशित की।[21] ग्लसफर्ड (1863), गियर्सन (1906), ग्रिग्सन (1938)[22] वेरियर एलविन सन् 1930 से 1944-4523 में छत्तीसगढ़ के जनजातियों के बारे में अलग-अलग दृष्टिकोण से अध्ययन किया। इनमें से वेरियर एल्विन की पुस्तकों एवं लेखों ने पाश्चात्य जगत का ध्यान बस्तर की जनजातियों की ओर आकर्षित किया था, किंतु यह आकर्षण एवं जिज्ञासा मुख्यरूप से बस्तर के साथ छत्तीसगढ़ के अन्य जनजातियों को जीवित म्युजियम की तरह देखने का था। वे मानते थे कि बस्तर के आदिवासी समुदाय प्रागौतिहासिक कालीन मानव समुदाय के जीते जागते उदाहरण है। इसी समय नारायणपुर के आदिवासी बालक चेंदरू के बाघ से मित्रता पर बी.बी.सी. लंदन ने एक वृत्त चित्र बनाया था जिसका नाम 'वंडर ब्वाय' था इस वृत्त चित्र ने पूरे यूरोप में बस्तर को प्रसिद्ध कर दिया था। किंतु इस समय तक यहाँ के जनजातियों का शोषण उनके शिल्पज्ञान एवं संस्कृति पर किसी का ध्यान नहीं गया था, किंतु वर्तमान समय में अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक आदान प्रदान ने छत्तीसगढ़ की जनजातियों की शिल्पकला, सांस्कृतिक स्वरूप एवं परम्पराओं को एक नवीन दृष्टि प्रदान कर विश्व में प्रसिद्ध कर दिया। इस प्रचार से राष्ट्रीय सरकार को जनजाति संस्कृति एवं विभिन्न क्षेत्रों की क्षेत्रीय संस्कृतियों को सरंक्षित करने के लिये क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्रों की स्थापना की गई। इन क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्रो ने विभिन्न लोक व जनजातीय कलाओं तथा खासतौर पर दुर्लभ एवं लुप्त होती कला विधाओं के प्रलेख तैयार करने पर विशेष ध्यान दिया है। ..... इससे देश के विभिन्न भागों में जनजातीय लोक कला विधाओं के प्रति जागरूकता बढ़ाने में बहुत ज्यादा

मदद मिली है।[24] इस योजना के तहत छत्तीसगढ़ की जनजाति शिल्पकला को संरक्षित किया जाने लगा।

जनजातियों में वैश्वीकरण के प्रभाव पर भारतीय विद्वान समीर अमीन ने अध्ययन किया है, उनका मानना है कि पूंजीवादी व्यवस्था की वैश्वीकरण कोई नयी चीज नहीं है। किंतु वर्तमान दौर को निश्चित रूप से जागरण या पुनर्जागरण के दौर के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।[25] समीर अमीन एवं अन्य मानव शास्त्रियों ने वैश्वीकरण का जनजाति एवं नृजातिय प्रभाव के अच्छे बुरे प्रभावों पर बहुत गहरे जाकर अध्ययन किया है।

वैश्वीकरण के दौर में छत्तीसगढ़ की आदिवासी कला का प्रचार होने का लाभ जनजाति समुदाय को प्राप्त हुआ उनके शिल्प एवं संस्कृति इतने लोकप्रिय हुये की देश की सीमाओं का बंधन तोड़कर पूरे विश्व में फैल गया है। इस वैश्वीकरण से व्यवसाय में एक ही जैसे उत्पाद सभी के लिए सामने आने लगे थे। और हस्तशिल्प के एकमात्र और यूनिक उत्पाद को विशिष्ठ माना जाने लगा। इससे फैशनपरस्त विश्व के अभिजात्य वर्ग में हस्तशिल्प अद्वितीय होने में विशिष्टता हासिल कर ली यह हस्तशिल्प के लिए पुनरूत्थानकारी तत्व के रूप में सामने आया। इस मांग ने उनकी अभिरूचि के अनुरूप बदलाव को भी प्रेरित किया।[26] इस परिवर्तन से छत्तीसगढ़ की जनजाति शिल्पकारों को अपने शिल्प को आधुनिक रूप देने की प्रेरणा प्राप्त हुई है और इस परिवर्तन ने उनको तकनीकी ज्ञान का विकास किया। साथ ही छत्तीसगढ़ सरकार और विद्वान उनके तकनीकी ज्ञान को अपने राज्य की विरासत बताकर गौरव महसूस करते हैं।

वैश्वीकरण से पूर्व छत्तीसगढ़ की जनजाति समुदायों की सामाजिक परम्पराओं को सभ्य समाज के द्वारा अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था क्योंकि इस समय तक जनजातियों पर लिखने वाले लोगों ने उनकी परंपराओं को जिस तरह प्रस्तुत किया उन्हें आधुनिक समाज ने असम्य अथवा जंगली संस्कार मानता था। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध मानव शास्त्री नदीम हुसैन ने लिखा है कि जनजातीय वैवाहिक पद्धतियां एक ऐसा विषय है जिस पर संपूर्ण विश्व ने इन लोगों के प्रति दुर्भावना व्यक्त की है। काल्पनिक संस्थायें निरूपित की गई उनके विवाह तथा यौन सम्बन्धी कहानियों को खूब मसाला मिलाकर पेश किया।[27] किन्तु अब हम जानते हैं कि घोटूल या युवागृह को किस रूप में प्रस्तुत किया गया था। अब नवीन अध्ययनो से जानकारी प्राप्त होती है कि पूर्व में किये गये सारे अध्ययनों का आधार निराधार कल्पनायें थी। नवीन दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि जनजाति समाज की सामाजिक नीतियों में नारियों को प्राप्त अधिकार सभ्य समाज के लिए एक उदाहरण

है। इस तरह जनजाति समाज एक नये रूप में सामने आ रहा है। इस नवीन अध्ययनों ने छत्तीसगढ़ की आदिवासी परंपराओं के बारे में औपनिवेशिक अवधारणा को समाप्त कर स्वस्थ परंपरा प्रदान की है।

जनजाति कला एवं संस्कृति की लोकप्रियता ने छत्तीसगढ़ के आदिवासी समुदाओं में जागृति पैदा की और उनमें आधुनिक समाज से संपर्क करने में संकोच समाप्त हुआ वे आधुनिक विचारों को स्वीकार करने लगे एवं वे आधुनिक समाज के तौर तरीके अपनाने लगे। उनके द्वारा उपयोग में ली जाने वाली सामग्री एवं उपकरणों में आधुनिकता की प्रारंभिक छाप दिखाई पड़ती है। छत्तीसगढ़ में आदिवासी शिक्षा के विकास का आंकड़ा 2011 की जनगणना रिपोर्ट में दिखाई पड़ता है पुरुष साक्षरता 69.67 एवं महिला साक्षरता 48.76 एवं औसत 59.9 प्रतिशत है।[28] शिक्षा का यह विकास बहुत पुराना नहीं है, क्योंकि जिनके बारे में कहा जाता था कि ये जंगलों, पहाड़ों एवं कंदराओं में रहने वाले मानव हैं और बाहरी मनुष्य को देख कर अंदर जंगलों में गायब हो जाते हैं। वे ना केवल अब शिक्षित हैं बल्कि वे शासकीय नौकरियों में आने लगे हैं। तथा बहुत से समुदाय के लोगों ने जीवकोपार्जन के लिए कृषि कार्य को अपना लिया है। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में 50.93 प्रतिशत अनुसूचित जनजातियां कृषक के रूप में बांटा गया है।[29] अर्थात् ये जनजातियां अब कृषि कार्य में संलग्न होकर स्थायी निवासी करने लगे है, अब वे अपने स्वास्थ्य के प्रति भी सजग हो गये हैं। वे बीमार होने पर अपने परम्परागत उपायों के साथ आधुनिक दवाओं को भी अपनाने लगे हैं। वैश्वीकरण के प्रभाव से छत्तीसगढ़ की जनजातियों के शिल्प कला से बनाई गई सामग्रियां बहुत लोकप्रिय हो चुकी हैं। इस प्रसिद्धी का लाभ उठाने के लिये अन्य बाहरी लोगों ने आर्थिक लाभ के लिये उन सामग्रीयों का बड़ी मात्रा में उत्पादन प्रारंभ कर दिया है। जिससे जनजातियों के हाथ से जीविकोपार्जन का एक महत्वपूर्ण जारिया छीन जाने का खतरा पैदा हो गया है। बस्तर की बेलमेटल अथवा ढोकरा शिल्प को राज्य सरकार के द्वारा पेटेंट किया गया है। साथ ही भारत सरकार के सहयोग से छत्तीसगढ़ के शिल्प बेलमेटल (ढोकरा) आयरन एवं काष्ठ शिल्प को पेटेंट किया गया है।[30] यह जनजाति शिल्प कला एवं जनजातियों की आर्थिक सुरक्षा के लिये बड़ा कदम है।

छत्तीसगढ़ सरकार ने छत्तीसगढ़ हस्तशिल्प विकास बोर्ड की स्थापना की जिसका उद्देश्य हस्तशिल्पों के संरक्षण संवर्धन और उनका विस्तार करना है। प्रदेश में 14 प्रकार के शिल्पकलायें प्रचलित हैं जिसमें मुख्य हैं ढोकरा शिल्प, लौह शिल्प, काष्ठ शिल्प, पत्थर शिल्प, मिट्टी शिल्प, गोदना शिल्प एवं भित्ति शिल्प है। इसके अलावा कौड़ी शिल्प, पारंपरिक वस्त्र, बांस शिल्प एवं विविध शिल्प में तुम्बा

शिल्प, शीशल शिल्प, पैरा शिल्प एवं ट्रायबल पेंटिंग आदि प्रमुख हैं।[31] इन शिल्पों के अनेक शिल्पकारों एवं जनजातिय नृत्य के कलाकारों को राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हो चुका है एवं वे अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कलाकार माने जाते है। अभी कुछ समय पहले भित्ति चित्र अर्थात कच्ची मिट्टी से दिवालों में कलाकृति बनाने वाली सरगुजा की सोना बाई को अमेरिका में एक माह के लिए आमंत्रित किया गया था। इसी तरह अन्य शिल्पकारों एवं कलाकारों को आमंत्रित किया जाता है। छत्तीसगढ़ की जनजाति शिल्पकलाओं से देश विदेश के बड़े-बड़े होटलों एवं भवनों में सजावट की जा रही है लोग अपने ड्राइंग रूम को इससे सजाने में गर्व महसूस कर रहे हैं, यह वैश्वीकरण का ही सुखद प्रभाव है, इन सब उपलब्धि के साथ ही यह भी कटु सत्य है कि जनजाति शिल्प एवं कला का व्यवसायिकरण हो चुका है, जिसके कारण उन्हें वह लाभ नहीं मिल पा रहा है जो उन्हें मिलना चाहिए जिसके कारण उनकी दशा में सुधार नहीं हो पाया है।

वैश्वीकरण का महत्वपूर्ण प्रभाव यह भी पड़ा है कि राजनैतिक नृजातीय भावना का उदय, इसके तहत छत्तीसगढ़ ही नहीं संपूर्ण भारत में जनजातियों के धर्म के लिए विवाद उत्पन्न हुआ है। इससे पूरे विश्व में राजनीतिक हलचल पैदा हो गई है। परिणामस्वरूप नृतत्वशास्त्रियों ने इस समस्या को हल करने के लिये योजनायें प्रस्तुत किया है तीसरी दुनियां के देशों में धार्मिक कट्टरता और नृजातीय पुनरूत्थान से चिंतित समीर अमीन एक वैकल्पिक कार्य योजना की रूप रेखा प्रस्तुत की है।[32] छत्तीसगढ़ में भी जनजातियों के धर्म को लेकर मत-मतांतर एक राजनीतिक मुद्दा बना हुआ है। वैश्वीकरण ने वर्तमान में नृजातीय अथवा मानव शास्त्र के अध्ययन के अलग-अलग उपागम स्थापित हो गये। पुरातनवादी (Prim Ordialist), कार्यकारणवादी (Instrumentalist), संरचनावादी (Constructivist)[33] दृष्टिकोण के विद्धान अपने-अपने विचार के अनुसार जनजातियों का अध्ययन कर रहे है। इसका प्रभाव जनजाति समुदायों पर भी पड़ने लगा है। वर्तमान में छत्तीसगढ़ के बहुत से जनजातीय समुदाय अपने को रामायण एवं महाभारत के योद्धाओं एवं अन्य प्रसिद्ध पौराणिक योद्धाओं को अपने समुदाय का पूर्व पुरुष मानने लगे हैं। संक्षेप में वैश्वीकरण का छत्तीसगढ़ पर प्रभाव देखें तो बिंदुवार निम्न प्रकार से उल्लेखित कर सकते हैं।

सामाजिक प्रभाव :

1. जनजाति समुदायों द्वारा आधुनिक जीवन अपनाना प्रारंभ किया इसके अंतर्गत शिक्षा में विकास हुआ है इससे शहरी सभ्यता के प्रति झिझक दूर हुआ और वे बाहरी वातावरण के प्रति सहज हो गये हैं।

2. संयुक्त परिवार में रहने वाले जनजातीय समुदाय, अब एकल परिवार होते जा रहे हैं।
3. स्वास्थ्य के प्रति जागरूक हो गये हैं, अब झाड़-फूंक के साथ ही आधुनिक पद्धति से इलाज करा रहे हैं।
4. घरेलू उपकरण भी आधुनिक होने लगे हैं।
5. सामाजिक संगठन जैसे युवागृह अब लुप्त होने लगे हैं।
6. शहरों के निकट या संपर्क में रहने वाले जनजाति समूहों में आधुनिकता का प्रभाव अधिक दिखाई पड़ रहा है।
7. खान-पान वस्त्र आदि में आधुनिक प्रभाव दिखने लगा है।
8. सामाजिक परंपराओं के प्रति जागरूक हो गये हैं अत: पूर्व की तरह भ्रमपूर्ण मूल्यांकन के प्रति सजग हो गये हैं।

सांस्कृतिक प्रभाव :

1. उनकी शिल्पकला को वैश्विक प्रशंसा मिलने के कारण उन्हें अपने पर गर्व हुआ है इससे शिल्पकला में दक्षता प्राप्त किया तथा उनकी कला एवं तकनीकी ज्ञान को पहचान प्राप्त हुई।
2. छत्तीसगढ़ के जनजातिय नृत्य, गीत एवं उत्सव मेलों को देश-विदेशों में ख्याति प्राप्त हुई और जो कल तक उनके समूह के मनोरंजन के लिये सांस्कृतिक कार्यक्रम मात्र था, वह अब छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक विशेषतायें माने जाने लगे हैं, और उनको देखने के लिए देश विदेश से लोग आने लगे जिससे छत्तीसगढ़ में सांस्कृतिक पर्यटन को बढ़ावा मिला है।
3. जनजाति के उत्पाद एवं शिल्प को पर्यटन उत्पाद के रूप में छत्तीसगढ़ में शासकीय मान्यता है इसीलिये उन सामग्रियों की बिक्री हेतु केंद्र एवं राज्य के द्वारा देश के कई स्थानों में हस्तशिल्प बोर्ड द्वारा एम्पोरियम संचालित हो रहे हैं, यह जनजातियों के लिए आर्थिक रूप से लाभदायक है साथ ही उनके शिल्प का प्रचार एवं प्रसार भी हो रहा है।
4. बाहरी सम्पर्क के कारण छत्तीसगढ़ के जनजातिय शिल्प के विषयवस्तु में परिवर्तन होने लगा है, जैसे आधुनिक एवं नवीन डिजाईन बनाए जाने लगा है। छत्तीसगढ की जनजातिय कलाकार अन्य स्थानों के कलाकारों एवं कलाओं के संपर्क में आने से अपनी परंपरागत सामाग्रियों से ही नई वस्तुओं का उत्पादन कर रहे हैं साथ ही कार्य को जल्दी पूर्ण करने के

लिए आधुनिक उपकरणों का प्रयोग कर रहे है।

दुष्प्रभाव :

1. आधुनिक सभ्यता के साथ संपर्क में आने एवं शिक्षा के विकास के कारण उनकी संस्कृति की विशिष्टतायें समाप्त होती जा रही है। जनजातिय समुदाय की नयी पीढ़ी अपनी संस्कृति को त्याग करने लगी है जैसे गोदना प्रिय बैगा अब गोदना नहीं बना रहे हैं। अपने समुदाय के साथ रहने के स्थान पर वे नौकरी एवं अन्य कार्यों के लिए बाहरी क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं। अत: उनकी परंपरायें नष्ट होने लगी हैं।
2. प्रत्येक सरकार आर्थिक विकास के लिये राज्य में उद्योग धंधों को स्थापित कर रहे हैं जिसके कारण वन क्षेत्रों में कारखानों की स्थापना की जा रही है क्योंकि जहाँ कच्चा माल प्राप्त होता है उस स्थान पर कारखाना स्थापित होने से खर्च में कमी आती है। अत: नगरों का प्रसार, खनिजों का दोहन, वनोपज को एकत्र करने का अधिकार ठेके में देना आदि कारणों से जनजातियों का प्राकृतिक निवास नष्ट हो रहा है और वे विस्थापित होने के लिए विवश हैं।
3. मंद अर्थात् शराब उनके सामाजिक-धार्मिक जीवन का अंग है, जिसका वे प्रत्येक संस्कार में उपयोग करते हैं, किंतु अब वे शराब के आदि हो गये हैं किंतु बाहरी समाज के सम्पर्क के कारण वे उनके जीवन वे शराब के आदी हो गये है जिससे उनका जीवन एवं परिवार बरबाद हो रहा है। वे इसके कारण निर्धनता का जीवन जी रहे हैं साथ ही अनेक बीमारियों के शिकार हो रहे हैं।
4. उनके शिल्पकला की प्रसिद्धि एवं मांग का फायदा पूँजीपति उठा रहे हैं। उन्होंने जनजाति शिल्पकला का व्यवसायिकरण कर दिया है, अपने लाभ के लिये जनजातियों के हस्तशिल्प को आधुनिक उपकरणों से बना कर बेच रहे हैं। यद्यपि शासन के द्वारा कुछ जनजाति शिल्पकला का पेटेंट किया गया है किंतु यह प्रयास बहुत ही अल्प है क्योंकि इसके बाद भी जनजाति शिल्प का व्यापारिक उत्पाद हो रहा हैं, जिसके कारण उन शिल्प सामग्री की बढती हुई मांग का जनजाति समुदाय को लाभ नहीं मिल पा रहा है। बल्कि वे बेरोजगार होते जा रहे हैं।

सुझाव :

1. जनजाति समुदायों को उनके निवास क्षेत्र में खेती योग्य जमीनों में

मालिकाना हक एवं वनों से आवश्यक सामग्री लेने का अधिकार दिया जाय।

2. उनके द्वारा उत्पादित वस्तुयें जैसे वनोपज, हस्तशिल्प एवं अन्य सामाग्री पर उनका अधिकार हो एवं उस पर प्राप्त लाभ का अधिकतम हिस्सा उन्हें प्राप्त हो।
3. उनके शिल्प एवं अन्य कलाओं को राज्य शासन के साथ केंद्र शासन द्वारा भी संरक्षित किया जाय एवं पेटेंट किया जाय, साथ ही उस शिल्प सामग्री को अनाधिकार बनाकर बेचने वालों पर कानूनी कार्यवाही की जाय।
4. वनों की अंधाधुंध कटाई बंद की जाये, विकास योजनायें ऐसी बनाई जाय जिससे वनों की कटाई नहीं हो। जहाँ से जनजातियों का विस्थापन अनिवार्य होता हो तो तत्काल उनकी उचित निवास एवं जीवकोपार्जन की व्यवस्था की जाय।

संदर्भ-सूची

1. नदीम हसनैन, *जनजातीय भारत*, जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली 2005 पृ. 3।
2. उपरोक्त पृ. 12।
3. हीरालाल शुक्ल, *छत्तीसगढ़ ज्ञान कोष*, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल 2006 पृ. 145।
4. नदीम हसनैन, *सामान्य मानवशास्त्र*, जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली 2004 पृ. 5।
5. चंद्रमोहन पालिवाल, *आदिवासी हरिजन आर्थिक विकास बस्तर जिले के संदर्भ में*, नरिन बुक सेंटर नई दिल्ली 1986 पृ. 01।
6. हट्टन सेन्सस ऑफ इंडिया 1931 खंड 1, पृ. 391, उद्दृत्त पालिवाल, उपरोक्त से।
7. बेरियर एल्विन, *दि बैगाज*, ज्ञान पब्लिकेशन हाउस नई दिल्ली 2007 पृ. 519।
8. चंद्रमोहन पालीवाल, वही पृ. 01।
9. इग्नु, भारतीय इतिहास लेखन की विभिन्न दृष्टियां और विषय, एम. एच. आई.-03 खंड 7 पृ. 49।
10. इग्नु, *आधुनिक समाज*, एम. एच. आई.-06 खंड 7 पृ. 20।
11. टी. के. वैष्णव, *छत्तीसगढ़ की जनजातियां*, छ.ग. राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी रायपुर 2017 पृ. 11।

12. नदीम हसनैन, *जनजातीय भारत*, वही पृ. 383।
13. उपरोक्त पृ. 357।
14. 'जागार', बस्तर का लोकोत्सव है इसके अंतर्गत चार जागार आते हैं, तीजा जागार, लक्ष्मी जागार, बाली जागार एवं आठे जागार। यह संस्कृत में यज्ञ शब्द से निकला है इसका अर्थ है जागना, इसमें जनजातियां अपने विशिष्ठ देवी-देवताओं का आह्वान कर उन्हें जागृत करते हैं।
15. नदीम हसनैन, जनजातीय भारत वही पृ. 365।
16. उपरोक्त 151।
17. एच. एस. माथुर (1995) उद्दृत्त, उपरोक्त पृ. 205।
18. उपरोक्त, बी.डी. शर्मा का पत्र भारत के राष्ट्रपति के नाम पृ. 209।
19. *छत्तीसगढ़ संदर्भ* 2014, जन संपर्क संचालनालय छ.ग. 2015 पृ. 426-27।
20. पटैया शिवअनुराग, *छत्तीसगढ़ वार्षिकी* 2019, छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी राज्य अकादमी रायपुर 2018 पृ. 295।
21. राम भरोसे अग्रवाल, *गोंड़ जाति का सामाजिक अध्ययन, गोंड, संस्कृति, इतिहास*, गोंडी पब्लिकेशन ट्रस्ट मंडला, 2005 पृ. 27।
22. हीरालाल शुक्ल, वही पृ. 164।
23. रामभरोसे अग्रवाल, वही पृ. 18।
24. *भारत 2016*, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, 2016 नई दिल्ली 2004, पृ. 230।
25. नदीम हसनैन, *सामान्य मानव शास्त्र*, जवाहर पब्लिशर्स एवं डिस्ट्री ब्यूटर्स नई दिल्ली 2004, पृ. 230।
26. संजय अलंग, सुमिता अलंग, *छत्तीसगढ़ के हस्तशिल्प*, अनामिक प्रकाशन इलाहाबाद 2015, पृ. 160।
27. नदीम हसनैन, जनजातीय भारत वही पृ. 93।
28. *छत्तीसगढ़* संदर्भ 2014, वही पृ. 425।
29. नदीम हसनैन, वही पृ. 452।
30. छत्तीसगढ़ संदर्भ 2014, वही पृ. 335।
31. *छत्तीसगढ़ हस्तशिल्प विकास बोर्ड का फोल्डर*।
32. नदीम हसनैन, *सामान्य मानवशास्त्र*, वही पृ. 330-331।
33. उपरोक्त, पृ. 333।

डॉ. किशोर कुमार अग्रवाल
सेवानिवृत्त प्राध्यापक इतिहास
रायपुर (छ.ग.)

❑ ❑ ❑

कांकेर जिले की गोंड जनजातीय परम्परागत न्याय व्यवस्था पर आधुनिकीकरण का प्रभाव

• डॉ. बन्सो नुरूटी

भारत के ऐतिहासिक युग के प्रभात काल में, हमें एक ऐसी जनजातीय लोगों की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था की जानकारी मिलती हैं जो निश्चय ही एक महान् आश्चर्य था, इस व्यवस्था को संघ या गणराज्य संघ पुकारते हैं। वह व्यवस्था एक ही समय में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सैनिक व्यवस्था को नियंत्रित करती थी। यही कारण है, उस काल में भारत अपनी सभ्यता की शानदार ऊँचाइयों पर जा पहुँचा, दूसरी बार शहरीकरण हुआ तथा इतिहास के स्वर्ण युग की आधारशिला रखी गई।[1] संघ का अर्थ है एक जुट होना या एकत्रित होना। संघ या गण एक अव्यवथित ढंग से एकत्रित होना नहीं है, बल्कि एक निश्चित उद्देश्य के लिए अनेक लोगों को एक जुट करना है।[2]

वैदिक युग में यह 'गण' पद या शब्द जनजातियों को सूचित करता था। मगर के.पी. जायसवाल के अनुसार 'बाद में यह पद सरकार के रूप को प्रदर्शित या सूचित करने लगा।'[3] दूसरे शब्दों में संघ 'राज्य' का सूचक है। पतंजलि के कथन के अनुसार इसे संघ इसलिए पुकारा जाता है क्योंकि यह एक ईकाई है। जैसे कि हम आधुनिक युग में देखेंगे संघ एक ईकाई है, राजनीतिक इकाई जिसकी एक राजा के समान भुजाएं होती हैं या निगम के रूप में एकत्र करना है।[4] हमें संघ गणों की प्राचीन उत्पति के इतिहास के जानकारी मिलता है कि मानव सभ्यता के विकास क्रम में विभिन्न कालों तथा स्थितियों में वस्तु विकास के सिद्धांत ने बहुत बड़ा हाथ बंटाया है। सभी विद्वान इस विचार पर एक मत हैं कि संघ की उत्पति, चाहे मानवीय सभ्यता के विकास क्रम या काल की कोई स्थिति रही हो, सदा जनजातीय ही रही है।[5] प्रसिद्ध इतिहासकार डी. आर. भंडारकर इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं' राजनीतिक

संघों का गण रूप संघों का सर्वोत्तम रूप है। वह गण, जैसा कि कात्यायन या कौटिल्य ने हमारे समझने के लिए बतलाया है, वास्तव में चारित्रिक रूप से जनजातीय है तथा वह क्षत्रिय (सैनिक) व्यवस्था तक सीमित था।'[6] इस विचार की पुष्टि के. पी. जायसवाल के विचारों से होती है। उन्होंने बताया 'प्रत्येक राज्य का आधार, प्रत्येक युग तथा तिथियों में अधिकतर अनुवांशिक, जनजातीय और राष्ट्रीय रहा है।'[7] यहाँ 'जनजातीय' पद का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—कल्पना करें कि बहुत प्राचीन काल में एक टोकरी बनाने वाला अथवा कुम्भकार परिवार, एक स्थान विशेष में बस गया, जो उसके हस्त कौशल के उपयुक्त था। उस परिवार के शिल्पिक धंधे एवं संख्या में वृद्धि हुआ तथा दस पीढ़ियों के बाद वह परिवार एक ही खून से सम्बन्धित 500 टोकरी बनाने वाले अथवा कुम्भकारों का पूरा गाँव बन गया जिसका मुखिया एक वृद्ध पुरुष या ग्रामीण था। यहाँ कोई अकेला चल या अचल सम्पत्ति का स्वामी नहीं था तथा सारा गाँव या संस्था एक निगम संस्था की तरह काम कर रही थी। इतिहास में ऐसे अनेक गाँवों के उदाहरण मिलते हैं। जातक कथाओं के अनुसार जिनका रचना काल 600-500 ई. पू. है, ऐसे अनेक गाँव बनारस के आस-पास फलफूल रहे थे।[8] डी.डी. कोसम्बी लिखते हैं' हम ऐसे, सारे के सारे गाँवों के बारे में पढ़ते हैं जो मुख्यतया बनारस के चारों ओर स्थित थे जो टोकरी बनाने वाले, कुम्भकार, लुहार, ठठेरे, बुनकर आदि लोगों के थे। ये शिल्पिक लोग, भले ही एक खून से सम्बन्धित थे, अक्सर अपनी श्रेणी या संघ बना लेते थे। जिनका जनजातीय प्रकार का संगठन प्राचीन काल से ही पुश्त-दर-पुश्त चलता था। आज भी असम में अर्ध जनजातियों में देखा जा सकता है। वे संघ इकाई के रूप में भारी धन के स्वामी होते थे जो किसी सदस्य की निजी सम्पत्ति नहीं होती थी। मगर आवश्यकता पड़ने पर, संघ या संघ की समिति प्रमुख के द्वारा, संघ के सदस्य अथवा किसी बाहरी संस्था या अकेले को बांटी जा सकती थी। ऐसी परिपाटी भारत की गरीब शिल्पिक जातियों में आज भी देखी जा सकती है।'[9] इन गाँवों का अपना प्रशासन होता था जो ग्रामीण की देख-रेख में काम करता था। गाँव का प्रत्येक सदस्य, एक सैनिक होता था, जो आवश्यकता पड़ने पर गाँव को सुरक्षा प्रदान करता था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सन् 1950 ई. में जनजातीय सुमदायों की पहचान कर 212 जनजातियों की अनुसूची तैयार कर 'अनुसूचित जनजाति आदेश' 1950 ई. में लागू किया गया। इन सूचीबद्ध जनजातियों को ही 'अनुसूचित जनजाति कहा जाता है।[10] भारत की कुल जनसंख्या 121 करोड़

(1,21,01,93,422) का 8.2 प्रतिशत भाग जनजातियों का है। जनजातियों का रहन-सहन, रीति-रिवाज़ अपनी एक अलग विशेषता लिए हुए होते हैं, उनकी अपनी एक अलग संस्कृति होती हैं जो दूसरे समाज या लोगों से अलग करता हैं। उनकी पारिवारिक व्यवस्था, सामुदायिक जीवन, व्यवसाय तथा उनके समाज में नारी की स्थिति और धार्मिक संगठन की भिन्न-भिन्न संरचना होती हैं जैसे की दुर्खीम ने आस्ट्रेलिया की अरूंटा जनजाति का अध्ययन करके पाया की उनमें धार्मिक रीति-रिवाज के कारण एकता की भावना तथा सामूहिक प्रतिनिधित्व पाया जाता है।[11]

छत्तीसगढ़ भारत का अत्यन्त महत्वपूर्ण राज्य है, जो की भारत के मध्य भाग में स्थित है। छत्तीसगढ़ में अन्य जातियों के अलावा 42 जनजातियाँ पायी जाती है। जिनमें प्रमुख गोंड, उराँव, कमार, बिरहोर, कोरवा, कोरकू, बिंझवार, कंवर, हल्बा, प्रधान, दोर्ला, पांडो, बैगा, मुरिया, धुरवा, माड़िया, भारिया, अगारिया जनजातियाँ आदि हैं। छत्तीसगढ़ की कुल जनसंख्या में जनजातियों की संख्या को देखें तो लगभग 31 प्रतिशत जनसंख्या जनजातियों की है।[12] प्रस्तुत अध्ययन में छत्तीसगढ़ राज्य के कांकेर जिले की गोंड जनजाति की न्यायिक व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है।

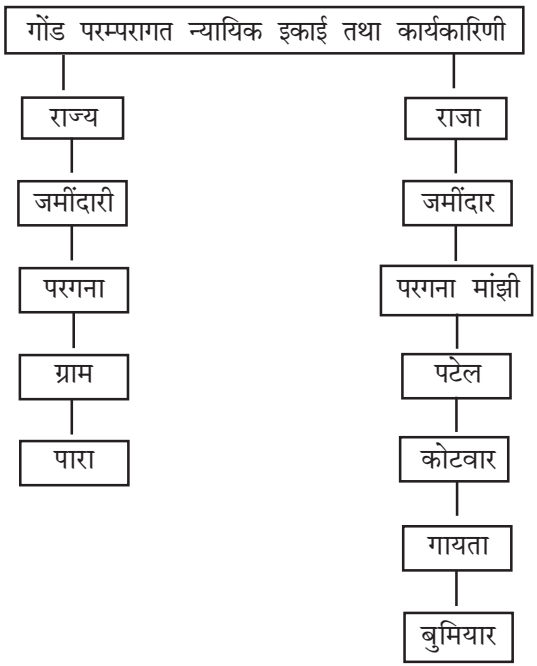
जनजातियों की स्थिति तथा उनकी राजनीतिक संरचना क्षेत्रीय पक्ष को प्रदर्शित करती है। जनजातीय पंचायत, ग्राम पंचायत अथवा ग्राम प्रधान का निर्णय जनजातियों के लिए कानूनी निर्णय के समान होता है। प्रत्येक जनजातीय ग्रामों में अपने मामलों की विवेचना करने के लिए अपनी राजनीतिक कार्य प्रणाली होती है। प्रत्येक जनजातीय समुदाय का अपना संगठन होता है, यह संगठन ऐसे क्षेत्रों में जहाँ पर बाह्य दुनियाँ का प्रभाव अधिक है अपेक्षाकृत कमजोर होता है किन्तु दुर्गम क्षेत्रों में यह अत्यधिक मजबूत होता है।[13]

आधुनिक समाज की भाँति आदिम समाज में भी प्रशासन संगठन पाया जाता है। प्रशासन समाज के व्यवहारों का नियन्त्रण करते हैं। गोंड जनजाति का पारम्परिक न्याय व्यवस्था वंश, गोत्र परम्परा, क्षेत्रीयता एवं धार्मिक विश्वासों पर आधारित होता है। पारम्परिक गोंड न्याय व्यवस्था के अंतर्गत ग्राम सबसे छोटी इकाई होती है। कांकेर क्षेत्र में परम्परागत कानूनों का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य समझता है।[14]

गोंड जनजाति की सामाजिक व्यवस्था सुसंगठित होता है। गाँव के विभिन्न सामूहिक कार्यों के निष्पदान हेतु एक मुखिया व्यक्ति होता है, इनमें

गाँव की पंचायत का बहुत महत्व होता है। सम्पत्ति, जमीन, पारिवारिक झगड़ों, धार्मिक विवाद आदि समस्याओं का समाधान वे स्वयं करते हैं। भारत में ब्रिटिश न्यायालयों की स्थापना से पहले गोंड जनजाति समाज में पंचायत के माध्यम से समस्याओं का निपटारा किया जाता था।[15]

गोंड परम्परागत न्याय व्यवस्था तथा कार्यकारिणी गोंड जनजाति के परम्परागत न्यायिक इकाई तथा उसके कार्यकारिणी को निम्नलिखित आरेख चित्र के माध्यम से दर्शाया जा सकता है —



उपर्युक्त कार्यकारिणी के पद, कार्य सम्बन्धी विवरण निम्नानुसार है—

बुमियार :

हजारों वर्षों पहले कोई व्यक्ति गाँव की बसाहट की परिकल्पना लेकर आया था, जिसने अपनी भावनाओं को इस धरती माता (जिम्मिदारिन याया) तक पहुँचाने के लिये किसी पेड़ की ढहनी को इस स्थान पर रखकर वापस चला गया था, इस बसाहट की परिकल्पना करने वाले प्रथम व्यक्ति को 'बुमियार' (बुम अर्थात् भूमि) कहा जाता है। बुमियार को सकारात्मक लगा तब कई माह बाद वह अपनी पत्नी

के साथ पुरखों के किसी प्रतीक को भी लाया था। उसने जंगल को साफ-सफाई कर रहने योग्य जगह बनाई और गाँव के जिस स्थान पर अपने पुरखों के प्रतीक को रखा उसे 'राऊड़' कहा जाता है, जिसके बाद धीरे-धीरे गाँव की बसाहट की प्रारंभ हुई। गाँव की बसाहट हेतु मिट्टी से अनुमति लेने की विधि है, अगर याया अनुमति नहीं देती तो गाँव का बसाहट सम्भव नहीं था। मिट्टी से अनुमति लेने के लिए बुमियार के साथ उसके पुरुष रिश्तेदारों ने कई रात उस राऊड में व्यतीत किये, जहाँ उनके पुरखों के प्रतीक को रखा गया था, जिसने योग्यता सिद्ध की उसे 'गायता' नियुक्त किया गया। यह योग्यता स्वयं बुमियार को भी प्राप्त हो सकती है। गायता ने मिट्टी से अनुमति मिलने के बाद उसकी स्थापना की, इसलिये गायता गाँव का सांस्कृतिक प्रमुख होता है।[16]

जब धरती माता ने बसाहट की अनुमति दी, तब उसके प्रतीक और राऊड में रखे पेन (देवता) के निर्देशन से गाँव का सीमांकन हुआ, जितनी जमीन धरती माता बुमियार को देती है, वह उतने पर ही सीमांकन करता है। प्रकृति व उसके प्रतीकों के भाव को समझने वाले को 'सिरहा' नियुक्त किया जाता है। प्रकृति की सेवा-अर्जी करने की योग्यता प्राप्त व्यक्ति को 'पुजारी' नियुक्त किया जाता है।[17]

गायता:

यह धरती का पुजारी होता है, गोंड जनजाति में धरती का स्थान सबसे महत्वपूर्ण होता है। धरती को जननी देवी और अलौकिक शक्तियों के पुंज के रूप में माना जाता है यही कारण है, कि गोंडों में धरती के पुजारी अर्थात् गायता को अत्यन्त श्रद्धा और सम्मान से देखा जाता है। यह ग्राम स्तर पर होने वाले समस्त प्रकार के धार्मिक, सामाजिक एवं दैवीय अनुष्ठानों को सम्पन्न करने के लिए अधिकृत होता है। गाँव की सुख-समृद्धि एवं खुशहाली के लिए ग्राम देवी-देवताओं की पूजा अर्चना सम्पूर्ण गाँव की ओर से गायता करता है।[18] गाँव को सुरक्षित रखने की सम्पूर्ण जिम्मेदारी गायता की होती है, जो इसकी सीमाओं पर अलग-अलग दिशाओं में दस राव पेनों (देवताओं) की स्थापना करता है। इस सुरक्षा तन्त्र का निर्देशक स्वयं गायता होता है। यह मानव व देवताओं के रहस्यों के बीच एक माध्यम का कार्य करते हैं। गायता हमारे सामाजिक व्यवस्था का सर्वोच्च सांस्कृतिक पद है, जिसका निर्धारण आनुवांशिकता के क्रम में पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता है।

कोटवार :

गाँव के संदेशवाहन हेतु 'कोटवार' की नियुक्ति किया जाता है। गाँव के

समस्त सरकारी कार्यों, सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों के संचालन में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कोटवार प्राय: गोंड जाति के व्यक्ति को बनाया जाता है। कोटवार का पद भी वंशानुगत होता है।[19]

पारा (टोला) मुखिया :

पारम्परिक गोंड न्यायिक व्यवस्था के अंतर्गत ग्राम सबसे छोटी इकाई है। यह ग्राम दूर-दूर बसे छोटे-छोटे टोलाओं में विभक्त होता है। टोला की गतिविधियों को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए टोला मुखिया होता है। टोला मुखिया अपने क्षेत्र में घटित होने वाली प्रत्येक घटना, विवाद की सूचना पटेल को देता है तथा पटेल को इन समस्याओं के निराकरण में मदद करता है। इसके अलावा वह ग्राम स्तरीय कार्यों में ग्राम के गायता को भी सहयोग करता है।[20]

पटेल :

गाँव की नीति परिपालन करवाने हेतु 'पटेल' नियुक्त किया जाता है। पटेल ग्राम का प्रमुख व सम्मानित व्यक्ति होता है। गाँव से सम्बन्धित समस्त कार्य और गतिविधि में इसकी प्रत्यक्ष भूमिका होती है तथा यह गाँव का सबसे अधिक साधन सम्पन्न व्यक्ति भी होता है। पटेल होना या कहलाना वर्तमान में भी गरिमा का द्योतक है। पटेल का पद वंशानुगत होता है।[21] प्रत्येक ग्राम में स्थानीय ग्राम परिषद् (भूमकाल) का प्रमुख पटेल ही होता है तथा वह बुजुर्ग परिषद् की सहायता से विभिन्न मामलों का समाधान करता है। प्रत्येक ग्राम में एक मुखिया व्यक्ति होता है, मुखिया का पद परम्परागत रहता है, इसकी बात को मानना प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य समझता है। यथा ग्राम के व्यक्तियों के लड़ाई-झगड़े उसी ग्राम के लोग पटेल के माध्यम से निपटारा कर लेते हैं।[22] पटेल ग्राम के सदस्यों एवं परगना माँझी के मध्य की कड़ी के रूप में परगना माँझी एवं ग्रामीणों के मध्य मध्यस्थ का कार्य करता है।

पटेल के प्रमुख कार्य (1) पटेल पूर्व में ग्राम से राजस्व वसूल करने का कार्य करता था तथा वसूली के लिए फसल कटाई के पश्चात् एक दिन निश्चित करता था । (2) किसी बाहरी व्यक्ति या शासकीय कर्मचारी का गाँव में प्रवेश होने पर पटेल को सूचित किया जाता है, पटेल उसका हर सम्भव सहयोग करता है। (3) ग्राम में शांति व्यवस्था बनाये रखना तथा ग्राम क्षेत्र से सम्बन्धित जानकारी परगना माँझी को देता है। (4) ग्राम के बुजुर्गों तथा गायता से सलाह लेकर ग्राम में धार्मिक उत्सव का दिन निश्चित करता है। (5) पेंदा खेती करने हेतु भूमि के वितरण में गायता की सहायता करता है।[23]

पटेल एवं ग्रामीण गाँव के केन्द्रीय स्थान या युवाओं के युवागृह पर एकत्रित होते हैं तथा सभी व्यक्ति बैठकर गाँव के मामलों की विवेचना करते हैं। प्राय: ग्रामीण क्षेत्रों में कोई गम्भीर प्रकृति के मामले नहीं होते हैं, अत: इन बैठकों को वास्तविक में सामाजिक ही माना जाता है। मामले प्राय: धार्मिक अनुष्ठानों तथा कृषि से सम्बन्धी समस्याओं से सम्बन्धित ही रहते हैं।[24] पटेल गाँव के सभी व्यक्तियों के लिए विश्वास और मर्यादित के रूप में माना जाता है, आज भी वह परम्परागत रूप में अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह करता है।[25] कांकेर क्षेत्र में स्वशासन का उदाहरण आज भी देखने को मिलता है। यह क्षेत्र परगनों में विभक्त है। अपने शांत जीवन में वे किसी प्रकार का हस्तक्षेप पसंद नहीं करते तथा शहरी व्यक्ति विशेष रूप से कर्मचारियों के प्रति सदैव सशंकित होते हैं।

परगना माँझी :

गाँव की समग्र निगरानी के लिये 'माँझी' की नियुक्ति होती है। अनेक गाँवों को मिलाकर परगना बनाया जाता है तथा इसके मुखिया को परगना माँझी कहा जाता हैं। मांझी जनजातीय संस्कृति को एक सूत्र में पिरोकर रखने का काम करता है। परगना माँझी उस परगना के प्रमुख गोत्र का ही व्यक्ति होता है तथा वह समकालीन राज्य व्यवस्था में अपने परगना क्षेत्र के निवासियों का प्रतिनिधित्व करता हैं। कांकेर क्षेत्र अनेक परगनों में विभक्त है, जिसका प्रमुख परगना माँझी होता है, परगना माँझी का पद वंशानुगत होता है तथा वह अपने परगना का सर्वाधिक प्रभावशाली व शक्ति सम्पन्न व्यक्ति होता हैं। परगना माँझी अपने क्षेत्र के सभी समस्याओं का निराकरण करने का प्रयास करता हैं।[25] तथा विशिष्ट प्रकार के मामलों के लिए दण्डित करने का अधिकार भी रखता हैं। यद्यपि पंचायत को किसी भी व्यक्ति का धार्मिक रूप से बहिष्कार करने का अधिकार होता है और परिवार में पुन: प्रवेश केवल प्रतिनिधि समूह के आदेशों द्वारा ही सम्भव होता हैं। परगना माँझी के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं—

(1) शासन के समक्ष अपने परगनावासियों का प्रतिनिधत्व करना।

(2) जमींदार के आदेश को जनता तक नियत माध्यमों द्वारा प्रेषित करना।

(3) सरकारी अधिकारियों या कर्मचारियों के परगना भ्रमण के दौरान उनके साथ रहना।

(4) परगना पेन (गोत्र देव) के उत्सव का आयोजन करना ।

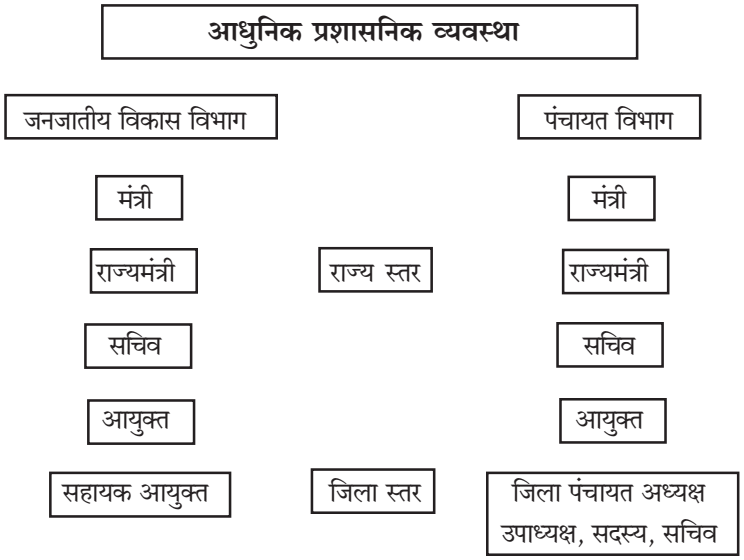
(5) गाँव के आंतरिक व बाह्य विवादों व झगड़ों के निपटारा में सहयोग करना तथा अन्य परगना से विवाद को सुलझाना हैं।[26]

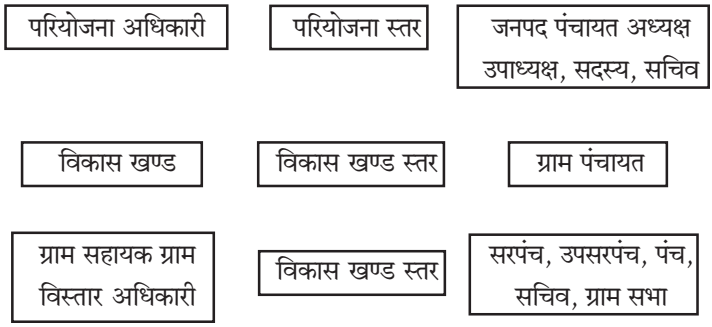
बुमियार, गायता, सिरहा, कोटवार, पटेल, माँझी इन सभी को अपनी-अपनी योग्यता सिद्ध करनी होती है। भूमि में बसाहट करने वाला बुमियार कहलाया और उसी भूमि में जब विपत्ति आती हैं, तब बुमकाल होता है। बुमकाल एक व्यवस्था है, जो बुमियार, गायता, पुजारी, कोटवार, पटेल, और माँझी से बना है। यह सम्पूर्ण गाँव का निर्देशक होता है। इसके मर्जी के बिना उसकी सीमा के अन्दर कोई भी परिवर्तन सम्भव नहीं है, इसलिये हम गोंड जनजाति की जमीन किसी एक व्यक्ति की नहीं, अपितु एक व्यवस्था की है, क्योंकि इसे किसी व्यक्ति ने नहीं बल्कि उस व्यवस्था ने बसाया है। इस जमीन को बाहर का व्यक्ति खरीद नहीं सकता है और न ही कोई उसे बेच सकता है। यही बुमकाल का निर्णय है, जिसमें इस व्यवस्था के अन्दर किसी भी तरह के व्यक्तिगत, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक हस्तक्षेप निषेध है।[27]

जमींदार :

परगना से उच्च स्तर को जमींदारी कहते थे। अनेक जमींदारी से मिलकर राज्य बनता था। सम्पूर्ण बस्तर राज्य का एक राजा होता था तथा कांकेर क्षेत्र अनेक जमींदारी क्षेत्र में आने के कारण अलग-अलग जमींदारों द्वारा शासित होता था।[28]

वर्तमान में गोंड जनजातीय क्षेत्र में आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत जनजातीय विकास विभाग तथा नयी त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था संचालित है, जिन्हें आरेख चित्र के माध्यम से निम्न प्रकार से दर्शाया गया हैं—





गोंड जनजातीय ग्राम पंचायत में सरपंच, उपसरपंच, पंच तथा सचिव के पद तथा ग्राम सभा हैं। विकासखण्ड स्तर पर जनपद पंचायत है, जिसमें पंचायत के प्रतिनिधियों (जनपद सदस्य) में से अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सदस्य एवं सचिव के पद हैं। जनजातीय विकास के अंतर्गत जिला स्तर पर परियोजना अधिकारी, विकासखण्ड स्तर पर विकासखण्ड अधिकारी तथा ग्राम स्तर पर ग्राम सहायक कार्यरत हैं।[29]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि जनजातियों की पारम्परिक राजनीतिक संरचना आधुनिक लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के अनुकूल थी, किन्तु भारत में ब्रिटिश शासन के आगमन के साथ ही यह पारम्परिक संरचना धीरे-धीरे परिवर्तित होने लगी तथा इसने जनजातीय परम्परागत प्रशासनिक व्यवस्था, संस्कृति के क्षेत्र में नवीन द्वार खोल दिए, जिससे जनजातीय एकता तथा सामाजिक सुदृढ़ता तितर-बितर होने लगी। बाहरी समाज से अलग रहने के बावजूद आधुनिक प्रभावों ने गोंड जनजातीय पारम्परिक न्यायिक व्यवस्था को प्रभावित किया हैं। राष्ट्र के स्वतन्त्र होने के पश्चात् राजतन्त्र व्यवस्था अर्थात् राजा एवं जमींदार का शासन समाप्त हुआ। इसी प्रकार या समीपस्थ क्षेत्रों के जनजातीय शिक्षित सदस्य को शिक्षक, ग्राम सहायक के रूप में पदस्थ किये गये जिससे बोली सम्बन्धी समस्याओं का निदान हुआ। 1960 ई. के दशक में कांकेर क्षेत्र से राजस्व वसूली का कार्य समाप्त कर दिया गया, जिससे परगना माँझी और पटेल का तहसील या बाहरी क्षेत्रों से सम्पर्क समाप्त हो गया और उनका कार्य क्षेत्र सीमित हो गया। अब परगना माँझी, पटेल व पारा मुखिया का कार्य सामाजिक धार्मिक और राजनैतिक स्तर तक ही सीमित हो गया, लेकिन आज भी बुमियार, गायता, कोटवार, टोला मुखिया, पटेल एवं परगना माँझी को गाँव में एक परम्परा के रूप

में सम्मानित स्थान प्राप्त हैं। इनकी व्यवस्था पर शासन की पंचायती राज व्यवस्था ने प्रहार किया।

सन् 1994 ई. की नवीन त्रिस्तरीय पंचायती राजव्यवस्था शिक्षा, आधुनिकता और नक्सली प्रभाव ने परम्परागत गोंड न्यायिक व्यवस्था को व्यापक रूप से प्रभावित किया। नये सरपंच, उपसरपंच, सचिव के पास आर्थिक अधिकार होने से नवीन पंचायत के पदाधिकारियों का प्रभाव बढ़ने लगा। इस प्रकार वर्तमान में गोंड जनजातीय परम्परागत न्यायिक व्यवस्था की स्थिति में ह्रास परिलक्षित हो रहा हैं।

संदर्भ सूची

1. नवल वियोगी, भारत की आदिवासी नाग सभ्यताएक महान आश्चर्य, सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली, 2008, पृ. 14।
2. डी.आर. भण्डारकर लेक्चर ऑन द एन्सेंट हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ. 142
3. के. पी. जयसवाल, हिन्दू पोलिटी, लाहोर, 1928, पृ. 26
4. पतंजलि, पाणिनी, ... 59
5. नवल वियोगी, वही, पृ. 15
6. भण्डारकर, वही, 149
7. के. पी. जयसवाल, वही,पृ. 115
8. नवल वियोगी, वही, पृ. 16
9. डी.डी. कोसम्बी, द कल्चर एण्ड सिविलाईजेशन ऑफ एन्सेंट इण्डिया, पृ. 125।
10. श्रीनाथ शर्मा, जनजातीय समाजशास्त्र, पृ. 07।
11. मिश्र गुंजन आदिवासी महिलाओं का आर्थिक एवं शैक्षणिक स्तर (गुजरात के अमीरगढ़ लालुका के विशेष संदर्भ में), पृ. 3
12. भारत की जनगणना, 2011
13. दर्रो मानसाय, 74 वर्ष, 10/06/2019, घोटिया (भानुप्रतापपुर), व्यक्तिगत साक्षात्कार।
14. मण्ड़ावी मोती राम, 78 वर्ष, 9/05/2019, कापसी (कांकेर), व्यक्तिगत साक्षात्कार।
15. बघेले अनुप, मध्य भारत के प्रमुख आदिवासियों का परिचय और सभ्यता, विश्वभारती हिन्दी मराठी प्रकाशन नागपुर, प्रस्तावना से।
16. गोंडवाना ता पठारी, येरमिह्तना–एक महान गोटुल, पुनेम शोध संगत रायपुर, 2017, पृ. 112।

17. वही, पृ. 113।
18. जैपा राम नुरूटी, 70 वर्ष, 9/06/2019, सोनेकन्हार (भानुप्रतापपुर), व्यक्तिगत साक्षात्कार।
19. टीकम टांड़िया, 52 वर्ष, 14/12/2019, भीरागाँव (भानुप्रतापपुर), व्यक्तिगत साक्षात्कार ।
20. मानसाय हुपेन्डी, 58 वर्ष, 13/12/2019, छोटेबोदेली (कोयलीबेड़ा), व्यक्तिगत साक्षात्कार ।
21. राधेलाल करंगा, 68 वर्ष, 10/03/2020, तुमरीकुही (भानुप्रतापपुर), व्यक्तिगत साक्षात्कार ।
22. सदाराम उसेन्डी, 45 वर्ष, 13/12/2019, आमोड़ी (कोयलीबेड़ा), व्यक्तिगत साक्षात्कार।
23. सुन्दर कड़ियाम, 55 वर्ष, 8/05/2018, मण्डागाँव (कोयलीबेड़ा), व्यक्तिगत साक्षात्कार।
24. मोतीरावण कंगाली, गोंडों का मुल निवास स्थल परिचय, नागपुर, 1983, पृ. 97।
25. किरण नुरूटी, बस्तर के गोंड जनजाति की धार्मिक अवधारणा, गोंडी साहित्य परिषद, नागपुर, 2012, पृ. 246।
26. चंदन सिंह उइके, 75 वर्ष, 13/5/2019, ईराबोड़ी (अंतागढ़), व्यक्तिगत साक्षात्कार ।
27. गोंडवाना ता पठारी, येरमिह्तना-एक महान गोटुल, पुनेम श्शोध संगत रायपुर, 2017, पृ. 114।
28. शियाराम परचापी, 65 वर्ष, 14/5/2019, बेयानार (भानबेड़ा), व्यक्तिगत साक्षात्कार ।
29. श्याम सिंह सलाम, 70 वर्ष, 9/05/2019, तेलावट (कांकेर), व्यक्तिगत साक्षात्कार ।

डॉ. बन्सो नुरूटी
सहायक प्राध्यापक,
इतिहास अध्ययनशाला पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय
रायपुर (छ.ग.)

❑ ❑ ❑

औपनिवेशिक काल में मध्य भारत से फीजी में प्रवासी गिरमिटिया मजदूर : एक अवलोकन

• डॉ. चयनिका उनियाल

''गुलामी खत्म हुई तो नाम बदल कर हुआ कुलीप्रथा,
कुलीप्रथा खत्म हुई तो मशीनयुग की अप्रत्यक्ष गुलामी,
इन प्रथाओं के नाम और रूप तो बदलते रहेंगे
पर भेद-भाव तो बना ही रहना हैं।''

....भूतलेन की कथा से, पेज-13

प्रवासन का मतलब लोगों का अपने वर्तमान निवास स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान पर स्थायी या अस्थायी रूप से पलायन करना होता हैं। प्रवासन की यह प्रक्रिया प्राचीन काल से ही निरंतर जारी है। सत्रह लाख साल पहले होमो मानव अफ्रीका से प्रवास कर एशिया एवं यूरोप में फैलने लगे।[1] प्राचीन काल के धार्मिक ग्रंथों एवं अन्य पुस्तकों में भी धार्मिक, व्यापारिक, गरीबी एवं अन्य कारणों से लोगों द्वारा प्रवासन करने का साक्ष्य मिलता हैं। परन्तु प्रवासन के उद्देश्यों एवं प्रकृति में समय और परिस्थिति के अनुरूप परिर्वतनशीलता देखने को मिलती है। प्रवासन के इतिहास में एक मोड़ उन्नीसवीं सदी के बाद आया जो अपने भूतकाल के प्रकृति एवं उद्देश्यों में मूलभूत अंतर लिए था। जो बहुत हद तक औपनिवेशिक व्यवस्था की हिस्सा थी। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि इतने बड़े पैमाने पर भारत से बाहर ब्रिटिश कॉलोनियों में भारतीयों लोगों का मजदूरों के रूप में प्रवासन का प्रवर्तक स्वयं औपनिवेशिक सरकार थी। उन्नीसवीं सदीं में दासप्रथा के समाप्ति के बाद ब्रिटिश कॉलोनियों में मजदूरों की कमी की पूर्ति के लिए ब्रिटिश सरकार ने एक नई व्यवस्था कुलीप्रथा या गिरमिटियाप्रथा की शुरूआत की। इस प्रथा के तहत भारत से अनेक देशों-मौरीशस, ब्रिटिश गयाना, टिरिनिडैड, जमैका, ग्रनैडा, सेंटलूसिया, नैटाल, सेंट किटस, सेंट विसेटस रेयूनिअन, सूरिनाम, फिजी आदि में प्रवासन हुआ।

प्रन्तु इस प्रवासन की कहानी को मैंने भारत और फिजी के संदर्भ में देखने का कार्य इस शोध लेख में किया है।

कुलीप्रथा की आवश्यकता क्यों पड़ी? इस पर बृजलाल '*गिरिमिटियाज: द ओरिजिन्स ऑफ द फिजी इंडियन्स*' में लिखते हैं कि अंग्रेजी साम्राज्य से 1833 में गुलामी खत्म होने पर मौरीशस, ब्रिटिश गयाना, टिरिनिडैड, जमैका, ग्रनैडा, सेंटलूसिया, नैटाल, सेंट किटस, सेंट विसेटस रेयूनिअन, सूरिनाम, फिजी आदि देशों में गन्ने के खेतो में काम करने वाले मजदूरों की कमी पड़ी तो 1834 से कुलीप्रथा का जन्म हुआ। 1833 में दासता उन्मूलन अधिनियम पारित होने के बाद मुक्त श्रम का सिद्धान्त विकसित हुआ। इस परिस्थिति में प्लांटर को अफ्रो-करौबियन की तुलना में भारतीय मजदूर ज्यादा हितकारी लगें; क्योंकि नई परिस्थितियों में अफ्रो-करौबियन की मोल-भाव करने की क्षमता बढ़ गयी एवं ज्यादा रियायते मांग करने लगे थे। इसलिए ग्लैडस्टोन का प्रायोजन भारतीय मजदूरों को कुलीप्रथा के अंतर्गत भर्ती कर अफ्रो-कैरीबियन को दबाना था।[2] हम फिजी की बात करें तो वहाँ के मूल निवासी न तो खेती के योग्य थे और न ही उनकी रुचि थी। प्रशांत महासागर के दूसरे द्वीपों से भी इतने आदमी न मिल पाते। इसलिए उनकी सीधी नजर भारत के तरफ पड़ी। भारत में कुलीप्रथा का शुरूआत तब से मानी जाती है जब भारत से पहली खेप 1834 में गई और 1837 में इसको कानूनी रूप दे दिया गया। फिजी के लिए पहला जत्था 4 मार्च 1879 में लिओडिनस नामक जहाज से फिजी पहुँचा। जिसमें 498 लोगों में 273 पुरुष, 146 महिला, 47 लड़के, 32 लड़कियाँ थी। 1879 से 1916 के बीच फिजी में लगभग 60,965 लोग गये।[3]

परन्तु भारत के लोग प्रवास करने के लिए क्यों और कैसे गये? इस पर इतिहासकारों का विभिन्न मत हैं। आसिया सिद्दिकी का तर्क है कि 1819 से 1830 के बीच ब्रिटिश शासन ने जिस राजस्व व्यवस्था को अपनाया। उसके परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों की हालत ऐसी बनी की लोगों को पलायन करना पड़ा। कार्ल मार्क्स ने 1850 में *न्यू यार्क ट्रिब्यून* में लिखा कि ब्रिटिश सरकार की नीतियों ने उद्योगों के लिए मजदूर पैदा करने के लिए भारतीय कृषि में निजी सम्पत्ति का निवेश करा कर सामंती शक्ति को तोड़ दिया। परिणामस्वरूप लोगों ने प्रवासन किया। इसकी आलोचना कई विद्वानों ने की हैं। गैल ओमवेडेट का तर्क है कि भूमि में निजी सम्पत्ति के प्रवेश के बाद भी मजदूर और किसान सामंती सम्बन्धों से पूर्णत: आजाद नहीं हुए और इनका सम्बन्ध कृषि से जुड़ा रहा और सामंती सम्बन्ध भी बने रहे। क्योंकि इन मजदूरों को मजदूरी का भुगतान सिर्फ इतना होता था कि

वह काम करने के लिए जीवित रह सके। इसलिए उद्योगों के लिए पुनरूपत्ति मजदूर कृषि क्षेत्र से जुड़ा रहे। इसमें श्रम का एक लैंगिक बंटवारा जरूर था। जहाँ औरतें और परिवार के अन्य सदस्य के लोग गाँव में भूमि से बंधे रहते थे जबकि पुरुष काम करने के लिए शहर पलायन कर जाते थे। प्रेमचन्द्र के कई बहुचर्चित उपन्यासों में भी देखने को मिलता है कि मजदूर ने केवल उत्पादन ही नहीं किया बल्कि कई मायनों में सामंती अर्थव्यवस्था को भी बनाये रखा।

गैल ओमवेडेट आगे कहते हैं कि औद्योगिक मजदूरों की मजदूरी से सामंती व्यवस्था को कोई खास नुकसान नहीं हुआ। क्योंकि मजदूर अपने गाँव पैसा न के बराबर ही भेज पाते होंगे। गाँवों में जो पैसा भेजा गया वह शहरों में काम कर रहे गैर-मजदूर मध्यम वर्ग से होता था। आगे वह कहते हैं कि जो अग्रिम भुगतान मजदूरों को होता था वह मजदूरों को सीधे न हो कर उन्हें पलायन करने के लिए इजाजत देने की बदले में कर्ज उतारने के लिए भू-सामंत को भुगतान किया गया। इस तरह प्रवासन एक स्थानांतरण प्रक्रिया है जमींदार के बंधन से ठेकेदार के मजदूर में। इसलिए प्रवासन की पूरी प्रक्रिया उत्पादन के तरीके और सामंती बंधन के रुकावट में प्रत्यक्ष भागीदार नहीं थी।

प्रवासन के बारे में कई अन्य मत भी प्रचलित हैं। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश से अधिकांश लोगों ने गरीबीं के कारण प्रवासन किया। उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग पश्चिमी भाग से कम खुशहाल था। 1857 के विद्रोह में अवध के नवाबों एवं जमींदारों का अंग्रेजों का साथ न देने और विद्रोह को भड़काने के दण्ड स्वरूप अंग्रेजों ने उनके क्षेत्रों को उनके भाग्य पर छोड़ दिया। इस तरह ब्रिटिश सरकार कि नीतियों और प्राकृति प्रकोपों की मार से उनकी आर्थिक हालात शोचनीय हो चली थी। परिणामस्वरूप लोग अच्छे पैसों, जमींदारों के अत्याचार, कर्ज से मुक्ति आदि के लिए भारत के बड़े-बड़े नगरों, कलकत्ता की जुटमीलों, आसाम के चाय बगानों, बिहार के कोयले की खानों, बंबई के कपड़ा मिलों में पलायन करने लगे। इन्हीं लोगों में से कुछ लोग समुन्द्र पार भी जाने लगे। ज्यादातर लोग फिजी जाने से पहले ही अपने घर छोड़ चुके थे।[4]

तोताराम, सी.एफ. ऐन्डूज और अन्य लेखकों ने इस बात को खूब उछाला की भारतीयों को जाल-फरेब से फिजी ले जाया गया। उनकी आँखों में अराकाटी एक फरेबी, जलियॉ शैतान था जो चन्द रुपये के लिए अपने ही भाईयों को गुलामी के लिए बेच देता था। यह बात लोकगीतों में भी प्रतिध्वनित होती है जिसमें अराकाटीयों की बहुत ही भद्दें शब्दों में आलोचना की गई हैं।[5]

ब्रिटिश कॉलोनियों के प्लांटरो के लिए मजदूरों की भर्ती तथा उन्हें वहाँ भेजने

की जो प्रक्रिया होती थी उसमें मुख्य भूमिका आराकाटी की ही होती थी जिसके बदले उसकी मोटी कमाई होती थी। अराकाटी अपने स्थानीय सम्पर्क से लोगों को समुन्द्र पार जाने के लिए राजी कराता था। जिसके लिए वह झूठे सपने दिखाता तथा वादा भी करता था। उसके बाद वह मजदूरों का इमिग्रेशन पास/वीजा कार्ड, अनुबंध पत्र को हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी में तथा स्वास्थ्य प्रमाण पत्र आदि जरूरी कागजात को तैयार करवाता और पाँच वर्षों के अनुबंध के लिए मजदूरों का हस्ताक्षर ले लेता था।

मुख्यत: उत्तर भारत के पूर्वी क्षेत्र एवं कम-बेस मध्य क्षेत्र से फिजी के लिए प्रवासन हुआ। औपनिवेशिक काल में फिजी के लिए संयुक्त प्रदेश से 21,131 या 46.5 प्रतिशत; अवध से 13,207 या 29 प्रतिशत; बिहार से 4,771 या 10 प्रतिशत; और मध्य क्षेत्र से 2,808 या 6.2 प्रतिशत लोगों का प्रवासन हुआ। अन्य कलोनियों में पंजाब, राजस्थान, नेपाल, बंगाल, आदि स्थानों से भी प्रवासन हुआ।[6]

बृजलाल और अन्य इतिहासकारों ने बताया है कि जो प्रवास हुआ उसके सामाजिक आधार में अत्याधिक भिन्नता थी तथा ज्यादातर लोग पूर्वी उत्तर प्रदेश के देहातों से आये थे। लगभग 265 जाति एवं उपजातियों ने उत्तरी भारत से फिजी में उत्प्रवास किया। जिसमें निम्न जातियों के साथ-साथ उच्च जातियाँ एवं उच्च स्तर वाले लोग भी थे। जैसे—हिन्दूओं में ब्राह्मण, ठाकुर, राजपूत, खत्री, आदि; निम्न वर्ग के चमार, गोंड़, लुनियास आदि। मुसलमानों में पठान, शेख आदि।[7]

उत्तर भारतीय जाति/सामाजिक समूहों की प्रवासन में भागीदारी[8]

जाति	संख्या (1891)	प्रतिशत
अहीर	4,197	9.2
कुर्मी	2,307	5.1
क्षत्रिय	4,565	10.0
चमार	6,087	13.4
पासी	999	2.2
ब्राह्मण	1,686	3.7
मुसलमान	6,878	15.1
कोरी	1,942	4.3

मजदूर ही नहीं अराकाटी भी विभिन्न जातियों से आते थे। शुरू के आधे से अधिक जो प्रवास हुआ उस समय आराकाटी का कार्य कौन करता था उसके बारे में बहुत कम जानकारी है; लेकिन कुछ स्रोतों से पता चलता है कि उच्च जातियों के हिन्दूओं और मुसलमानों का प्रभाव था। बाद में जो आधा प्रवासन हुआ उसका विस्तृत स्रोत है। ब्रिजलाल ने *'रजिस्टर ऑफ रिक्रुटमेंट फॉर द बनारस डिस्ट्रिक्ट फॉर द डेकेड 1882-1892'* के आधार पर लिखा है कि ये आराकाटी समाज के विभिन्न वर्गों से आते थे जिसमें निम्नजातियों की भूमिका बहुत कम थी। मुसलमान, पठान, शेख, सैय्यद, मुगल, आदि 40 प्रतिशत; बनिया और कायस्थ 19.7 प्रतिशत; ब्राह्मण और राजपूत 9 प्रतिशत।

अधिकांश मजदूर अनपढ़ होते थे जिससे अराकाटी धोखाधड़ी और जालसाजी भी खूब करते थे। जैसा कि तोताराम, सी.एफ. ऐन्ड्रूज और अन्य लेखकों ने इस बात पर बल दिया है की भारतीयों को जाल-फरेब से फिजी ले जाया गया। अधिकांश लोगों को धोखे में रखा जाता था तथा उनको दूसरे स्थान पर भेजने को कह कर दूसरे स्थान पर भेज दिया जाता था। अधिकांश लोगों को यह भी पता नहीं होता था कि जाना कहाँ है तथा हम जहाँ जा रहे है वह कितना दूर है? कई लोगों को यह तो पता था कि हम फिजी जा रहे है परन्तु सरकार के रवैया और अराकाटीयों की धूर्तता से यह पता नहीं लगने दिया जाता था कि वे किसी दूसरे देश में जा रहे हैं। कई लोगों को यदि यह पता होता कि हमें इतनी दूर जाना पड़ेगा और प्लोटेशनों में इतने बुरे हाल होंगे तो वे पलायन नहीं करते। बृजलाल कहते हैं कि यह मानना गलत नहीं होगा कि आराकाटीयों के द्वारा जाल-फरेब नहीं हुआ था; थोड़ा बहुत जाल-फरेब तो हुआ ही होगा परन्तु यह कहना कि हजारों गिरमिटिया लोग साल दर साल (40 वर्षों तक) फिजी या अन्य कॉलोनियों में इसलिए गए क्योंकि आराकाटीयों ने उन्हें बेवकूफ बना कर भेजा तो यह बात गले नहीं उतरती। बृजलाल का मानना है कि दूसरी तरफ इस खास बात पर पर्दा डाला गया है कि सामंती दमन, सामाजिक कुरीतियों और जातिवाद तथा अन्य कारणों से लोग अपने घर से बेघर हुए तथा पलायन करने के लिए विवश हुए। जैसे तोता राम ने भी बताया है कि भगवा भंगी के प्रवासन का कारण सामंतीय दमन और सामाजिक कुरीतिया दोनों थी। अमिताभ घोष ने अपने उपन्यास *'सी ऑफ पोपिस'* में इस मुद्दे को प्रभावशाली रूप में चित्रित किया है। इस उपन्यास में दीति और कलूआ के सम्बन्ध को जब समाज नहीं स्वीकार करती है तो वह अपने समाज को छोड़ कर प्रवास करने का निर्णय लेते हैं। क्योंकि उनके पास प्रवास करने के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं था। इस तरह देखते हैं कि प्रवास स्वयं निर्णय के कारण भी हुआ। इसमें कोई अराकाटी

का हाथ नहीं था। प्लांटेशन मालिकों और यूरोपियन लेखकों ने भारतीय कुलियों के सामाजिक दर्जे को आधार बना कहा है कि कलकत्ता का कचरा, अवारा, लावारिस, और फालतू लोग प्रवास में गये।

हम यह नहीं कह सकते कि अराकाटीयो ने कोई धोखाधड़ी नहीं की और भर्ती की प्रक्रिया में कोई खामियाँ नहीं थी। इन खामियों को दूर करने और जाँच करने के लिए एक कमीशन की भी स्थापना हुई थी। और ये कमीशन कई मामलों में अराकाटीयों के लाइसेन्स रद्द कर देती थी। परन्तु लाइसेंस देने और रद्द करने के आकड़ों पर नजर डालते है तो आराकाटीयो के लाइसेंस रद्द करने की घटना आश्चर्यजनक रूप से कम है।[14]

वर्ष	ग्रांट की संख्या	रद्द की संख्या	रद्दीकरण प्रतिशत	लोगों की भर्ती की संख्या	औसत संख्या प्रति अराकाटी
1880-81	559	11	2.0	15,430	27.6
1891	1003	22	2.2	25,613	25.5
1894	1023	06	0.6	26,707	26.1
1900	1088	29	2.5	18,489	17.0
1902	1415	37	2.6	13,807	9.8

प्रवासन के साथ स्त्रियों का सम्बन्ध बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है खासकर कुलीप्रथा के साथ। तोताराम और अन्य लेखकों ने बड़ी भावुकता के साथ प्लांटेशनों में हो रही स्त्रियों की दुदर्शा के बारें में लिखा हैं। बृजलाल कहते है कि इस किस्से ने कि प्लांटेशनों में औरतों के साथ बड़ा नीच बरताव होता है, भारत में जनमत कुलीप्रथा के इतना खिलाफ हुआ कि आखिरकार इस प्रथा को खत्म करना पड़ा।[15] परन्तु यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि भारतीय स्त्रियों ने फिजी जाने के लिए अपना घर क्यों छोड़ दिया? इस पर तोताराम ओर अन्य लेखक इसके लिए भारत में स्त्रियों की खराब स्थिति के लिए जिम्मेदार ठहराते हैं।

वे लिखते हैं कि फीजी में लगभग 60 हजार हिन्दू-मुसलमान स्त्री-पुरुष हैं, जिनमें लगभग 23 हजार स्त्रियां है। इनमें से वो विवाहित स्त्रियां थी जो अपने पति के साथ गयी उनकी संख्या बहुत कम है। दूसरे वे स्त्रियाँ जो अपने

पति एवं पुत्रों को छोड़कर गई, तीसरे वे विधवा स्त्रियां थी जिन्होंने कुटुंब के कर्कश व्यवहार से दुखी होकर चली गई। फीजी में तोताराम एक साल तक घूम-घूम कर विधवाओं की दशा पता लगाने का प्रयास किया। वे कहते हैं कि हमारे देश में पति के मरने के बाद विधवाओं के साथ जो बुरा व्यवहार होता है, वह सुन कर दिल दहल जाता हैं।[16]

प्रवासित महिला मजदूरों को प्लांटेशनों में भी बुरा बर्ताव होता हैं। समिता सेन कहती है कि प्रवासित महिलाओं का आर्थिक और शारीरिक दोनों शोषण होता हैं। पुरुषों के तुलना में महिलाओं को मजदूरी के रूप में कम भुगतान मिलता था। माधवी काले का तर्क है कि यह इसलिए था क्योंकि प्लांटर और कॉलोनियल आफिसर यह सोचते थे कि महिलायें पुरुषों के तुलना में कम काम करती हैं। जबकी प्लांटेशनों में महिलाओं को पुरुषों के समान काम और समान समय तक काम में लगाया जाता था।[17] इसके अलावा प्लांटेशनों में उनका शारीरिक शोषण होता था। बृजलाल कहते हैं कि इस किस्से ने कि प्लांटेशनों में औरतों के साथ बड़ा नीच बरताव होता है, भारत में जनमत कुलीप्रथा के इतना खिलाफ हुआ कि आखिरकार इस प्रथा को खत्म करना पड़ा'।

दूसरी तरफ प्लांटरों और सरकारी ऑफिसरों का यह विश्वास था कि प्लांटेशन में जितना भी बुरा होता है उसके लिए प्रवासी औरतें जिम्मेदार हैं क्योंकि वे अनैतिक और दुराचारी प्रकृति की होती हैं। प्लांटेशनों में आत्महत्या, यौन ईर्ष्या, हत्या, वेश्याकृति, आत्महत्या, उच्च मृत्युदर आदि के लिए उनको जिम्मेदार ठहराया जाता था। बृजलाल कहते है कि वर्षों तक प्रवासी औरतों के बारे में यह धारणा बनी रही भारतीय औरतें पतित और धूर्त थी जिसने शादी रचाई, गहने-तोहफे लिए और फिर दूसरे के साथ भाग लीं। इससे लोगों में यह धारणा बन गयी की आदमी औरतों के इस व्यवहार से इतना टूट जाता है कि अपनी जान ले लेता हैं। कुछ लोगों का मानना था की आत्महत्या का एक कारण यौन ईर्ष्या था। बृजलाल कहते कि इन मुद्दों को अब नये दृष्टिकोण से देखना बहुत आवश्यक हैं। वह कहते हैं कि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता की कुछ औरतें पतिता रही होगी। परन्तु कामपीड़ा इस समस्या का लक्षण मात्र था, न कि कारण, जो कुलीप्रथा पर लोगों द्वारा थोपा गया हैं। वह कहते कि प्लांटेशन के मुख्य समस्या का मूलकारण सामाजिक व्यवस्था का विघटन था। वह कहते है कि आदमी के भीतर जीने की चाहत का कारण कुटुम्ब-परिवार, रिश्ते-नाते, भाई-विरादर, शादी-ब्याह, रीति-रिवाज और तीज-त्योहार होता है ना कि मात्र काम पीड़ा। वह कहते है कि फीजी में 22 प्रतिशत

आत्महत्या फीजी प्रवास के पहले छः महीनों में हुई। यदि देखा जाय तो यह संख्या कामपीड़ा वाले सिद्धांत पर खरी नहीं उतरती। बृजलाल कहते हैं कि असलियत में आदमियों के खुदकुशी का वास्तव कारण प्लांटेशनों में कमरतोड़ मेहनत, सख्त अनुशासन और जीवन का अकेलापन, साथ ही ऊपर से यह बढ़ता हुआ भय कि अब तो कभी घर लौटना होगा ही नहीं।[18] उदाहरण के लिए स्वयं तोताराम ने भी अपने जीवन में आत्महत्या का प्रयास जो किया था वह किसी पतित औरत के कारण नहीं था।[19]

प्लांटेशन में कुली-श्रमिको का अनुभव के बारे में भी अलग-अलग मत देखने को मिलता है। सरकारी अफिसियल और प्लांटर के चित्रण में कुली-श्रमिकों की स्थिति अच्छी थी; उनको रोजगार, खाना, आश्रय, सुरक्षा आदि दी जाती थी। लेकिन बाद के लेखनों में इसे नकार दिया गया हैं। तोताराम ने श्रमिकों और स्वयं पर होने वाले गुलामों जैसे व्यवहार, शोषण की प्रक्रिया और कष्टों की चर्चा की हैं। उन्होंने प्लांटेशन के गोरें प्लांटेशन मालिकों, ओवरसियर्स और सरदारों को खलनायक के रूप में चित्रण किया हैं। वह एक तरफ बात करते हैं भुखमरी, दवाईयों की जरूरत को नजरअंदाज करने, औरतों के यौन उत्पीड़न शोषण, मजदूरी भुगतान न देने, शारीरीक कष्ट, सपने दिखाकर सपने तोड़ने की और जहाज से यात्रा करते समय घटने वाली भयावह अनुभव की। दूसरी परेशानी जिसको तोताराम और अन्य लेखकों ने इंगित किया है--वे है धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्य। तोताराम कहते हैं कि नये परिवेश में धार्मिक और सांस्कृतिक अस्मिता बचाने की भी समस्या थी। वह कहते हैं कि प्लांटरर्स को आवश्यक थी अनपढ़ जीव की जो तगड़े और खुरपे हों। जो सिर्फ काम करना जानते हो।[20] लेकिन हम यह नहीं कह सकते है कि फीजी में कुली-श्रमिकों के धार्मिक और सांस्कृतिक अस्मिता के लिए कोई जगह ही नहीं थी क्योंकि इतना सबकुछ होने के बाद भी भारतीय सभ्यता जिन्दा रही।

कुछ इतिहासकारों का कहना है कि फीजी में कुली-श्रमिकों का इतना अधिक शोषण होने के बाद भी व्यापक विरोध का कोई साक्ष्य क्यों नहीं मिलता था। फिजी में कुलीप्रथा कें अपने पूरे इतिहास में सिर्फ दो बार हड़ताल हुई। यह हड़ताल भी कोई नये अधिकारों के माँग के लिए नहीं बल्कि पहले से दिए गये अधिकारों की सुरक्षा के लिए थी। बृजलाल कहते हैं कि यह धारणा पूरी तरह सही नहीं है कि वहाँ विरोध का कोई स्वरूप नहीं था। वे कहते हैं कि कॉलोनियों में कुली-श्रमिक अपनी अप्रसन्नता/विरोध को अनुपस्थिति, आत्महत्या, सरदारों के हत्या के द्वारा दिखलाते थे।

प्लांटेशनों में कुली-श्रमिकों का अनुबंध पाँच वर्षों के लिए होता था परन्तु बहुत मजदूर वापस नहीं आ पाते थे। इसके कारणों की व्याख्या विभिन्न तरह से की गई है। तोताराम ने इसका महत्वपूर्ण कारण मजदूरों के बीच अपने मातृभूमि के बारे में मिथ का फैल जाना बतलाया है। प्रभु महापात्रा[21] कहते हैं कि मजदूरों का वापस आना उसकी व्यक्तिगत सोच पर आधरित नहीं था। बल्कि आर्थिक स्थिति एवं उन पर लागू होने वाली नीतियों से निर्धारित होता था। औपनिवेशिक नीतियों में बहुत अधिक विरोधाभास दिखायी देता है। क्योंकि प्लांटर्स चाहते थे कि हमें हमेशा सस्ते मजदूर मिलते रहे। इसलिए औपनिवेशिक सरकार मजदूरों को रोकने के लिए अनेक नीतियाँ एवं नये-नये हथकंडे अपनाती थी। कई बार वापस जाने के लिए जो फण्ड होता था उसे भी रोक दिया जाता था। जबकी जब उपनिवेश में आर्थिक संकट होता तो उस समय मजदूरों के वापसी दर में वृद्धि हो जाती थी।

अपने मातृभूमि जाने कि मजदूरों की हमेशा इच्छा रहती थी। इस पर प्रभु महापात्रा का कहना है कि इच्छा पालने और उसे जमीन पर उतारने में बहुत फर्क होता है। और यह कहना भी सही नहीं है कि प्लांटेशन के सभी कुली-श्रमिक वापस आने की इच्छा पाले हुए रहते थे। वैसे प्लांटेशन से वापस अधिकांश लोग जो आते थे वे धर्म के नाम पर तथा बूढ़े, निर्धन, निस्हाय, अधिर लोग थे। जहाज में आते समय लोगों की मृत्युदर भी उच्च थी। जो लोग कॉलोनियों में पैदा हुए थे वो तो भारत आना ही नहीं चाहते थे; और जो लोग भारत आ भी जाते थे उन्हें समाज स्वीकार ही नहीं करता था तथा रोजगार भी नहीं मिलता था। इस तरह बहुत से कॉलोनियों से लौटे लोग वापस जाने के लिए पोर्ट पर खड़े रहते थे और वापस जाने के लिए प्रर्दशन करते थे। महापात्रा कहते हैं कि घर वह नहीं जहाँ आदमी पैदा होता है घर वह है जहाँ आदमी अपना पूरा जिन्दगी बिताता है और अपना सम्बन्ध बनाता है। इस तरह भारत से गये बहुत से कुली-श्रमिकों ने कॉलोनियों को ही अपना स्थायी घर बना लिया और वही उनका देश बन गया।

इतिहासकारों ने इस बात की पड़ताल करने की कोशिश की है कि कॉलोनियों में जो कुली-श्रमिक बसे उनका सामाजिक-सांस्कृतिक सम्बन्ध किस तरह का था। क्या भारत की अपनी स्थानीय सामाजिक-सांस्कृतिक सम्बन्ध को ही उन्होंने कॉलोनियों में भी बनायें रखा या नये वातावरण में कुछ परिर्वतन भी आया। बृजलाल कहते है कि—

कॉलोनियों के कुछ परम्परायें नए वातावरण में काल कवलित हो गई;

जातिवाद उनमें से एक है। नये वातावरण में ऐसी व्यवस्था के लिये कोई स्थान थी ही नहीं। लोगों ने जाति और कई अन्य प्रकार के रूढ़िवादी परम्परायों की चिन्ता नहीं किया और शादी में जाति, दहेज और लंबे अनुस्थानों का लोप हो गया। कुलीप्रथा से एक नये सामाज का जन्म हुआ जो पहले से बहुत अधिक समतावादी था। उनकी अपनी नई अस्मिता के साथ उनकी अपनी बोली जो भारत से साथ लाये थे उसमें भी परिर्वतन देखने को मिलता है। कॉलोनियों में कुली-श्रमिकों की बोली में अवधी का प्राधन्य होने के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषायों व बोलियों तथा अंग्रेजी के शब्द मिश्रित हो गये और यह भाषा है-फीजी बात।[22]

निष्कर्ष: प्राचीन काल से ही प्रवासन मानव जीवन से अभिन्न रूप से जुड़ा रहा है। परन्तु औपनिवेशिक काल में पूँजीवादी व्यवस्था के तहत भारत से फिजी में गिरीमिटीया मजदूर के रूप में हुई प्रवासन की प्रकृति पूर्व-औपनिवेशिक काल से भिन्न थी। गिरमिटिया व्यवस्था एक ऐसी संस्था के रुप में उभरी जिसके तहत एक पूँजीवादी देश अपने औपनिवेशिक क्षेत्रों से सस्ते दरों पर मजदूरों को अपने दूसरे औपनिवेशिक क्षेत्रों में पूँजीवादी व्यवस्था के शक्तिकरण के लिए पलायन करने को प्रोत्साहन देने के साथ-साथ विवश भी करता था। इसके अलावा आराकाटियों ने अपने कमीशन के लिए मजदूरों को सच्चाई नहीं बताई और झूठे वादे किए व सपने दिखा कर बहुत मजदूरों का पलायन कराया। परन्तु मजदूरों के पलायन के पीछे एक कारण यह भी था कि ये मजदूर अपने परिवेश से इतना तंग आ चुके थे कि उन्हें अपने परिवेश से दूर ले जाने वाली हर वो चीज एक मुक्ति का द्वार नजर आती जहाँ जा कर वे अपने सपनों को सकार कर सकते थे। हम ऐसा भी नही कह सकते कि गिरिमिटिया व्यवस्था के तहत जो प्रवासन हुआ उससे सब शोषित ही हुए बहूत से मजदूर खासतौर से नीची जातियों के लिए अच्छा रहा क्योंकि वहाँ के परिवेश में अनेक भारतीय सामाजिक कुरुतियों के लिए कोई जगह नहीं थी।

1. अमर फारूकी, प्राचीन भारत एवं मध्यकालीन सामाजिक संरचनाएं और संस्कृतियाँ, (दिल्ली: मानक, 2003), पृ. 19.
2. बृजलाल और योगेन्द्र यादव, *'भूतलेन की कथा'* (नयी दिल्ली: सरस्वती प्रेस, 1994), पृ. 16.
3. बृजलाल, *चलो जहाजी-ऑन अ जर्नी थ्रू इन्डेन्चर इन फिजी* (अस्टेलिया: अन्नु प्रेस, 2012), पृ. 73.
4. बृजलाल, चलो जहाजी, पृ. 27-28.

5. बृजलाल, और योगेन्द्र यादव, *भूतलेन*, पृ. 19.
6. बृजलाल, चलो जहाजी, पृ. 102.
7. बृजलाल, चलो जहाजी, पृ. 106
8. बृजलाल, चलो जहाजी, पृ. 107
9. बृजलाल,चलो जहाजी, पृ. 83-84
10. बृजलाल, और योगेन्द्र यादव, *भूतलेन*, पृ. 19.
11. बृजलाल, और योगेन्द्र यादव, *भूतलेन*, पृ. 20
12. बृजलाल, और योगेन्द्र यादव, *भूतलेन*, पृ. 85
13. बृजलाल, और योगेन्द्र यादव, *भूतलेन*, पृ. 21
14. बृजलाल, *चलो जहाजी*, पृ. 86
15. बृजलाल, और योगेन्द्र यादव, *भूतलेन*, पृ. 22
16. बृजलाल, और योगेन्द्र यादव, *भूतलेन*, पृ. 22-23
17. माध्व कार्ले, प्रोजेक्टिंग आइडेंटिटी: इम्पायर एण्ड इंडेचर लेबर माइग्रेशन फ्रॉम इंडिया टू टिनॉड एण्ड ब्रिटिश गुइयाना 1836-1855 इन पिटर वान डेरवेर (सं) नेशनल एण्ड मइग्रेशन: द पोलटिक्स ऑफ स्पेस इन साउथ एशिया डियासपोरा, पृ. 73-92
18. बृजलाल, और योगेन्द्र यादव, *भूतलेन*, पृ. 23-24
19. बृजलाल, और योगेन्द्र यादव, *भूतलेन*, पृ. 42-43
20. बृजलाल, और योगेन्द्र यादव, *भूतलेन*, पृ. 24
21. प्रभु, महापात्रा, लॉगींग एण्ड विलॉगींग: द डिलेमा ऑफ रिटर्न अमाँग इंडियन इमिग्रेसनस इन वेस्ट इंडिज, 1836-1850, इंटरनेशनल इंस्टिट फॉर एशियन स्टडीज, 1995
22. बृजलाल, और योगेन्द्र यादव, भूतलेन, पृ. 25-26

डॉ. चयनिका उनियाल
फेलो, साउथ एशिया डेमोक्रेटिक फोरम
जूनियर फेलो, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी (2009-11)
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
एस.पी.एम. कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑ ❑ ❑

प्रतिरोधी कूटनीति अंतिम विकल्प नहीं अफगानिस्तान की समस्या का समाधान

• डॉ. मोहन लाल जाखड़

9/11 के हमले के बाद पिछले 20 वर्षों में लोकतांत्रिक बुनियाद को गहरा करने के सफर में अफगानिस्तान ने एक लंबा रास्ता तय किया है। फिर चाहे वो फलता-फूलता स्वतन्त्र मीडिया, सक्रिय नागरिक संगठन, कौशल-युक्त युवा या फिर सशक्त नारी शक्ति हो सभी ने देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था और राष्ट्र-निर्माण में अहम् योगदान दिया है। एक संप्रभु गणराज्य और संवैधानिक लोकतांत्रिक समाज की परिकल्पना में मजबूती से काम करने वाली सरकारी संस्थाओं और विभिन्न सामाजिक संगठनों द्वारा इसे धरातल पर उतारा है।

पिछले 20 सालों में अफगानिस्तान की तरक्की को बेहतर परिप्रेक्ष्य में देखना हो तो हम कुछ तथ्यों के साथ समझ सकते है। तालिबान को सत्ता से बेदखल करने के बाद 2004 के संविधान ने महिलाओं को सभी तरह के अधिकार दिए। इन अधिकारों की वजह से तालिबान शासन के मुकाबले महिलाओं का सामाजिक रूतबा बढ़ा है। विश्व बैंक के आँकड़ों के मुताबिक, 2003 में अफगानिस्तान की 10 प्रतिशत से भी कम लड़कियाँ प्राथमिक स्कूल में पढ़ती थी लेकिन 2017 तक ये आँकड़ा 40 प्रतिशत हो गया। माध्यमिक शिक्षा में लड़कियों की भागीदारी 2003 के 6 प्रतिशत से बढ़कर 2017 तक 39 प्रतिशत हो गई। महिलाओं की औसत आयु 2001 के 56 वर्ष से बढ़कर 2017 में 66 वर्ष हो गई। जन्म के दौरान शिशु मृत्यु दर वर्ष 2000 में 10,000 जन्म पर 1,100 मौत से घटकर 2015 में 10,000 जन्म पर 396 मौत पर रह गई। 2021 तक 21 प्रतिशत अफगान सिविल सेवा के अधिकारी महिलाएँ थी। साथ ही वरिष्ठ मैनेजमेंट स्तर में 16 प्रतिशत और अफगान संसद के 27 प्रतिशत सांसद महिलाएँ थी।

इतना ही नहीं देश की मीडिया, शिक्षा-जगत, नागरिक संगठनों, शासन व्यवस्था, उद्यमिता और यहाँ तक कि अफगानी राष्ट्रीय रक्षा और प्रतिरक्षा बल (एएनडीएसएफ) में भी महिलाओं की समान रूप से भागीदारी थी। अफगानी समाज की इन सफलताओं का आधार स्वयंसिद्ध है और अब पिछले दो दशकों में हासिल इन उपलब्धियों को अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा तालिबान पर दबाव डालकर इन्हें बचाने की आवश्यकता है। यहाँ के पढ़े-लिखे युवा अफगानिस्तान की शासन व्यवस्था में नियंत्रण और संतुलन स्थापित करने के लिए लगातार सक्रिय है जैसे तालिबान की वर्तमान सरकार के प्रमुख मीडिया प्रवक्ता पदों पर सुहैल साहिन और जबीउल्लाह मुजाहीद जैसे युवा अपने को लोकतांत्रिक व्यवस्था के अधिक निकट पाते है। ये सब अफगानिस्तान में पिछले 20 वर्षों में हुए राजनीतिक विकास एवं लोकतन्त्र का ही परिणाम है।

लेकिन चिन्ता का विषय ये है, कि अगस्त के मध्य में काबुल पर तालिबान के कब्जे और उसके बाद अफगानिस्तान पर तालिबान के शासन ने मजबूती से पिछले 20 वर्षों में महिलाओं और लड़कियों द्वारा हासिल की गई स्वतन्त्रता को खत्म करने को लेकर गंभीर आशंकाएँ खड़ी कर दी। अफगानिस्तान पर कब्जा करने के बाद से तालिबान प्रशासन ने महिलाओं और लड़कियों की गतिविधियों पर काफी हद तक पाबंदिया लगा दी है। एमनेस्टी इंटरनेशनल के मुताबिक, महिलाओं को यह बताया गया है कि वो काम पर नहीं जा सकती या पुरुष अभिभावक के बिना यात्रा नहीं कर सकती। पिछले सात महीनों से 12 वर्ष से ज्यादा उम्र की लड़कियों के स्कूल जाने पर रोक लगा दी गई है। साथ ही विश्वविद्यालयों में महिलाओं और पुरुषों को अलग-अलग करने की वजह से उच्च स्तरीय संस्थानों में महिलाओं के लिए अवसरों पर नकारात्मक असर पड़ रहा है। अफगानिस्तान में काम-काज के कई क्षेत्रों से महिलाओं को बाहर कर दिया गया है जिसमें मीडिया और मनोरंजन के सेक्टर भी शामिल है। हालांकि, अंतरराष्ट्रीय समुदाय और संयुक्त राष्ट्र महासचिव एंटोनियो गुटेरस ने अफगानिस्तान की महिलाओं और लड़कियों से किए गए वादों को तौड़ने के लिए तालिबान पर प्रहार किया। इसके चलते तालिबान ने ये बात जोर देकर कही है कि महिलाओं को काम करने की इजाजत दी जाएगी। लेकिन लोग उनके इस वादे पर भरोसा नहीं कर पा रहे है। खासकर, तालिबान के ये कहने के बाद कि स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं के अलावा दूसरी महिलाओं को सुरक्षा व्यवस्था में सुधार होने तक घर पर ही रहना चाहिए। नब्बें के दशक में महिलाओं को काम करने से रोकने

के लिए तालिबान ने इन्हीं दलीलों का सहारा लिया था। लेकिन आज का अफगानिस्तान नब्बे के दशक वाला नहीं है। पिछले 20 वर्षों में अफगान समाज ने बहुत प्रगति की है जिसके प्रभाव को तालिबान अधिक समय तक नहीं रोक सकता है।

अफगानिस्तान ने आर्थिक विकास के मोर्चे पर भी 2001 के बाद से कई मामलों में बेहतर प्रगति की है। इनमें आधारभूत और सामाजिक संरचनाओं को मजबूत करना जैसे सड़के, बिजली, शिक्षा, उद्योग, स्वास्थ्य, स्वच्छता, स्वच्छ पेयजल आदि सेवाओं में बेहतर निवेश करके देश के आर्थिक विकास को गति प्रदान की है। अफगानिस्तान के आर्थिक विकास में विदेशी सहायता और भारत द्वारा पुनर्निर्माण एवं विकास कार्यों के द्वारा आधारभूत संरचनाओं को बनाने में अहम् भूमिका निभाई है। अफगानिस्तान की अर्थव्यवस्था इस बात पर निर्भर करती है कि वहाँ के हालात कितने नाजुक है और उसे कितनी आर्थिक सहायता मिल रही है। तालिबान के कब्जे से कई महीने पहले विश्व बैंक ने अफगानिस्तान की अर्थव्यवस्था को लेकर परेशान करने वाली ये बात कही थी। अब जबकि अफगानिस्तान में हालात बिल्कुल बदल चुके है तो आर्थिक सम्भावनाएं और भी अधिक अनिश्चित दिख रही है। इसका सबसे बड़ा कारण अफगानिस्तान को मिलने वाली वित्तीय सहायता को लेकर पैदा हुई अनिश्चितता है।

हालांकि, संसाधनों की बात करें तो अफगानिस्तान के पास पर्याप्त खनिज संसाधन है लेकिन देश की राजनीतिक परिस्थितियों के कारण उनका पूर्ण इस्तेमाल नहीं हो पा रहा है। वित्तीय सहायता पर निर्भरता गौर करने वाली है, साल 2019 के विश्व बैंक के आँकड़ों के मुताबिक, विकास के लिए मिलने वाली वित्तीय सहायता सकल राष्ट्रीय आय के 22 फीसद के बराबर थी। यह आँकड़े काफी कुछ बंया करते हैं, लेकिन दस साल पहले विश्व बैंक ने जब आँकड़े जारी किए थे, तब ये करीब 49 फीसद था। लेकिन अफगानिस्तान में तेजी से बदले घटनाक्रम के बीच वित्तीय सहायता को लेकर अनिश्चितता की स्थिति पैदा हो गई है। इससे देश के आर्थिक विकास में रुकावट आएंगी। पिछले 20 वर्षों से अफगानिस्तान विदेशी मदद से देश के आधारभूत ढाँचे से लेकर मानव संसाधनों का विकास कर रहा था।

पिछले दो दशकों में जो सकारात्मक बदलाव हुए, उनमें एक स्वतन्त्र लोकल मीडिया का अपने पैरों पर खड़ा होना भी था। भले ही उन पर चरमपंथियों ने हमले किए हो लेकिन बीते सालों में मीडिया संगठनों पर कोई बंदिश नहीं रही थी।

सरकारों की तरफ दबाव की सूरत में भी पत्रकारों ने उसका सामना किया था। एक स्वतन्त्र मीडिया के साथ-साथ एक स्वतन्त्र नागरिक समाज भी उभरा है, जो धीरे-धीरे लेकिन निश्चित रूप से आने वाले समय में तालिबान 2.0 पर प्रभाव डालेगा। स्वतन्त्र नागरिक समाज के कारण ही तालिबान ने सत्ता में आने के बाद 1990 के दशक वाले क्रूर दमनकारी तरीकों को लागू नहीं कर पाया। स्वतन्त्र मीडिया का विकास, नागरिक समाज, शिक्षित और जागरूक महिलाओं का उदय निश्चित तौर पर इस बात का पक्का सबूत है कि तालिबान को आज नहीं तो कल इन समूहों के अधिकारों की रक्षा के लिए काम करना होगा। इसका असर पिछले सात महीनों के तालिबान 2.0 शासन में थोड़ा-थोड़ा दिखने भी लगा जैसे मार्च से लड़कियों की शिक्षा पर लगी पाबंदी को हटाना, महिलाओं को बुर्का पहनने पर मजबूर नहीं करना इत्यादि मुद्दों पर तालिबान के कठोर रवैये में लचीलापन आया है। ये सब पिछले 20 वर्षों के विकास का ही परिणाम है। तालिबान 2.0 पर दुनिया को बारीकी से नजर रखने की जरूरत होगी कि क्या तालिबान अपने शासन को अधिक उदार और समावेशी बनाता है या नहीं जिससे सभी सामाजिक वर्गों का समावेशी विकास हो सके।

पिछले 20 वर्षों में भारत के योगदान को देखें तो यह भारत की तरफ से अब तक किसी भी राष्ट्र के विकास में किया गया अधिकतम योगदान होगा। भारत अफगानिस्तान के विकास और पुनर्निर्माण कार्यों में 3 बिलियन डॉलर से अधिक का निवेश कर अफगानिस्तान के राष्ट्र-निर्माण प्रयासों में अहम् योगदान दिया है। लेकिन 20 साल बाद पाकिस्तान समर्थित तालिबान का फिर से सत्ता में आना भारत के लिए चिन्ता का विषय है, क्योंकि पूर्व सरकारों के साथ भारत के अच्छे सम्बन्ध थे। भारत ने अफगानिस्तान के बुनियादी ढांचे और मानव क्षमता निर्माण विकास कार्यों में करोड़ों का निवेश कर खुद को एक सॉफ्ट पॉवर की तरह स्थापित करने की कोशिश की थी लेकिन अब तालिबान के वापस लौटने के बाद डर है कि ये निवेश बेकार हो जाएंगे। भारत ने अपने निवेश को बचाने के लिए और अफगानिस्तान में भविष्य में अपनी उपस्थिति के लिए 31 अगस्त को तालिबान के साथ पहली आधिकारिक बातचीत में अपनी चिन्ताएं तालिबान के दोहा ऑफिस में शेर मोहम्मद अब्बास स्टनिकजई से साझा की। मीटिंग में भारत ने कहा, 'अफगानिस्तान की मिट्टी का इस्तेमाल भारत विरोधी गतिविधियों या किसी भी तरह के आतंकवाद के लिए नहीं होना चाहिए।'

इसके बाद भारत का तालिबान 2.0 के साथ लगातार वार्ता का

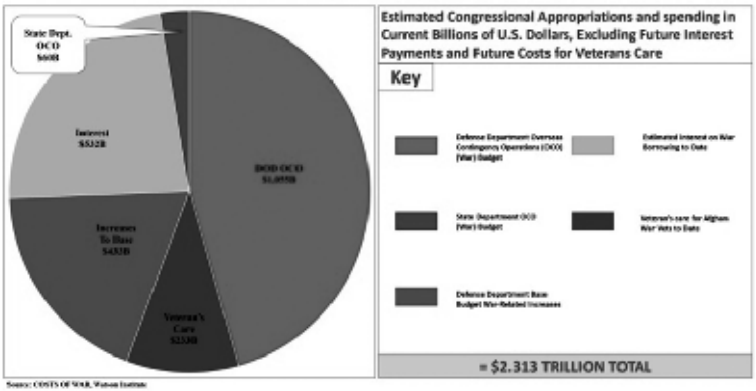
सिलसिला चला आ रहा है। भारत ने इस राजनीतिक उथल-पुथल के दौर में खुद को तालिबान से अलग करने के बजाए तालिबान के साथ एंगेज होना ज्यादा बेहतर समझा और यह समय की भी मांग थी कि हमने 20 वर्षों में इतना पैसा खर्च किया और आज इस संकट की घड़ी में हम अफगान नागरिकों से मुंह मोड़ ले, यह भारतीय संस्कृति की पहचान नहीं रही है। भारत ने इस विकट मानवीय संकट में तालिबान के साथ अलगाव का रास्ता छोड़ वार्ता का रास्ता चुना है जिससे हम अफगान नागरिकों की मानवीय मदद कर सके। भारत ने इस दिशा में 1.6 मीट्रिक टन स्वास्थ्य सामग्री, 5 लाख कोविड वैक्सिन, 50 हजार मीट्रिक टन गेहूँ की आपूर्ति करके मानवीय सहयोग का परिचय दिया है।

हालांकि, आने वाले समय में भारत तालिबान 2.0 के साथ सार्थक संवाद प्रक्रिया को आगे बढ़ाएगा क्योंकि राष्ट्रीय हितों को सुरक्षित रखने के लिए हमें तालिबान के साथ वार्ता के दरवाजे खुले रखने होंगे जिससे पाकिस्तान और चीन पर भी एक मानसिक दबाव बना सके और भारत की उपस्थिति पहले की तरह अफगानिस्तान में मौजूद रहे। भारत को इसके लिए अंतरराष्ट्रीय समुदाय की कूटनीति को भी देखना होगा कि वो आने वाले समय में तालिबान के साथ कैसे सम्बन्ध स्थापित करते है? इसलिए भारत को राष्ट्रीय हितों के मद्देनजर तालिबान के साथ वार्ता और अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़ी चिन्ताओं से अवगत कराते रहना होगा, जिससे तालिबान भारत विरोधी गतिविधियाँ अपने पड़ोसियों के बहकावे में आकर न कर सके। यह निरन्तर सक्रिय संवाद के जरिए ही हो सकता है।

पिछले 20 वर्षों में अमेरिका ने अफगानिस्तान में धर्मनिरपेक्ष, आधुनिक विचारधारा, लोकतन्त्र और पश्चिमी देशों के हितों के अनुकूल सरकार का बीज बोया लेकिन दो दशक बाद तालिबान की इस आँधी में इस पेड़ को उखड़ने में देर न लगी। यह अमेरिका या उसकी सेना का किसी भी देश के खिलाफ सबसे लम्बा और खर्चीला संघर्ष था। इसी तरह का प्रयास आज से चालीस वर्ष पहले सोवियत रूस ने भी किया था लेकिन ये दोनों हस्तक्षेप पूरी तरह अलग थे, सोवियत सेनाएँ अपने सोवियत साम्राज्य का विस्तार करने आई थी। जबकि पश्चिमी सेनाएँ 9/11 के हमले के बाद चरमपंथ को जड़ से उखाड़ने और लोकतन्त्र की बहाली के लिए आई थी। इसके बाद भी दोनों में कई असुविधाजनक समानताएं है। रूसी और अमरीकियों ने सोचा था कि वो आसानी से घुसेंगे, एक मित्रवत सरकार बनाएंगे और सालभर के अंदर लौट

आएंगे। लेकिन दोनों देश एक लंबे और महंगे युद्ध के दलदल में फंस गये और अंत में दोनों वापस चले गए।

U.S. Costs to Date for the war in Afghanistan, in $ Billions FY2001-FY2022*



UNITED STATES COSTS TO DATE OF THE WAR IN AFGHANISTAN, 2001-2022	
Estimated Congressional Appropriations and Spending in Current Billions of U.S. Dollars, Excluding Future Interest Payments and Future Costs for Veterans Care	
	Total FY2001-FY2022*
Defense Department overseas Contingency operations (OCO) (War) Budget	$1,055
State Department OCO (War) Budget	60
Defense Department Base Budget war-Related Increases	433
Veterans Care for Afghan war Vets to Date	233
Estimated Interest on war Borrowing	532
TOTAL in Billions of Current Dollars	$2,313
	* Rounded to nearest billion, Amounts for FY22 are budget requests.

सोवियत युद्ध अधिक रक्तरंजित था, उसमें करीब 15 लाख लोग मारे गए थे। ब्राउन यूनिवर्सिटी के अध्ययन के मुताबिक अमरीका और उसके सहयोगी देशों के हस्तक्षेप से अब तक करीब 2,43,000 हजार लोगों के मारे जाने का अनुमान है। लेकिन हालिया युद्ध अधिक खर्चीला है। युद्ध पर सोवियत संघ ने अफगानिस्तान में एक साल में करीब दो बिलियन डॉलर खर्च किए थे वहीं अमरीका ने अब तक 2.313 ट्रिलियन डॉलर खर्च अनुमानित है। अफगानिस्तान में सैन्य ऑपरेशन और विकास के नाम पर अरबों रुपये खर्च

ESTIMATED DIRECT WAR DEATHS IN AFGHANISTAN AND PAKISTAN (OCTOBER 2001 -AUGUST 2021)			
	Afghanistan	Pakistan	Total
US Military	2324	-	2324
US DOD Civilian	6	-	6
US Contractors	3917	90	4007
National military and Police	69095	9431	78526
Other Allied Troops	1144	-	1144
Civilians	46319	24099	70148
Opposition Fighters	52893	32838	85731
Journalists and Media Workers	74	87	161
Humanitarian Aid Workers	446	105	551
TOTAL	**176206**	**66650**	**242856**
TOTAL ROUNDED	**1,76,000**	**67,000**	**2,43,000**

किए जा चुके है, इसके बावजूद भी अफगानिस्तान अभी भी हिंसा और गरीबी का शिकार बना हुआ है। सरकारी तन्त्र बहुत कमजोर है और अर्थव्यवस्था विदेशी मदद पर निर्भर है।

इन सब का परिणाम यह हुआ कि तालिबान ने लगभग बिना किसी लड़ाई के अफगानिस्तान पर कब्जा करके पूरी दुनिया को हैरान कर दिया। हालांकि, कागजों पर अफगान सेना हथियारों और संख्या के मामले में तालिबान से बहुत आगे थी। इस नाटकीय घटनाक्रम पर अमेरिकी जानकारों का कहना है कि अमेरिका ने सालों तक अफगानिस्तान की वास्तविक स्थिति की अनदेखी की। उसने अफगानिस्तान पर सोवियत रूस के नियंत्रण के दौरान हुई सभी गलतियों को दोहराया। अमेरिका ने कभी भी अफगान संस्कृति और उनके रीति-रिवाजों को समझने की कोशिश ही नहीं की। जानकारों का यह भी कहना है कि अमेरिका 'सूचना युद्ध' में तालिबान से हार गया और वह अपने सहयोगी पाकिस्तान को तालिबान का समर्थन बंद करने के लिए मनाने में नाकाम रहा। अमेरिकी नेवी ग्रेजुएट स्कूल के प्रोफेसर थॉमस जॉनसन ने कहा 'हम हार गए क्योंकि हम कभी अफगानिस्तान को समझ नहीं पाए' और अंत में दो दशक बाद अगस्त, 2021 में अमेरिका अफगानिस्तान में अपनी सबसे लंबी लड़ाई लड़कर वापस लौट गया। विडंबना ये है कि अमेरिका को उसी तालिबान को सत्ता सौंप कर जाना पड़ा है जिसकी हुकूमत गिराने के लिए उसने युद्ध की शुरूआत की थी।

अब जब से तालिबान ने अफगानिस्तान पर कब्जा किया है, तब से अफगानिस्तान को लेकर एक विशाल अनिश्चितता बनी हुई हैं कि नये तालिबान

के साथ कैसा व्यवहार किया जाए। हालांकि, अंतराष्ट्रीय समुदाय ने पुराने स्वरूप वाले तालिबान से अपनी सुरक्षित दूरी बना ली है, उन्होंने उसमें सुधार लाने के लिए प्रतिरोधी कूटनीति को अपनाया है। लेकिन फिर भी, पिछले सात महीनों से इस प्रतिरोधी रणनीतियों से मनचाहे नतीजे हासिल नहीं हो पाये है क्योंकि वो तालिबान के लिए बड़ी कीमत रखते हैं जबकि संगठन के लिए कम राजनीतिक जोखिम वाले है। इसके अलावा, अफगानिस्तान पर गंभीर मानवीय और आर्थिक संकट के साथ ही, यह जोखिम भी है कि तालिबान इन रणनीतियों को महत्व नहीं देगा।

अफगानिस्तान पर तालिबान के कब्जे के बाद, कई देशों ने मान्यता देने के फैसले से पहले 'रूको और देखो' की नीति अपनाई है। तालिबान को समावेशी सरकार बनाने के लिए राजी करने और उन्हें आतंकवादियों ओर तस्करी के नेटवर्क को पनाह देने से रोकने की उम्मीद के साथ उन्होंने संपत्ति को फ्रीज करना और प्रत्यक्ष मदद को स्थगित करने जैसे प्रतिरोधी रणनीतियाँ भी अपनाई है। हालांकि, यह प्रतिरोधी कूटनीति अब तक ज्यादा सफल नहीं हो पायी है। सत्ता में करीब सात महीने पूरे कर चुके तालिबान ने बहुत कम प्रगति हासिल की है। कट्टरपंथियों के पास समेकित शक्तियां होने के कारण यह असम्भव भी प्रतीत हो रहा है, जिनमें से आधा अंतरिम सरकार का मंत्रिमंडल यूएनएससी के ब्लैकलिस्टेड आतंकियों में शामिल है। इसके अतिरिक्त तालिबान का अल्पसंख्यकों पर हमला, सरकारी और सार्वजनिक स्थानों से महिलाओं को दूर रखना, पूर्व सरकार के कर्मचारियों और अफगान सुरक्षा बलों की नृशंस हत्या करना, आतंकवादियों और अंतरराष्ट्रीय तस्करों के साथ सम्बन्धों को बनाये रखना जारी है।

आमतौर पर, प्रतिबंध और प्रतिरोधी रणनीतियों के अपने परिणामों को हासिल करने में वर्षों लग जाते हैं, लेकिन अफगानिस्तान एक असामान्य छूट है। अधिकांश तौर पर, अफगानिस्तान एक असफल अर्थव्यवस्था है जो अस्तित्व बनाये रखने और जीवित रहने के लिए मुख्य रूप से अंतरराष्ट्रीय सहायता पर निर्भर है। लिहाजा अंतरराष्ट्रीय समुदाय द्वारा सहायता, संपत्ति और वित्तीय संसाधनों को रोके जाने से अफगानिस्तान की अर्थव्यवस्था कमजोर हो गई और उसके लोग असुरक्षित हो गए है। वर्तमान समय में, 18.4 मिलियन से अधिक अफगानों को मानवीय मदद की जरूरत है, 2.3 करोड़ लोग भूखमरी से जूझ रहे है, और 72 प्रतिशत गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे है। यह भी माना जा रहा है कि अर्थव्यवस्था 2022 में 30 प्रतिशत तक और सिमट जाएगी।

मुख्यरूप से प्रतिरोधी कूटनीति का मकसद तालिबान को उदारवादी बनाना और उनकी नीतियों को प्रभावित करना है। यह दंडात्मक प्रतिबंध नहीं है जैसे ईरान और रसिया पर लगाये गए है, बल्कि इनका मकसद तालिबान को महिला अधिकारों, समावेशी सरकार, अन्य आतंकवादी संगठनों के साथ संपर्क समाप्त करना है। लेकिन पिछले सात महीनों से इन प्रतिबंधों का कोई खास असर तालिबान पर पड़ता नजर नहीं आ रहा है क्योंकि अंतरराष्ट्रीय समुदाय मानवीय सहायता के रूप में संयुक्त राष्ट्र एजेंसियों के माध्यम से अफगान समाज की मदद कर रहा है। इसलिए प्रतिरोधी कूटनीति ज्यादा प्रभावी नहीं हो सकी।

इसलिए अंतरराष्ट्रीय समुदाय को प्रतिरोधी कूटनीति के रास्ते को छोड़कर तालिबान के साथ वार्ता के द्वारा ही अफगान समाज की मांगों को मनवाया जा सकता है क्योंकि एक राजनीतिक मान्यता प्राप्त सरकार के ऊपर नागरिक समाज का दबाव भी होगा और वैसे भी अफगान समाज 1990 के दशक वाला तो है नहीं खुद तालिबान में भी पढ़े-लिखे कई युवा चेहरे है जो अपने राष्ट्रीय हितों को बेहतर तरीके से समझते है, अगर ये लोग निर्णय स्वयं लेंगे तो शायद आने वाले समय में इसके बेहतर परिणाम देखने को मिल सकते है।

संदर्भ :

- https://www.aninews.in/news/world/asia/india-to-send-50000-mt-of-wheat-to-afghanistan-overland-through-pakistan 20220222 151959/
- https://www.google.com/url?sa=t&source=web&rct=j&url=https://www.orfonline.org/hindi/research/coronavirus-pandemic-food-security-in-afghanistan-covid19-omicron-kabul-taliban/&ved = 2ahUKEwjk8NWpwJz2AhUb73MBHXM_BZkQFnoECBIQAQ & usg=AOvVaw2PE5nrbDaFVKMAIPS3yin4
- Rubin R. Barnett, Afghanistan : What Everyone Needs To Know, Publisher Oup Usa, October 22, 2020, pp.76-77.
- https://www.google.com/url?sa=t&source=web&rct=j&url=https://www.orfonline.org/hindi/research/coronavirus-pandemic-food-security-in-afghanistan-covid19-omicron-kabul-taliban/&ved=2ahUKEwjk8NWpwJz2AhUb73MBHXM_BZkQFnoECBIQAQ&usg=AOvVaw2PE5nrbDaFVKMAIPS3yin4
- Jaishankar S., The India Way: Strategies For An Uncertain World, Publisher- Hurper Collins India, 1st Edition, September 4, 2020, pp.134-135.

– https://www.orfonline.org/hindi/research/coronavirus-pandemic-food-security-in-afghanistan-covid19-omicron-kabul-taliban/?amp
– https://www.orfonline.org/hindi/research/afghanistan-it-isnt-just-about-the-girls-right-to-education-jaish-e-mohammad-taliban-ttp/?amp
– https://www.orfonline.org/hindi/research/afghanistan-diplomacy-failing-against-the-taliban/?amp
– https://watson.brown.edu/costsofwar/figures/2021/human-and-budgetary-costs-date-us-war-afghanistan-2001-2022

डॉ. मोहन लाल जाखड़
स्कॉलर
पोस्ट डॉक्टोरल फेलो
आई.सी.एस.एस.आर., नई दिल्ली
राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

❑ ❑ ❑

उपार्जन केन्द्रों में पंजीकृत किसानों द्वारा धान की बिक्री की मात्रा में कमियों का अध्ययन एवं उपाय

• कु. डिगेश्वरी देवांगन

शोधसार :— बालोद जिला के विपणन संघ से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार सेवा सहकारी समितियों (उपार्जन केन्द्रों) में धान की बिक्री की मात्रा में कमी का मुख्य कारण उपार्जन केन्द्रों की अपर्याप्त व्यवस्था एवं शासन के नियम है। धान जैसे संवेदनशील खाद्यान्न को अधिक समय तक भण्डारित करके नहीं रखा जा सकता है। इससे उपज में सुखत, बारिश, कीड़े-कृदन्त, चूहों एवं चोरी से नुकसान होता है, जिसके कारण उपज में गुणात्मक एवं मात्रात्मक हानि होती है, उस हानि का वाहन किसानों को करना पड़ता है, इसीलिए किसान अपनी उपज (धान) को मंडी, बिचौलियों एवं साहूकारों के पास उसके द्वारा निर्धारित मूल्यों पर विक्रय कर देते हैं। क्योंकि उनके पास भण्डारण की कोई पर्याप्त व्यवस्था नहीं होती है जिसके कारण वे अपने धान को ज्यादा दिनों तक भण्डारित करके रख सकें। यही कारण है कि उपार्जन केन्द्रों में पंजीकृत होते हुए भी किसान अपनी धान विक्रय नहीं कर पाते हैं, उचित मूल्यों का लाभ नहीं उठा पाते हैं। समितियों में बिक्री व्यवस्थाओं एवं नियम किसान के अनुकूल नहीं है यह सत्य है, जिसके कारण धान की बिक्री की मात्रा में कमी आती है। उपरोक्त अनुसंधान से यह निष्कर्ष निकलता है कि मेरी शोध का उद्देश्य सत्य है। इस अध्ययन के निष्कर्ष एवं सुझावों से सरकार को अवगत करा कर इसे दूर करने का सफल पूर्वक प्रयास किया जा सकता है, ताकि बिक्री व्यवस्था किसानों के अनुकूल हों और शत् प्रतिशत उपार्जन केन्द्रों में बिक्री हो सकें इससे धान की मात्रा में कमी नहीं होगी, और किसान एवं उपार्जन केन्द्र दोनों लाभान्वित हो पायेंगें।

मूख्य शब्द : धान, किसान, उपार्जन केन्द्र, पंजीयन, बिक्री।

1. प्रस्तावना :-

छत्तीसगढ कृषि प्रधान राज्य है। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती हैं, और कृषि कार्य करती है। यहाँ छोटे बड़े दोनों प्रकार के किसान होते है। जो कृषि कार्य करके अपना जीवन यापन करते हैं, कृषि पर ही निर्भर रहते हैं। शोध पत्र में क्षेत्र बालोद जिला लिया गया है। बालोद जिले में भी मुख्य रूप से धान का ही उत्पादन किया जाता है। उत्पादन दो फसलों में ली जाती है, एक खरीफ, दूसरा रबी। मुख्य रूप से किसानों द्वारा खरीफ फसल ही लिया जाता है। कुछ-कुछ जगहों में गेहूँ, अरहर, तिल एवं गन्ने का उत्पादन किया जाता है। किसान अपनी उपज सेवा सहकारी समितियों में शासन द्वारा निर्धारित समर्थन मूल्य पर विक्रय करती है। लेकिन सभी किसान सेवा सहकारी समितियों में ही अपनी उपज का विक्रय नहीं करती कुछ किसान उपज को मंडी में, बिचौलियों एवं साहूकार को बेच देते हैं। कारण उनको अच्छी कीमत का मिलना दूसरी कृषि हेतु कर्ज लेने के कारण वह अपनी उपज यहाँ विक्रय कर देते हैं। सेवा सहकारी समितियों जिन्हें उपार्जन केन्द्र भी कहा जाता है, विक्रय हेतु पंजीयन कराना अनिवार्य होता है, तभी वह अपनी उपज को वहाँ बेचने के लिए पात्र होते हैं।

किसानों के पंजीयन की प्रक्रिया

- सर्वप्रथम धान उपार्जन से पहले जो धान विक्रय हेतु इच्छुक है उन किसानों का पंजीयन करवाया जाता है। तहसीलदार किसानों को उनके भूमि एवं रकबे की जानकारी लिख के देते हैं।
- पंजीयन हेतु किसान द्वारा समिति से आवेदन प्राप्त कर (संलग्न प्रारूप-2) उसे भरकर सम्बन्धित दस्तावेज के साथ तहसील कार्यालय में जमा करना होता है। आवेदन में उल्लेखित भूमि एवं रकबे का पटवारी द्वारा राजस्व रिकार्ड के आधार पर सत्यापन किया जाता है। तहसीलदार के साक्ष्य देखने और परीक्षण करने के बाद किसानों का पंजीयन किया जाता है।
- धान से अलग अन्य फसलों के रकबों को किसी भी परिस्थिति में धान के रकबे के रूप में पंजीयन नहीं किया जायेगा। जिससे अवैध धान के विक्रय की गुंजाइश नहीं रहेगी।
- यदि कोई किसान लीज पर जमीन लिये है तो उस किसान का पंजीयन

करना होता है और भुगतान उनके खातों में समर्थन मूल्य में करना होगा। बशर्ते खेती धान की ही होनी चाहिए।

- समर्थन मूल्य पर धान उपार्जन में कृषि सीलिंग कानून के प्रावधानों का ध्यान रखा जाना चाहिए।
- धान विक्रय से पूर्व पंजीकृत कृषक की मृत्यु हो जाने पर तहसीलदार के द्वारा परिवार के नामांकित व्यक्ति के नाम से धान खरीदी जा सकती है।
- आधार कार्ड की आवश्यकता होती है।
- समस्त धान बीज उत्पादक कृषकों का बीज निगम के साथ-साथ समिति में भी गतवर्ष अनुसार ही पंजीयन किया जाये।
- समिति द्वारा बीज उत्पादक कृषकों से धान की न्यूनतम समर्थन मूल्यों पर खरीदी शासन द्वारा निर्धारित अवधि तक की जा सकती है।
- समिति द्वारा बीज उत्पादक कृषकों से न्यूनतम समर्थन मूल्यों पर फेल धान बीज की खरीदी शासन द्वारा निर्धारित अवधि तक की जा सकती है।

किसानों से आशय—अब बात आती है, किसानों की क्योंकि किसान समितियों का आधार होता है। समितियां किसानों के बिना अधूरा है। किसान समितियों में ही केवल अपना धान विक्रय नहीं करती है, बल्कि खाद, बीज एवं कृषि हेतु ऋण भी लेती है। इसीलिए समितियों में किसानों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

किसान कौन—सामान्य दृष्टि से किसान वह है, जो किसी न किसी रूप में चाहे व छोटी हो या बड़ी कृषि कार्य करते हैं किसान कहलाते हैं। लेकिन सेवा सहकारी समितियों की दृष्टि से किसान वह होते हैं जो समिति में अपने उपज को विक्रय करने हेतु पंजीकृत हो वह किसान कहलाता है। भले ही वह अपने उपज को उपार्जन केन्द्र में विक्रय करें या न करें वह किसानों की श्रेणी में आ जाता है। क्योंकि उपार्जन केन्द्र में उपज को विक्रय करने के लिए किसानों को पंजीकृत होना अनिवार्य है तभी वह अपने उपज को शासन के समर्थन मूल्यों पर विक्रय कर सकते हैं अन्यथा नहीं। जो किसान समितियों में पंजीकृत नहीं है वह अपनी उपज का विक्रय नहीं कर सकेंगें। अत: किसानों का पंजीयन अनिवार्य है।

पंजीयन होने के उपरांत किसान उपार्जन केन्द्रों में अपने उपज को रकबे के अनुसार शासन द्वारा निर्धारित क्विंटल एवं समर्थन मूल्यों पर विक्रय कर सकते हैं। वर्तमान में शासन द्वारा उपज के लिए 15 क्विंटल प्रति एकड़ निर्धारित

किया गया है एवं भारत सरकार, खाद्य विभाग के अनुसार उचित गुणवत्ता के खरीफ फसल धान के लिए निम्नानुसार समर्थन मूल्यों में निर्धारित किया गया है जो निम्न है —

समर्थन मूल्य

भारत सरकार, खाद्य विभाग के अनुसार उचित गुणवत्ता के खरीफ फसल धान के लिए निम्नानुसार समर्थन मूल्य निर्धारित किया गया है।

धान कॉमन —रुपये 1940 प्रति क्विंटल

धान ए ग्रेड —रुपये 1960 प्रति क्विंटल

लेकिन राज्य शासन द्वारा धान का मूल्य 2500 रुपये निर्धारित किया गया है, जो 21 मई को माननीय श्री राजीव गाँधी जी के जंयती पर किसानों को बोनस के रूप में चार किस्तों में प्राप्त होती है। समर्थन मूल्य केन्द्र शासन द्वारा निर्धारित होता है। बलोद जिला के सेवा सहकारी समितियों में पंजीकृत किसानों की संख्या एवं पंजीकृत धान का रकबा निम्न है—

तालिका 1

वर्षवार कुल पंजीकृत किसानों एवं पंजीकृत कुल धान का रकबा

वर्ष	कुल पंजीकृत किसानों कुल पंजीकृत किसानों	पंजीकृत कुल धान का रकबा हेक्टेयर में
2013-2014	102538	150650.28
2014-2015	86667	127912.33
2015-2016	90144	132647.78
2016-2017	97960	141144.17
2017-2018	105885	146221.87
2018-2019	11193	150222.74
2019-2020	124491	153835.39
2020-2021	130880	154424.23

(बालोद जिला में विगत वर्षों में धान उपार्जन कृषक पंजीयन एवं धान निराकरण से सम्बन्धित जानकारी जिला विपणन संघ बालोद छ.ग.)

2. शोध साहित्य की समीक्षा

- भारतीय अनाज भंडारण प्रबंधन और अनुसंधान संस्थान उ.प्र., फसल के नुकसान का कारण अवैज्ञानिक भण्डारण, कीड़े, कृन्तकों, सूक्ष्म जीवों आदि के कारण कुल खाद्यान्न का लगभग 10 प्रतिशत है, भारत में वार्षिक भण्डारण हानि अनुमानित रूप से 14 मिलियन टन का मूल्य रुपये 7000 करोड़ है जिसमें से लगभग 1300 करोड़ रुपये का भण्डारण को कीड़े अकेले खाते हैं। भण्डारण में होने वाली आर्थिक हानि हमेशा कीटों से ही नहीं होती है बल्कि प्रदूषण की मात्रा से भी होता है।

- उमेश कुमार गुप्ता, (2009) धान खरीदी एवं संग्रहण में छत्तीसगढ़ राज्य सहकारी विपणन संघ की भूमिका-एक अध्ययन, प्रस्तुत शोध में बताया गया है कि कृषकों को उनके उपज का उचित मूल्य नहीं मिल पा रहा है। कृषकों के उपज की खरीदी सेवा सहकारी समितियों एवं कृषि उपज मंडियों के माध्यम से किया जाता है लेकिन उपज का सही श्रेणीकरण न हो पाने के कारण उचित मूल्य नहीं मिल पा रहा है कृषकों को व्यापारियों के मूल्यांकन पर ही निर्भर होना पड़ रहा है व्यापारियों द्वारा तैयार किया गये मूल्य को ही उचित मूल्य मान लिया जाता है।

- अकांक्षा राठौड़, (2017) छत्तीसगढ़ राज्य के विकास में राज्य कृषि विपणन (मंडी) बोर्ड की भूमिका, प्रस्तुत शोध में छ.ग. राज्य कृषि विपणन बोर्ड के गठन के उद्देश्यों के बारे में बताया गया है तथा इनके कार्यप्रणालियों का वर्णन किया गया है कि किस प्रकार बोर्ड के अंतर्गत संचालित कृषि उपज मंडी कृषकों को उनके उपज के विपणन सम्बन्धी सुविधाएं प्रदान करा रही है। मंडी बोर्ड के गठन से हितग्राही कहां तक लाभान्वित हो रहे है।

- भैरूलाल चौरड़िया, (2012) कृषि विकास का कृषको पर प्रभाव, प्रस्तुत शोध अध्ययन में कृषि विकास की समस्याओं से अवगत कराया गया है। समस्याएं जैसे—विद्युत आपूर्ति में कमी, बीजों के प्रभाव का अभाव, भण्डार गृहों का अभाव, कृषि विपणन की समस्या आदि प्रमुख समस्याएं है जो कृषि विकास में आज भी विद्यमान है।

इसमें बताया गया है कि धीमी गति से उबरना अत्यन्त आवश्यक है ताकि विकास की प्रक्रिया से समाज के सभी वर्गों को लाभान्वित किया जा सके।

- होसाकोटी, शैला एस., (2011) कृषक द्वारा अपनाए गये अनाज भण्डारण पद्धति का मूल्यांकन धाड़वाड़ विश्वविद्यालय, प्रस्तुत शोध अध्ययन में कृषक द्वारा अपनाये गए पद्धति के बारे में बताया गया है कि उनके द्वारा अपनाये गये पद्धति से कृषक कहां तक लाभान्वित हो रहे है उनका मूल्यांकन किया गया है।

3. उद्देश्य :

- कृषकों द्वारा अपने उत्पादन (धान) को सेवा सहकारी समितियों के पास विक्रय न करने के कारणों का एवं कृषकों के पास स्वयं के भण्डारण की स्थितियों का पता लगाना एवं निराकरण हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

4. शोध पद्धतियां :

प्रस्तुत शोध पत्र में वर्तमान अध्ययन द्वितीयक संमंकों पर आधारित है। द्वितीयक संमंक जिला विपणन संघ बालोद (छ.ग.) से सत्र 2013-2014 से 2020-2021 तक के रिपोर्ट का संग्रहण किया गया है। शोध पत्र में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है। आकड़ों का विश्लेषण सांख्यकीय तरीकों प्रतिशत एवं औषत पद्धति के आधार पर किया जायेगा एवं परिणाम तक पहुँच कर निष्कर्ष निकाल सुझाव प्रस्तुत किया जायेगा।

5. आंकड़ों का विश्लेषण :

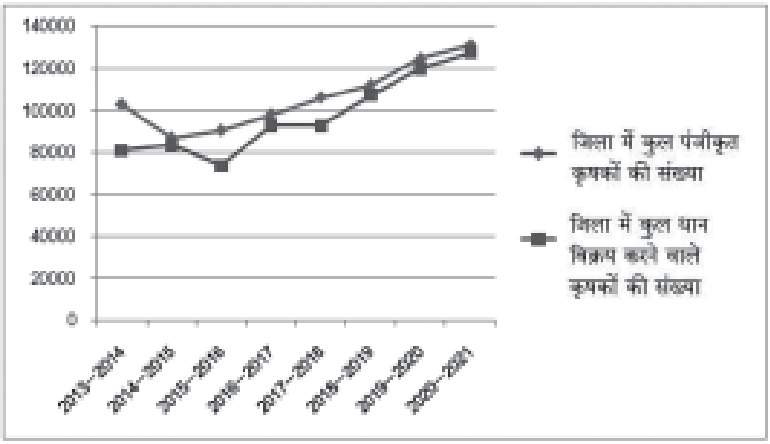
आंकड़ों का विश्लेषण बालोद जिला में विगत वर्षों में धान उपार्जन केन्द्रों में कुल कृषकों की पंजीयन एवं कुल धान की विक्रय की मात्रा से सम्बन्धित जानकारी जिला विपणन संघ बालोद के 2013-2014 से 2020-2021 तक के द्वितीयक आकड़ों का विश्लेषण किया गया है।

तालिका 2

वर्षवार जिला में कुल पंजीकृत कृषकों की संख्या जिला में कुल धान विक्रय करने वाले कृषकों की संख्या

वर्ष	जिला में कुल पंजीकृत कृषकों की संख्या	जिला में कुल धान विक्रय करने वाले कृषकों की संख्या
2013-2014	102538	80675
2014-2015	86667	83244
2015-2016	90144	73447
2016-2017	97960	92615
2017-2018	105885	92414
2018-2019	111933	107055
2019-2020	124491	119684
2020-2021	130880	127280

(बालोद जिला में विगत वर्षों में धान उपार्जन कृषक पंजीयन एवं धान निराकरण से सम्बन्धित जानकारी जिला विपणन संघ बालोद छ.ग.)



प्रस्तुत ग्राफ में नीला रंग जिला में कुल पंजीकृत कृषकों की संख्या को प्रदर्शित कर रहा है तो वही लाल रंग जिला में कुल धान विक्रय करने वाले कृषकों की संख्या को प्रदर्शित कर रहा है। जैसा कि ग्राफ से पता चल रहा कि किस प्रकार पंजीकृत किसानों की संख्या ज्यादा है और विक्रय करने वाले कृषकों की संख्या पंजीयन करने वाले कृषकों की तुलना में काफी कम है। इसीलिए पंजीकृत कृषकों का लाइन ग्राफ ऊपर की ओर और विक्रय करने वाले कृषकों की लाइन ग्राफ नीचे की ओर है।

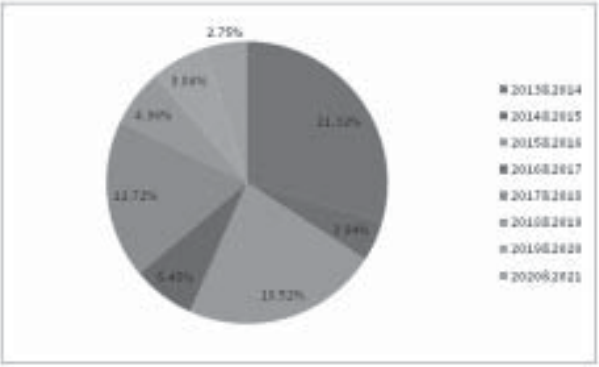
वर्षवार कुल पंजीकृत किसानों एवं कुल विक्रय करने वाले किसानों की कमी एवं उनके कमी की प्रतिशत का निर्धारण करते हैं —

तालिका 3

वर्षवार कुल पंजीकृत किसानों एवं कुल विक्रय करने वाले किसानों की कमी एवं उनके कमी की प्रतिशत

वर्ष	विक्रय करने वाले किसानों की कमी की मात्रा	कमी की प्रतिशत
2013-2014	21863	21.32
2014-2015	3423	3.94
2015-2016	16697	18.52
2016-2017	5345	5.45
2017-2018	13471	12.72
2018-2019	4878	4.36
2019-2020	4807	3.86
2020-2021	3600	2.75

ग्रॉफ 2



1. निष्कर्ष एवं सुझाव :-उपरोक्त शोध अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है, कि उपार्जन केन्द्रों में होने वाले व्यवस्थाओं एवं शासन की नियमों प्रतिकुल नहीं है जिससे कृषक पंजीयन तो करा लेते है लेकिन विक्रय नहीं करते हैं।

   कारण –1. बिक्री के समय समस्या क्योंकि जिसके नाम से पंजीयन है वही धान बेच सकते है। पंजीकृत व्यक्ति की मृत्यु होने पर तहसीलदार के आदेश से नामांकित व्यक्ति अपना धान बेच सकते है, लेकिन कार्यवाही करने में समय ज्यादा लगने के कारण सुखत से बचने के लिए वो अपना धान दूसरे जगह विक्रय करने हेतु मजबूर हो जाते है।

2. रकबो की जानकारी ऑनलाइन पद्धति से होने के कारण किसानों को बहुत ज्यादा समस्या का सामना करना पड़ता है क्योंकि जब जांच कराई जाती है तो पता चलता है कि वो किसी दूसरे के नाम पे है या ये कृषि योग्य जमीन नहीं है। इस कारण भी किसान पंजीकृत होने के बाद भी अपना धान उपार्जन केन्द्रों में नहीं बेच पाते हैं।

3. उपार्जन केन्द्रों में खरीदी टोकन के माध्यम से किया जाता है, और टोकन में समय का अन्तर 7 या 15 दिन के बीच का होता है। चूंकि उनके पास भण्डागृह की कमी होती है, जिससे किसान अपने उपज को तुरन्त मिंजाई करके रोक कर नहीं रख सकते है उससे धान की मात्रा में सुखत, बारिश, धूप, कीड़ मकोड़े जैसी समस्याओं से बचने के लिए मंडी और बिचौलियों के पास विक्रय कर देते है। भले ही उनको उपज का सही मूल्य प्राप्त हो या नहीं हो।

4. किसानों के पास पर्याप्त बारदानों के कमी के करण भी वो अपनी उपज बाहर बेच देते है, क्योंकि उपार्जन केन्द्रों में अपने बारदानों में धान को

भरकर ले जाना होता है। और दूसरी जगह धान बेचने से वो स्वयं घर में धान खरीदने आते हैं। इससे बारदाना वाली समस्या खतम हो जाती है।

5. शासन का नियम भी एक कारण है। शासन द्वारा 15 क्विंटल प्रति एकड़ धान खरीदी निर्धारित किया गया है, लेकिन किसानों द्वारा रसायनिक खाद के प्रयोग एवं उनकी मेहनत के कारण उत्पादन अच्छा हो जाता है। इसीलिए किसान अपने पूरे उपज को एक साथ बेचना चाहते हैं और वो मंडी, बिचौलियों एवं साहुकार को अपनी उपज बेच देते हैं।
6. किसान अपने कृषि या रोजमर्रा की आवश्यकताओं के लिए साहुकारों एवं दुकानदारों से कर्ज लेते हैं, तो उनको ही अपनी धान बेच देते हैं और समितियों में नहीं बेच पाते हैं।
7. दूरी, परिवहन एवं मजदूरों की अपर्याप्तता भी बिक्री न कर पाने का एक कारण है।

सुझाव :

1. पंजीयन के नियमों सरल बनाया जाय ताकि किसान आसानी से अपना कार्य करने में सक्षम हों।
2. ऑनलाइन पद्धति से होने वाले कार्यों का निपटारा जल्द से जल्द होना।
3. टोकन पद्धति की समयाअवधि को कम करना, जिससे उनके उपज की मात्रा में कमी न आये।
4. क्रम वार किसानों को बारदाना उपलब्ध कराना, जिससे किसानों को कम व्यय लगे।
5. 15 क्विंटल प्रति एकड़ को बड़ाकर 20 क्विटंल प्रति एकड़ किया जाये ताकि किसान अपनी पूरी उत्पादन बेच सके।
6. शासन से उनको जितना कृषि हेतु आवश्यक है उतनी ऋण प्रदान किया जाए, ताकि वह दूसरी जगह कृषि हेतु कर्ज न ले सके।

संदर्भ

- उमेश कुमार, धान खरीदी एवं संग्रहण में छत्तीसगढ़ राज्य सहकारी विपणन संघ की भूमिका—एक अध्ययन, प्रकाशित शोध प्रबंध, 2009, रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर।
- अकांक्षा राठौड़, छत्तीसगढ़ राज्य के विकास में राज्य कृषि विपणन (मंडी) बोर्ड की भूमिका, प्रकाशित शोध प्रबंध, 2017, रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर।
- एस. होसाकोटी शैला, कृषक द्वारा अपनाए गये अनाज भण्डारण पद्धति का मूल्यांकन प्रकाशित शोध पत्र (2011) धाड़वाड़ विश्वविद्यालय।

- भैरूलाल चौरड़िया, कृषि विकास का कृषकों पर प्रभाव, प्रकाशित शोध प्रबंध, 2012।

  अरविन्द कुमार वाद्य, रायपुर सम्भाग की कृषि मण्डियों (नियंत्रित कृषि बाजार) का अध्ययन, प्रकाशित शोध प्रबंध, 1987, रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर।
- रीतु राजपूत, मध्यप्रदेश में कृषि उपज का विपणन योग्य आधिक्य खरीफ फसल के संदर्भ में, प्रकाशित शोध प्रबंध, 2012, मध्यप्रदेश विश्वविद्यालय।
- विपिन वागरेचा, उज्जैन जिले में कृषि क्षेत्र की शुष्क-उपज-भण्डारण हेतु निजी क्षेत्र की भागीदारी का अध्ययन, 2018।
- छ.ग. शासन खाद्य नागरिक आपूर्ति एवं उपभोक्ता संरक्षण विभाग (मार्गदर्शिका) (धान, मक्का उपार्जन तथा कस्टम मिलिंग सम्बन्धी पुस्तिका)।
- छत्तीसगढ़ शासन की आर्थिक सर्वेक्षण समीक्षा मार्गदर्शिका।
- भारतीय अनाज भंडारण प्रबंधन और अनुसंधान संस्थान उ.प्र., (मार्गदर्शिका)।
- डिगेश्वरी देवांगन, छत्तीसगढ़ राज्य के बालोद जिला के अंतर्गत संग्रहण केन्द्रों में धान के भण्डारण व्यवस्था में कमियां एवं उसका निराकरण, प्रकाशित शोध-पत्र, 2021, दुर्ग विश्वविद्यालय, छ.ग।
- इन्टरनेट—

  hi.wikipedia.org/wiki/balod
  Balod.govt.in
  hi.wikipedia.org/wiki/chhatishgarh

प्रतिवर्ष प्राप्त कमी की मात्रा = A – B

A = जिला में कुल पंजीकृत कृषकों की संख्या

B = जिला में कुल धान विक्रय करने वाले कृषकों की संख्या

$$\text{प्रतिवर्ष प्राप्त कमी का प्रतिशत} = \frac{X}{Y} * 100$$

X = प्रतिवर्ष विक्रय करने वाले किसानों की कमी की मात्रा

Y = प्रतिवर्ष जिला में कुल पंजीकृत कृषकों की संख्या

शोधार्थी	सह-शोध निर्देशक	शोध-निर्देशक
कु. डिगेश्वरी देवांगन	**डॉ. शशिनाथ झा**	**डॉ. शशि कश्यप**
(वाणिज्य संकाय)	प्राध्यापक (वाणिज्य)	सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य)
शा.वि. या. ता. स्ना. स्व.	शा.वि.या.ता.स्ना.स्व.	डॉ. मनराखनलाल साहू
शास.महाविद्यालय, दुर्ग	महाविद्यालय, दुर्ग	महाविद्यालय जामुल,दुर्ग

❑ ❑ ❑

Sl.No.	Journal No.	Title	Publisher	ISSN
169		JUNI KHYAT		2278-4632

UGC Journal Details

Name of the Journal : **JUNI KHYAT**

ISSN Number : 2278-4632

e-ISSN Number : NA

Source : **UGC**

Discipline : **Social Science**

Subject : **Social Sciences (all)**

Focus Subject : Cultural Studies

Publisher : Marubhumi Shodh Sansthan, Sri Dungargarh (Bikaner)

महत्त्वपूर्ण जानकारी

पाठकों से निवेदन है कि **जूनी ख्यात** में प्रकाशन हेतु शोध पत्र की एक प्रति Word तथा एक प्रति PDF फाइल में अवश्य भेजें। यदि शोध पत्र हिन्दी में है तो Kruti Dev 010 तथा अंग्रेजी में है तो Times New Roman नामक फोन्ट का प्रयोग करें।

शोध पत्र से सम्बन्धित छाया चित्रों को कम से कम 300 डीपीआई में सुरक्षित कर जे पी जी फाइल बनाकर अलग से अनुशीर्षक सहित भेजें।

शोध पत्र को इस पते पर e-mail करें bbhadani.amu@gmail.com अथवा डाक से सीडी बनाकर सम्पादक, **जूनी ख्यात**, रांगड़ी चौक, बीकानेर (राज.) 334001 के पते पर भिजवाएँ।

सम्पादक

जूनी ख्यात जनवरी–जून, 2022 वर्ष : 11 • अंक 2 ISSN : 2278-4632



देश की धड़कन राजस्थान की शान **राजस्थली** की यही पहचान

- हम जीवन में बीसियों तरह के व्यसन–शौक पालते हैं परन्तु पढ़ने की आदत नहीं डालते। यही कारण है कि हम अपनी सांस्कृतिक पहचान, शख्सियत और वजूद को संरक्षित नहीं रख पा रहे हैं।
- राजस्थानी ही वह भाषा है जिसकी लोरियों तले हमारा बचपन खेला, कूदा और बड़ा हुआ है। अपने पांवों पर खड़ा होने के बाद ममत्व और वात्सल्य को भुलाना तो हमारी परम्परा नहीं रही है। तो फिर हम क्यों भूल रहे हैं हमारी बाल–सुलभ जिज्ञासाओं को अनथक शांत करने वाली इस मायड़ को ?
- आईये ! हम भी बंगाल की तरह हमारे घरेलू बजट में पत्र–पत्रिकाओं को शामिल कर अपने बच्चों को एक सद्–संस्कार दें। परिवार को अपना वाजिब हक दें। अपने गैर–जरूरी खर्चों में कटौती कर पीढ़ियों को संस्कारित करने के इस अनुष्ठान में सहयोगी बनें।
- आज ही **राजस्थली** के सदस्य बनें और बनायें। पत्र–पत्रिकाओं को सहयोग और उनका संरक्षण हमारी नैतिक जिम्मेदारी है।

आओ ! **राजस्थली** को स्वावलम्बी बनाएं और
पुस्तक प्रेम की हमारी सांस्कृतिक परम्परा का परिचय दें।

सदस्यता शुल्क विवरण

पाँच वर्ष के लिए	1000 रुपये
आजीवन	2500 रुपये
संरक्षक सदस्यता	5100 रुपये

राजस्थली लेन–देन सारु :
खाता नांव : RAJASTHALI
बैंक : बैंक ऑफ इंडिया, श्रीडूँगरगढ़
खाता सं. : 746210110001995
IFSC : BKID 0007462

महावीर प्रसाद माली मरुभूमि शोध संस्थान,
श्रीडूँगरगढ़ के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित।

मुद्रक : महर्षि प्रिंटर्स, श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राज.

जूनी ख्यात बैंक विवरण :
Account Name : Marubhumi Shodh Sansthan
Bank : Punjab National Bank, Sridungargarh
Account No. : 3604000100174114
IFSC : PUNB0360400

Website : http://rbhpsdungargarh.com